भारतवर्ष

अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञानकोष

भारतवर्ष

अ

अखिल अमरीकन परिषद्—अखिल अमरीकन परिषद् (Pan American Union) के अन्तर्गत २१ प्रजातत्र स्वतंत्र राज्य सम्मिलित है। इसका मुख्य कार्यालय वाशिंगटन मे है। इस परिषद् का उद्देश्य उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका मे राजनीतिक और आर्थिक सहकारिता एवं एकता की भावना को प्रोत्साहन देना तथा स्फूर्ति प्रदान करना है। दक्षिणी अमरीका के प्रजातत्रो को सदैव यह भय बना रहता है कि अखिल अमरीका मे कही संयुक्त राज्य अमरीका का आर्थिक तथा राजनीतिक नेतृत्व स्थापित न हो जाय। अतः राजनीतिक क्षेत्र मे एकता स्थापित करने के लिए घोषणाओं के सिवा, अखिल अमरीकनवाद के सगठन तथा प्रोत्साहन के लिए अभी तक कोई ठोस प्रयत्न नही हो सका। ऐसी अनेक संस्थाएँ भी स्थापित की गई हैं, जिनके द्वारा आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रो मे सहकारिता की भावना पैदा करने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। हवाना (क्यूबा) मे २१ जुलाई से ३० जुलाई १९४० तक दोनो अमरीकाओं के प्रजातत्र राज्यो के वैदेशिक मन्त्रियो का द्वितीय सम्मेलन हुआ, जिसमें २१ अमरीकन प्रजातंत्र राज्यो ने विभिन्न विषयो पर २५ प्रस्ताव स्वीकार किये। इनमे से मुख्य निश्चय निम्न प्रकार हैं:— अन्तर्अमरीकन तटस्थता-समिति, राजदूतो के कार्य तथा अधिकार, प्रत्येक अमरीकन राज्य के, समाज तथा सस्थाओं की रक्षा के निमित्त, पुलिस तथा

न्याय-सबधी कार्यों की सुनियोजित व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय रैडक्रास सोसाइटी सघ, पास-पोर्ट-वीमा, अमरीका की सस्थाओ के विरुद्ध वाह्य शक्तियो द्वारा सचालित कार्य एव प्रचार, अन्तर्अमरीकन प्रजातत्रवादी आदर्श को खतरे मे डालनेवाली विचारधारा से सुरक्षा, शरणागतो की योजना, अन्तर्राष्ट्रीय विधान की रचना, अन्तर्अमरीकन सगठन, झगडो का शान्तिपूर्ण निर्णय, अमरीका के राज्यो की रक्षा मे पारस्परिक सहायता, अमरीका के राज्यो मे शान्ति तथा सगठन की स्थापना, पारस्परिक विचार-विनिमय का तरीका, इत्यादि।

अखिल अरब आन्दोलन—इस आन्दोलन का लक्ष्य है समस्त अरबों का एक सघ या राज्य स्थापित करना। शाम (सीरिया), जो आधुनिक अरबी राष्ट्रीयता का गढ है, इस आन्दोलन का केन्द्र है। इसके समर्थक समस्त अरबी-भाषी देशो मे मिलते हैं। यह आन्दोलन अखिल इस्लामवाद (Pan-Islamism) से मिलता-जुलता है। परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि इसका आधार राष्ट्रीय है, इसी कारण इस आन्दोलन मे अरबी-ईसाई भी, मुस्लिम अरबो की भाँति ही, सहयोग देते हैं।

इस आन्दोलन मे अरबो की स्थानिक तथा क़बीले-सबधी दृढ भावना और भिन्न अरब राज्यो एव नरेशो मे प्रतिस्पर्द्धा के कारण बाधा पड रही है। इस स्पर्द्धा के आधार मे कोई सैद्धान्तिक मतभेद नही है, प्रत्युत् नेतृत्व के लिए झगडा है। अखिल-अरब आन्दोलन कोई सुसगठित शक्ति नही है। वह तो अरबो मे पायी जानेवाली एक सामान्य सहानुभूति की भावधारा है, जो समय-समय पर प्रकट होजाती है। अनेक गुप्त तथा प्रकाश्य सस्थाओं द्वारा इस आन्दोलन का सचालन हो रहा है। फिलिस्तीन के प्रश्न पर विलूदेन—शाम (सीरिया) मे सितम्बर १९३७ मे अखिल अरबवादियो की एक कांग्रेस हुई थी। यरूशलम के मुफ्ती आजम के प्रयत्न से यह कांग्रेस हुई थी। इसमे ४५० प्रतिनिधि शामिल हुए थे। इस आन्दोलन का लक्ष्य है समस्त अरब-राज्यो का सघ स्थापित करना। फिलिस्तीन मे यहूदियो को यह लोग सशक्त नहीं देखना चाहते। मिस्र की इस आन्दोलन से सहानुभूति तो है परन्तु दूरी बाधक है। कुछ मिस्रवासियो का कहना है कि मिस्र सब अरब राज्यो मे प्रगतिशील है इसलिए उसे इस आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करना

चाहिए। सऊदी अरब तथा मिस्र की जो सधियॉ हुई हैं, उनमे अरब-बधुत्व की ओर सकेत है। फ़ान्सीसी उत्तरी अफ्रीका तथा मरक्को मे भी इस आन्दोलन के प्रति सहानुभूति है। इन दोनो देशो के लोग अरब जाति के नही है, और न वे विशुद्ध अरबी भाषा का ही प्रयोग करते हैं; किन्तु वहॉ वास्तविक अरबो का सम्मान किया जाता है। आधुनिक समय मे समस्त अरब देश किसी-न-किसी यूरोपियन राज्य के अधीन हैं अथवा उनके सरक्षण या प्रभाव-क्षेत्र मे हैं। इसलिए यूरोपीय शक्तियॉ इन देशो मे अरब-आन्दोलन की प्रगति मे बाधा डालती रहती हैं।

अखिल इस्लामवाद—इस आन्दोलन का यह लक्ष्य है कि राजनीतिक दृष्टि से इस्लाम के समस्त अनुयायी मिलकर अपना एक संघ या साम्राज्य स्थापित करे। संसार मे मुसलमानो की कुल सख्या ३०,००,००,००० है। इस्लामी बंधुत्व मुस्लिम मत का एक आधारभूत सिद्धान्त है और ख़लीफ़ा की विगत सस्था यह सिद्ध करती है कि राजनीतिक दृष्टि से समस्त मुसलमान एक प्रमुख के अधीन रहे हो। आधुनिक अर्थ मे अखिल इस्लामवाद का प्रादुर्भाव १८वीं शताब्दी मे हुआ। तुर्की मे सुल्तान अब्दुर् रशीद द्वितीय के नेतृत्व मे यह आन्दोलन शुरू किया गया। परन्तु यह प्रयत्न विफल रहा। सन् १६११ मे अखिल इस्लामवादी कांग्रेस भी विफल रही। सन् १६१४–१८ के विश्वयुद्ध मे ख़िलाफ़त की स्थिति दुर्बल सिद्ध हुई। तुर्किस्तान के सुल्तान की जिहाद (धर्म-युद्ध) की घोषणा का मित्रराष्ट्रो पर कोई प्रभाव न पडा, और मुसलिम अरबो तथा भारतीय मुसलमानो ने इस्लामी तुर्को के ख़िलाफ लडाई लड़ी। जब मुस्तफा कमाल पाशा ने सुल्तान और ख़िलाफत सस्था का ख़ात्मा कर दिया और तुर्किस्तान मे 'अधार्मिक नीति' के अनुसार राज्य-प्रबंध तथा शासन होने लगा, तब अरबो मे अखिल इस्लामवाद के प्रति अधिक अनुराग बढ़ गया। विगत विश्व-युद्ध के पूर्व तुर्किस्तान प्रमुख इस्लामी राज्य था। वह अखिल इस्लामवाद का भी केन्द्र था। इसलिए ख़िलाफत के पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न किया जाने लगा। सन् १६२६ मे काहिरा मे ख़िलाफत कांग्रेस और मक्का मे अखिल मुस्लिम कांग्रेस हुई। परन्तु कोई व्यावहारिक निश्चय न होसका। ख़लीफा के पद के लिए कई नाम लिए जाने लागे। बादशाह

इब्न सऊद और मुफ़्ती आज़म (Grand Mufti) के नाम भी पेश किए गए। परन्तु सत्य तो यह है कि आदिकालीन ख़लीफ़ों के समय से आज तक कोई संयुक्त पान-इस्लामी साम्राज्य नहीं रहा, और आज भी जातीय, भौगोलिक तथा आर्थिक मतभेद अखिल-इस्लामी साम्राज्य की स्थापना में बाधक हैं। परन्तु अब इस्लामी जनता के स्वातंत्र्य-युद्ध में अखिल इस्लामवाद को एक आध्यात्मिक अस्त्र की तरह काम में लाया जा रहा है। सन् १९३८ में मिस्र और शाम (सीरिया) में जो मुस्लिम सम्मेलन हुए उनका फिलिस्तीन की समस्या पर, अरबों के पक्ष में, अच्छा प्रभाव पड़ा। सन् १९३४ में सादाबाद के समझौते के अनुसार यह निश्चय हुआ कि तुर्की, ईरान, ईराक़ और अफ़ग़ानिस्तान में परस्पर राजनीतिक सहकारिता स्थापित की जायगी। उसी प्रकार सऊदी अरब की मिस्र और ईराक़ के साथ जो संधियाँ हुई हैं, उनमें "इस्लामी सद्भावना" का उल्लेख किया गया है।

अखिल जर्मनवाद—इस आन्दोलन का उद्देश्य समस्त जर्मन भाषा-भाषियों को एक ही राज्य के अन्तर्गत संगठित करना है। सन् १९१४–१८ के विश्व-युद्ध से पूर्व जर्मनी में इस आन्दोलन का संचालन 'हर' श्रेणी के लोगों ने किया था। पहले इसका उद्देश्य आस्ट्रिया के जर्मन-भाषी प्रान्तों को जर्मनी में मिलाना था। आस्ट्रिया में अखिल जर्मनवाद अर्थात् पान-जर्मनिज़्म का ज़ोरदार प्रचार था। हर हिटलर का जन्म इसी वातावरण में हुआ और उस पर इस आन्दोलन का बड़ा प्रभाव पड़ा। अखिल-जर्मनवादी बिस्मार्क की पूजा करते थे; परन्तु उसने आस्ट्रिया की सुरक्षा का समर्थन किया था। हिटलर ने आस्ट्रिया और सुडेटनलैण्ड को जर्मनी में मिलाकर इस आन्दोलन के लक्ष्य की पूर्ति की। पश्चिम में अखिल-जर्मनवाद का लक्ष्य अलसेस-लोरेन, लक्ज़मबर्ग तथा जर्मन-भाषी स्विट्ज़रलैण्ड को जर्मनी में मिलाना रहा है। उग्र जर्मनवादी तो यहाँ तक चाहते हैं कि हालैण्ड और फ्लैण्डर्स को भी जर्मनी में मिलाया जाय।

अखिल यूरोपवाद—वियना नगर में काउन्ट निकोलस तथा काउन्ट रोके कालरेगी ने सन् १९२६ में यह आन्दोलन शुरू किया। अखिल यूरोपीय
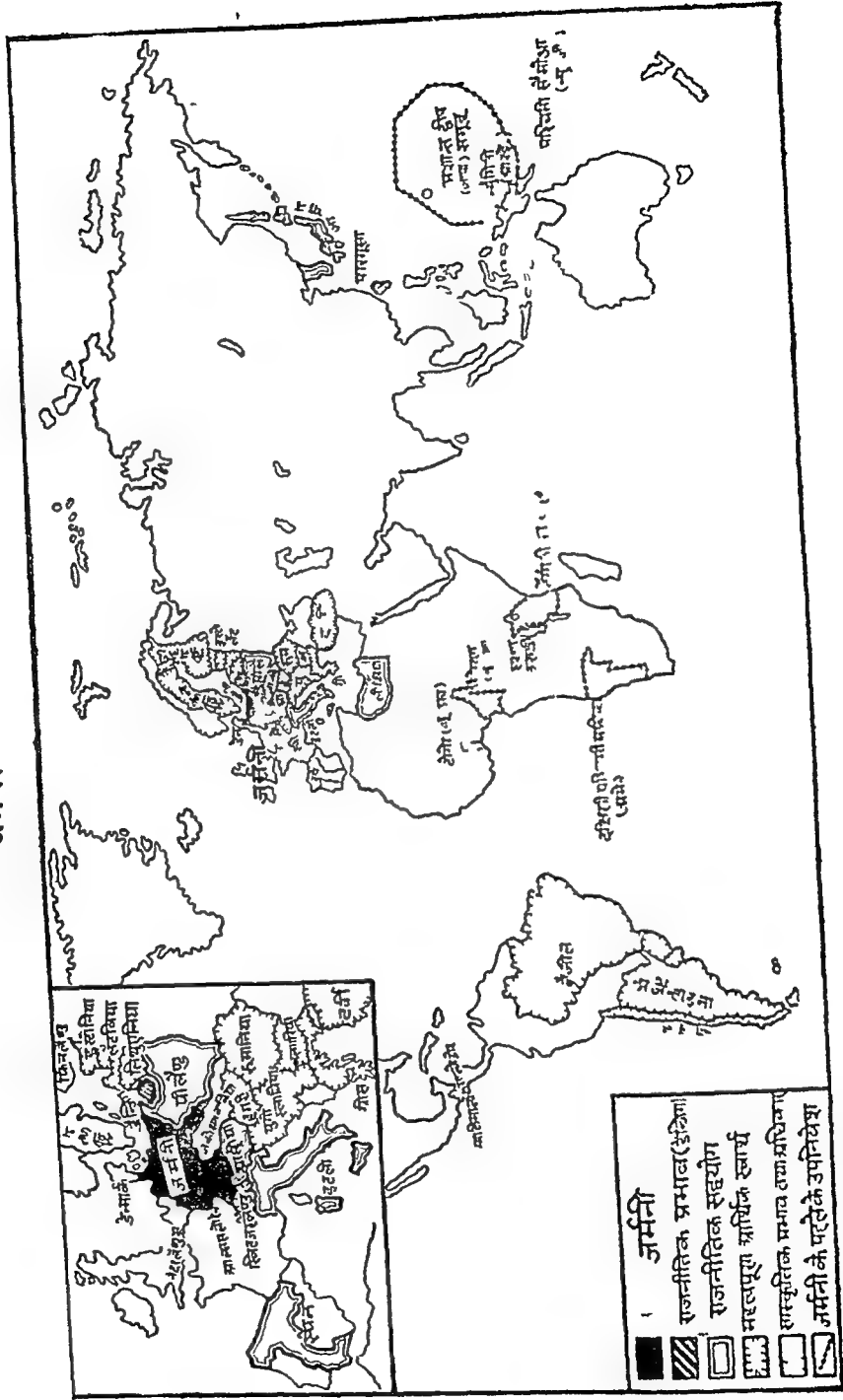
यूनियन का लक्ष्य, रूस को छोड़कर, समस्त यूरोप में एक संघ क़ायम करना था। प्रारम्भ में इस आन्दोलन को कुछ सफलता मिली। परन्तु कुछ दिनों के बाद इसका अन्त होगया।

अखिल स्लैववाद—इस आन्दोलन का जन्मदाता हर हर्डर नामक एक जर्मन विचारक है। इसका जन्म १६वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हुआ था। इसका उद्देश्य समस्त स्लैव जनता को एक राज्य के अधीन करना था। सबसे प्रथम स्लैव कांग्रेस सन् १८४१ मे हुई थी। इसके बाद रूस ने अखिल स्लैववाद आन्दोलन मे प्रमुख भाग लिया। उसने इस आन्दोलन को अपने साम्राज्यवाद की प्रगति के लिए एक साधन बनाया। पोलैण्ड, यूक्रेन तथा बल्कान राज्यों और आस्ट्रिया पर अपना आतंक जमाने के लिए रूस इस आन्दोलन मे कूद पड़ा। आस्ट्रिया तथा बल्कान राज्यों के स्लैव अपने सभ्य-मण्डल लेकर रूस को जाया करते थे। रूसी साहित्य मे एक नवीन विचारधारा चल पड़ी थी जिसके अनुसार यूरोप मे स्लैवो को एक पवित्र 'मिशन' माना जाने लगा। सोकल क्रीडा-संघ समस्त स्लैव लोगों मे अखिल स्लैववादी विचारधारा का प्रचार करने लगा। बहुत-सी स्लैव कांग्रेसे भी हुईं, परन्तु रूसी राज्य-क्रांति (१६१७) के साथ इस आन्दोलन का भी अन्त होगया। इस आन्दोलन के प्रभाव के कारण ही बल्कान देशो में से तुर्कों का निष्कासन संभव होसका तथा आस्ट्रिया का साम्राज्य छिन्नभिन्न होगया। यह आन्दोलन एक संगठित राजनीतिक आन्दोलन के रूप मे नहीं रहा। प्रत्युत् यह तो एक भावात्मक लहर के रूप मे ही रहा। विगत विश्व-युद्ध के बाद स्लैव जनता मे पारस्परिक सहानुभूति की भावना का उदय हुआ, परन्तु स्लैव जनता के आपसी झगडो के कारण इसका व्यापक प्रभाव न पड़ा।

अगादिर—यह पश्चिमी मरक्को का एक बन्दरगाह है जो सन् १६११ के मरक्को-संकट के समय से प्रसिद्ध होगया है।

अग्रगामी दल—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के त्रिपुरी-अधिवेशन (मार्च सन् १६३६) के बाद जब कांग्रेसी नेताओं के नीति-सम्बन्धी आंतरिक झगड़ो के कारण कांग्रेस के राष्ट्रपति श्री सुभाषचंद्र बोस ने राष्ट्रपतित्व से त्याग-पत्र

देदिया तब उन्होने ३ मई १६३६ को काग्रेस के अन्तर्गत अग्रगामी दल बनाने की घोषणा की। अपने कलकत्ते के भाषण मे उन्होने कहा कि इस दल का उद्देश्य उन लोगो को एकत्र करना है जो काग्रेस की समझौतावाली नरम नीति एव साम्राज्यवाद के विरोधी हैं। "यह दल कांग्रेस का अग रहेगा, उसके वर्तमान विधान, लक्ष्य, नीति और कार्यक्रम को मानेगा, महात्मा गाधी के व्यक्तित्व का सम्मान करेगा और उनके अहिसात्मक असहयोग के राजनीतिक सिद्धात मे पूर्ण विश्वास रखेगा।" जून १६३६ के अन्तिम सप्ताह मे अग्रगामी दल का प्रथम सम्मेलन हुआ और उसमे उसका कार्यक्रम निर्धारित किया गया। उसका मुख्य कार्यक्रम इस प्रकार रखा गया—(१) कांग्रेस को स्थिर स्वार्थवाले पूँजीवादियों से बचाना। (२) ऐसा कार्य करना जिससे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो का काग्रेस पर प्रभुत्व स्थापित न होने पावे। (३) काग्रेस को जनतावादी तथा उग्रवादी बनाया जाय। (४) किसान-मजदूर आन्दोलन को मदद दी जाय। (५) काग्रेस तथा अन्य साम्राज्य-विरोधिनी संस्थाओं मे एकता स्थापित करना। (६) अखिल भारतीय स्वयसेवक-दल बनाना। (७) देशी रियासती जनता के आन्दोलनो मे उसकी सहायता करना। (८) सघ-शासन का बगैर समझौता किए विरोध करना। (६) साम्राज्यवादी महायुद्ध मे भारतवर्ष को शामिल न होने देने का प्रचार करना। (१०) विदेशी वस्त्रो का वहिष्कार करना। (११) आज़ादी की लडाई को शीघ्र ही आरम्भ करने की तैयारी करना।

अपने जन्म-काल से इस दल ने काग्रेस के भीतर उपर्युक्त कार्यक्रम को सामने रखकर कार्य किया और आज भी उसका अस्तित्व है। परन्तु काग्रेस के अधिकारियों ने सदैव इस दल को अनावश्यक बतलाया और इसकी भरसक निंदा भी की।

समस्त प्रातो मे प्रातिक तथा ज़िला अग्रगामी दल बन गये। रामगढ काग्रेस-अधिवेशन के साथ समझौता-विरोधी सम्मेलन भी सुभाष बाबू के सभापतित्व में हुआ। काग्रेस की उच्चसत्ता निरन्तर सुभाष बाबू का विरोध

करती रही। इसने कटुता का रूप धारण कर लिया। १६४१ के जनवरी महीने मे सुभाष बाबू भारत से कही बाहर चले गये। उनके बाद भारतीय सिविल सर्विस के भूतपूर्व सदस्य और सुभाष बाबू के अनन्य सहकारी श्री विष्णु हरि कामथ इस दल के प्रधान सचालक रहे और उनके साथ श्रीमुकुन्दलाल सरकार प्रधान कार्यकर्त्ता रहे है। इस दल के सदस्यो ने कलकत्ते के कालकोठरी के स्मारक—हालवैल मानूमेंट—के उखडवाने के लिए सन् १६४० मे सत्याग्रह किया और इसमे उन्हे सफलता मिली। बगाल-सरकार ने इस स्मारक को नष्ट कर दिया और श्री सुभाष बोस के सिवा सब सत्याग्रही बन्दियो को भी रिहा कर दिया। सन् १६४२ के जून मास मे सरकार ने अग्रगामी दल को ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिया और इसका दमन किया।

अटलांटिक योजना—अगस्त १६४१ मे ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्री चर्चिल संयुक्त-राज्य अमरीका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट से नवीन युद्धपोत 'प्रिंस आफ वेल्स' मे अटलांटिक महासागर मे एक स्थान पर मिले। इसी स्थान पर इन्होने एक घोषणा-पत्र तैयार किया, जो 'अटलाटिक चार्टर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी योजनाये इस प्रकार हैः—

(१) हमारे देश न किसी देश पर विजय चाहते है और न किसी राज्य के प्रदेश पर अधिकार जमाना।

(२) हम कोई ऐसे प्रादेशिक परिवर्तन नही चाहते जो उन देशो की जनता की स्वतन्त्र आकान्क्षा के अनुकूल न हो।

(३) हम समस्त राष्ट्रो के, अपनी सरकार की प्रणाली को पसन्द करने के, अधिकार का आदर करते है, और हम यह देखने के लिए लालायित हैं कि उन्हे पुनः प्रभुत्व के अधिकार तथा स्वशासन प्राप्त हो जिनसे कि वे बलपूर्वक वचित किए गए है।

(४) हम अपनी वर्तमान ज़िम्मेदारियो का समुचित ध्यान रखते हुए इस बात का प्रयत्न करेंगे कि छोटे-बडे, विजित तथा विजेता सभी राज्यो को समानता की शर्तो पर व्यापार करने तथा संसार के कच्चे माल को प्राप्त करने का अधिकार हो जिनकी, आर्थिक सम्पन्नता के लिए, उन्हे ज़रूरत है।

(५) हम समस्त राष्ट्रो मे, आर्थिक क्षेत्र मे श्रमिको की दशा मे सुधार,

आर्थिक उन्नति तथा सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य से पूर्ण सामञ्जस्य तथा सहयोग पैदा करना चाहते हैं।

(६) नाजी अत्याचार के अन्तिम सर्वनाश के बाद हम ऐसी शान्ति की स्थापना की आशा करते हैं जिसमे समस्त राष्ट्रों को अपनी सीमाओं के अन्तर्गत सुरक्षित रूप से रहने के साधन प्राप्त हों और जिससे ऐसा आश्वासन मिले कि समस्त देशों मे समस्त व्यक्ति अपना जीवन निर्भय होकर स्वच्छन्दता से बिता सकें।

(७) ऐसी शान्ति मे समस्त व्यक्तियों को समुद्रों तथा महासागरों पर बिना किसी बाधा के यातायात का अधिकार होगा।

(८) हमारा यह विश्वास है कि ससार के समग्र राष्ट्रों को सासारिक तथा आध्यात्मिक कारणों से बल-प्रयोग (Use of force) का परित्याग करना पडेगा, क्योंकि भविष्य मे शान्ति की रक्षा न हो सकेगी यदि राष्ट्र, आजकल के समान ही, थल-सेना, जल-सेना तथा आकाश-सेना और शस्त्रीकरण को अपने अधिकार मे रखे रहेगे, जिनके कारण आक्रमण की सभावना बनी रहेगी। हमारा यह विश्वास है कि जब तक सामान्य सुरक्षा के लिए किसी व्यापक तथा स्थायी प्रणाली की प्रतिष्ठा न हो, तब तक ऐसे राष्ट्रों के लिए निरस्त्रीकरण परम आवश्यक है। हम ऐसे समस्त व्यावहारिक उपायों को प्रोत्साहन देंगे तथा सहायता प्रदान करेंगे, जिनसे शान्तिप्रेमी जनता के लिए शस्त्रीकरण का दबा देनेवाला बोझ हल्का होजाय।

मेजर एटली ने ब्रिटिश पार्लमेंट मे सरकार की ओर से यह घोषित किया कि अटलाटिक घोषणा समस्त ससार के राष्ट्रों के लिए लागू होगी, जिनमे भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्य भी शामिल हैं। परन्तु सितम्बर १९४१ मे चर्चिल ने अपने भाषण मे यह स्पष्ट कर दिया कि, जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, यह घोषणा उसके लिए लागू नहीं होगी, भारत के वाइसराय ने ८ अगस्त १९४० को जिस औपनिवेशिक स्वराज्य की घोषणा की है, वही भारत के लिए उपयुक्त है।

इस नीति का भारतीय-लोकमत ने घोर विरोध किया और अपना गहरा असन्तोष प्रकट किया।

अणे, माधव श्रीहरि—भारत के वाइसराय की एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के भारतीय प्रवास-विभाग के सदस्य। शिक्षा—बी० ए०, एलएल० बी०। आप लोकमान्य तिलक के सहयोगी रहे। होमरूल आन्दोलन में अग्रगण्य भाग लिया। सन् १९२८ में मराठी-सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गए। आप मराठी के श्रेष्ठ वक्ता तथा लेखक हैं। असहयोग (सन् १९२०-२१) तथा सविनय-अवज्ञाभंग (१९३०-३२) के आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सन् १९३३ में स्थानापन्न राष्ट्रपति रहे। नेहरू-कमिटी के सदस्य थे। सन् १९३४ में साम्प्रदायिक-निर्णय (Communal Award) के प्रश्न पर कांग्रेस की तटस्थता-नीति के विरोध में आपने कांग्रेस की कार्य-समिति से त्यागपत्र दे दिया। सन् १९३४ में ही श्री प० मदनमोहन मालवीय के सहयोग से आपने कांग्रेस-राष्ट्रीय-दल की स्थापना की और उसी साल केन्द्रीय धारासभा के सदस्य चुने गए। आप केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के नेता बनाये गए। जुलाई १९४१ में वाइसराय की कार्यकारिणी का विस्तार हुआ तब लार्ड लिनलिथगो ने आपको अपनी कार्यकारिणी कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया।

अतिरिक्त लाभ-कर—युद्ध आदि अवसरों पर पूँजीपति अनुचित मुनाफे से अपनी पूँजी बढ़ा लेते हैं। चीज़ों को महँगे मूल्य में बेचते हैं। युद्ध के लिए सामग्री भी वे ही तैयार करते हैं तथा जनता के लिए आवश्यक वस्तुओं का निर्माण भी वे ही लोग करते हैं और अपने माल को मनमाने दामों पर बेचते हैं। युद्ध के समय राज्य को अपनी रक्षा के लिए विशेष तैयारी करनी पड़ती है। अतः राज्य-कोष में वृद्धि के लिए जिन करों की व्यवस्था सरकार करती है, उनमें से एक अतिरिक्त लाभ-कर (Excess Profit Tax) भी है। यह कर पूँजीपतियों पर लगाया जाता है। उन्हें व्यापार में

जो लाभ होता है, उसका एक निर्द्धारित अंश, कर के रूप में, सरकार को देना पड़ता है। सन् १९३९ में जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब सरकार ने एक क़ानून बनाकर यह टैक्स भारत में भी लागू कर दिया।

अधिनायक-तन्त्र—शासित जनता की सम्मति या आकाक्षा के बिना या उसके विरुद्ध किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह का शासन। प्राचीन रोमन प्रजातन्त्र के समय भी यह प्रणाली प्रचलित थी। जब राज्य या राष्ट्र पर कोई सकट आता था तब धारा-सभा द्वारा एक व्यक्ति को ७ वर्ष के लिए अधिनायक नियुक्त कर दिया जाता था। इस अवधि में उसे सर्वाधिकार प्राप्त होते थे। जब सकट-काल समाप्त हो जाता था, तब वह अपना पद त्याग देता था और फिर विधान के अनुसार शासन-प्रबंध होने लगता था। आधुनिक समय में यूरोप तथा एशिया के अनेक राज्यों में अधिनायक-तन्त्र स्थापित हैं। जर्मनी, इटली, स्पेन, और सिद्धांततः नहीं तो कार्यतः जापान में सैनिक-अधिनायकतन्त्र प्रचलित हैं। सोवियट रूस का अधिनायक जनता द्वारा जनता के लिये है।

अन्तर्राष्ट्रीयता—अन्तर्राष्ट्रीयता से तात्पर्य उस विचारधारा से है जो ससार के समस्त राष्ट्रों में पारस्परिक राजनीतिक, आर्थिक, राजस्व-सम्बन्धी, सांस्कृतिक और सामाजिक सहकारिता का संबंध स्थापित करना चाहती है। इस विचारधारा के अनुसार समस्त राष्ट्रों को, सामान्य हितों की रक्षा के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित करना वाञ्छनीय है।

अन्तर्राष्ट्रीय गायन—यह समस्त समाजवादियों और साम्यवादियों का अन्तर्राष्ट्रीय गायन है। यह सोवियट रूस का राष्ट्रीय गायन भी है। सन् १८७१ में एक बेलजियन मजदूर ने इसकी रचना की थी। सन् १९३४ में उसकी मृत्यु पेरिस में हो गई। इस गायन के प्रथम छन्द का हिन्दी रूपान्तर निम्न प्रकार है:—

"उठो! ऐ बुभुक्षित! अपनी घोर निद्रा का त्याग कर!
उठो! ऐ अभाव—आवश्यकता—के बन्दी!
क्योंकि अब बुद्धि ने विद्रोह का बीडा उठाया है।
अब आख़िर में पुरातन-युग का अन्त होता है।
अब तुम अपने सब अन्ध-विश्वासों का अन्त करदो।

दासता के बंधन में जकड़ी मानवता जाग जा, जाग जा।
हम तुरन्त ही पुरानी दशा को बदल देंगे—
और धूल को पद-प्रहार कर पुरस्कार जीतेंगे।
आओ, साथियो! आओ रैली करें!
हमें अन्तिम संघर्ष का सामना करना है।
ऐ अन्तर्राष्ट्रीय गीत! मानव-जाति एकता के सूत्र में पिरो दे।"

अन्तर्राष्ट्रीय-विधान—संसार के समग्र राष्ट्रों के पारस्परिक राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के नियमन तथा नियंत्रण के लिए समस्त राष्ट्रों की प्रतिनिधि-परिषद् द्वारा निर्धारित उद्देश और नियम। अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अन्तर्गत केवल वे ही नियम आते हैं जिनका महत्व सार्वदेशिक होता है तथा जिन्हें सब राष्ट्र सर्व-सम्मति से या बहुमत से स्वीकार कर लेते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ—इस संस्था की स्थापना सन् १९२० में राष्ट्रसंघ के साथ ही उसके विधान की धारा २३ (अ) तथा वर्साई की संधि की धारा ३८७-४८७ के अन्तर्गत हुई थी। इसमें राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य-राष्ट्र शामिल हैं, और ऐसे भी राष्ट्र शामिल हैं जो राष्ट्र-संघ के सदस्य नहीं हैं, जैसे संयुक्त-राज्य अमरीका। इसके अन्तर्गत चार उपसंस्थाएँ हैं: (१) अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ-सम्मेलन, (२) कार्य-कारिणी सभा (Governing Body), (३) सहायक संस्थाएँ, और (४) अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन का अधिवेशन एक वर्ष में एक बार होता है। इसमें मज़दूरों के संबंध की समस्याओं पर विचार किया जाता है और मज़दूरों के संबंध में उनकी स्थिति में सुधार के लिए निश्चय किये जाते हैं तथा राष्ट्रों की सरकारों से सिफारिशें की जाती हैं। इस बात की भी जाँच की जाती है कि सम्मेलन के निश्चयों और निर्णयों का सरकारें कहाँ तक पालन करती हैं। प्रत्येक राज्य इस सम्मेलन में चार प्रतिनिधि भेजता है—दो सरकार के प्रतिनिधि, एक मिल-मालिकों का प्रतिनिधि और एक मज़दूरों की ओर से प्रतिनिधि भेजा जाता है। किसी सिफ़ारिश की स्वीकृति या कन्वेन्शन की स्वीकृति के लिए दो-तिहाई का मत आवश्यक है, तथा साधारण प्रस्ताव के लिए बहुमत का नियम है। इस सम्मेलन के प्रतिनिधियों को, सम्मेलन द्वारा

स्वीकृत सिफारिशें, अपने राज्य की धारा-सभा मे पेश करनी चाहिए और १८ महीने की अवधि के भीतर ही ऐसा होजाना चाहिए। कार्य-कारिणी सभा अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय की व्यवस्था करती है तथा उसके डाइरेक्टर की नियुक्ति करती है। सहायक सस्थाओ मे अनेक समितियॉ हें जो विविध प्रश्नो की जॉच करती हें। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय मजदूरों के सवध मे समस्त देशो से सूचनाएॅ सग्रह करता है और उनका वितरण करता है। वह जॉच का भी काम करता है। कार्यालय मे ४०० कर्मचारी हैं जो ३७ राष्ट्रो के नागरिक हैं। इस समय अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ के ६० राज्य सदस्य हैं। सयुक्त-राज्य अमरीका भी इसका सदस्य है। जर्मनी, इटली और जापान ने उससे सबन्ध-त्याग कर दिया है। सघ ने अब तक ६३ निर्णय किये हैं, जिनका सबध मजदूरो की स्थिति, स्वास्थ्य, बीमा, पेंशन, काम के घण्टो तथा पारिश्रमिक आदि से है।

अन्तर्राष्ट्रीय संघ—समाजवाद के आचार्य कार्ल मार्क्स ने समाजवादी विचारधारा के व्यापक प्रचार और प्रसार के लिए सन् १८६४ मे प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय-सघ की स्थापना की। सन् १८७१ ने पेरिस की पचायत (कम्यून) की घटना हुई।

यह सबसे प्रथम समाजवादी विद्रोह था। इससे यूरोप की सरकारें भयभीत होगई। इस सघ के प्रति सरकारो का रुख कड़ा होगया। इसलिए कार्ल मार्क्स ने सन् १८७२ मे इसका प्रधान कार्यालय अमरीका के मुख्य नगर न्यूयार्क मे भेज दिया। अमरीका जाने पर इसका प्रभाव यूरोप मे कम होगया और धीरे-धीरे उसका अन्त होगया। सन् १८८९ मे द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सघ की स्थापना की गई। यूरोप मे इस समय मजदूर-सघो और श्रमजीवी दलो का बल और साधन पहले से अधिक बढ गए थे। मार्क्स के जमाने से अब उनकी इज्ज़त भी अधिक बढ गई थी। यह सघ २५ वर्ष तक चला। फिर जब महायुद्ध आया तब इसका अन्त हो गया। इसके कार्यकर्त्ता और सचालक अपने-अपने देशो मे उच्च पदो पर नियुक्त होगये। पद-ग्रहण करते ही, यह मज़दूरो के हिमायती, ठडे पड गये और मजदूर आन्दोलन को कुचलने मे भी इन्हे सकोच न हुआ। युद्ध के बाद जर्मनी के समाजवादी-प्रजातत्र दल के लोग प्रजातत्र-राज्य के राष्ट्रपति

और प्रधान-मंत्री बन गये। फ्रान्स मे मज़दूरो का नेता ब्रियाद ग्यारह बार प्रधान-मंत्री बना और उसने मज़दूरो की हड़तालो को दबाया। विश्व-युद्ध (१६१४-१८) के बाद रूस के प्रमुख नगर मास्को मे रूसी राज्य-क्रान्ति के प्रमुख नेता लेनिन ने सन् १६१६ मे एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय सघ की स्थापना की। यह विशुद्ध साम्यवादी संघ था। इसमे वही सम्मिलित हो सकते थे, जो अपने को पक्का साम्यवादी घोषित करते थे। यह आज भी विद्यमान है और यह संघ तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ के नाम से विख्यात है। विश्व-युद्ध के बाद द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ के जो कुछ लोग शेष बचे, वे कुछ तो तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ में मिल गये और जो शेष बचे उन्होने द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ का पुनरुद्धार किया। आज ये दोनो संघ द्वितीय तथा तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सघ के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये दोनो ही कार्ल मार्क्स के अनुयायी होने का दावा करते हैं; परन्तु दोनो परस्पर इतनी घृणा का व्यवहार करते हैं कि जितना जर्मन यहूदी के साथ। इन दोनो अन्तर्राष्ट्रीय संघो में संसार के समस्त मज़दूर-संघ शामिल नही हैं। अनेक देशो के मज़दूर-संघो का इन दोनो मे किसी से भी सबंध नही है। अमरीका तथा भारत के मज़दूर संघो का इन दोनो से कोई सबंध नही।

अनाक्रमण-संधि—दो राष्ट्रो के मध्य परस्पर बल-प्रयोग न करने तथा अपने विवादो का समझौते द्वारा निर्णय करने के लिए की गई सन्धि। विगत विश्व-युद्ध के बाद से, और विशेषतः राष्ट्रसघ की विफलता के कारण, यूरोप के राष्ट्रों मे इस प्रकार की सधियाँ अधिकता से होने लगी। यह संधियाँ वास्तव मे, युद्ध के लिए गुटबन्दी के हेतु, की गई थी। इन संधियो से राष्ट्रो की स्वाधीनता की रक्षा बिलकुल नही हुई।

अनुदार दल—यह ब्रिटेन का एक प्रमुख राजनीतिक दल है। इसे अँग-रेज़ी मे 'कंज़रवेटिव पार्टी' कहा जाता है। वहाँ की यूनियनिस्ट पार्टी भी इसीके अन्तर्गत है। सन् १६३५ के कॉमन-सभा के निर्वाचन मे कुल २,२०,००,००० मतो में से १,०४,६६,००० मत अनुदार-दल के उम्मीदवारो को मिले। कॉमन-सभा की ६१५ जगहो मे से ३७५ जगहे अनुदार-दल को मिली। यह दल सामान्यतया प्रगतिशील और प्रजातंत्र का समर्थक तो है; परन्तु क्रान्ति की

अपेक्षा विकासवाद तथा सुधारवाद मे विश्वास करता है। सामाजिक-सुधार के कार्यों मे भी इस दल के सदस्य भाग लेते रहे है। यह दल समाजवाद का विरोधी है और व्यक्तिवाद पर जोर देता है। राष्ट्रीयता मे अति उग्र है और साम्राज्यवाद का समर्थक है। इसके आर्थिक कार्यक्रम मे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत देशो के लिए व्यापारिक सुविधाएँ भी शामिल है। यह दल साधारण तटकर के पक्ष मे भी है।

अफ़गानिस्तान—यह देश भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर है। क्षेत्र-फल २,५०,००० वर्गमील तथा जनसख्या १,००,००,००० है। इसकी राज-धानी काबुल है। इसका शासक मुहम्मद जहीर शाह है। यह पहाडी प्रदेश है—बहुत ही पिछडा हुआ तथा औद्योगिक दृष्टि से अविकसित। इसकी स्वा-धीनता की रक्षा का मुख्य श्रेय इस देश की भौगोलिक स्थिति तथा अफगानों की युद्ध-प्रियता को है। यह सोवियट रूस और भारत के बीच मे तटस्थ राज्य है। इस देश मे मुख्यतः तीन भाषाएँ प्रचलित हैं—फारसी, पश्तो और तुर्की। सन् १९१९ मे अमीर हबीबुल्ला का, जो उदार विचार का और अँग-रेजो का समर्थक शासक था, विरोधियो द्वारा क़त्ल कर दिया गया। नसरुल्ला को वह लोग अमीर बनाना चाहते थे। परन्तु अमीर हबीबुल्ला के पुत्र अमा-नुल्ला ने ऐसा करने मे बाधा उपस्थित की। उसने नसरुल्ला को क़ैद करलिया और स्वय सिहासन पर बैठ गया। उसने सबसे पहले अँगरेज़ो के विरुद्ध लडाई छेड दी। अफ़ग़ान-सेना ख़ैबर दर्रे मे आगई और भारत के सीमा-प्रान्त के विद्रोही कबीलो को सहायता देनी शुरू करदी। अफग़ान बडी जल्दी पराजित हो गए और विराम-सधि हो गई। सन् १९२१ मे ब्रिटेन तथा सोवियट रूस से उसने सधि कर ली। इसके बाद अमीर अमानुल्ला ने अपने देश मे अनेक सुधार किये। सन् १९२६ मे अमीर पद छोडकर उसने बादशाह की उपाधि ग्रहण की। सन् १९२७-२८ मे उसने यूरोप के देशो का भ्रमण किया और उन देशों की आश्चर्य-जनक प्रगति से प्रभावित होकर अपने देश में भी आधुनिकता लाने का आयोजन किया। उसने इस कार्य मे तुर्की के त्राता कमाल पाशा का अनुकरण किया। यूरोप की वेशभूषा, आभूषण तथा रहन-सहन का प्रचलन किया, पर्दे की रिवाज बन्द करदी तथा एकपत्नी-व्रत

पालन का नियम बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९२९ में मुल्लाओ ने अमानुल्ला के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सयोग से बादशाह की सेना के सैनिको का वेतन बक़ाया था और सैनिको मे असंतोष था, इसलिए फौज़ भी उसका साथ न दे सकी। वह भारत मे भागकर आगया और यहॉ के रास्ते इटली चला गया। तब से वह वही पर है। इसके बाद अफग़ानिस्तान मे बडा भीषण गृह-युद्ध हुआ। अमानुल्ला-विरोधी विद्रोह का नेता एक मामूली भटियारा बन गया। इसका बाप भिश्ती था, इसलिए विद्रोह मे इसका नाम बच्चा-सक़्क़ा पड गया। इसने शासन का भार सॅभाल लिया और अमानुल्ला ने जितने सुधार किए थे, वे सब रद कर दिये गये। परन्तु वह योग्य शासक सिद्ध न हुआ। जनरल नादिरख़ॉ ने, जो इन दिनो पेरिस मे अपने दिन काट रहा था, काबुल वापस आकर बच्चा-सक़्क़ा के ख़िलाफ़ विद्रोह का झण्डा उठाया। सीमान्त के वज़ीरियो की मदद से उसने बच्चा-सक़्क़ा को पराजित कर दिया और सन् १९२९ मे उसे फॉसी दे दी गई।

नादिरख़ॉ नादिरशाह नाम रखकर अफग़ानिस्तान की राजगद्दी पर बैठा। उसने फिर से देश मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर दी। ब्रिटिश सरकार से उसने फिर शान्तिपूर्ण सबध स्थापित किया। अफग़ानिस्तान से रूस का प्रभाव भी मिट गया। ८ अप्रैल सन् १९३३ को, जबकि नादिरशाह एक खेल के अवसर पर पारितोषिक वितरण कर रहा था, उसका वध कर दिया गया। ऐसा कहा जाता है कि इस हत्या मे कोई राजनीतिक रहस्य नही था। न्यायालय के एक पदच्युत अफसर के लडके ने बदला लेने के लिए उसका वध किया। इसके बाद नादिरशाह का बेटा मुहम्मद ज़हीरशाह तख्त पर बैठा। वही बादशाह है।
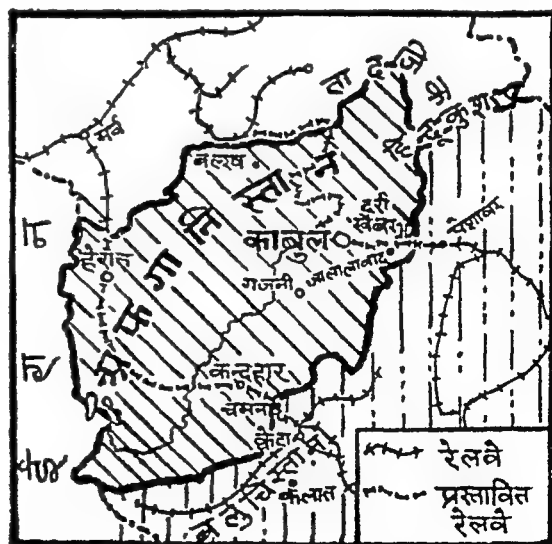
अबीसीनिया—यह अफ्रीका का एक देश है। इसका अरबी नाम मुल्क हवश और अँगरेजी नाम इथियोपिया है। इसका क्षेत्रफल ३,५०,००० वर्ग मील तथा जन-सख्या ७५,००,००० है। सन् १९३६ तक यह स्वतत्र था। इसके बाद यह इटली के अधीन होगया। जब पिछली सदी मे इटली ने अफ्रीका मे इरीट्रिया तथा शुमालीलैण्ड पर आधिपत्य जमा लिया तब ही से उसकी इच्छा इस स्वतत्र देश को भी अपने अधीन बनाने की थी। सन् १८९६ मे इटली अबीसीनिया-युद्ध मे अदुआ स्थल पर इटली की पराजय हुई। इसके बाद अबीसीनिया स्वतत्र तो रहा, परन्तु उसने आधुनिक समय के अनुसार कोई उन्नति नही की। इस शताब्दी के प्रारम्भिक युग मे अबीसीनिया मे राजसिंहासन के लिए बहुत दिनो तक सघर्ष चलता रहा। अन्त मे हेली सिलासी सम्राट होगया। पहले यह राजकुमार रास तफारी के नाम से विख्यात था। दिसम्बर सन् १९३४ मे सीमान्त पर उल-उल नामक स्थान पर इटली तथा अबीसीनिया मे सघर्ष होगया। इसके परिणामस्वरूप २ अक्टूबर सन् १९३५ को इटली और अबीसीनिया मे युद्ध छिड गया। ये दोनो ही तब राष्ट्रसघ के सदस्य थे। हेली सिलासी ने राष्ट्रसघ से हस्तक्षेप करने के लिए अपील की। राष्ट्रसघ ने इटली को आक्रामक घोषित कर दिया और बहुत देर के बाद इटली के विरुद्ध आर्थिक दण्डाज्ञा का भी प्रयोग किया। आर्थिक दण्डाज्ञा भी बहुत ही परिमित रूप मे प्रयुक्त की गई तथा राष्ट्रसघ के सदस्य सैनिक दण्डाज्ञा का प्रयोग करना नही चाहते थे। उस समय फ्रास मे मोशिये लावल प्रधान मत्री था। उसने इटली को मदद दी। ब्रिटेन ने भी पूरी शक्ति के साथ अबीसीनिया की मदद नही की। इसलिए राष्ट्रसघ इटली के आक्रमण को रोकने मे अशक्त सिद्ध हुआ। अबीसीनिया की सेनाएँ पुराने ढग की थी, वे आधुनिक युद्ध-कला मे दक्ष नही थी, फिर अबीसीनिया के पास युद्ध की सामग्री भी नही थी। वह इटली की आधुनिक युद्ध-सामग्री से लैस ५,००,००० सेना का मुक़ाबला करने मे अयोग्य था। इटली के हवाई जहाजो तथा बम-वर्षको ने अबीसीनिया मे बम-वर्षा की और विषैली गैस का भी प्रयोग किया। १ मई १९३६ को सम्राट् हेली सिलासी इँगलैण्ड को भाग गये और ९ मई १९३६ को मुसोलिनी ने अबीसीनिया को इटली के साम्राज्य मे मिला लेने

की घोपणा करदी। एक साल के बाद यूरोप के राष्ट्रो ने इस अमानुषिक अपहरण-काण्ड पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। सन् १९४० से जून १९४२ ई० तक अफ्रीका मे ब्रिटेन, इटली के विरुद्ध युद्ध करता रहा। बरतानवी फौजो ने, जिनमे हिन्दुस्तानी सिपाही मुख्य थे, इस मोर्चे पर, जो लीबिया रणक्षेत्र के नाम से मशहूर था, इटालियन सेनाओ को बुरी तरह हराया। बारबार हारने मे इटालियनो को जर्मन कुमुक बुलानी पडी। जर्मन जनरल रामल का भी ब्रिटिश जनरल ऑचिनलैक ने जमकर मुकाबला किया, लेकिन पीछे ब्रिटिश सेनाओ को इस मोर्चे से हटा लिया गया।

लीबिया मे, इटालियन पराजय के समय, ब्रिटिश सेनाओ ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके वहाँ से इटालियन आधिपत्य का अन्तकर उसे अपने सैनिक-संरक्षण मे कर लिया। १५ जनवरी १९४० को हेली सिलासी ने अपनी मातृभूमि मे, लगभग ५ वर्ष बाद, पुनः प्रवेश किया। लेकिन इस समय वह नाम मात्र का वहाँ का सम्राट् है। शायद अबीसीनिया फिर स्वतत्र होसके।

अम्बेदकर, डाक्टर भीमराव—सन् १८९३ मे डा० भीमराव अम्बेदकर का जन्म हुआ। इनके पिता फौज मे अफसर थे। बम्बई के रत्नागिरि दपोली ग्राम मे रहते थे। प्रारम्भिक शिक्षा इसी ग्राम की पाठशाला मे हुई। इसके बाद सतारा के हाईस्कूल मे शिक्षा प्राप्त की। फिर बम्बई के एल्फिंस्टन कालेज मे भर्ती हुए। श्रीमान् बडोदा-नरेश ने इन्हे छात्रवृत्ति देना आरम्भ कर दिया। जब बी० ए० पास कर लिया तब वह बडोदा गये और वहाँ इन्हे फौज मे लेफ्टिनेंट बना दिया गया। उपरान्त बडोदा-नरेश से छात्रवृत्ति

पाकर आप कोलम्बिया विश्वविद्यालय (अमरीका) गये और वहाँ अर्थशास्त्र तथा समाज-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की तथा विश्वविद्यालय से एम० ए०, पीएच० डी० की पदवियाँ प्राप्त की। सन् १६०७ मे वह सिडेनहम कालेज बम्बई मे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। फिर वह जर्मनी तथा लन्दन विशेष अध्ययन के लिये गये और वहाँ जाकर अर्थशास्त्र मे लन्दन-विश्व-विद्यालय से डी० एस्सी० की पदवी प्राप्त की। सन् १६२६ मे मुद्रा-कमीशन के समक्ष इन्होने अपना वक्तव्य दिया। 'वहिष्कृत हितकारिणी सभा' की इन्होंने स्थापना की और "वहिष्कृत भारत" नामक समाचार-पत्र का सपादन किया। सन् १६३०-३२ मे गोलमेज-परिषद् लन्दन मे भारत के दलित वर्ग की ओर से सरकार द्वारा प्रतिनिधि मनोनीत होकर गये। सन् १६३३ मे सयुक्त पार्लमेंटरी कमिटी के समक्ष बयान दिया। सन् १६३५-३६ मे भारतीय सीमानिर्धारण-कमिटी के सदस्यो के सामने आपने अपना वक्तव्य दिया। सन् १६३२ मे हुए पूना-समझौता के समय से आपका राजनीति मे विशेष महत्व है। पूना-समझौता पर आपने भी हस्ताक्षर किये। अर्थशास्त्र विषय पर आपने कई खोजपूर्ण पुस्तके लिखी हैं। राजनीति के उच्चकोटि के विद्वान् हैं। दलित वर्ग मे पृथक्वादी दल-विशेष के सबसे योग्य और प्रसिद्ध नेता आप हैं। आप दलित वर्ग के लिए पृथक् निर्वाचन चाहते हैं। आप 'पाकिस्तान' के भी पोषक हैं। सन् १६४१ के बाद जुलाई सन् १६४२ मे जब वाइसराय की कार्यकारिणी के सदस्यो की सख्या बढाई गई, तब इस कार्यकारिणी मे डा० अम्बेदकर को मज़दूर-विभाग का सदस्य बनाया गया।

अमरीकन डगलस बी १६—यह ससार का सबसे बडा बम-वर्षक वायुयान है। इसका वज़न ८२ टन तथा चाल की गति २०० मील प्रति घण्टा है। यह अमरीका का हवाई जहाज है।

अमरीकन मजदूर संघ—यह अमरीका तथा कनाडा की मजदूर-सस्था है। इसका केन्द्र वाशिंगटन मे है। सेम्युअल गोम्पर्स के प्रयत्न से, सन् १८८१

में, इस संघ की स्थापना हुई थी। गोम्पर्स न्यूयार्क नगर का एक सिगरेट बनानेवाला था। सन् १८७७ मे इसने न्यूयार्क के सिगरेट बनानेवालो का संगठन किया। इस संघ के सिद्धान्त यह है—समस्त उत्तरी अमरीका में प्रत्येक व्यापार के लिए एक मजदूर संघ हो, दो सघ न होने चाहिए। इस संघ के मज़दूर व्यक्तिगत रूप से सदस्य नही है, प्रत्युत् मज़दूर-यूनियन इसकी सदस्य है। इस सघ मे १०० स्थानीय मज़दूर यूनियन (संघ) शामिल है। पूर्ण सत्ता इन मज़दूर सभाओ के हाथ मे है। हडताल आदि करने का निश्चय भी वे ही करती हैं। अमरीकन मज़दूर-संघ के अधिकार नैतिक हैं और उसके अधिकारी केवल सलाह देते है। इसकी एक कार्य-कारिणी सभा है, जिसका ४९ राज्यो के मज़दूर सघो पर प्रभाव है। ओटावा में कनाडा की एक स्वतत्र कनाडियन कांग्रेस भी है।

अमरीकन मज़दूर-संघ का अधिवेशन प्रति वर्ष एक बार होता है। सन् १९२० मे जो मज़दूर सभाएँ इस सघ की सदस्य थी, उनके कुल सदस्य ४०,००,००० थे। सन् १९३३ मे यह सख्या २१,००,००० रह गई। सन् १९३८ मे ३३,००,००० होगई। इस सघ ने अमरीका के १५ फीसदी से अधिक मज़दूरो का संगठन नही किया है।

अमरीका के मज़दूरों मे, यूरोपीय मज़दूरो की भाँति, वर्ग-चेतना का जागरण नही हुआ है। मिल-मालिक सरकारी सहायता से इनके आंदोलन को दबाने का सदैव प्रयत्न करते है। मज़दूर-सभाएँ मिल-मालिको से मज़दूरो के हितो की रक्षा के लिए सामूहिक समझौते करती है। वे उनसे यह कहती हैं कि मिलो मे सिर्फ मज़दूर-सभाओ के मज़दूरो को ही रखा जाय। जो मिल-मालिक मज़दूर सभाओ को स्वीकार कर लेते हैं उनसे मज़दूर-सभाएँ यह अनुरोध करती है कि उनके द्वारा तैयार माल पर मज़दूर सभा की छाप (यूनियन लेबिल) लगाया जाय। मज़दूर-सभाओ के सदस्यो को भी यह कहा जाता है कि वे माल ख़रीदते समय ऐसे लेबिल के माल को ही ख़रीदे।

अमरीकन मज़दूर संघ यूरोपियन मज़दूर-सघो से कई बातो में भिन्न है। यह संघ समाजवाद-विरोधी है तथा राजनीति से पृथक् रहता है। वह अमरीकन मज़दूर-दल बनाना नही चाहता। वह अपना उद्देश्य, पूँजीवादी-व्यवस्था के

अन्तर्गत रहते हुए, मजदूरो का सुधार करना मानता है। पहले वह समझौते से काम लेता है, और जरूरत पड़ने पर मालिको से सघर्ष भी किया जाता है। इस सघ का सस्थापक सेम्युअल गोम्पर्स अपनी मृत्यु (सन् १६२४) पर्यन्त इसका अध्यक्ष रहा। तब से विलियम ग्रीन इसका अध्यक्ष है। इस सघ के अन्तर्गत मजदूर-सभाओ के सदस्य दक्ष मजदूर ही होते ह। इसका अमरीका मे काफी प्रभाव है। सन् १६३६ मे 'औद्योगिक सगठन-कारिणी समिति' नामक एक दूसरी मजदूर-सस्था की स्थापना की गई। इस सस्था ने अल्प-काल मे ही आश्चर्यजनक उन्नति कर दिखलाई। सन् १६३८ मे इसके ४०,००,००० सदस्य थे। ससार-व्यापी द्वितीय महायुद्ध के समय, जब अमरीका भी लड़ाकू राष्ट्रो मे सम्मिलित होगया, यहाँ के हथियार बनानेवाले कारखानो मे, सन् १६४१ मे, कई बार हड़तालें हुई। मजदूरो ने वेतन-वृद्धि की माँग की। रूजवेल्ट ने खुद इन हड़तालो मे बल-प्रयोग किया, क्योकि वह अमरीका का सेनापित भी है। कारखाने कई दिनो तक फौजी-सरक्षण मे चलाने पड़े। अत मे मजदूरो की माँगे स्वीकार करली गई।

अरब—अरब जाति की कुल सख्या ५ करोड है। १ करोड अरब, अरब देश मे हैं, ४० लाख अरब शाम मे, ३५ लाख इराक मे, १० लाख फिलिस्तीन मे, १ करोड ४० लाख मिस्र मे, ७ लाख लीबिया मे, २३ लाख ट्यूनिशिया मे, ६० लाख अलजीरिया और ७० लाख मरक्को मे हैं। सिर्फ अरब देश के अधिवासी सभी अरब सामी (Semitic) नस्ल के हैं, दूसरे देशो के अरब वर्णसकर हें। अरबो मे राष्ट्रीयता की भावना सबसे प्रथम सन् १८४७ मे शाम (सीरिया) मे उदय हुई। अरबो की स्वाधीनता का सघर्ष पहले-पहल तुर्की के विरुद्ध शुरू हुआ, क्योकि अधिकाश अरब देशो पर उसका ही प्रभुत्व था।

सन् १६१४-१८ के विश्वयुद्ध मे अरबो ने तुर्की के विरुद्ध ब्रिटेन का साथ दिया। अँगरेजो ने अरबो को स्वाधीनता देने की प्रतिज्ञा की थी। अक्टूबर सन् १६१५ में मक्का शरीफ मे अमीर हुसैन ने अँगरेजी राजदूत सर हैनरी मेकमाहाने के साथ समझौते की वार्त्ता की और अरबो की स्वा-धीनता की माँग प्रस्तुत की। वह अरब-देश, शाम (सीरिया) और मेसोपोटा-

मिया मे अरबो की स्वाधीनता चाहता था। सर हेनरी ने लिखा कि ब्रिटेन मक्का के शरीफ की उपर्युक्त मॉग को स्वीकार करने के लिए तैयार था. परन्तु पश्चिम मे दमिश्क, होम्स, हामा और यलेप्पो को वह अपने संरक्षण मे रखना चाहता था। युद्ध के बाद कोई सयुक्त स्वाधीन अरब राज्य नही स्थापित किया गया, जैसा कि युद्ध से पूर्व वादा किया गया था। इससे अरबो में असन्तोष फैल गया। संयुक्त अरब राज्य के स्थान पर छोटे-छोटे परतत्र राज्य ईराक़, फिलिस्तीन, ट्रान्सजोर्डेनिया, सीरिया बना दिये गए। इन पर ऑगरेज़ो और फ़ासीसियो का आधिपत्य क़ायम होगया। केवल हेजाज़ प्रदेश ही स्वतत्र रह सका। इस प्रकार अरबो का राष्ट्रीय आन्दोलन, युद्ध के बाद, ब्रिटेन और फ्रान्स के विरुद्ध होने लगा। अरब देश मे बडे उपद्रव हुए। फिलिस्तीन मे यहूदी-अरब-संघर्ष ख़ूब हुआ। सन् १९३२ मे ईराक़ को स्वतत्रता देदी गई। शाम को भी सन् १९३६मे स्वतत्रता दी गई। परन्तु फ्रान्स ने अभी तक इस देश से अपनी फौज़े वापस नही बुलायी हैं।

अरब-देश—अरब देश मे निम्नलिखित देश शामिल हैः—(१) सऊदी अरब—यह सबसे विशाल और अधिक स्वतत्र है। (२) यमन—इसका क्षेत्रफल ७५,००० वर्गमील तथा जन-सख्या ३,५०,००० है। यह स्वतत्र राज्य है। इसका शासक इमाम कहलाता है। (३) अदन—यह ब्रिटेन के सरक्षण में है। इसमे हैदरामौत भी शामिल है। कुल क्षेत्रफल १,१२,००० वर्गमील है। सामरिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व है। (४) ओमन—क्षेत्रफल ८२,००० वर्गमील और जनसंख्या ५,००,००० है। इसका शासक सुल्तान सर सैयद बिन तैमूर है। यहाँ एक ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंट भी रहता है। इसकी

राजधानी मसकत है। (५) कूवेत—यह फारस की खाडी के उत्तर-पश्चिमी समुद्र-तट पर स्थित है, जनसख्या ५०,००० है। सन् १७५० से शेख़ वश का राज्य है। ब्रिटिश राजनीतिक एजेंट भी रहता है। (६) पाइरेट समुद्री तट—इसकी जन-सख्या ८०,००० है। (७) बहरीन द्वीप-समूह—जन-सख्या १,२०,००० है। इसका शासक ख़लीफा है। एक ब्रिटिश सलाहकार भी रहता है तथा ब्रिटेन से सधि भी है। यहॉ तेल के कुँए हें, समुद्र से मोती निकालने का व्यवसाय भी होता है। भारत और आस्ट्रेलिया के मार्ग मे होने से यहॉ हवाई जहाजो का पडाव भी है।

अरजेंटाइन—यह दक्षिणी अमरीका मे सबसे महान् द्वितीय प्रजा-तत्रवादी राज्य है। इसका क्षेत्रफल १०,७६,००० वर्गमील और जनसख्या १,२८,००,००० है। इसकी भाषा स्पेनिश है। डा०रोवेर्टो एम० आर्टिज ५ सितम्बर १९३७ को राष्ट्रपति निर्वाचित किये गये। राष्ट्रपति ६ साल के लिए चुना जाता है। आजकल यहॉ सम्मिलित सरकार है। इसमे प्रजातत्रवादी और क्रान्तिकारी दोनो दलो के सदस्य ह। इस देश की सुख-समृद्धि निर्यात-व्यापार पर निर्भर है। इस देश से गेहूँ (८७ लाख टन), मक्का (६० लाख टन), तिलहन (१५ लाख टन), मास, मक्खन और ऊन सयुक्त-राज्य अमरीका, ब्रिटेन और जर्मनी आदि देशो को भेजी जाती है।

अरविन्द घोष—आपका जन्म कलकत्ता मे १५ अगस्त सन् १८७२ को हुआ। दार्जिलिंग तथा इँगलैण्ड मे आपने शिक्षा प्राप्त की। सन् १८९० मे इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा मे शामिल हुए। प्रतियोगिता मे सफल रहे, परन्तु घुडसवारी मे असफल। किंग्स-कॉलिज, कैम्ब्रिज, मे भरती हुए और ग्रेजुएट हुए। सन् १८९२ मे बी० ए० की पदवी प्राप्त की। १२ वर्षों तक बडोदा राज्य मे उच्च पदाधिकारी रहे। सन् १९०६ मे आप नेशनल कालिज कलकत्ता

के प्रिंसिपल नियुक्त किये गये। 'वन्देमातरम्' तथा 'युगान्तर' बँगला पत्रो का सम्पादन किया। सन् १९०७ मे वङ्गभङ्ग से उत्पन्न हुए राष्ट्रीय आन्दोलन मे प्रमुख भाग लिया। सन् १९०८ मे विद्रोह करने तथा राजद्रोह के अभियोग में गिरफ्तार हुए, किन्तु निर्दोष सिद्ध हुए और छोड दिये गये। इसके बाद पांडिचेरी चले गये और वहाँ योग-आश्रम की स्थापना की। आप निरन्तर एकान्त मे इतने वर्षो से समाधि लगाते रहे है। वर्ष मे केवल तीन बार वह दर्शनार्थियो से अपनी कुटी मे मिलते है। वह केवल आशीर्वाद दे देते है। किसी दर्शनार्थी या साधक से, जो उनके आश्रम मे रहता है, वह वार्तालाप नही करते। केवल माताजी से ही बातचीत करते है। वह एक विदेशी महिला है जो आश्रम का सचालन करती हैं। आपने योग, दर्शन, अध्यात्म तथा गीता पर अनेक विचारपूर्ण ग्रन्थ लिखे है।

अराजकतावाद—यह एक राजनीतिक सिद्धान्त है। इसका उद्देश्य सगठित शासन-सत्ता का नाश कर एक ऐसे समाज की स्थापना करना है जिसमे सब व्यक्तियो—नागरिको को पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त हो। अमरीका के विचारक थोरो ने कहा है—"सरकार सबसे अच्छी वह है जो बिलकुल शासन न करे, और जब मनुष्य ऐसी सरकार के लिए तैयार होजायँगे, तब उन्हे वैसी ही सरकार मिल जायगी।" अराजकतावादियो का यह मन्तव्य है कि प्रत्येक सरकार या शासन का आधार बल-प्रयोग है, हिसा है, और जबतक समाज मे बल-प्रयोग पर आश्रित व्यवस्था क़ायम रहेगी तब तक मानव-समाज न सुखी रह सकेगा और न स्वतंत्रता का भोग ही सभव होसकेगा। इस प्रकार उनके मतानुसार सरकार चाहे प्रजातत्रवादी हो, चाहे एकतत्रवादी, अथवा समाजवादी, सभी समान रूप से दोषपूर्ण है। वे चाहते है कि मानवो का एक स्वतत्र समाज स्थापित किया जाय जिसमे कोई दमनकारी-सस्था न हो, जिसमे न सेना हो, न पुलिस, न न्यायालय, और न जेलख़ाना। अराजकतावादियो मे विविधि विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ का ध्येय व्यक्तिवादी व्यवस्था और कुछ का समाजवादी व्यवस्था है। इनमे भी, साधनो के कारण, दो भेद है। एक वे हैं जो शान्तिमय साधनो द्वारा अराजक समाज की स्थापना करना चाहते हैं। दूसरे वे है जो हिंसात्मक उपायो से ऐसी व्यवस्था क़ायम

करना चाहते हैं। यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि अराजकतावाद किसी ऐसी अराजकता का समर्थन नहीं करता जिससे सामाजिक व्यवस्था अस्तव्यस्त होजाय। प्रत्युत् उसका लक्ष्य तो एक आदर्श समाज की स्थापना है। कुछ मनचले अराजकतावादियों ने, इस सिद्धान्त को ही ठीक तरह न समझने के कारण, आतंकवाद को ही अपना लक्ष्य बना लिया और राजाओं, शासकों और बड़े-बड़े अफसरों पर बम फेंकना अपना मन्तव्य समझ लिया।

भारतवर्ष में भी, दूसरे कारणों से सही, यूरोप के तथाकथित अराजकतावादियों की नक़ल की गई। अराजकतावादी नेता बड़े उच्चकोटि के आदर्श महापुरुष हैं। उनका जीवन वास्तव में बड़ा ही पवित्र और सात्विक रहा है। प्रमुख नेताओं में विलियम गोडविन (१७५६-१८३६), मैक्स स्टर्नर (१८०६-१८५६), पियरे जोसफ (१८०६-१८६५), माइकेल बेकूनिन (१८१४-१८७६), प्रिंस क्रोपाटकिन (१८४२-१९२१), टाल्सटाय (१८२८-१९१०), आदि उल्लेखनीय हैं।

अल्जीरिया—यह उत्तरी अफ्रीका में फ्रांसीसी अधिकृत प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल ८,४५,००० वर्गमील है और जनसंख्या ७२,५०,००० है। इनमें से १०,००,००० फ्रांसीसी तथा शेष अरब हैं। यह देश उत्तरी तथा दक्षिणी दो प्रदेशों में विभाजित है। उत्तरी प्रदेश में २,२२,००० वर्गमील भूमि तथा दक्षिणी प्रदेश में ६,२३,००० वर्गमील भूमि है। उत्तरी प्रदेश से धारासभा के लिए १० प्रतिनिधि चुने जाते हैं। फ्रांसीसी गवर्नर-जनरल को यहाँ सर्वोच्च सत्ता प्राप्त है। यह फ्रांस के गृह-मंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है। यह देश न तो फ्रांस का उपनिवेश है, और न यह फ्रांस का अंग ही है। इसकी
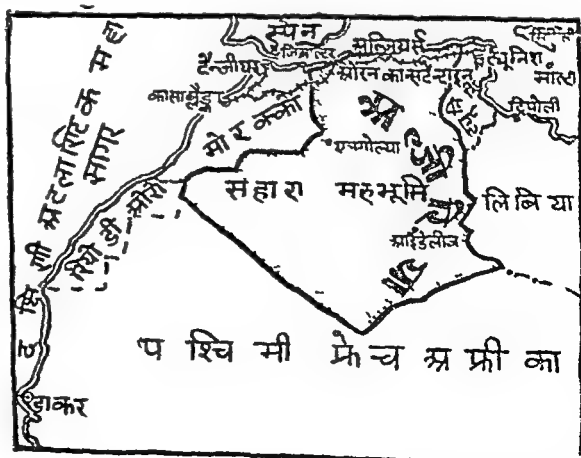
स्थिति कुछ दोनो के बीच की है। दक्षिणी प्रदेश बहुत पिछड़ा हुआ है और उसके अधिकांश भाग पर फौजी शासन है। उत्तरी भाग में फ्रांसीसी रहते हैं। उन्होने उसकी पर्याप्त उन्नति की है। कृषि भी अच्छी होती है और फलो की उत्पत्ति भी सन्तोषप्रद है। लोहा और तेज़ाबी नमक (फासफेट) की खानें भी है। यहाँ के अरब अधिवासियो मे राष्ट्रीयता तथा अखिल इस्लामवाद का प्रचार है।

अलफोंज़ो—यह स्पेन के भूतपूर्व सम्राट् थे। १७ मई १८८६ को इनका जन्म हुआ। जब स्पेन मे प्रजातन्त्र-क्रान्ति हुई तब, १४ अप्रैल १९३३ को, इन्हे प्रजा ने निर्वासित कर दिया। बाद में स्पेन की पार्लमेंट ने यह घोषणा की कि अब भविष्य मे स्पेन प्रजातत्र राज्य होगा, राजवश का शासनाधिकार च्युत किया जाता है। तब से अलफोंजो रोम मे रहा। सन् १९४१ मे उसकी मृत्यु होगई।

अलबानिया—यह इटली के पूर्व में स्थित एक देश है। इसकी जनसंख्या १०,००,००० और क्षेत्रफल १०,६०० वर्गमील है। पहले यह तुर्क साम्राज्य के अधीन था। सन् १९१३ मे यह देश स्वाधीन होगया। सन् १९२५ में अहमद जोग़ इस देश का राष्ट्रपति हुआ और सन् १९२८ मे वह इस देश का राजा बन बैठा। उसने देश मे काफी सुधार किये। इटली के साथ उसका सहयोग रहा। अप्रैल १९३९ मे इटली की सेनाओ ने सहसा अलबानिया पर आक्रमण कर दिया। उसका राजा भाग गया और मुसोलिनी ने उसे अपने साम्राज्य मे मिला लिया। यद्यपि यह देश निर्धन है तथापि सामरिक दृष्टि से इसका अधिक महत्व है। इसकी ७१ प्रतिशत जनसंख्या मुसलमान है। २८ अक्टूबर १९४० को इटली की सेनाओ ने अलबानिया मे होकर यूनान पर आक्रमण कर दिया। परतु ब्रिटिश सेना की सहायता से यूनान की विजय हुई और यूनान की सेनाओ ने इटली की सेनाओ को अलबानिया-से बुरी तरह भगा दिया। पॉच

मास तक यूनानी सेनाएँ अँगरेजी सेनाओ की सहायता से वीरतापूर्वक लड़ती रही। किन्तु ६ अप्रेल १६४१ को जर्मनी ने यूनान तथा यूगोस्लाविया पर आक्रमण कर दिया। यूनानी सैनिक बडी वीरता के साथ धुरी-राष्ट्रों की सेनाओ से लडते रहे। २३ अप्रेल को यूनान के सम्राट् अपने मत्रि-मण्डल के साथ एथेन्स छोड कर क्रीट चले गये।

अल्स्टर—यह आयरलैण्ड के उत्तरी प्रदेश का नाम है। आयरलैण्ड के प्राचीन अल्स्टर प्रान्त मे ६ जिले थे। इनमे से ६ ज़िले उत्तरी आयरलैण्ड मे हैं और तीन आयर मे हैं। आयर स्वतन्त्र हो चुका और अल्स्टर अब भी ब्रिटिश साम्राज्य का अङ्ग है। आयरलैण्ड के स्वातन्त्र्य-युद्ध मे अल्स्टर सदैव ब्रिटेन के साम्राज्यवादियो के साथ रहा है।
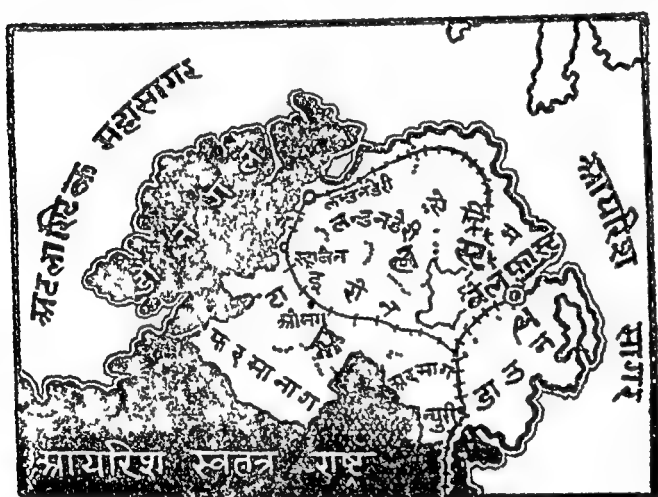
अलेक्ज़ैड्रेटा—यह देश शाम (सीरिया) की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित है। इसी नाम का एक बन्दरगाह भी है। सन् १६१८ तक यह तुर्की के अधिकार मे था। विश्व-युद्ध के बाद यह देश शाम मे मिला दिया गया। इसकी जन-सख्या २,२०,००० है, जिसमे ४० प्रतिशत तुर्क हैं। तुर्की इसे फिर से अपने अधिकार मे लेना चाहता है। इस समय यह फ्रास के प्रभुत्व मे है। तुर्की से मैत्री बनाये रखने के लिए फ्रास ने नवम्बर १६३७ मे इस प्रदेश को स्वायत्त-शासन देने का विचार किया। इससे तुर्की सहमत न हुआ। इसलिए १ जुलाई १६३८ को अकारा-सधि हुई, जिसके अनुसार इस प्रदेश पर फ्रास तथा तुर्की दोनों का सयुक्त-शासन स्थापित होगया। २१ अगस्त १६३८ के

चुनाव में ४० स्थानों मे से २२ स्थान तुर्कों को मिले। २३ जून १६३६ को फ्रास ने यह प्रदेश तुर्की को वापस कर दिया। २६ जून १६३६ को वहाँ से फ्रास की सेनाएँ वापस बुला ली गई।

अल्सेस-लारेन—यह प्रदेश फ्रास की पूर्वी सीमा पर है। इसका क्षेत्र-फल ५,६०५ वर्गमील तथा जनसंख्या १६,१५,००० है। राइन नदी इसकी पूर्वी सीमा पर है। मध्य-युग मे यह देश जर्मन-साम्राज्य के अन्तर्गत था। सन् १५५२ मे फ्रास ने इसके मेट्ज नगर पर आधिपत्य जमा लिया। तीस-वर्षीय युद्ध मे लुई १४वे ने अल्सेस का अधिकाश भाग जीत लिया और सन् १६४८ की सधि के अनुसार यह भाग फ्रास मे मिला लिया गया। सन् १६८१ मे फ्रांसीसियो ने स्ट्रैसव नामक नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। लारेन पर पहले हैप्सवर्ग के सम्राट् राज करते थे। सन् १७३५ मे यह प्रदेश लुई १४वे के ससुर को दे दिया गया, और सन् १७६६ मे यह भी फ्रांस मे मिल गया। फ्रासीसी शासक स्थानिक जनता के अधिकारों की रक्षा करते थे। जर्मनो का आधिक्य था, इसलिए जर्मनो के अधिकारो की रक्षा विशेष रूप से की जाती थी। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति ने इस दिशा मे भारी परिवर्तन कर दिया। स्थानिक अधिकारो को उठा दिया गया और शासन-प्रबध फ्रांस की तरह किया जाने लगा। स्कूलो तथा न्यायालयो मे फ्रांसीसी भाषा का प्रयोग शुरू होगया।

इन प्रदेशो के अधिवासी जर्मन यद्यपि जर्मन भाषा का प्रयोग करते रहे, तथापि वे फ्रांसीसी नागरिक थे और उनमे से अनेक फ्रास के राज्य-प्रबध मे उच्च पदो पर नियुक्त हो गए। सन् १८७०—७१ के जर्मन-फ्रासीसी-युद्ध के बाद इस प्रदेश पर जर्मनी का आधिपत्य हो गया। सन् १८७१ मे इस प्रदेश की जनता ने जर्मन-साम्राज्य में मिलाये जाने का विरोध किया। जब स्कूलों मे जर्मन भाषा जारी की गई तो, तो इसका भी जनता ने विरोध किया। जर्मनी ने इस प्रदेश को स्वाधीनता नहीं दी। बडे प्रयत्न के बाद इस प्रदेश की जनता को सन् १६११ मे परिमित स्वराज्य दिया गया। यद्यपि जनता का बहुमत जर्मनो के पक्ष में था, तथापि फ्रासीसियो के पक्ष मे भी एक दल पैदा होता जा रहा था। जब सन् १६१४ मे विश्व-युद्ध आरम्भ

हुआ तो इस प्रदेश की जनता मे अपूर्व जागृति पैदा हो गई। जर्मन-अधिकारियो ने जनता से दमन-चक्र चलाया। २०,००० से अधिक नागरिक अल्सेस-लारेन से निवासित कर दिए गए। वर्साई की सधि के अनुसार यह प्रदेश पुनः फ्रास को मिल गया। नवम्बर सन् १९१८ मे फ्रासीसी सेनाओ ने, उपर्युक्त सधि के अनुसार, इस प्रदेश मे प्रवेश किया।

अल्सेस मे प्रायः सभी जर्मन भाषा बोलते हैं, लारेन मे ७० फीसदी जनता जर्मन तथा ३०फीसदी जनता फ्रासीसी भाषा का प्रयोग करती है। दोनो मे कुल मिलाकर १५,००,००० जर्मन भाषा बोलते हैं। स्थानीय समाचार-पत्रो की भाषा जर्मन है। जर्मन भाषा मे ही साहित्य की रचना हो रही हैं। स्थानिक बोली तथा फ्रासीसी भाषा मे भी साहित्य तैयार हो रहा है। सरकारी दफ्तरो, न्यायालयो तथा स्कूलो मे जर्मन भाषा प्रयोग की जाती है। फ्रासीसी भाषा के साथ जर्मन भाषा का भी प्रयोग किया जाता है। सरकारी घोषणाएँ दोनो भाषाओ मे की जाती हैं।

इस प्रदेश का सामरिक महत्व है। इसमे लोहा तथा सज्जी खार (Potash) अधिक मिलता है। इसीके निकट फ्रेंच मेजिनो लाइन किलेबन्दी थी, जिसे फ्रास अटूट समझता था, और जिसे जर्मनो ने तहस-नहस कर डाला।

वर्तमान यूरोपीय युद्ध मे, जून १९४० मे, फ्रास के जर्मनी द्वारा पराजित होने के बाद, अल्सेस लारेन तथा फ्रास के उत्तरी विशाल प्रदेश पर जर्मनी का सामरिक अधिकार हो गया है।

अल्लामा 'मशरिकी'—भारत मे ख़ाकसार-आन्दोलन के जन्मदाता। नाम इनायतुल्ला खॉ। 'मशरिकी' उपनाम और अल्लामा (धार्मिक विद्वान्)

अनुयायियो द्वारा दी गई उपाधि । जन्म २५ अगस्त सन् १८८८ को अमृतसर मे हुआ । इनके पिता ख़ॉ अतामुहम्मद ख़ॉ कट्टर मुसलमान थे और इनकी देखरेख मे इनायतुल्ला ख़ॉ बाल्यकाल से पूर्णतया इसलामी रॅग मे रॅग गये । १६ वर्ष की आयु मे एम० ए० मे सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए । पश्चात् कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय गये और वहॉ से सनद हासिल की । इॅगलैण्ड से वापस आने पर इस्लामिया कालिज, पेशावर, के उप-प्रधानाध्यापक तथा बाद मे प्रधानाध्यापक बने । सन् १६१७ मे भारत-सरकार ने इन्हे शिक्षा-विभाग का उप-मंत्री (Under Secretary) नियुक्त किया । सन् १६१६ मे आप आई० ई० एस० से युक्त होकर पेशावर गये । इन दिनो आपने सब सरकारी स्कूलो मे क़ुरान का अध्ययन अनिवार्य कर दिया, यद्यपि सरकार ने उनके इस कार्य का विरोध किया ।

सन् १६३० मे लाहोर के निकट इछरा गॉव मे इन्होने ख़ाकसार दल की नीव डाली । किन्तु २ वर्ष मे केवल ६० व्यक्ति इसमे भर्त्ती हुए । इसके बाद जब लाहोर मे इसका काम शुरू हुआ तो क़रीब ३०० नवयुवक इसमे शामिल हो गये । २-३ वर्षो मे यह आन्दोलन पजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, हैदराबाद और सिन्ध में फैल गया । तब इनायतुल्ला साहब ने 'अलइसलाह' नामक उर्दू-पत्र निकाला । सन् १६३५ के अन्त मे देहली मे इन्होने एक कैम्प खोला, जहॉ क़रीब ३०० जगहो से ख़ाकसार शामिल हुए । सन् १६३७ मे जब कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डल स्थापित हुए और काग्रेसी प्रान्तो मे हिन्दू-मुसलिम उपद्रव होने लगे, तथा लखनऊ मे तबर्रा और मदहेसहाबा का आन्दोलन शुरू हुआ और संयुक्त-प्रदेश तथा उसके बाहर फैला, तब ख़ाकसारो ने सयुक्त-प्रान्त मे सरकार के विरुद्ध ज़ोरो से आन्दोलन शुरू किया । जब अल्लामा की काररवाइयॉ प्रान्त की शान्ति के लिए ख़तरनाक रूप धारण करने लगी, तब १ सितम्बर १६३६ को, संयुक्त-प्रान्त की सरकार की आज्ञा से, लखनऊ मे उन्हे गिरफ़्तार किया गया । २ सितम्बर १६३६ को अल्लामा मशरिक़ी ने जेल मे ख़ानबहादुर हाफ़िज़ वाजिदहुसैन रिज़वी, कर्नल जाफरी तथा अन्य अफ़सरो के सामने एक इक़रारनामा इस आशय का लिखा कि "दफ़ा १०७ का नोटिस वापस हो जाने की तारीख़ से साल

भर तक न तो मैं यू० पी० में दाखिल होऊँगा और न ख़ाकसारी जत्थों को यू० पी० में दाखिल होने की आज्ञा दूँगा।" इसी प्रकार का इकरारनामा दूसरे ख़ाकसार क़ैदियो ने भी लिख दिया। सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया।

सन् १९४० मे ख़ाकसारो ने पजाब मे ज़ोर पकडा। पजाब-सरकार के प्रधान मन्त्री सर सिकन्दर हयात खॉ की सरकार ने इन पर पाबन्दी लगादी। खाकसारो ने, सयुक्त-प्रान्त की भॉति, पजाब मे भी, पाबन्दियो के खिलाफ मोर्चा लगाना—प्रदर्शन करना और जुलूस निकालना—शुरू कर दिया। यू० पी० की भॉति पजाब में भी इन्होने पुलीस का सामना किया। लेकिन सयुक्त-प्रान्त की कांग्रेसी सरकार बहुत नम्रता और नर्मी से इनकी गैरक़ानूनी काररवाइयो का दमन करती थी, पजाब सरकार ने दृढतापूर्वक इन ख़ाकसारो की गैरकानूनी हरकतो का दमन किया। इन्ही दिनो पजाब-सरकार के वज़ीरे-आज़म सर सिकन्दर हयात खॉ ने अपने एक बयान मे कहा कि यह ख़ाकसार दुश्मनो से मिले हुए हैं और भारत मे यह लोग "पचम पक्ति" के (Fifth Columnist) हैं। पजाब मे शीघ्र ही इनका दमन कर दिया गया। पजाब मे अन्त होने से खाकसार-आन्दोलन की कमर टूट गई।

पीछे भारत-सरकार ने सन् १९४० मे इस सस्था को गैरक़ानूनी क़रार देकर इसके नेता अल्लामा इनायतुल्ला खॉ मशरिक़ी को पकडकर मदरास के सूबे मे नज़रबन्द कर दिया और भारत भर के खाकसारो को भी पकड कर जेल भेज दिया गया। बहुतेरो ने मुआफी मॉग ली और वह छोड दिये गये। खाकसार फण्ड का धन भी जब्त कर लिया गया।

१६ अक्टूबर १९४१ को "इस्लाम के धामिक सिद्धान्तो की रक्षा, बधुत्व, शुभ कर्मो, समाज-सेवा, प्रार्थना तथा शारीरिक-स्वास्थ्य के सिद्धान्तो की रक्षा के निमित्त" इनायतुल्ला साहब ने अनशन शुरू किया। मई-जून १९४१ मे सरकार ने सैकडों ख़ाकसारो को रिहा कर दिया। फड के कई लाख रुपये जो जब्त कर लिये गये थे, वे मुक्त कर दिये गये। फाक़े के बहुत दिन बाद सरकार ने सूचना दी कि यदि मि० मशरिकी यह घोषणा करदे कि उन्होने ख़ाकसार आन्दोलन त्याग दिया है और समस्त ख़ाकसार सगठन का खात्मा कर दिया है, और वह अपने अनुयायियो को भी आज्ञा दे कि ऐसा ही किया

जाय, तो उनकी रिहाई के बारे में विचार किया जा सकता है । अल्लामा ने लिख दिया कि "मुझे ऐसा लगता है कि ख़ाकसार-संगठन का सैनिक पहलू युद्धकाल मे सरकार के लिए संकट का कारण है । मै ख़ाकसारो को यह आज्ञा देता हूँ कि वे युद्ध-काल मे पोशाक, बैज, बेलचा या शस्त्र, प्रदर्शन और परेड, आदि बन्द कर दे ।" इसके साथ ही इनायतुल्ला साहब ने अपना अनशन तोड़ दिया । सरकार ने भी जेलो मे पड़े ख़ाकसारो को छोड दिया । अल्लामा अभी नज़रबन्द हैं ।

अल्लाहबख़्श, ख़ानबहादुर—सिन्ध की सरकार के प्रधान मन्त्री हैं । सन् १६०० मे पैदा हुए । इनकी शिक्षा मैट्रिक तक है । शुरू में यह सरकारी ठेकेदार थे । सबसे पूर्व, सन् १६२२ मे, अल्लाहबख़्श साहब बम्बई धारा-सभा के सदस्य चुने गये । बम्बई कौंसिल में इन्होने कृषि तथा राजस्व की समस्याओ मे विशेषज्ञता प्राप्त कर ली । आप राजनीति मे सदैव मुस्लिम लीग और मि० जिन्ना की नीति के विरोधी रहे हैं । सन् १६४० के अप्रैल मास मे देहली मे अखिल-भारतवर्षीय आज़ाद मुस्लिम सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन ख़ानबहादुर अल्लाहबख़्श की अध्यक्षता मे हुआ । इसमे मुसलमानों की ७ प्रमुख धार्मिक तथा राजनीतिक सस्थाओ ने भाग लिया । समस्त भारत से हज़ारो की सख्या मे प्रतिनिधि पधारे तथा ५० हज़ार से भी अधिक दर्शक पडाल मे उपस्थित थे । भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति का प्रस्ताव स्वीकार किया गया तथा मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की योजना का ज़ोरदार विरोध किया गया । अल्लाहबख़्श राष्ट्रीय विचारो के समर्थक तथा काग्रेस-नीति के पक्ष मे हैं । सिन्ध के आप दुबारा

वज़ीरे-आज़म बने। (देखो परिशिष्ट-पृष्ठ न० ४५२)। आपको किसी कमीने बदमाश ने १४ मई '४३ को ताँगे पर जाते-जाते गोली मार दी जिससे फौरन् उनकी मृत्यु हो गई।

असहयोग—पिछले महायुद्ध (सन् १६१४-१८) के अन्त मे, वर्साई की सन्धि के अनुसार, तुर्क-साम्राज्य के अङ्ग-भङ्ग और फलतः ख़िलाफत की अक्षुण्णता के नष्ट होने की योजना, साथ ही पंजाब मे, १६१६ ई० मे, तत्कालीन छोटे लाट सर माइकेल ओ'ड्वायर और अमृतसर के जलियाँवाला बाग़ मे जनरल ओ'डायर द्वारा किये गये कत्ले-आम और पजाब के फौजी शासकों द्वारा हुए अनेक अत्याचारो के विरोध मे महात्मा गान्धी ने घोषणा की कि इन अत्याचारो की पुनरावृत्ति को रोकने का एकमात्र साधन स्वराज्य-प्राप्ति है। अतएव सरकार से मतालिबा किया गया कि वह तुर्की को छिन्न-भिन्न इस प्रकार न करे कि जिससे ससार के मुसलमानो के धार्मिक-नेता ख़लीफा के पद और ख़िलाफत-सस्था का अन्त हो। दूसरी माँग यह की गई कि पजाब मे जुल्म करनेवाले छोटे लाट और दूसरे अफसरो को यथोचित दण्ड दिया जाय। तीसरी माँग स्वराज्य दिये जाने की थी।

तीनो मे से एक का भी, राष्ट्रीय वाञ्छा के अनुसार, निराकरण न होने से महात्मा गाधी ने असहयोग (Non-co-operation Movement) आन्दोलन छेड़े जाने की घोषणा की और, २० अगस्त १६२० को, पजाब-केसरी लाला लाजपतराय के सभापतित्व मे कांग्रेस के विशेष अधिवेशन, कलकत्ते, मे प्रस्ताव पास हुआ, जिसमे राष्ट्र से अपील करते हुए असहयोग की योजना इस प्रकार निश्चित की गई—सरकारी अदालतो, सरकारी शिक्षालयो, सरकारी नौकरियो, सरकारी खिताबो, सनदो और सस्थाओ तथा धारासभाओ का बहिष्कार। राष्ट्रीय पचायतों और राष्ट्रीय शिक्षालयो की स्थापना। विदेशी वस्त्रो का पूर्ण बहिष्कार। खादी का प्रचार, अछूतपन का नाश, नशाबन्दी और हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की दृढता।

अ-हस्तक्षेप नीति—यह एक अवास्तविक नीति है जिसके अनुसार यूरोप की महान् शक्तियो ने स्पेन के गृह-युद्ध (सन् १६३६-३६) के समय व्यवहार किया था। यूरोप के महान् और छोटे राज्यो ने यह समझौता किया कि स्पेन के गृह-युद्ध मे किसी भी पक्ष को न युद्ध का सामान भेजा जाय और न सेना ही भेजी जाय। लन्दन मे मृत नैविल चेम्बरलेन (तब प्रधान-मत्री ब्रिटिश-साम्राज्य) के प्रयत्न से एक अ-हस्तक्षेप-कमिटी बनाई गई, अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण अफसर नियुक्त किये गये, जिन्होने बन्दरगाहो तथा स्पेन की सीमाओ पर जाकर निरीक्षण-कार्य किया और स्पेन के समुद्री तट पर ऐसा प्रबन्ध किया गया जिससे कोई बाहरी मदद वहाँ भेजने से रोकी जा सके। इतनी व्यवस्था होने पर भी भूमि तथा समुद्र-मार्ग से बाहरी देशो ने स्पेन मे अपनी सेनाएँ

तथा युद्ध-सामग्री भेजी। गृह-युद्ध की अन्तिम अवस्था मे इस कमिटी ने अपना काम बन्द कर दिया।

अहिंसा—विचार, वाणी और व्यवहार से हिंसा का परित्याग। इसका तात्पर्य यह कि एक पूर्ण अहिंसावादी को अपने मन, अपने वचन, तथा अपने कर्म मे किसी भी प्राणी के लिए द्वेष-भाव को स्थान न देना। महात्मा गान्धी पूर्ण अहिंसा के अनन्य उपासक तथा समर्थक हैं। सत्य-दर्शन—आत्मा का साक्षात्कार अथवा मोक्ष—उनका लक्ष्य है, और अहिंसा उसका साधन है। यह केवल एक नैतिक या धार्मिक सिद्धान्तमात्र नहीं है, प्रत्युत् गान्धीजी का तो यह एक मौलिक जीवन-सिद्धान्त है। वह अहिंसा को व्यक्तिगत जीवन के लिए जितनी उपयोगी और आवश्यक मानते हैं, उतनी ही सामूहिक जीवन तथा राजनीतिक क्षेत्र में भी उसके पालन पर ज़ोर देते हैं।

उनका यह ध्रुव निश्चय है कि भारत अहिंसा द्वारा ही स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है और, उन्हें ऐसा विश्वास भी है कि, अहिंसा द्वारा स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के बाद, भारत अहिंसात्मक ढग से ही, अपनी स्वाधीनता की रक्षा भी कर सकेगा। जब समाज में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जायगी, तब पुलिस, सेना तथा किसी प्रकार के बल-प्रयोग के साधन की आवश्यकता न रह जायगी।

महात्मा गांधी अहिंसा को एक साधन नही मानते, उसे साध्य मानते हैं—एक लक्ष्य मानते हैं। परन्तु उनके सहयोगी तथा कांग्रेस-जन सामान्यतया अहिंसा को एक नीति के रूप मे स्वीकार करते हैं। नीति का समय-विशेष पर त्याग भी किया जा सकता है, परन्तु धर्म का त्याग—लक्ष्य का परित्याग—तो सम्भव नहीं। गान्धीजी अहिंसा के इतने प्रबल अनुयायी हैं कि वह उसके समक्ष भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न को भी गौण समझते हैं। सत्य और अहिंसा उनके जीवन के चरम लक्ष्य हैं। उनकी राजनीति इन दो से बाहर की वस्तु नहीं, इन्हीके प्रयोग पर खरी उतरनेवाली व्यवस्था ही उनकी राजनीति है। गान्धीजी की अहिंसा किसी व्यक्ति, समाज या देश तक सीमित नहीं। भारत को ही अपना यह अमृत पिलाकर वह अमर नही बनाना

चाहते, समस्त संसार के दुःखो, अनीतियो, अनाचारो और अत्याचारो का एकमात्र उपचार भी वह अहिसा को मानते हैं। आजकल होरहे इस घोर विनाशकारी युद्ध मे उन्होने अँगरेज़ जाति को मित्रतापूर्ण परामर्श दिया था कि वह हिटलर की हिन्सा का अपनी अहिंसा द्वारा निराकरण करे।

आ

आइसलैण्ड—ग्रेट ब्रिटेन के उत्तर-पश्चिम मे यह एक द्वीप है। इस समय अमरीका का इस पर अधिकार है। यह स्वतत्र द्वीप था किंतु, वर्तमान युद्ध मे, सन् १६४१ मे, जर्मनी ने इसे युद्ध का अड्डा बनाना चाहा, इसलिए अमरीका ने अपनी फौजे आइसलैण्ड मे भेजकर उस पर अपना सैनिक-नियंत्रण स्थापित कर दिया है।

आज़ाद, मौलाना अबुल कलाम—भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के आप अध्यक्ष हैं। सन् १८८८ मे मक्का मे इनका जन्म हुआ। आपके पिता अरब मे रहते थे। उपरान्त मिस्र आगये। क़ाहिरा (मिस्र) के अल-अज़हर विश्वविद्यालय मे इन्होने अपनी शिक्षा पूर्ण की। अरबी, फारसी, इसलामी-दर्शन और क़ुरान का विशेष रूप से अध्ययन किया। तत्पश्चात् भारत मे आये। कलकत्ता से आपने 'अलहिलाल' नामक उर्दू दैनिक-पत्र निकाला। आपकी स्पष्टवादिता के कारण पत्र से ज़मानत मॉग ली गई, जो कुछ दिन बाद ज़ब्त हो गई और दस हज़ार की नई ज़मानत मॉगी गई। तब आपने 'अलबलाग़' नामक दूसरा उर्दू-साप्ताहिक निकाला। पिछला महायुद्ध शुरू हो चुका था। पत्र की खरी आलोचना से अधिकारी विचलित हो उठे और मौलाना साहब को रॉची मे नज़रबन्द कर दिया गया। इन्ही दिनो अलीबन्धु नज़रबन्द किये गये। १६२० ई० मे मौलाना को छोड़ा

गया। छूटते ही आप गान्धीजी के साथ कांग्रेस मे शामिल होगये। १९२०-२१ के असहयोग-आन्दोलन मे आपने महात्मा गान्धी के साथ विशेष भाग लिया। सन् १९२३ मे देहली मे कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के सभापति हुए। सन १९३० मे कांग्रेस के स्थानापन्न सभापति रहे। सन् १९३० तथा सन् १९३२ के भद्र-अवज्ञा आन्दोलनो मे भाग लिया और कैद रहे। सन् १९३७ से सन १९३९ तक कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-कमिटी के सदस्य रहे। इसके बाद कांग्रेस के रामगढ-अधिवेशन (मार्च १९४०) के अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। अक्टूबर १९४० मे महात्मा गान्धी ने युद्ध-विरोधी सत्याग्रह आरम्भ किया। इस समय प्रयाग मे दिये गये एक भाषण के कारण आप गिरफ़्तार कर लिये गये। मौलाना कांग्रेस के बहुत प्रभावशाली, सुयोग्य और लोकप्रिय तथा पुरातन नेता हैं। आप उच्च कोटि के वक्ता, लेखक तथा पत्रकार है। आपने क़ुरान की उर्दू मे महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है। महात्मा गान्धी के आप दाहिने हाथ हैं। प्रत्येक मुस्लिम-प्रश्न का महात्माजी मौलाना साहब की सलाह से निर्णय करते हैं। मौलाना साहब की गान्धीजी मे अटल श्रद्धा है। वह पक्के गान्धीवादी नेता हैं। आपकी एक-निष्ठता आदर्श है।

आतंकवाद—राजनीतिक हत्याओ, डकैतियो तथा षड्यन्त्रो द्वारा सरकार तथा सरकारी अफ़सरो को सत्ताहीन कर देने का प्रयत्न करना। अराजकतावाद के सिद्धान्त को ठीक-ठीक रूप मे न समझने के कारण कुछ अराजकतावादियो ने इस प्रकार के कार्यों को सगठित ढग से करना आरम्भ किया। जब सगठित प्रयत्न दबा दिया गया तो व्यक्तिगत रूप से ऐसे कार्य किये जाने लगे। किंतु जहाँ अराजकतावाद एक सिद्धान्त है वहाँ आतङ्कवाद एक ऐसा मुहावरा है जिसकी विजित और विजेता अथवा शासित और शासक जातियो द्वारा, अपने-अपने विचारानुसार, पृथक् परिभाषा की जाती

है। समस्त संसार के देशो मे विक्षुब्ध लोगो द्वारा ऐसी कारवाइयाँ की जाती रही हैं। भारत मे भी यह सब हुआ, किन्तु अब महात्मा गान्धी के अहिंसावाद के प्रभाव से इसका उन्मूलन हो रहा है।

आर्थिक प्रवेश—एक देश द्वारा दूसरे देश मे ऐसी आर्थिक स्थिति उत्पन्न कर देना जिससे उस देश पर राजनीतिक नियंत्रण भी प्राप्त हो सके। दूसरे देश के व्यापार-व्यवसाय मे पूँजी लगाना, वहाँ मिले तथा कारख़ाने चलाना, सड़के, बैंक तथा रेलवे बनाना, अपने व्यापारियो के लिए उपनिवेश बसाना, इत्यादि ऐसे साधन है जिनसे दूसरे देश पर आर्थिक-आधिपत्य के साथ-साथ राजनीतिक प्रभुत्व भी क़ायम हो सकता है। भारत मे भी वर्तमान शासक-सत्ता बहुत-कुछ इसी प्रकार स्थापित हुई। पाश्चात्य देशो ने इस नीति का बहुत प्रयोग किया है, और यह नीति भी पिछले तथा वर्तमान महायुद्धो का एक कारण हुई है।,

आर्थिक राष्ट्रीयता—आर्थिक राष्ट्रीयता का, इस समय, प्रत्येक देश मे, जो उद्योग-धधो मे प्रगतिशील है, प्राधान्य है। प्रत्येक ऐसे देश की अर्थनीति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि अपने देश के उद्योग-धन्धो का विकास इतने बडे पैमाने पर किया जाय कि वह दूसरे देशो के बाज़ारो मे तो अपना तैयार माल वेच सके परन्तु उसे उनसे कोई वस्तु न ख़रीदनी पडे।

आर्थिक साम्राज्यवाद—यह साम्राज्यवाद का नवीनतम स्वरूप है। आर्थिक साम्राज्यवादी व्यवस्था दूसरे देशो और उपनिवेशो पर अपना कोई राजनीतिक नियत्रण रखना नही चाहती। वह तो सिर्फ़ उन देशो के आर्थिक जीवन पर नियत्रण रखना चाहती है। आज के पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी राष्ट्र आर्थिक साम्राज्यवाद को अधिक उपयोगी इसलिए समझते है कि इसके द्वारा उपनिवेशो का शोषण, विना शासन-सूत्र हाथ में लिए, बडी सुविधा-पूर्वक, किया जा सकता है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व—यह एक प्रकार की निर्वाचन-प्रणाली है। निर्वाचन मे उम्मीदवार की सफलता के लिए कम-से-कम आवश्यक मत निर्धारित कर दिये जाते है। जितने उम्मीदवार किसी चुनाव के लिए खडे होते हैं, उनमें से मतदाता नाम छाँटकर अपनी इच्छानुसार लिखता है,

और जिस उम्मीदवार को वह चाहता है उसके नाम के सामने नम्बर १ लिख देता है। इसके बाद दूसरे उम्मीदवार के सामने, जिसे वह चाहता है, २ लिख देता है, इसी प्रकार यह सिलसिला चलता है।

अब यदि मत-गणना करते समय यह परिणाम प्रकट हो कि १ नम्बर के उम्मीदवार को निर्धारित सख्या से अधिक मत प्राप्त हुए हैं तो वह अधिक मत उस उम्मीदवार के मतो मे जोड दिये जायँगे जिसे सबसे अधिक मत-दाताओ ने नम्बर २ दिया है। इसी प्रकार यदि उसके मत भी निर्धारित सख्या से अधिक हो जायँ तो तीसरे नम्बर के उम्मीदवार को अधिक मत दे दिये जायँगे। इसी प्रकार आगे भी होता रहेगा। स्विट्जरलैण्ड मे यह प्रणाली प्रचलित है।

आयरिश स्वतंत्र राष्ट्र—यह इँगलैण्ड के पश्चिम मे एक द्वीप है। पहले यह महान् ब्रिटेन का अग और उसके आधिपत्य मे था। इसका क्षेत्र-फल ३१,८०० वर्गमील तथा आबादी ४३,००,००० है। जब सन् ११५२ मे ॲगरेजो की सत्ता आयरलैण्ड मे स्थापित हो गई, तब से आयरिश जनता तथा ॲगरेजो मे सघर्ष होने लगा। आयरिश ॲगरेज़ी आधिपत्य के शुरू से विरोधी रहे। इसके दो कारण थे, एक जातीयता तथा दूसरा धार्मिक मतभेद।

आयरिश रोमन कैथलिक तथा ॲगरेज प्रोटेस्टेंट थे। क्रॉमवेल की अधीनता मे इन दोनो मे घोर सघर्ष हुआ और उत्तरी आयरलैण्ड से, जो अब अल्स्टर कहलाता है, आयरिश जनता को निकाल दिया गया और इस प्रदेश मे ॲगरेज प्रोटेस्टेंट तथा स्कॉच लोग बसा दिये गये। सन् १८०० तक आयरलैण्ड मे अधीनस्थ पार्लमेण्ट काम करती रही। इसी वर्ष आयरलैण्ड को सयुक्त-राज्य ग्रेट ब्रिटेन (United Kingdom of Great Britain) मे शामिल कर लिया गया। इस प्रकार आयरलैण्ड का ॲगरेजी-करण तो हुआ परन्तु आयरिश जनता मे राष्ट्रीय भावना का पुनर्जागरण होगया। ॲगरेज़ ज़मीदारो तथा सम्पत्तिशालियो ने आयरिश जनता का न केवल सामाजिक दमन ही किया प्रत्युत् उसका आर्थिक शोषण भी। वह ख़ुद भूमि के स्वामी बन गये और आयरिश केवल काश्तकार ही रह गये। १६वी सदी मे आयरिश जनसंख्या कम हो गई। आयरलैण्ड की आधी पैदावार इँगलैण्ड के ज़मीदारो

को जाती थी। सन् १८८६ तथा १८९३ में प्रथम आयरिश होमरूल मसविदे (Bills) ब्रिटिश पार्लमेंट मे प्रस्तुत किये गये। यद्यपि वे स्वीकृत तो नहीं हुए, तथापि तत्कालीन प्रधान मत्री ग्लेडस्टन ने आयरिश-समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया और उसमे उसे सफलता भी मिली। सरकार ने आयरलैण्ड के ॲगरेज़ ज़मीदारो से ज़मीने ख़रीदकर आयरिश प्रजा को देदी। सन् १९१२ मे होमरूल का नया मसविदा प्रस्तुत किया गया। अल्स्टर मे इसका प्रबल विरोध हुआ। अल्स्टर मे स्वयसेवको की भर्ती की गई और दक्षिणी आयरलैण्ड मे होमरूल के लिए आयरिश स्वयसेवक भर्ती किये गये। इन दोनो मे सघर्ष शुरू हो जाने की पूर्ण सभावना थी। लार्ड-सभा मे दो बार होमरूल बिल अस्वीकार कर दिया गया। सन् १९१४ मे विश्व-युद्ध आरम्भ हो गया। इस बीच मे मसविदा (Bill) तो स्वीकार होगया, परन्तु उस पर अमल करना स्थगित कर दिया गया।

उत्तरी तथा दक्षिणी आयरिश सैनिको ने ब्रिटेन की ओर से युद्ध मे भाग लिया। परन्तु क्रान्तिकारी राष्ट्रीय आयरिश दल (जो शिन-फीन (Sinn Fein) दल के नाम से प्रसिद्ध है) युद्ध से अलग रहा। 'सिन-फीन' का अर्थ है "स्वय अपने लिए"। सन् १९१६ मे आयरिश-विद्रोह हो गया। आयरिश स्वतंत्र प्रजातत्र की घोपणा कर दी गई; किन्तु आयरिश नेता पकड लिये गये और उनका वध कर दिया गया। इस विद्रोह मे आयरिश जनता को जर्मनी का सहयोग भी प्राप्त था। जर्मनी से सर रौजर केसमेट यू-बोट मे बैठकर आयरलैण्ड मे विद्रोहियो को सहायता देने के लिये आये।

जब युद्ध समाप्त हो गया तब पुनः एक होमरूल बिल पेश किया गया और स्वीकार कर लिया गया। उसके अनुसार उत्तरी तथा दक्षिणी आयरलैण्ड मे दो पार्लमेंट बनाने का निश्चय किया गया। क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी आयरिश जनता ने गृह-युद्ध आरम्भ कर दिया। उसने आयरलैण्ड मे घोर आतंक फैला दिया। ब्रिटेन ने क्रान्तिकारी आयरिश राष्ट्रवादियो के दमन के लिये एक विशेष पुलिस भेजी जो ब्लैक-एन्ड-टैन्स के नाम से मशहूर है। इस प्रकार शिन-फील दल और ब्लैक-एन्ड-टैन्स मे बडा भयकर युद्ध होता रहा। राष्ट्रवादियो ने फौजो पर भी आक्रमण किया। ब्रिटिश पार्लमेंट के

कुल १०५ आयरिश सदस्यो मे से ७३ शिन-फीन सदस्य डब्लिन मे एकत्रित हुए और आयरिश राष्ट्रीय परिषद् (Dail Eireann) का अधिवेशन किया। इस प्रकार अन्त मे, सन् १९२१ मे, ब्रिटिश-सरकार और आयरिश राष्ट्रीय परिषद् के बीच सन्धि हो गई। सन् १९२२ मे आयरिश स्वतंत्र-राज्य-क़ानून ब्रिटिश पार्लमेंट ने स्वीकार किया। इसके अनुसार दक्षिणी आयरलैण्ड मे स्वतत्र राज्य (Irish Free State) स्थापित हो गया। उत्तरी आयरलैण्ड (अल्स्टर) ब्रिटेन के अधिकार मे रह गया। उसे मर्यादित स्वराज्य दे दिया गया।

क्रान्तिकारी आयरिश प्रजातत्रवादियो के नेता डी वेलरा ने सन्धि को ठुकरा दिया और आयरिश स्वतत्र राज्य की सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। फिर गृह-युद्ध आरम्भ हो गया और सन् १९२३ तक चलता रहा। अन्त मे सरकार की विजय हुई।

सन् १९३२ मे आयरिश स्वतत्र राज्य की पार्लमेंट मे फियन्ना-फेल दल का बहुमत हो गया और इस दल का नेता डी वेलरा प्रधान-मत्री नियुक्त किया गया। शासन-विधान (१९२२) मे कई बडे परिवर्तन किये गये। राजभक्ति की शपथ लेना बन्द कर दिया गया। गवर्नर-जनरल के अधिकार कम कर दिये गये। सन् १९३७ मे नया शासन-विधान तैयार किया गया। यह विधान पूर्ण स्वाधीनता के आधार पर बनाया गया। १ जुलाई १९३७ को ५८ प्रतिशत के बहुमत से यह विधान स्वतत्र राज्य की जनता ने स्वीकार किया। २९ दिसम्बर सन् १९३७ से इसके अनुसार शासन होने लगा।

विधान मे आयरलैण्ड को पूर्ण स्वाधीन, प्रभुत्व-युक्त-प्रजातत्र, कैथलिक राज्य घोषित किया गया है। आयरलैण्ड की राष्ट्रीय पताका हरे, सफेद और नारगी रग की निर्धारित की गई है। यूनियन जैक (ब्रिटिश पताका) का बहिष्कार किया गया है तथा क्राउन (सम्राट्-सत्ता) का उल्लेख भी नही किया गया है। अब गवर्नर जनरल का पद नही है। राष्ट्रपति का चुनाव होता है और वही राज्य का प्रमुख शासक है।

राष्ट्रपति ७ साल के लिए चुना जाता है। वह पार्लमेंट के अधिवेशन आमन्त्रित करता है तथा उसे भग करता है। वह कानूनो पर स्वीकृति देता

तथा उन्हे जारी करता है। वह सेना का प्रधान सचालक है तथा क्षमादान का भी उसे अधिकार है। आजकल प्रोफे-सर डगलस हाइड आयरलैण्ड के राष्ट्रपति है। आयरलैंड मे दो धारा सभायें हैं। प्रधान मन्त्री राष्ट्रपति द्वारा पार्लमेंट से मनोनीत हो जाने पर नियुक्त किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन ने न तो आयरलैण्ड के नये शासन-विधान को स्वीकार किया है और न अस्वीकार ही।

आर्य—आर्य सस्कृत शब्द है और वेदो मे इसका उल्लेख कई स्थलो पर मिलता है। भारतवर्ष के वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि आर्य शब्द आर्यावर्त्त के लोगो के लिए प्रयुक्त किया जाता था। वर्त्तमान समय मे हिमालय से विन्ध्याचल तक तथा भारत की पश्चिमी सीमा से ब्रह्मपुत्र नदी तक का प्रदेश आर्यावर्त्त के नाम से प्राचीन काल मे प्रसिद्ध था। कुछ लोगो के मत से सृष्टि के आदि मे तिब्बत मे सबसे प्रथम मानव-सृष्टि हुई और वहाँ से मानव भारत के उत्तरी भाग मे आकर बस गये। यही आर्य कहलाये।

कुछ यूरोपीय विद्वानो का यह मत है कि 'आर्य' वास्तव मे भाषा-विज्ञान का शब्द है, उसका जाति, रक्त या वश से कोई सबंध नही है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 'आर्य-जाति' एक कल्पना है—इसमे ऐतिहासिक सत्य नही है।

दूसरी ओर कुछ भारतीय विद्वानो और इतिहास-वेत्ताओ ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आर्य एक प्राचीन जाति है और इसका जन्म-स्थान मध्य एशिया या तिब्बत है। लोकमान्य तिलक के अनुसार 'आर्य' जाति का आदिस्थान उत्तरी ध्रुव है।

वर्त्तमान समय मे जर्मनी के सर्वेसर्वा हर हिटलर ने, संसार के सामने जर्मन जाति की विशुद्धता का प्रमाण देने का प्रयत्न करते हुए, यह स्पष्ट

शब्दो मे कहा है कि जर्मन विशुद्ध आर्य जाति है। आर्य जाति ने ही सबसे प्रथम ससार मे सभ्यता को जन्म दिया और सस्कृति की रक्षा भी उसी ने की। यदि हिटलर का तात्पर्य आर्यावर्त्त के आर्यो से होता, तो इस कथन मे सार भी होता, क्योकि ससार मे सबसे प्राचीन धर्म वैदिक धर्म है। वेद अपौरुषेय हैं और यूरोपीय विद्वान् भी यह मानते हैं कि वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वेदो के माननेवाले आर्य भी प्राचीन हैं। परन्तु हिटलर ऐसा नही मानता। वह केवल जर्मन को ही श्रेष्ठ आर्य जाति मानता है। यह वास्तव मे भारी भ्रम है। आज वस्तुतः यूरोप मे कोई भी जाति आर्य कहलाने का दावा करे तो यह एक प्रकार की विडम्बना ही होगी। भारत मे भी नस्लो और जातियो का इतना मिश्रण हो गया है कि आज यह नही कहा जा सकता कि सभी हिन्दू कहलानेवाले प्राचीन आर्य जाति के अग हैं।

आलैण्ड द्वीप-समूह—यह द्वीप-समूह बाल्टिक सागर मे स्वीडन और फिनलैण्ड के मध्य मे है। क्षेत्रफल ५७६ वर्गमील और जनसख्या २७,००० है। यह द्वीप सामरिक महत्व रखते हैं। यदि इनमे क़िलेबन्दी कर दी जाय, तो इनका प्रयोग रूस, फिनलैण्ड और स्वीडन पर आक्रमण करने के लिए किया जा सकता है। जिसके अधीन यह द्वीप होंगे वह स्वीडन और जर्मनी के व्यापार मे भी बाधा डाल सकता है। इनमे स्वीडिश जनता रहती है, परन्तु प्राचीन काल से यह द्वीप फिनलैण्ड के पास हैं। सन् १८०६ मे वह फिनलैण्ड के साथ रूस के पास चले गये। सन् १८५६ मे, क्रीमियन-युद्ध के बाद, स्वीडन की प्रार्थना पर, रूस ने इन द्वीपो मे किलेबन्दी नहीं की। सन् १९१७ मे रूसी राज्यक्रान्ति के बाद जन-मत लेने पर यही निश्चय हुआ कि यह द्वीप स्वीडन को दे दिये जायॅ। फरवरी १९१८ मे स्वीडन की सेना द्वीपो मे प्रविष्ट हुई। परन्तु जब जर्मन-सेना ने उन पर अधिकार जमा लिया तब स्वीडन की सेना वापस आ गई। नवम्बर १९१८ मे जर्मन-सेना वापस आ गई। अब स्वीडन और फिनलैण्ड मे, इन द्वीपो के आधिपत्य के सबध मे, सघर्ष शुरू हो गया। सन् १९२१ मे राष्ट्र-सघ ने यह निर्णय किया कि यह द्वीप फिनलैण्ड को दे दिये जायॅ, परन्तु उन्हे स्वायत्त-शासन दे दिया जाय और

निःशस्त्र कर दिया जाय। इन द्वीपो की राजभाषा स्वीडिश है, और सन् १९२१ से यह स्वराज्य भोग रहे है। सन् १९३८ मे स्वीडन और फिनलैण्ड ने यह तय किया कि इन द्वीपो मे क़िलेबन्दी की जाय। परन्तु इस कार्य मे रूस ने बाधा डाल दी।

आस्ट्रिया—यह पहले स्वाधीन देश था। इसकी राजधानी वियना है। क्षेत्रफल ३२,००० वर्गमील तथा जनसख्या ६८,००,००० है। गत विश्व-युद्ध के बाद आस्ट्रिया ने जर्मनी के साथ मिल जाने की घोषणा की। इसमें तत्कालीन मित्र-राष्ट्रो ने बाधा डाली और राष्ट्र-सघ के प्रभाव से वह एक स्वाधीन राष्ट्र बना रहा। सन् १९३४ मे आस्ट्रिया मे फासिस्टो की सत्ता बढ़ गई और डाल्फ़स अधिनायक बन गया। उसने उन मज़दूरो का दमन किया जो प्रजातत्रवादी शासन का समर्थन कर रहे थे। उसने नाजी विद्रोह का भी दमन किया। इसी समय उसकी हत्या कर दी गई। उसके बाद शुशनिग ने शासन सँभाला। १२ मार्च १९३८ को जर्मन सेना ने आस्ट्रिया मे प्रवेश किया और हिटलर ने उसे जर्मनी मे मिला लिया। इस नाज़ी अपहरण का न आस्ट्रिया ने प्रतिरोध किया और न राष्ट्रसघ के समर्थको ने। शुशनिग को राजबन्दी बना दिया गया। आज भी वह जर्मनी का राजबन्दी है। वर्तमान महायुद्ध के आरम्भ हो जाने के बाद हैप्सबर्ग के एकतत्रवादियो ने लन्दन में आस्ट्रियन अफसर नियुक्त कर दिये हैं जो आस्ट्रिया की आज़ादी के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।

आस्ट्रेलिया—यह ब्रिटिश राष्ट्र-समूह के अन्तर्गत है। क्षेत्रफल २९,७५,००० वर्गमील और जनसख्या ६८,००,००० है। इसकी राजधानी है कैनबेरा। १ जनवरी १९०१ के कॉमन-वैल्थ ऑफ् आस्ट्रेलिया के अन्तर्गत इसे 'डोमिनियन' पद प्राप्त हुआ। आस्ट्रेलिया में सघ-शासन-प्रणाली है। इसके अन्तर्गत ६ राज्य हैं—न्यू साउथ वेल्स विक्टोरिया, क्वीन्सलैण्ड, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और टस्मानिया। ब्रिटिश सम्राट् का प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल होता है। पार्लमेंट की दो सभाएँ हैं—प्रतिनिधि धारा-सभा (House of representatives) और व्यवस्थापिका सभा (Senate)। इनका चुनाव क्रमशः ३ और ६ वर्ष के लिए होता है। यह देश मुख्यत. कृषि-प्रधान है। ससार में सबसे अधिक गेहूँ और ऊन यहाँ पैदा होता है। उद्योग में भी यहाँ काफी उन्नति हुई है। इसका व्यापार जापान, ब्रिटेन और सयुक्त-राज्य अमरीका से होता आ रहा है। यहाँ आबादी कम है, फिर भी प्रवास-सबधी अनेक बाधाएँ हैं। बाहर के लोगों को यहाँ स्थायी रूप से नही रहने दिया जाता। पिछले विश्वयुद्ध में आस्ट्रेलिया ने

२,४०,००० सेना युद्ध-स्थल मे भेजी थी। आस्ट्रेलिया के पास एक नौ सेना है, जिसमे ४ युद्धपोत तथा २ विध्वंसक है। हवाई बेडा भी है। आस्ट्रेलिया के वर्तमान प्रधान मन्त्री आर० जी० मैन्ज़ीस हैं। यह सयुक्त आस्ट्रेलिया-दल के नेता भी हैं।

ब्रिटेन और जर्मनी के मध्य वर्तमान युद्ध छिडने पर, ५ सितम्बर १६३६ को, आस्ट्रेलियन सरकार ने भी युद्ध-घोषणा कर दी। पार्लमेंट मे विरोधी-दल ने यह प्रस्ताव पेश किया कि आस्ट्रेलियन सेनाएँ बाहर न भेजी जायँ, परन्तु २८ के विरुद्ध ३३ के बहुमत से यह प्रस्ताव गिर गया।

७ दिसम्बर १६४१ से जापान ने प्रशान्त महासागर मे ब्रिटिश, अमरीकन तथा डच द्वीप-समूहो पर आक्रमण शुरू किया। मार्च १६४२ में जापानी यानो ने आस्ट्रेलिया के बन्दरगाह डारविन पर हवाई हमले किये और ता० ५ अप्रैल १६४२ तक १३ बार इस बन्दरगाह पर हमले हो चुके थे। प्रशान्त महासागर मे जापान विजयी हो चुका है, और इन दिनो, इस युद्ध मे, आस्ट्रेलिया को जापानी आक्रमण का ख़तरा बराबर बना हुआ है।

इ

इटली—क्षेत्रफल १,१६,७०० वर्गमील, जनसंख्या ४,४०,००,००० है। नाम-मात्र के लिये इटली मे बादशाह विक्टर इमान्युल का राज्य है; परन्तु वस्तुतः मुसोलिनी और उसके फासिस्ट दल का अधिनायक-तन्त्र वहाँ चालू है। सन् १६२६ मे इटली की पार्लमेंट वास्तव मे फासिस्ट बन गई। सन् १६३४ मे इसने अपने समस्त अधिकार कारपोरेशन की राष्ट्रीय कौंसिल को सौंप दिये और अक्टूबर १६३८ मे पार्लमेंट का अन्त हो गया। इसके स्थान

पर आजकल 'फैसी (Fasci) और कारपोरेशनो का चेम्बर' कार्य करता है। इसकी सदस्य संख्या ८०० है। सरकार को आदेश जारी करने का अधिकार है जो बाद मे चेम्बर के सामने पेश कर दिए जाते हैं। चेम्बर सिर्फ वैधानिक क़ानूनो, सामान्य ढग के कानूनो और बजट, आदि स्वीकार करता है। अन्य प्रकार के सभी मामलो पर सरकार के प्रमुख मुसोलिनी की आज्ञा से ही चेम्बर विचार कर सकता है। शासन करनेवाली मुख्य संस्था 'फैसिस्ट महान् कौंसिल' है। प्रत्येक वैधानिक प्रश्न, राज-उत्तराधिकार के प्रश्न तथा धर्म और राज्य के संबंधो के विषय मे उपर्युक्त कौंसिल ही निश्चय करती है। प्रत्येक व्यवसाय का एक कारपोरेशन है, जो अपने प्रतिनिधि कारपोरेशनो की राष्ट्रीय-कौंसिल मे भेजता है। राष्ट्रीय कौंसिल आर्थिक क़ानून बना सकती है। इनमे मज़दूरो तथा मालिको दोनो का प्रतिनिधित्व होता है।

सन् १९३८ मे जर्मनी के आग्रह से इटली ने भी यहूदियो के विरुद्ध क़ानून बनाये। परन्तु वे इतने सख्त नहीं हैं जितने कि जर्मनी मे हैं। मुसोलिनी ने आगे लिखे देशो को हड़प कर इटालियन-साम्राज्य की स्थापना गर्वपूर्वक की थी—(१) इटालियन पूर्वी अफ्रीका—इसमे अबीसीनिया, इरीट्रिया और इटालियन शुमालीलैण्ड शामिल हैं। इसका कुल क्षेत्रफल ६,६०,००० वर्गमील और जनसंख्या १,५०,००,००० है। (२) इटालियन उत्तरी अफ्रीका (लीबिया)—इसका क्षेत्रफल ६,८५,००० वर्गमील और जनसंख्या ७,००,००० है। लीबिया की भूमि अधिकाश मरुस्थल है। (३) अलबानिया।

लेकिन अब इटली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा है। पूर्वी अफ्रीका के अबीसीनिया और इरीट्रिया पर ब्रिटेन की फौजो का अधिकार है। लीबिया मे दो वर्ष तक घनघोर युद्ध के बाद, जर्मन-सेनाओ की सहायता से, इटली की विजय हो पाई है। इन देशो की भॉति मुसोलिनी ने १९३९ई० मे अलबानिया को हड़पा था, किन्तु उस पर अब यूनान का अधिकार है। यूनान यद्यपि जर्मनी द्वारा पराजित हो चुका है।

इटालियन सेना ५०,००,००० है। वह आधुनिक युद्धास्त्रो से सज्जित और युद्ध-कला मे निपुण है। वायुयान २००० हैं।

इटालियन नौ-सेना मे ४ युद्ध-पोत, २२ क्रूज़र, ५६ ध्वंसक, ७२ टारपीडो बोट और १०५ पनडुब्बियाँ हैं। अधिकांश जहाज़ आधुनिक ढग के हैं। पराजित होते जाने पर भी भूमध्यसागर मे इटली अपनी सामरिक स्थिति पर बहुत घमण्ड रखता है।

इटली की भूमि में कोयला और लोहा बिलकुल नही है। उसके उद्योग-व्यवसाय आयात पर निर्भर हैं। ४० लाख इटालियन विदेशो मे बसे हैं। अधिकांश अमरीका मे हैं। इटली का व्यापारिक सबंध विशेषतः जर्मनी, सयुक्त-राज्य अमरीका, ब्रिटेन और स्विट्ज़रलैण्ड से रहा है। इटली के अफ्रीकन साम्राज्य मे ३०,००० से अधिक इटालिन नही हैं। इटली और जर्मनी मे घनिष्ट मित्रता है और वर्त्तमान युद्ध मे यह दोनो राष्ट्र मिलकर ब्रिटेन आदि मित्रराष्ट्रों से युद्ध कर रहे हैं। इटली का बलकान राष्ट्रो मे हित है। जर्मनी अपनी सेनाएँ भेजकर उसकी मदद कर रहा है।

४ अगस्त १९४० को इटली की सेनाओ ने ब्रिटिश शुमालीलैण्ड पर आक्रमण किया था। १९ अगस्त १९४० को अँगरेज़ी सेनाएँ वहाँ से हटा लीगई। इस तरह इटली का इस प्रदेश पर अधिकार होगया।

९ दिसम्बर १९४० को मित्र-राष्ट्रो की अफ्रीका-स्थित सेनाओं ने सिद्दी बरानी मे आगे बढी हुई इटली की सेनाओ पर हमला किया। दो दिन बाद इस स्थान पर अँगरेज़ों का अधिकार होगया। इस युद्ध मे भारतीय सैनिको ने अभूतपूर्व वीरता का परिचय दिया। प्रायः ६००० इटालियन बन्दी बनाये गये। अँगरेज़ी सेनाएँ पश्चिम की ओर बढीं और उन्होंने, १७ दिसम्बर १९४० को, सोलुम, कोपुज़्ज़ो तथा लीबिया के तीन अन्य सैनिक स्थानो को ले लिया। इसके बाद वे बार्डिया तथा डूर्ना की ओर बढी। ३ जनवरी १९४१ को अँगरेज़ों का बार्डिया पर अधिकार होगया। तदनन्तर वे तुबरुक की ओर बढे। फर्वरी १९४१ के प्रथम सप्ताह में साइरीन तथा बेनग़ाज़ी पर ब्रिटिश सेनाओ का अधिकार होगया। इसके बाद ब्रिटिश सेनाओं ने इरीट्रिया, इटालियन शुमालीलैण्ड तथा अबीसीनिया पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। अँगरेज़ो की इस प्रकार विजय पर विजय हो रही थी कि सहसा ४ अप्रैल को नाज़ी सेना ने बेनग़ाज़ी पर आक्रमण कर दिया। वहाँ से अँगरेज़ी

फौजो को हट जाना पडा।

२८ अक्टूबर १६४० को इटली ने यूनान पर भी हमला कर दिया। आरम्भ मे उसकी सेनाएँ अलबानिया मे होकर यूनान तक पहुँच गई परतु बाद मे यूनानी सेनाओ ने, अँगरेजी सेना की मदद से, इटली की सेनाओ को खदेडकर बाहर कर दिया। बाद मे जर्मन सेनाओ ने यूगोस्लाविया तथा यूनान पर आक्रमण कर दिया। इसमे जर्मनी का इन दोनो देशो पर अधिकार होगया।

इनूनू, इस्मत—इनूनू तुर्की-प्रजातत्र के राष्ट्रपति हैं। सन् १८८४ मे इनका जन्म हुआ। सन् १६०३ मे सेना के अफसर होगये। सन् १६१४-१८ के विश्वयुद्ध मे भाग लिया। सन् १६१६ मे कमालवादी बन गये और राष्ट्रीय-सेना के प्रमुख सघटन-कर्त्ता होगये। यूनानियो को इनूनू ने अनातूलिया मे परास्त किया। सन् १६२२-२३ मे वैदेशिक-मत्री बनाये गये। सन् १६२३ से ३७ तक कमाल अतातुर्क के दाहिने हाथ, तुर्की के प्रधान मत्री, रहे। जब सन् १६३४ मे तुर्कों ने अपने असली नाम के साथ भेदसूचक कुलोपाधि लगाना तर्क किया, तब इस्मत ने पाशा छोड-कर इनूनू को अपनाया। इनूनू नगरकी विजयस्मृति मे ही यह उपनाम उन्होने पसद किया। सितम्बर १६३७ मे उन्होने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। जब सन् १६३८ मे तुर्की के राष्ट्रपति कमाल अता तुर्क की मृत्यु
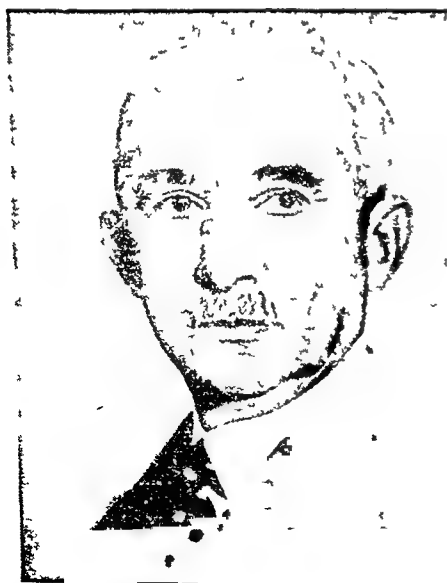
हो गई, तब सब सम्मति से इस्मत इनूनू को, ११ नवम्बर १९३८ को, राष्ट्रपति चुना गया। तुर्की के एकमात्र राजनीतिक-दल—प्रजातत्रवादी जन-दल—के आप अध्यक्ष और नेता हैं। ब्रिटेन के साथ तुर्की का मित्रता का सबंध है। तुर्की अभी तक वर्त्तमान युद्ध मे तटस्थ है, परन्तु उसकी ब्रिटेन तथा रूस से भी मित्रता है।

इब्न सऊद—सऊदी अरब के बादशाह। सन् १८८० मे अरब के एक वहाबी कुल मे इनका जन्म हुआ। इनके पूर्वज इर्रियाद के शासक थे। प्रतिद्वद्वी एक रशीदी वश उठ खडा हुआ, जिसने इनका शासन छीन लिया। हुकूमत की इसी गडबड मे, बाल्यावस्था मे, इन्हे निर्वासित होना पडा। दक्षिणी अरब में पालन-पोषण हुआ। सन् १९०१ मे केवल २०० सेना लेकर इब्न सऊद ने अपने पूर्वजो की राजधानी पर हमला किया और रशीदी-वंश के शासक को मार भगाया। सन् १९१३ मे तुर्को को पूर्वी अरब से भी निकाल बाहर किया जो रशीदी-वश के हिमायती थे। विगत विश्व-युद्ध मे इनकी सहानुभूति ब्रिटेन के साथ थी, परन्तु सहायता नही दी। सन् १९१८ में इनकी लडाई हेजाज़ के बादशाह हुसैन से छिड गई। ब्रिटेन ने हुसैन की मदद की। अँगरेज़ो की चेतावनी के बावजूद इन्होने हुसैन की सेनाओ पर, सन् १९१९ में, आक्रमण किया और उन्हे पराजित किया। अब सऊद ने अपने राज्य-विस्तार के लिए हेजाज़ की विजय का प्रयत्न किया। २४ दिसम्बर १९२४ को मक्का पर अपना आधिपत्य जमा लिया। बादशाह हुसैन राज्य त्याग कर भाग गया। ८ जनवरी १९२६ को इब्न सऊद ने अपने को हेजाज़ का बादशाह घोषित किया।

सन् १९२७ मे इन्होने सुल्तान की पदवी त्यागकर "नज्द के बादशाह" का पद ग्रहण किया। जद्दा मे ब्रिटिश सरकार और सऊद के बीच संधि हुई। सन् १९३२ मे हेजाज़ और नज्द सयुक्त बना दिये गये और इनका नाम सऊदी अरब रखा गया।

आज के मुस्लिम-जगत् में इब्न सऊद सबसे अधिक सम्पन्न और प्रभावशाली व्यक्ति है। इसने अरब मे केन्द्रीय शासन को सुनियंत्रित और सुव्यवस्थित ही नही बनाया प्रत्युत् शान्ति और व्यवस्था भी स्थापित की है।

इब्न सऊद वहाबी-सम्प्रदाय का प्रमुख है। यह बड़ा कट्टरपंथी समुदाय है। इसलिये वह बड़ी सतर्कता से अपने राज्य मे आधुनिकता का प्रसार कर रहा है। सेनाएँ आधुनिक ढग की बना दी गई हैं। इसका लक्ष्य अखिल-अरब का सगठन करके स्वय उसका खलीफा बनना है। ब्रिटेन के साथ उसका मित्रता का सबध है। इसका पूरा नाम अब्दुल अज़ीज़ इब्न अब्दुर्रहमान अल्फ़ैजलुस्सऊद है। इब्न सऊद क़ौम और कबीले का क़ायल नहीं, वह राष्ट्री-यता का पोषक है।

इराक—यह अरब-राज्य है। दूसरे अनेक देशों की तरह अँगरेज़ों ने इसका नाम मेसोपोटामिया रख दिया है। इसका क्षेत्रफल १,१६,००० वर्गमील तथा जनसख्या ३५,००,००० है। इसकी राजधानी बग़दाद है। विगत युद्ध से पूर्व इराक़ तुर्क-सल्तनत का एक सूबा था, और उसके बाद से इराक़ ब्रिटिश सरक्षण मे एक शासनादेश द्वारा शासित राज्य (Mandatory State) है।

मक्का के बादशाह हुसैन के पुत्र अमीर फैजल को सन् १६२१ मे इराक़ का बादशाह बनाया गया। सन् १६२४ मे विधान-निर्मात्री-परिषद् ने नया शासन-विधान बनाया। इराक मे मर्यादित एकतत्र शासन है। उत्तरदायी शासन तथा एक पार्लमेंट है। बादशाह फैज़ल का सन् १६३० मे देहान्त हो गया। उसका पुत्र ग़ाजी गद्दी पर बैठा। १४ दिसम्बर १६२७ को शासनादेश (Mandate) समाप्त होगया, तब ब्रिटेन ने इराक की पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार कर ली। यह राष्ट्रसघ का सदस्य भी हो गया। यद्यपि इराक़ स्वतत्र देश है, तथापि ब्रिटेन का उस पर प्रभाव है। इराक़ की पुलिस मे अँगरेज अधिकारी हैं। एक अँगरेजी फौजी मिशन भी वहाँ है, तथा इराक मे कई स्थानो पर शाही हवाई सेना के अड्डे भी हैं। यहाँ मोसल और खानाक़िन मे तेल के कई कुएँ हैं। इन पर डचो तथा अँगरेज़ो का अधिकार है। ४ अप्रैल १६३६ को बादशाह ग़ाज़ी का देहान्त होगया। इसके बाद बादशाह फैज़ल द्वितीय (जो २ मई १६३५ को पैदा हुआ था) गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित किया गया। वर्त्तमान युद्ध मे इराक ब्रिटेन के पक्ष मे है।

जब यूनान पर नाज़ियो का अधिकार होगया तब मध्य-पूर्व के लिए ‾ख़तरा बढ गया। विशेषतः मुस्लिम राष्ट्रो की स्वतत्रता खतरे मे पड गई।

फलतः अँगरेज़ो ने, मुस्लिम राष्ट्रो के साथ, यातायात के मार्ग को खुला रखने के लिए, १७ अप्रैल १६४१ को, कुछ भारतीय सेनाएँ बसरा में भेजी।

इसके कुछ दिनो बाद ही इराक़ मे क्रान्ति होगई। रशीदअली ने सेना की सहायता से नई सरकार क़ायम कर ली। जब अँगरेज़ो ने बसरा (इराक़) मे अपनी और कुछ फौजे सुरक्षा के लिए भेजनी चाही तो रशीदअली ने आपत्ति की। बहुत प्रयत्न करने पर भी ब्रिटेन के साथ समझौता न हो सका। २ मई १६४१ को इराक़ की सेना ने इराक़-स्थित अँगरेज़ी हवाई अड्डे हब्बानिया पर गोले बरसाये और इस तरह युद्ध शुरू होगया। नाज़ी सेना ने गुप्त रूप से रशीदअली को सहायता दी। मार्शल पेतॉ ने जर्मनी को सीरिया के हवाई अड्डो का उपयोग करने की आज्ञा दे दी। नाज़ी वायुयान रशीद अली की सहायता के लिए सीरिया मे उतरने लगे। परन्तु, बीच मे क्रीट का युद्ध आरम्भ हो जाने से नाज़ी, रशीदअली को सहायता न पहुँचा सके। ८ मई को रशीदअली बग़दाद छोड़कर भाग गया। २३ मई १६४१ को इराक़ के भूतपूर्व रीजेंट अमीर अब्दुल्ला इराक़ मे लौट आये। ३१ मई १६४१ को ब्रिटेन तथा इराक़ मे संधि होगई। पुरानी सरकार फिर स्थापित हो गई। बादशाह फ़ैज़ल द्वितीय अभी बालक है, किन्तु ब्रिटेन के शासनादेश और रशीदअली द्वारा उठाये गये उपद्रव तथा नाज़ियो की पिछली विफलता के कारण इस समय इराक़ मे शान्ति और व्यवस्था है। किन्तु युद्ध की वर्तमान गति को देखते हुए आज यह कहना कठिन है कि क्या होगा।
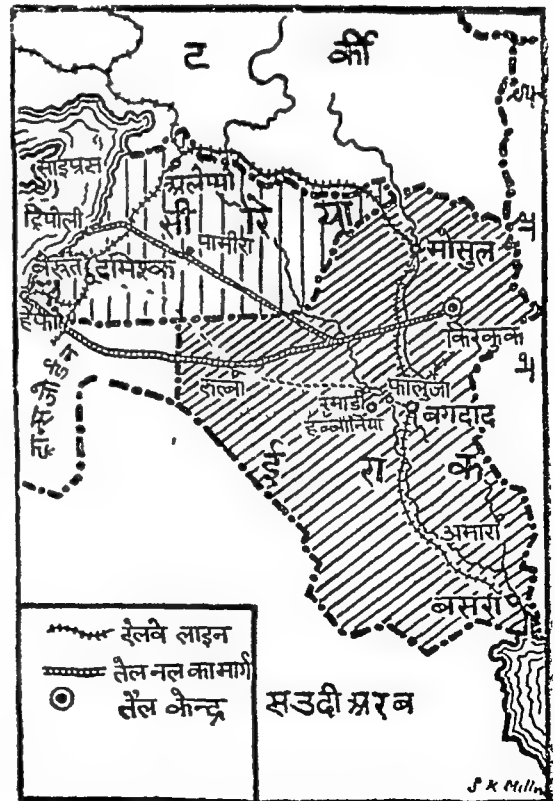
ई

ईडन, महामाननीय (राइट आनरेब्ल्) रावर्ट एन्थनी, एम० पी०—आप सर विलियम ईडन के द्वितीय पुत्र हैं। जन्म सन् १८६७ मे हुआ। ईटन तथा क्रिश्चियन चर्च, आक्सफर्ड, मे शिक्षा प्राप्त की। सितम्बर १९१५ मे द्वितीय लेफ्टिनेंट होकर फ्रान्स की सीमा पर गये। युद्ध की समाप्ति तक उसमे भाग लिया। सैनिक-क्रास पुरस्कार मे प्राप्त किया तथा २० वर्ष की आयु मे कप्तान बना दिये गये। सन् १९२३ मे पार्लमेंट की कॉमन-सभा के सदस्य चुने गये। तब से आप बराबर सदस्य चुने जाते रहे हैं। आपने वैदेशिक राजनीति का गभीर अध्ययन किया। स्वर्गीय सर आस्टिन चेम्बरलेन के पार्लमेंटरी प्राइवेट सेक्रेटरी होगये, और लार्ड रैडिंग तथा सर जॉन साइमन के अधीन वैदेशिक उप-मत्री भी रहे। आपको जिनेवा मे राष्ट्रसघ के अधिवेशनो मे शामिल होने का कई बार अवसर मिला और थोडे ही समय मे आप राष्ट्र-सघ के सम्मेलनो मे एक प्रभावशाली नेता बन गये। सन् १९३४ मे आप लार्ड प्रिवी सील बनाये गये और प्रिवी कौंसिलर भी बना दिये गये। ब्रिटेन मे राष्ट्रसघ-मिनिस्टरी एक नया पद कायम किया गया और श्री ईडन उसके मत्री बनाये गये। इटली-अबीसीनिया-युद्ध के समय आपने इस बात का जोरदार आग्रह किया कि राष्ट्रसघ इटली के विरुद्ध कारखाई करे और आपने होर-लावल योजना का विरोध किया। सर सैम्युअल होर के बाद आप वैदे-शिक-मत्री बनाये गये। उस समय आपकी आयु ३८ वर्ष की थी। आप ही सबसे प्रथम ब्रिटिश मत्री थे जो मास्को में स्टेलिन से भेट करने गये। स्पेन के गृह-युद्ध मे उन्होने अ-हस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया। इसके बाद इटली के मुसोलिनी तथा जर्मनी के हिटलर ने उन पर दोषारोप किये। ईडन ने नैविल चेम्बरलेन की इस योजना का विरोध किया कि इटली के साथ किसी

नये समझौते की वार्त्ता शुरू की जाय। किन्तु मंत्रिमण्डल ने आपके परामर्श पर ध्यान नही दिया और मुसोलिनी को ढील देने की नीति बरती गई। इस कारण, २० फ़रवरी १९३८ को, आपने वैदेशिक-मत्रि-पद से त्याग-पत्र दे दिया। तब उन्होने स्वर्गीय प्रधान मत्री चेम्बरलेन की सन्तुष्टीकरण नीति (Appeasement policy) का दृढता से विरोध किया। सितम्बर १९३९ में उन्हे उपनिवेश-मंत्री (Minister for Dominions) बनाया गया। लार्ड लोथियन (संयुक्तराज्य अमरीका के राजदूत) की मृत्यु के बाद, जब वैदेशिक-मत्री लार्ड हेलीफैक्स को उनके स्थान पर राजदूत बनाकर अमरीका भेज दिया गया, तब श्री ईडन फिर वैदेशिक-मत्री बना दिये गये।

ईरान—यह फारिस का आधुनिक नाम है। इसका क्षेत्रफल ६,२८,००० वर्गमील तथा जनसख्या १,५०,००,००० है। ईरान का शासक शाह कहलाता है। इसकी राजधानी तेहरान है। पहले यह बडा शक्तिशाली राज्य था। सन् १९०० से इसमे आन्तरिक कलह मचा। सन् १९०६ की राज्य-क्रान्ति के बाद इसमे वैधानिक शासन की स्थापना की गई। सन् १९०७ में, रूस-ब्रिटेन-सन्धि के अनुसार, उत्तरी ईरान, रूस तथा दक्षिणी भाग ब्रिटेन के प्रभाव-क्षेत्र मे आगये।

विगत विश्वयुद्ध मे ईरान तटस्थ रहा था। सन् १९१७ की रूसी राज्य-क्रान्ति के बाद रूसी सरकार ने ब्रिटेन-रूस-सन्धि (१९०७) का अन्त कर दिया और ईरान मे समस्त रूसी अधिकारो का परित्याग कर दिया। सन् १९१८ मे ईरान से अँगरेज़ी सेना भी वापस बुला ली गई। इस समय रिज़ा ख़ॉ नामक एक सैनिक अफ़सर ने राष्ट्रीय आन्दोलन का सचालन किया। सन् १९२० मे वह युद्ध-मंत्री बन गया और सन् १९२२ में प्रधान मंत्री। जब फारिस का विलासी शाह यूरोप को गया तो, उसकी अनुपस्थिति में,

रिज़ाख़ॉ ख़ुद शाह बन बैठा। शासन की बागडोर अपने हाथ मे लेकर उसने देश मे राष्ट्रीयता तथा आधुनिकता को ख़ूब प्रोत्साहन दिया। सन् १६२५ मे वह बाक़ाइदा शाह बन गया और रिजाशाह पहलवी कहलाने लगा। उसने देश की आश्चर्यजनक उन्नति की। उद्योग-धधो को बढाया और देश को वास्तव मे स्वतत्र बना दिया। सन् १६२६ मे उसने तुर्की से और १६२७ मे सोवियट यूनियन तथा अफग़ानिस्तान के साथ मित्रता की सधियॉ की। सन् १६३४ मे सादाबाद का समझौता हुआ, जिसके अनुसार तुर्की, फारिस, इराक़ और अफग़ानिस्तान मे परस्पर राजनीतिक सहकारिता स्थापित होगई। सन् १६३५ मे फारिस की सरकार ने समस्त विदेशी सरकारो से यह निवेदन किया कि वे फारिस को ईरान नाम से सबोधन करे। ईरान मे तेल सबसे अधिक पैदा होता है। २० जून १६४१ को नाजी सेनाओ ने सोवियट रूस पर हमला कर दिया। इससे ईरान, इराक़, सीरिया आदि मे ख़तरे की सभावना बढ गई। ईरान मे इस समय ३००० नाजी गुप्तचर मौजूद थे। इनकी उपस्थिति तथा प्रभाव भारत, मिस्र और ईरान के लिए ख़तरनाक था। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने ईरान के शाह से यह प्रार्थना की कि वह अपने यहॉ से नाजियो को निर्वासित करदे। इसका उत्तर सन्तोषप्रद न मिलने पर, अगस्त १६४१ मे, रूस तथा ब्रिटिश सरकारो ने ईरान मे अपनी फौजे, सुरक्षा के लिए, भेज दी और वहॉ से नाजियो को निकाल दिया।

रूसी तथा बरतानवी सेनाओ के ईरान मे पहुँचते ही रिज़ा शाह पहलवी अपने पुत्र को राज्य सौपकर किसी दूसरी जगह चला गया। इस प्रकार नाज़ियो की कूटनीति का एक पासा यहॉ पलट गया।

उ

उत्तरदायी शासन—उत्तरदायी शासन-प्रणाली से प्रयोजन उस शासन-प्रणाली से है जिसमे सरकार या मत्रि-मडल जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो मे से नियुक्त किया जाता है और यह मत्रि-मडल अपने कार्यों के लिये प्रतिनिधि सभा (पार्लमेट) के प्रति उत्तरदायी होता है ।

उधार और पट्टा कानून १९४१—वर्तमान महायुद्ध के कारण सयुक्त-राज्य अमरीका मे यह क़ानून (Lease and Lend Act of 1941) बना है । इसके अनुसार ब्रिटेन, रूस और चीन आदि मित्रराष्ट्रो को वर्तमान युद्ध मे अस्त्र-शस्त्रो आदि की सहायता देने की व्यवस्था कीगई है ।

उपनिवेश (Colony)—उपनिवेश से प्रयोजन ऐसे देश या प्रदेश से है जिस पर किसी साम्राज्यवादी राष्ट्र के नागरिक, अपने स्वार्थ-साधन के लिये, प्रभुत्व जमा लेते है । दुनिया के दिखाने के लिए इसे वे हर प्रकार से 'उन्नत' बनाने का ढोग रचते है । इन उपनिवेशो मे जैसे-जैसे सार्वजनिक जागरण होता जाता है, वैसे-वैसे वे उस देश के शासन से मुक्त होने का प्रयत्न करते है, जिसके नागरिको ने उसे 'विकसित' और 'उन्नत' किया था । आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, कनाडा और दक्षिणी अफ्रीका आदि पहले अँगरेज़ी उपनिवेश थे । परन्तु धीरे-धीरे इन देशो ने स्वाधीनता प्राप्त कर ली और आज इनका पद 'डोमीनियन' माना जाता है । वैस्टमिन्स्टर-क़ानून के अनुसार इन्हे अब ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद का भी अधिकार प्राप्त होगया है । यूरोपीय राष्ट्रो मे उपनिवेशो के लिये बडी लिप्सा रही है । यह लिप्सा, आधुनिक काल मे, भीषण महायुद्धो का कारण हुई है । जर्मनी, इटली, जापान इस समय अधिकाश उपनिवेशो और देशो की लिप्सा से ही मानव-जाति का संहारकर रहे है ।

ए

एकच्छत्र शासन—एक व्यक्ति का शासन। इस शासन-प्रणाली के अन्तर्गत प्रजा को शासन-प्रबध मे भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता। न प्रजा को मताधिकार ही होता है। एकच्छत्र शासन का सबसे उत्तम उदाहरण भारत की देशी रियासते हैं। एकच्छत्र शासन स्वेच्छाचारी होता है, परन्तु वह लोकमगलकारी भी हो सकता है।

एकाधिपत्य—किसी व्यवसाय तथा व्यापार आदि पर किसी व्यक्ति-विशेष या व्यक्ति-समूह अथवा कम्पनी का पूर्ण अधिकार होना। इस समय ससार मे तेल पर दो कम्पनियो का विशेप अधिकार है, एक एग्लो-पर्शियन कम्पनी और दूसरी रॉयल डच कम्पनी।

एकान्तता—सयुक्त-राज्य अमरीका का एक राजनीतिक सिद्धान्त है जिसके अनुसार यूरोपीय मामलों से पृथक् रहना ही अमरीका के लिए श्रेयस्कर माना जाता है। एकान्तता के नेता सीनेटर बोरा का जनवरी १६४० मे देहान्त हो गया। आजकल इस मत के नेताओ मे सीनेटर वेडेनबर्ग और जॉन्सन प्रमुख हैं। वर्तमान युद्ध से पूर्व ब्रिटेन मे भी इस मत का प्रचार था। इसके अनुयायी या समर्थक यूरोपीय महाद्वीप के मामलो मे हस्तक्षेप के विरुद्ध थे।

एटली, मेजर क्लेमेंट रिचार्ड। ब्रिटेन के पुराने मज़दूर नेता। सन् १८८३ मे इनका जन्म हुआ था। हेलीबरी तथा यूनिवर्सिटी कालिज आक्सफर्ड मे इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। सन् १६०५ मे वकालत शुरू की। इनकी प्रवृत्ति समाजवाद की ओर थी। सन् १६१३ मे यह लन्दन के अर्थशास्त्र के स्कूल मे अध्यापक होगये। सन् १६१४-१८ के युद्ध मे भाग लिया और मेजर की पदवी प्राप्त की। सन् १६१६ मे स्टेमनी के सर्वप्रथम मज़दूरदली मेयर

चुने गये। सन् १६२७-३० में भारतीय रायल कमीशन—साइमन-कमीशन—के सदस्य थे। सन् १६३०-३१ मे डची ऑफ् लैंकास्टर के चान्सलर रहे और सन् १६३१ मे पोस्ट मास्टर जनरल हुए। सन् १६३१ से वह मज़दूर-दल के उपनेता रहे। सन् १६३५ में जब मज़दूर-दल के नेता जार्ज लेसबरी की मृत्यु हो गई, तब वह उसके नेता चुने गये। कई वर्षों तक पार्लमेंट मे विरोधी-दल के नेता रहने के बाद आज मेजर एटली मज़दूर-दल की ओर से ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल मे चर्चिल के नायब यानी सहकारी प्रधान-मंत्री (Deputy Prime Minister) हैं। राजनीतिक दृष्टि से मेजर एटली मज़दूर-दल के वाम तथा दक्षिण पक्ष के मध्य मे रहते हैं। आपने चर्चिल के स्वर मे स्वर मिलाकर कहा है कि अटलाटिक चार्टर का लाभ भारत को नही मिलना चाहिए।

एस्टोनिया—यह एक छोटा बाल्टिक राज्य है जो सोवियट रूस के उत्तर मे है। इसका क्षेत्रफल १८,००० वर्गमील तथा जन-सख्या १२,००,००० है। सन् १६१८ तक यह रूस का एक प्रान्त था। इसी वर्ष मे वह एक स्वाधीन राज्य बन गया। तब से वह साम्यवाद-विरोधी नीति का समर्थक रहा। इस देश मे जर्मन अल्पमत मे है, परन्तु उन्हे स्वायत्त-शासन का अधिकार रहा है। कृषि, गोरस-व्यवसाय (डेरी फार्मिंग्) तथा पशु-पालन ही यहाँ के मुख्य उद्योग हैं। जर्मनी और ब्रिटेन को यहाँ से माल भेजा जाता है। सन् १६३५ मे यहाँ अधिनायक-तत्र की स्थापना हुई। इस देश मे कोई राजनीतिक-दल नही है। जो उम्मीदवार सरकार द्वारा पसन्द किये जाते हैं, वे ही चुनाव मे खडे हो सकते हैं। वर्त्तमान यूरोपीय युद्ध के आरम्भ

हो जाने के बाद, अक्टूबर १६३६ मे, सोवियट रूस ने अवसर से लाभ उठाया और एस्टोनिया को, अन्य बाल्टिक राज्यो की भॉति, अपने आधिपत्य मे कर लिया। उसकी भूमि पर रूसी नौसेना तथा हवाई बेडे के अड्डे बना दिये गये। जर्मनो को जहाजो मे भरकर जर्मनी भेज दिया गया। रूस आजकल प्राणपन से अपने अस्तित्त्व के युद्ध मे नाजियो से लोहा ले रहा है, लेता रहेगा, किंतु उसके देशो मे अभी शान्ति बनी है।

ए

एंग्लो-सैक्सन—ईसा के बाद, पॉचवी शताब्दी मे, उत्तरी जर्मनी और जटलैण्ड से इंगलैण्ड को जो ट्यूटैनिक ऐंगल्स तथा सैक्सन गये, वे ही ऐंग्लो-सैक्सन कहलाये। यह तो इनका ऐतिहासिक स्वरूप है। परन्तु आज के युग मे इन शब्दो का प्रयोग अँगरेजी-भाषा-भाषियो के लिए होता है। इन शब्दो से जाति का भी बोध नही होता। आज की अँगरेज़ जाति ऐंग्लो-सैक्सन, कैल्टिक तथा दूसरी नस्लो के सम्मिश्रण से बनी है। अमरीकन जनता मे केवल ३५ फीसदी ही अँगरेजी नस्ल के हैं।

ऐमरी, लियोपोल्ड चार्ल्स मैरिस स्टैनेट—आप आजकल ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के एक प्रभावशाली सदस्य है। मई १६४० मे नार्वे के प्रश्न पर ब्रिटिश कॉमन सभा मे जब स्थगित-प्रस्ताव (Adjournment motion)

प्रस्तुत किया गया तब चेम्बरलेन की सरकार के पक्ष मे २८१ मत तथा विपक्ष मे २०० मत मिले। ४० सरकारी समर्थक विरोधी दल में मिल गये और १३० सदस्यो ने अपना मत नही दिया। चेम्बरलेन को अपने प्रधान मन्त्रि-पद से त्यागपत्र देना पडा। श्री विन्स्टन चर्चिल प्रधान मत्री चुने गये। चर्चिल की सरकार मे ऐमरी को भारत-मत्री (Secretary of State for India) नियुक्त किया गया। ऐमरी का जन्म भारत मे (गोरखपुर मे) सन् १८७३ मे हुआ था। चर्चिल के साथ उन्होने हैरो मे शिक्षा प्राप्त की, वेलियोल से ग्रेजुएट की पदवी प्राप्त की। बर्मिङ्घम से सबसे पहली बार, सन् १९११ में, पार्लमेंट के सदस्य निर्वाचित हुए। सन् १९२३ मे, जब आप ब्रिटिश जल-सेना-विभाग के मत्री थे, आपने सिंगापुर नाविक अड्डा-योजना तैयार की थी। जब रैम्ज़े मेकडानल्ड के मन्त्रि-मण्डल का पतन होगया और बाल्डविन ने मन्त्रि-मण्डल बनाया तब उसमे इन्हे उपनिवेशो का मंत्री बनाया गया। इस समय श्री ऐमरी भारत-मन्त्री हैं। इनका स्वभाव बहुत उग्र है। इनका निःशस्त्रीकरण में विश्वास नही है। यह उग्र साम्राज्यवादी हैं। भारतीय स्वाधीनता की मॉग को वह बार-बार अस्वीकार करते रहे हैं, और अपने भाषणो तथा वक्तव्यो मे ८ अगस्त १९४० की वायसराय की औपनिवेशिक स्वराज्य-संबधी अस्पष्ट तथा अपूर्ण घोषणा का समर्थन करते रहते हैं।

ऐलबर्ट लेब्रन—फ्रान्स-प्रजातंत्र के राष्ट्रपति थे। २९ अगस्त सन् १८७१ को जन्म हुआ। पहले इञ्जीनियर थे। सन् १९०० में राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् १९११-१३ मे उपनिवेश-मंत्री रहे। इन्हीं दिनो कुछ समय तक युद्ध-मंत्री के पद पर भी कार्य किया। सन् १९२० में क्रान्तिकारी समाजवादी दल के प्रतिनिधि चुने-गये। सन् १९३० में सीनेट के अध्यक्ष निर्वाचित किये

गये। मई १६३२ मे आपको, राष्ट्रपति डूमर्ग की हत्या के बाद, फ्रान्स का

राष्ट्रपति चुना गया। ५ अप्रैल १६३६ को वह फ्रास के राष्ट्रपति पुनः ७ वर्ष के लिए चुने गये। १६३८ मे राष्ट्रपति ऐलबर्ट लेब्रन ने ब्रिटेन के राजा-रानी को पेरिस मे दावत दी और अप्रैल १६३६ मे सरकारी तौर पर लन्दन गये और ब्रिटिश सम्राट् के मेहमान हुए। लेब्रन अपने राष्ट्रपति-पद के कार्य-काल मे फ्रान्स के विधान के अनुकूल ही व्यवहार करने को बाधित थे, किन्तु निजी तौर पर वह सदैव अपने जनतावादी विचारो की दुहाई देते रहे।

ऐवरहार्ट विलियम—इनका जन्म ३० दिसम्बर १८७८ को ओंटेरियो मे हुआ। पहले यह एक स्कूल मे अध्यापक थे। बाद मे इन्होंने ऐल्बर्टा प्रान्त मे सामाजिक साख सघ (Social Credit League) नामक एक व्यापारिक-सस्था की स्थापना की। इसकी नियमावली मे यह वचन दिया गया कि ऐल्बर्टा प्रान्त के प्रत्येक नियमित नागरिक को प्रतिमास पचीस डालर का मुनाफा बाँटा जायगा, और इस सघ के ज़रिये विलियम ने चुनाव लडा। जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का यह अच्छा खासा प्रलोभन था। इस अवसर का पूरा लाभ उठाया गया। नतीजा यह हुआ कि ६३ मे से ६० स्थान इनके दल को मिले। चौदह साल से ऐल्बर्टा मे सयुक्त-कृषक दल की सरकार क़ायम थी। उसे उखाड फेंका गया और ऐवरहार्ट विलियम ऐल्बर्टा (कनाडा) के राजनीतिक अग्रणी और वहाँ की सरकार के प्रधान मत्री बन बैठे।

ओ—औ

ओटावा-समझौता—सन् १९३२ मे ओटावा (कनाडा) मे साम्राज्य-आर्थिक-सम्मेलन हुआ था, जिसमे ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत सभी देशो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन मे पारस्परिक तटकर (Tariff) सबंधी निश्चय निर्धारित किये गये, जो ओटावा समझौता के नाम से प्रसिद्ध है।

ओटो, डा० स्ट्रैसर—एक निर्वासित जर्मन राजनीतिज्ञ, हिटलर-नीति-विरोधी काले मोर्चे (Black Front) का नेता। १९३० तक डा० ओटो हिटलर का अनुयायी रहा। इसने नाज़ी दल मे एक समाजवादी पक्ष खडा किया। सन् १९३० मे वह हिटलर के दल से अलग होगया। उसने "क्रान्तिकारी राष्ट्रीय समाजवादी-दल" क़ायम किया जो बाद मे काले मोर्चे (Black Front) के रूप मे बदल गया। इसके कार्यक्रम मे नाज़ी-वाद तथा समाजवाद का मिश्रण था। सन् १९३३ मे हिटलर ने डा० ओटो को जर्मनी से निर्वासित कर दिया। वह ज़ेकोस्लोवाकिया तथा स्विट्ज़रलैण्ड मे भ्रमण करके हिटलर के विरुद्ध प्रचार करने लगा।

औकिनलैक—आपका पूरा नाम है जनरल सर क्लौड जॉन इरे औकिन-लक। आपका जन्म सन् १८८४ में हुआ। दक्षिण-पश्चिमी समुद्रतटीय प्रदेश-इॅगलैंड—में औकिनलैक ने जर्मन-आक्रमण से रक्षा के लिए सेना का संगठन किया। मई १९४० मे उत्तरी नार्वे मे मित्रराष्ट्रो की सेना का संचालन किया। इसके बाद इॅगलैंड मे पोर्ट्समाउथ से ब्रिस्टल तक ५०० मील लम्बे समुद्री-तट की रक्षा के लिए ६ मास तक आपने बडे साहस से योजना-कार्य किया।

आपने वैलिंगटन कालिज मे शिक्षा प्राप्त की है। सबसे प्रथम वह भार-

तीय सेना मे साधारण अफसर नियुक्त किए गए। विगत महायुद्ध मे आपने स्वेज नहर पर मिस्र मे कार्य किया था। सन् १६१६ मे मेसोपोटामिया मे सैनिक-कार्य किया। युद्ध की समाप्ति तक वहीं पर रहे।

सन् १६२७ मे इम्पीरियल डिफेंस कालिज से परीक्षा पास की और सन् १६२६-३० मे आपको प्रथम पजाब रेजिमेंट की प्रथम बटालियन का सचालन-कार्य सौंपा गया। सन् १६३० मे आप स्टाफ कालिज क्वेटा मे शिक्षक हो गए। सन् १६३३ से १६३६ तक पेशावर ब्रिगेड का सचालन किया। सन् १६३६ मे जनरल औकिनलैक को जनरल स्टाफ का डिपुटी चीफ नियुक्त किया गया। बाद मे जनरल स्टाफ के चीफ के पद पर भी कार्य किया। भारतीय सेना के प्रतिनिधि के रूप मे आपको चैटफील्ड कमीशन का सदस्य नियुक्त किया गया था। सन् १६३६ मे कुछ समय के लिए आपको मेरठ डिवीजन मे जनरल आफीसर कमांडिंग् का कार्य सौंपा गया। यहीं से आपको इंगलैण्ड मे सेना के सगठन के लिए आमंत्रित किया गया।

सन् १६४१ मे आपको भारत का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया।

जून १६४२ मे लीबिया मे तुब्रुक का मोर्चा जनरल रिची के हाथ से निकल जाने और अँगरेज़ी सेनाओ द्वारा सोलम, कपुज़ो, हलफाया और सिद्दीबरानी खाली करके पीछे हट जाने के बाद इस रण-क्षेत्र का सैन्य-सचालन जनरल औकिनलैक ने अपने हाथ मे ले लिया। आपने अपना नया मोर्चा पीछे हटकर सिकन्दरिया से सत्तर मील पश्चिम मे लगाया है, जहाँ शुरू मे जर्मनो ने बडी तेज़ी दिखाई थी, और ऐसा दिखाई देने लगा था कि वह मिस्र को शीघ्र ले लेगे। किन्तु आप बडी रण-चातुरी और वीरता से अपनी सेना को वहाँ लडा रहे हैं। लडाई इस रणक्षेत्र पर आजकल घमासान की हो रही हे।

औद्योगिक संगठन समिति—यह अमरीका का एक मज़दूर सगठन है। अमरीकी मज़दूर-सघ की एक शाखा है जो यह चाहती है कि समस्त

मजदूरो का व्यापक रूप से सगठन किया जाय। अमरीकी मज़दूर-संघ मे केवल दत्त मज़दूर ही शामिल हो सकते है; परन्तु औद्योगिक संगठन समिति दत्त और मामूली दोनो प्रकार के मज़दूरो के लिए है।

औपनिवेशिक माँग—जिन यूरोपीय या एशियाई राष्ट्रो के पास पर्यात उपनिवेश नही है—अधिकृत देश नही है—वे यह मॉग पेश करते है कि उन्हे उनकी बढती हुई जन-सख्या की आबादी तथा औद्योगिक विकास के लिए कच्चा माल उत्पन्न करने वाले उपनिवेश चाहिये। वर्तमान समय मे हिटलर और मुसोलिनी जो युद्ध मे उतरे है, इसमे उनका एक लक्ष्य यह भी है कि एशिया और अफ्रीका के पिछडे देश उन्हे, इन उद्देशो की पूर्ति के लिए, मिल जायँ।

औपनिवेशिक स्वराज्य—वर्तमान समय में ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह के अन्तर्गत केवल ५ उपनिवेशो को स्वायत्त-शासन प्रा ។ है—दत्तिणी अफ्रीकन यूनियन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड तथा आयरिश स्वतंत्र-राज्य। इनमे से अन्तिम उपनिवेश तो ब्रिटिश राष्ट्र-समूह से अलग है और उसे ब्रिटिश डोमीनियन मानना सत्य के साथ अन्याय करना होगा। शेप चार उपनिवेशो को वैस्टमिन्स्टर क़ानून १६३१ के अनुसार अपने आन्तरिक शासन मे पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त है। प्रत्येक उपनिवेश की निजी सेना है तथा उसे अपने गवर्नर-जनरल की नियुक्ति मे ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल को सलाह देने का अधिकार है। अक्सर उसकी सम्मति से ही गवर्नर-जनरल नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक उपनिवेश की पार्लमेट को यह अधिकार है कि वह अपने विधान मे परिवर्तन करले तथा कोई भी ऐसा क़ानून बनाले जो इँगलैण्ड की पार्लमेट द्वारा निर्मित क़ानून के विपरीत हो। परन्तु वैदेशिक, साम्राज्य-रत्ता तथा व्यापारिक सन्धियो और युद्ध-घोपणा तथा शान्ति-संधि आदि मामलो मे उपनिवेशो की सरकारे सदैव ब्रिटिश सरकार के पद-चिह्नो पर चलती हैं।

भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने ८ अगस्त १६४० के वक्तव्य मे यह निश्चयपूर्वक घोषणा की है कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जायगा। परन्तु औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना कब की जायगी, इसका अभी तक स्पष्टीकरण नही हो सका। यह भी घोपणा की गई है कि युद्ध के

बाद भारतीयो को अपना शासन-विधान बनाने की सुविधा दी जायगी और ब्रिटिश पार्लमेंट उस पर विचार करेगी।

क

कनाडा—यह ब्रिटिश कॉमनवैल्थ का एक अङ्ग है। उत्तरी अमरीका मे, सयुक्त-राज्य अमरीका के उत्तर मे, यह देश स्थित है। क्षेत्रफल ३६,६५,००० वर्गमील तथा जनसख्या १,१२,००,००० है। कनाडा का शासन-विधान सन् १८६७ के ब्रिटिश-उत्तरी अमरीका ऐक्ट के आधार पर है। यहाॅ सघ-शासन है। यहाॅ की पार्लमेंट मे दो परिषद् (Chambers) हैं—एक कॉमन-सभा तथा दूसरी सीनेट। कॉमन सभा के प्रतिनिधि पॉच वर्ष के लिए चुने जाते हैं। सीनेट के सदस्य सपरिषद्-गवर्नर-जनरल द्वारा आजीवन सदस्य चुने जाते हैं। गवर्नर-जनरल ब्रिटेन के बादशाह का प्रतिनिधि है और बादशाह के नाम पर मसविदे आदि स्वीकार करता है।

कनाडा नौ प्रान्तो से मिलकर बना है। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को स्वतन्त्रता है तथा प्रान्तीय धारासभाएॅ कानून बनाती हैं। परन्तु सघीय सरकार को उन्हे रद करने का अधिकार है। प्रत्येक प्रान्त मे लेफ्टिनेंट गवर्नर होता है, जिसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जाती है।

कनाडा की कुल जनसख्या मे से ८० लाख कनाडा-अधिवासी कनाडा मे पैदा हुए हैं, १२ लाख इॅगलैण्ड के हैं, ३॥ लाख सयुक्त-राज्य अमरीका के लोग हैं, और शेष विदेशो मे पैदा हुए हैं। २७ लाख ऑगरेज, १३ लाख स्काटलैंड के (Scotch), १२ लाख आयरिश, ३० लाख फ्रासीसी, ५ लाख जर्मन, शेष दूसरे राष्ट्रो और जातियो के हैं। कनाडा की फ्रेंच तथा ऑगरेजी दो राष्ट्रभाषाएॅ हैं। कनाडा मे प्रवास-सबधी बड़ी बाधाएॅ हैं।

कनाडा मे दो राजनीतिक दल हैं, उदार दल तथा राष्ट्रीय अनुदार दल। उदार दल वाले कम समुद्र-तट-कर चाहते हैं, ओटावा-समझौते के बजाय विशेष व्यापारिक संधियाँ चाहते हैं, डोमीनियन की स्वतंत्र सत्ता पर ज़ोर देते हैं; आर्थिक मामलो मे राज्य का हस्तक्षेप नही चाहते। सन् १९३५ मे इस दल की विजय हुई। राष्ट्रीय अनुदार दल समुद्र-तट-कर अधिक चाहता है, ओटावा-समझौता का समर्थन करता है। आर्थिक मामलो मे कुछ हस्तक्षेप चाहता है। पैदावार की सहकारी-बिक्री की व्यवस्था चाहता है। सामाजिक बीमा, कम-से-कम वेतन, कम-से-कम काम के घंटे, आदि चाहता है।

कनाडा की मज़दूर-संस्था का नाम है सहकारी कॉमनवैल्थ संघ। इसकी स्थापना सन् १९३२ मे हुई। इसका एक विशेष कार्यक्रम है, जो कुछ समाजवादी ढंग का है। यह दल (संस्था) इस युद्ध मे तटस्थता के पक्ष मे है। इसके नेता जे० एस० वुड्सवर्थ हैं।

९ सितम्बर १९३९ को कनाडा की पार्लमेंट ने यह निर्णय किया कि कनाडा को ब्रिटेन के पक्ष मे युद्ध मे भाग लेना चाहिए। कनाडा मे लडाकू हवाई जहाजो के बनाने के लिए बडे-बडे कारखाने खोले गये हैं। कनाडा ने अपनी सेना भी ब्रिटेन की सहायतार्थ भेजी है।

कनाडा की अपनी जल-सेना, स्थल-सेना तथा हवाई-सेना है। कनाडा मे गेहूँ की पैदावार सबसे अधिक है। सोना, ऊन, निकिल आदि भी पैदा होती है। कनाडा का सिक्का 'डॉलर' है जो संयुक्त-राज्य अमरीका के डॉलर के बराबर है। प्रायः एक शताब्दी से संयुक्त-राज्य अमरीका और कनाडा के पारस्परिक संबंध मित्रतापूर्ण रहे हैं।

कमाल अता तुर्क—आधुनिक तुर्किस्तान के निर्माता, तुर्की जनरल तथा राजनीतिज्ञ और तुर्की प्रजातन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति। सन् १८८१ में जन्म हुआ। तरुण तुर्क क्रान्तिकारी दल में शामिल होगये। सन् १९१५ में डरेंदानियाल (Dardanelles) की रक्षा की और जनरल कमाल पाशा बन गये। मई १९१९ मे कमाल पाशा अनानूलिया भेजे गये जिसमे वहाँ निःशस्त्रीकरण किया जा सके। उन्होने कुस्तुन्तुनिया-सरकार की अवज्ञा करके राष्ट्रीय आन्दोलन और सेना का सगठन किया। राष्ट्रीय-परिषद् आमंत्रित की तथा उन यूनानियो के विरुद्ध युद्ध किया जो एशिया माइनर में प्रवेश कर रहे थे। कुस्तुन्तुनिया-सरकार ने मुस्तफा कमाल पाशा को विद्रोही घोषित कर दिया। अगोरा मे राष्ट्रवादी पार्लमेंट के सदस्य, राष्ट्रीय परिषद् के रूप में, सम्मिलित हुए और कमाल पाशा को अपना राष्ट्रपति चुन लिया तथा कुस्तुन्तुनिया से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। १९२१ में मुस्तफा कमाल पाशा तुर्की के प्रधान सेनापति बनाये गये। उन्होने सकारिया के २२ दिन के युद्ध को जीता। राष्ट्रीय परिषद् ने इस पर आपको गाजी (विजयी) की उपाधि से विभूषित किया। कमाल पाशा ने २९ अक्टूबर १९२३ को सुलतान और ख़िलाफत का ख़ात्मा कर दिया और तुर्किस्तान को प्रजातन्त्र घोषित कर दिया। प्रथम प्रजातन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति बनाये गये और अधिनायक (Dictator) के सम्पूर्ण अधिकार उन्हे दे दिये गये। १९३१ और १९३५ मे भी वही राष्ट्रपति चुने गये। कमाल पाशा ने जो सुधार तुर्किस्तान में किये, उनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—राज्य-शासन और धर्म का पृथक्करण, बहुविवाह-निषेध, पर्दा तथा बुर्का-निवारण, फैज कैप (लाल तुर्की टोपी) का परित्याग, यूरोपीय पोशाक का प्रसार, यूरोपियन रीति-रिवाजो और आधुनिक खेलों का प्रचार, अरबी की जगह लेटिन लिपि का प्रचार। धार्मिक-क्षति की दुहाई देनेवाले मौलवी-मुल्लाओ, उनके अधिनायक-तन्त्र के विरुद्ध षड्यन्त्र रचनेवालो और साम्यवादियो का उन्होने दृढता से दमन किया। राष्ट्र-निर्माण मे रोड़ा अटकानेवालो को बड़ी तादाद मे मौत के घाट उतार दिया।

जनतंत्रवाद के प्रतिकूल होने से अपने नाम के साथ की पाशा उपाधि छोड़ दी। १९३४ मे अरबी शब्द मुस्तफा भी अपने नाम में से निकाल

दिया। कुलीनता-हीनता-सूचक उपाधियो और उपनामो को छोडकर, १९३४ मे, तुर्को मे सादा उपनाम लिखने की प्रथा प्रचलित की। अपने नाम कमाल के साथ अता तुर्क जोडा और ग़ाज़ी मुस्तफा कमाल पाशा के बजाय कमाल अता-तुर्क नाम ग्रहण किया। अता-तुर्क का अर्थ है तुर्को का पिता। सन् १९२३ में लतीफी हानुम नामक एक सुशिक्षिता आधुनिक सुन्दरी से निकाह किया, और ज्योही कमाल को विश्वास हुआ कि लतीफी उनकी राष्ट्रोद्धार की नीति पर अपना प्रभाव डालती है, त्योही १९२७ मे उसे तलाक़ दे दी। १० नवम्बर १९३८ को तुर्की के त्राता कमाल अतातुर्क का, यकृत्-रोग के कारण, देहान्त होगया।

कराची-प्रस्ताव—राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के कराची-अधिवेशन (मार्च १९३१) मे एक प्रस्ताव इस आशय का स्वीकार किया गया जिसके द्वारा जनता को स्वराज्य की रूपरेखा समझाने तथा उसको आर्थिक स्वाधीनता देने के लिये भारत के स्वराज्यकालीन शासन-विधान मे जन-समुदाय के मौलिक अधिकारो और कर्त्तव्यो, मज़दूरो की स्थिति, कर तथा सरकारी व्यय और सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम का विस्तृत उल्लेख किया गया था। चूँकि यह प्रस्ताव, इस सम्बन्ध के सार्वजनिक विचार-विनियम के बिना ही, स्वीकृत हुआ था, अतएव अगस्त सन् १९३१ की भारतीय कांग्रेस कमिटी ने इसमे कई सशोधन किए। सशोधित प्रस्ताव की मौलिक अधिकारो की घोषणा मे १४ धाराएँ है और मजदूरो तथा आर्थिक कार्यक्रम मे १७। इसकी धाराओ मे निश्चित कर दिया गया है कि स्वराज्य-प्राप्त भारत मे किसी भी सरकारी-कर्मचारी का वेतन ५००) मासिक से अधिक न होगा। अल्प सख्यक जातियो—मुसलमानो, हरिजन आदि—तथा भिन्न-भाषा-भाषियो और विदेशियो के अधिकारो और स्थिति की व्याख्या भी कर दी गई है।

कृपालानी, आचार्य जे० बी०—गान्धीवादी कांग्रेसी नेता। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के प्रधान मन्त्री। जब गान्धीजी ने चम्पारन (बिहार) में नील की बड़ी-बड़ी खेतियाँ करनेवाले यूरोपियनों ('निलहे गोरों') द्वारा मज़दूरों पर किये जानेवाले अत्याचारों के विरोध में, सन् १९१७ में, आन्दोलन किया, तब कृपालानीजी बिहार के एक कालिज में अध्यापक थे। वह तभी गान्धीजी के सम्पर्क में आये और उन्होंने सत्याग्रह सिद्धान्त का अध्ययन किया। उन्होंने भारतीय जनता की मनोवृत्ति का भी अध्ययन किया। चम्पारन के मजदूरों की स्थिति की जाँच करनेवाली कमिटी में भी इन्होंने भाग लिया। इसके बाद पं० मदनमोहन मालवीय से इनकी भेंट हुई और एक वर्ष तक उनके प्राइवेट सैक्रेटरी रहे। सन् १९१८ में देहली में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तब यह माननीय मालवीयजी के मन्त्री थे। इस कारण देहली में इन्हें देश के नेताओं से परिचय प्राप्त करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ।

सन् १९१९ में इन्हें काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में राजनीति का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। जब सन् १९२२ में अहमदाबाद में गान्धीजी के आदेश से राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था, गुजरात विद्यापीठ, की स्थापना की गई तब श्री कृपालानी प्रोफेसरी छोड़कर विद्यापीठ में चले गये। वहाँ पाँच वर्ष तक रहे। पीछे आप अखिल-भारतीय चरखा संघ में सम्मिलित होगये और संयुक्त-प्रान्तीय-शाखा-चरखा-संघ के केन्द्र, गान्धी आश्रम, मेरठ में, आगये और तब से बराबर वहाँ के प्रधान कार्यकर्त्ता हैं। इसके साथ ही, पीछे आप कांग्रेस के सैक्रेटरियट—स्वराज्य-भवन, प्रयाग—में आगये और प्रधान मन्त्री (जनरल सैक्रेटरी) के पद पर काम करने लगे। बीच के कुछ वर्षों को छोड़कर, वे कांग्रेस के बराबर प्रधान मन्त्री हैं। आचार्य कृपालानी स्पष्ट-वक्ता तथा

कुशल लेखक है। वह अपने भाषण मे हास्य-रस का सुन्दर पुट देते हैं और कभी-कभी अपने श्रोताओ को मुग्ध कर देते हैं। आप वर्षों गान्धीजी के निकट सम्पर्क मे रहे है और उनके सिद्धान्तो और विचारो का गम्भीर अध्ययन किया है। अपने जीवन के दीर्घकाल तक अविवाहित रहने के उपरान्त, काफ़ी बडी उम्र मे, अभी कुछ वर्ष पूर्व, आपने विवाहित-जीवन मे प्रवेश किया है। कालिज और राष्ट्रीय विद्यापीठ मे अध्यापन-कार्य किया, इसलिये आप आचार्य कहलाये। आपने गान्धीवाद पर कई पुस्तके लिखी है।

कृषि-सामंजस्य-क़ानून—सयुक्त-राज्य अमरीका की कांग्रेस ने, अपने देश के किसानो के हित के लिए, १२ मई सन् १९३३ को, यह क़ानून बनाया। कृषि-सामजस्य प्रबध-सस्था भी स्थापित की गई जिसका उद्देश किसानो को आर्थिक सहायता देना है। यह संस्था कृषि की पैदावार का मूल्य निर्धारित करती है, किसानो के जोतने-बोने के लिए भूमि का वितरण करती है, उन्हे आर्थिक मदद देती है, किसानो की जो पैदावार नही बिकती उसे स्वय ख़रीद लेती है तथा उसको सुरक्षित रखने की व्यवस्था करती है। यह संस्था हर वर्ष ५० करोड डॉलर इस कार्य मे ख़र्च करती है।

कागनोविच—कागनोविच रूस के प्रसिद्ध समाजवादी नेता है। उनका जन्म सन् १८९३ मे यहूदी-परिवार मे हुआ। यह परिवार यूक्रेन मे रहता था तथा अपने विद्यार्थि-काल मे वह ग़रीबी के कारण दो वर्ष ही शिक्षा प्राप्त कर सके। बाद मे अपनी जीविका-उपार्जन के लिए उन्हे मज़दूरी करनी पडी। सन् १९११ मे उन्होने कम्यूनिस्ट पार्टी मे प्रवेश किया और उसके बाद क्रान्ति तथा गृह-युद्ध मे उन्होने जो कार्य किया उससे उनकी सगठन-शक्ति का पता लगता है। कागनोविच रेल-विभाग के मंत्री बनाये गए। उन्होने इस विभाग मे आशातीत उन्नति की।

कांग्रेस-कार्य-समिति—यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सर्वोच्च नियन्त्रण-कारिणी समिति है। इसकी नियुक्ति कांग्रेस के निर्वाचित अध्यक्ष द्वारा की जाती है। नियुक्ति करते समय महात्मा गान्धी से परामर्श लेना आवश्यक है। उन्हींके परामर्श से इसकी अन्तिम नियुक्ति होती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमे, त्रिपुरी कांग्रेस के बाद से, गान्धीवादी नेता ही नियुक्त किये जाते

हैं। हरीपुरा तथा फैजपुर अधिवेशनों के समय बनाई गई समितियों मे समाजवादी नेता श्री जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्रदेव तथा श्री अच्युत पटवर्धन भी सयुक्त किये गये थे। परन्तु त्रिपुरी के सघर्ष के बाद कार्य-समिति मे सब गान्धीवादी या गान्धीजी के भक्तों को ही लिया जाता है। रामगढ-काग्रेस (१६४०) के समय की बनी कार्य-समिति मे, जो अब तक है, निम्नलिखित सदस्य हैं—

(१) मौलाना अबुल कलाम आजाद, (अध्यक्ष), (२) सरदार वल्लभभाई पटेल, (३) प० जवाहरलाल नेहरू, (४) डा० राजेन्द्रप्रसाद, (५) आचार्य कृपालानी, (६) श्रीमती सरोजिनी नायडू, (७) सेठ जमनालाल बजाज, (जनवरी १६४२ मे जिनके स्वर्गवासी होजाने से, उनके स्थान पर, श्री जयरामदास दौलतराम को नियुक्त किया गया है), (८) श्री राजगोपालाचार्य ('पाकिस्तान'-प्रश्न पर काग्रेस से मतभेद होजाने के कारण आपने, जुलाई १६४२ मे, अपने स्थान से त्यागपत्र दे दिया।), (६) श्री भूलाभाई देसाई, (१०) खान अब्दुल गफ़्फारखॉ, (जिन्होंने रचनात्मक कार्य करने के लिये त्यागपत्र दे दिया है।) (११) श्री शकरराव देव, (१२) डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, (१३) श्री आसफअली, (१४) डा० सैयद महमूद। (१५) प० गोविन्दवल्लभ पन्त। (१६) डा० पट्टाभि सीतारामय्या।

कांग्रेस-मंत्रि-मण्डल—जुलाई सन् १६३७ से नवम्बर १६३६ तक भारत के ८ प्रान्तो—बम्बई, मदरास, सयुक्त-प्रान्त, मध्यप्रान्त, बिहार, उडीसा, सीमाप्रान्त तथा आसाम—मे काग्रेस-दल की सरकारो ने प्रान्तो का शासन-प्रबध किया।

कांग्रेस-समाजवादी-दल—मई १६३३ मे पटना मे हुई अखिल-भारतीय काग्रेस कमिटी के अधिवेशन मे सत्याग्रह आन्दोलन के स्थगित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इसी अवसर पर सर्वप्रथम काग्रेस समाजवादी सम्मेलन भी, काशी विद्यापीठ के आचार्य श्री नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता मे, हुआ। श्री जयप्रकाश नारायण सगठन-मत्री नियुक्त किये गये। ७-८ वर्षों मे इस आन्दोलन ने राष्ट्रीय आन्दोलन पर बडा गहरा प्रभाव डाला है। आज यह दल काग्रेस के अन्तर्गत अन्य दलो से अधिक सुसगठित है। काग्रेस

कार्य के अतिरिक्त यह दल किसानो-मज़दूरों के संगठन का कार्य स्वतत्र रूप से भी करता रहा है और किसान सभा तथा मज़दूर सभा मे, दूसरे दलो की अपेक्षा, इसके सदस्य सबसे अधिक संख्या मे है। इसका अखिल-भारतीय सगठन है जो अखिल-भारतीय कांग्रेस-समाजवादी दल के नाम से प्रसिद्ध है। प्रत्येक प्रान्त मे इसकी शाखाएँ है। ज़िलो और नगरो मे भी इसका सगठन है। इसका लक्ष्य भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्रात करना और भारत मे समाजवादी शासन-प्रणाली की स्थापना करना है। इसके मुख्य उद्देश्य निम्न लिखित हैं—

(१) समस्त सत्ता जनता के हाथ मे रहे।

(२) देश के आर्थिक-जीवन का नियत्रण एव विकास राज्य द्वारा हो।

(३) सबसे पहले बडे उद्योगो का समाजीकरण किया जाय, जिससे उत्पत्ति, वितरण तथा विनिमय के समस्त साधनो पर समाज का स्वाम्य स्थापित होसके।

(४) विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार हो।

(५) राजाओ, नवाबो तथा ज़मीदारो को, बिना किसी प्रकार की क्षति-पूर्ति दिये, ज़मीदारी प्रथा का अन्त।

(६) किसानो तथा मज़दूरो के क़र्ज़े की माफी।

(७) व्यावसायिक आधार पर वयस्क मताधिकार।

जब सन् १९३६ मे कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि कांग्रेस को प्रान्तीय चुनावो मे भाग लेना चाहिए, तब पहले तो समाजवादियो ने कौसिल-प्रवेश का विरोध किया, परन्तु बाद मे, साम्राज्यवाद के विरोध के लिए, उन्होने भी कौसिल-प्रवेश का निश्चय किया। काफी संख्या मे समाजवादी प्रान्तीय धारासभाओ मे चुने गये। जब सन् १९३७ मे, देहली मे, मार्च मे, कांग्रेस की अखिल-भारतीय कमिटी का अधिवेशन हुआ तो इन्होने मत्रि-पद-ग्रहण का विरोध किया। परन्तु पद-ग्रहण का प्रस्ताव गान्धीजी के प्रभाव से पास हो गया। जब कांग्रेस मत्रि-मण्डल बनाये गये, तब समाजवादी सदस्यो ने मंत्रि-पद ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस-शासन-नीति की समाजवादियो ने कडी आलोचना की। कांग्रेस-सरकारो ने किसान और मज़दूरो के आन्दो-

लन को बिलकुल प्रोत्साहन नहीं दिया अपितु उसे दबाने का प्रयत्न किया, और इन कार्यो मे पुलिस की भी सहायता ली। समाजवादी नेताओ ने इन कार्यों की निन्दा की। काग्रेस-शासन-काल मे समाजवादी-आन्दोलन बहुत व्यापक और प्रभावशाली होगया। काग्रेस समाजवादी वर्तमान युद्ध को साम्राज्य-वादी समझते हैं और उसमे सहायता देने के कट्टर विरोधी हैं। वे चाहते है कि युद्ध के विरोध मे भारतव्यापी जनान्दोलन छेडा जाय। महात्मा गान्धी के व्यक्तिगत युद्ध-विरोधी सत्याग्रह से वे सहमत नही रहे। काग्रेस समाजवादी-दल के प्रमुख नेता है—सर्वश्री आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण, यूसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, श्रीमती कमलादेवी।

कार्डेनाज, जनरल लेजरो—मेक्सिको के राष्ट्रपति, ३० नवम्बर १६३४ को चुने गये। १ दिसम्बर १६४० को आपका कार्य-काल समाप्त होगया। यह अपने ढग के स्वतत्र समाजवादी विचारक है। आपने मेक्सिको मे रूसी क्रान्ति के नेता ट्राट्स्की को आश्रय दिया था।

कार्डेल हल—सयुक्त-राज्य अमरीका के वैदे-शिक मत्री, जन्म १८७१ ई०। राष्ट्रपति रूजवेल्ट की नीति के समर्थक तथा एकान्तता (Isolationism) नीति के विरोधी है। वकील और जज रहे। १८६८ के क्यूबा-युद्ध मे कप्तान की हैसियत से लडे। सन् १६०७ से १६२१ तक और फिर '२३ से '३१ ई० तक काग्रेस (अमरीकी पार्लमेन्ट) के सदस्य रहे। सन् '३१ से '३७ तक सीनेट के सदस्य रहे, और जब रूजवेल्ट मन्त्रिमण्डल बनने लगा तब, उसमे सम्मिलित होने के लिये, सीनेट की सदस्यता से स्तीफा दे दिया।

काबालैरो—स्पेन का मज़दूर नेता, सन् १८६६ मे जन्म हुआ। यह मकान बनाने का काम करता था। बाद मे स्पेनिश समाजवादी-दल का अध्यक्ष होगया।

सात बार क़ैद की सज़ा दी गई। सन् १६१७ मे फॉसी की सज़ा मिली, परन्तु रिहा कर दिया गया। सन् १६३१-३३ की प्रजातन्त्रवादी सरकार मे वह मज़दूर-मत्री था। स्पेन के गृह-युद्ध मे सन् १६३६ मे वह प्रजातन्त्रवादी सरकार का प्रधान-मत्री होगया। सन् १६३७ मे उसे प्रजातन्त्रवादी दल ने बहिष्कृत कर दिया। जब प्रजातत्र का पतन हो गया तब वह स्पेन से फ्रास को भाग गया।

कामन सभा (पार्लमेंट)—ब्रिटिश पार्लमेंट की प्रथम सभा (House of Commons)। सन् १६११ से इस सभा का अधिक प्रभाव है, क्योकि लार्ड सभा (House of Lords—द्वितीय सभा) इसके द्वारा स्वीकृत किसी प्रस्ताव अथवा बिल को रद नही कर सकती। इस सभा मे ६१५ निर्वाचित प्रतिनिधि हैं—इंगलैंड के ४५२ सदस्य, वेल्स के ३६, स्काटलैंड के ७४ तथा उत्तरी आयरलैंड के १३ सदस्य है। इंगलैंड के धार्मिक-तंत्र (Church) के पादरी सदस्य नही चुने जाते। कामन-सभा के सदस्यो का चुनाव पॉच साल के लिए होता है। इसके सदस्यो को अपने नाम के आगे एम० पी० (मेम्बर पार्लमेंट) पदवी जोडने का अधिकार है। सदस्यो को ६०० पौड सालाना भत्ता तथा रेलवे की यात्रा-संबंधी सुविधाएँ दी जाती हैं। सभा का अध्यक्ष स्पीकर (Speaker) कहलाता है।

कामिण्टर्न-विरोधी-समझौता—२५ नवम्बर सन् १६३६ को जर्मनी और जापान के बीच यह समझौता हुआ था। इसका उद्देश कामिण्टर्न अर्थात् साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संघ की कारवाइयो तथा आन्दोलन का दमन

करना है। एक साल बाद, ६ नवम्बर १६३७ को, इटली भी इसमें शामिल होगया। इस समझौते मे यह स्वीकार किया गया है कि—

'हस्ताक्षरकर्त्ता यह उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं कि वे एक दूसरे को साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय कारवाइयो से सूचित करते रहेंगे, रक्षात्मक कारवाई के संबध मे वे एक दूसरे से परामर्श लेंगे और परस्पर सहयोग से काम करेंगे। दूसरे देशो को भी इस समझौते मे शामिल होजाना चाहिये। यह समझौता नवम्बर १६४१ को समाप्त हो जायगा। परन्तु हस्ताक्षर करनेवाले, इस अवधि की समाप्ति से पूर्व, भविष्य मे सहयोग से काम करने के लिए, समझौता कर सकेंगे।" दिसम्बर १६३८ मे मञ्चूको ने इस समझौते को स्वीकार कर लिया। फर्वरी १६३६ मे हगरी इसमे शामिल होगया और अप्रैल १६३६ मे स्पेन भी इस समझौते मे आ मिला।

कामेसंस—इस देश का क्षेत्रफल १,६६,००० वर्गमील तथा जन-सख्या ३०,००,००० है। पश्चिमी अफ्रीका मे यह पहले जर्मन उपनिवेश था। आजकल राष्ट्र-सघ के शासनादेश के अधीन, ब्रिटेन और फ्रास के नियत्रण मे, है। एक-पॉचवे भाग पर ब्रिटेन का नियत्रण है और शेप पर फ्रास का।

कार्ल हाउशोफर—कार्ल हाउशोफर तथा उसका पुत्र एलब्रेट हाउशोफर हिटलर के परामर्शदाता हैं। इनका मुख्य कार्य हिटलर के लिए मानचित्र तैयार करना है। आज हम चारो ओर 'और जगह लो' की गूँजे सुन रहे है, वह इन्हीके मस्तिष्क की उपज है। वास्तव मे यह नीति जापान का आविष्कार है। सन् १६०२ मे कार्ल हाउशोफर ने जापान की यात्रा की और वहॉ के फौजी ढग का अच्छा अध्ययन किया। यही से उसने 'और जगह लो' का सिद्धान्त सीखा। सन् १६२३ मे, जब हिटलर म्युनिक के वन्दीगृह मे था, तब कार्ल हाउशोफर की

यहूदी स्त्री उसे पुस्तकें तथा फल भेंट करने जाती थी। उसने सदैव हिटलर की सहायता की। हिटलर के आत्मचरित 'मेरा संघर्ष' के लिखने मे भी उसने सहायता दी।

क्रान्तिकारी कांग्रेस-संघ—इस नाम की एक सस्था सन् १६३८-३६ मे भारत-प्रसिद्ध श्री एम० एन० राय (मानवेन्द्र नाथ राय) ने स्थापित की। इसका अँगरेज़ी नाम है—League of Radical Congressmen. इस दल का जनता पर कोई प्रभाव नही है, और न इसका कार्यक्रम ही क्रान्तिकारी है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक नया दल खडा करने के लिए ही सघ बनाया गया है। इस सघ मे श्री राय के अनुयायी शामिल हैं।

किसान-कार्यक्रम—फैज़पुर काग्रेस-अधिवेशन, दिसम्बर १६३६ मे, किसानो के हित के लिए जो कार्यक्रम निश्चय किया गया, वह किसान-कार्यक्रम के नाम से प्रसिद्ध है। लगान मे काफ़ी कमी, बिना मुनाफे की जोत से लगान न लेना, कृषि पैदावार पर कृषि पैदावार-कर, नहरो की आबपाशी की दर मे कमी, नज़राने तथा बेगार आदि बन्द करना, काश्तकारो को ज़मीन पर मौरूसी अधिकार दिलाना, अपनी काश्त पर मकान तथा पेड लगाने का अधिकार, सहकारी ढग पर खेती की व्यवस्था, किसान-क़र्ज़े मे कमी और माफी, गोचर-भूमि की व्यवस्था, पिछले सालो का बक़ाया लगान माफ, दीवानी क़र्ज़े की वसूली की भॉति बक़ाया लगान की वसूली की जाय, ज़मींदार को किसान को काश्त से बेदख़ल करने का अधिकार न रहे, खेतिहर-मज़दूरो के लिए उचित मज़दूरी की व्यवस्था, किसान सभाओं को मज़ूर किया जाय।

काग्रेस-मत्रि मण्डलो ने, अपने शासन-काल मे, इनमे से कुछ सुधार किये, परन्तु मौलिक तथा सब किसानो को लाभ पहुँचानेवाले सुधार नही किये गये।

किसानवादी—यह शब्द किसानो और विशेषतः भूमिहीन कृषिकारो के हितो के राजनीतिक प्रतिनिधियो के लिए प्रयोग किया जाता है। भारत मे समाजवादी प्रचार के कारण किसानवादियो का अच्छा संगठन होगया है। देश भर में किसान-सभाये हैं और किसानो का केवल प्रान्तीय ही नही अखिल

भारतीय सगठन भी है। किसानवादियो के प्रसिद्ध नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती, प्रो० एन० जी० रग, एम० एल० ए०, महापण्डित राहुल सास्कृत्यायन, श्री विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी तथा श्री मोहनलाल गौतम आदि हैं।

किसान सभा—यहाँ सबसे पहले स्पष्ट कर देना उचित होगा कि किसान-आन्दोलन और किसान-सभा आन्दोलन—यह दो पृथक् आन्दोलन हैं। किसान-आन्दोलन का सूत्रपात तो सन् १९१५-१६ में हो चुका था, जब 'प्रताप' के यशस्वी सम्पादक अमर शहीद श्रीगणेशशङ्कर विद्यार्थी ने अवध के किसानो के कष्टो को सबसे प्रथम देश के समक्ष रखा और फैज़ाबाद, रायबरेली आदि जिलो में हुए किसान-आन्दोलन मे पूर्ण सहयोग दिया। उन्हीके सहयोग-साहाय्य और आदेश से श्रीविजयसिंह 'पथिक' ने उदयपुर, बूँदी, कोटा आदि तेरह देशी रियासतो की किसान-प्रजा मे आदर्श सत्याग्रह आन्दोलन का सङ्गठन-सचालन किया। किसानो के प्रति देश का ध्यान आकर्षित करने का प्रथम श्रेय इन्हीं दो को है। इसीका प्रतिफल था कि महामना मालवीयजी का ध्यान देश के इस दुःखी अङ्ग की ओर गया और १९१८ की काग्रेस मे, जो दिल्ली मे मालवीयजी की अध्यक्षता मे हुई थी, सबसे पहले किसानो को काग्रेस अधिवेशन मे निःशुल्क प्रवेश मिला। इसके बाद सन् १९२० से इस आन्दोलन की एक रूपरेखा बन गई जब महात्मा गान्धी तथा सरदार वल्लभभाई पटेल ने असहयोग-आन्दोलन मे गुजरात के बारदोली मे सत्याग्रह छेड़ने के अभिप्राय से किसानो का सगठन करने का प्रयत्न किया। पीछे सन् १९२७-२८ मे बारदोली मे सरदार वल्लभभाई ने किसानो का ज़ोरदार सगठन किया, आन्दोलन चलाया और उसमे विजय प्राप्त की। इसके बाद बिहार प्रान्त मे स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने किसानो का ज़बरदस्त सगठन किया। इतने व्यापक क्षेत्र मे किसान-सङ्गठन अब तक किसी ने नही किया। इन सगठनो से काग्रेस ने लाभ उठाया और इससे काग्रेस की शक्ति बढी। परन्तु अभी तक किसानो का कोई निजी सगठन नही था।

किसानो को व्यावसायिक-वर्ग के आधार पर सगठित किये जाने की आवश्यकता थी। सन् १९३८ मे प्रो० एन० जी० रग, एम० एल० ए० (केन्द्रीय), तथा स्वामी सहजानन्द सरस्वती और अन्य समाजवादी कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से

लखनऊ कांग्रेस के समय, प्रथम अखिल-भारतीय किसान सम्मेलन हुआ। दूसरा अधिवेशन, दिसम्बर १९३६ में, फ़ैज़पुर कांग्रेस अधिवेशन के साथ, हुआ। इस प्रकार ३-४ वर्षों मे सारे देश में किसान सभाएँ स्थापित हो गई। यह वास्तव मे किसानो का अपना विशुद्ध संगठन है। इसके मूल उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) आर्थिक शोषण से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करना और किसान, मज़दूर तथा अन्य शोषित वर्गों को राजनीतिक एव आर्थिक मुक्ति दिलाना।

(२) किसानो को सगठित करना और तत्कालीन आर्थिक तथा राजनीतिक माँगों के लिये लडना, जिससे अन्त मे वे सब प्रकार के शोषण से बरी हो जायँ।

(३) स्वाधीनता के राष्ट्रीय-युद्ध में भाग लेकर अन्त में उत्पादन करने-वाले वर्गों को आर्थिक और राजनीतिक मुक्ति दिलाना।

कांग्रेस के प्रमुख गान्धीवादी नेता और स्वयं गान्धीजी किसान सभाओं के इस कार्यक्रम के विरुद्ध हैं।

किङ्ग, राइट आनरेब्ल् (right Honourable) डब्ल्यू० एल० मैकेञ्ज़ी—कनाडा के प्रधान मंत्री। सन् १८७४ मे जन्म। शिकागो और हारवर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। १९००-१९०८ तक डिपुटी मिनिस्टर, मज़दूर विभाग। १९०९-११ तक मज़दूर-विभाग के मंत्री। १९२१-३० तक कनाडा-सरकार के प्रधान मंत्री। फिर सन् १९३५ से अब तक कनाडा के प्रधान मंत्री।

कियानो, काउण्ट गेलियाज़ो—इटली के वैदेशिक-विभाग के मंत्री हैं; सन् १९०३ में इनका जन्म हुआ। दक्षिणी अमरीका तथा चीन में राजदूत रहे। सन् १९३४ में काउण्ट कियानो ने मुसोलिनी की पुत्री इडा के साथ विवाह

किया। तब से उन्होने बडी पदोन्नति की है। इसी वर्ष वह प्रचार-विभाग के मत्री हो गये। अबीसीनिया के युद्ध मे उन्होने स्वय हवाई बेडे का सचालन किया। सन् १९३६ मे उन्हे वैदेशिक मत्री बना दिया गया। सन् १९३७ मे उन्होने कोमिण्टर्न-विरोधी सधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

क्रप—जर्मन उद्योगवादी तथा अस्त्र-शस्त्र-निर्माता। पश्चिमी जर्मनी मे इसेन नामक स्थान पर क्रप का कारखाना है। ससार मे यह सबसे महान् अस्त्र बनानेवाला कारखाना है। क्रप हिटलर का गहरा मित्र है। हिटलर के शस्त्रीकरण-कार्य-क्रम का उसने व्यावहारिक रूप से समर्थन किया। सन् १९३९ की ग्रीष्म ऋतु मे इसके कारखाने मे १,००,००० मजदूर काम करते थे। अब तो और भी बहुत अधिक कर रहे होगे।

क्रिप्स, आनरेब्ल् सर स्टैफ़र्ड, एम० पी०—इनका जन्म सन् १८८९ मे हुआ। यह लार्ड पारमूर के सबसे छोटे बेटे हैं। विन्चेस्टर तथा यूनीवर्सिटी कालेज लन्दन मे इन्होने शिक्षा प्राप्त की। सन् १९१३ मे बेरिस्टर बन गये। सन् १९३१ मे वह सबसे पहले पार्लमेंट मे प्रविष्ट हुए। मैकडानल्ड-मत्रि-मण्डल मे यह सालिसिटर-जनरल थे। क्रिप्स मजदूर-दल के नेता थे, परन्तु सन् १९३७ मे उन्होने सयुक्त-मोर्चा स्थापित करने के लिए एक आन्दोलन खडा किया।

इसलिये मज़दूर-दल ने इन्हे तथा

इनके कुछ अनुयायियो को दल से अलग कर दिया। इस संयुक्त मोर्चे का प्रयोजन यह था कि मज़दूर, लिबरल, कंज़रवेटिव तथा कम्युनिस्ट आदि संगठित होकर काम करें। मज़दूर-दल इसके विरुद्ध था। इससे पूर्व केवल कम्युनिस्टो के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिश आपने की थी, जिसे मज़दूर दल ने नही स्वीकर किया। क्रिप्स समाजवादी विचार रखते है, इसलिए युद्ध-काल में ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल ने उन्हे राजदूत बनाकर रूस भेजा। उन्होने अपने इस पद से सन् १६४१ के दिसम्बर मास मे त्यागपत्र दे दिया। इस समय वह ब्रिटिश युद्ध-मंत्रि-मण्डल के सदस्य हैं। आप ता० २२ मार्च १६४२ को अपने प्रस्ताव लेकर भारत आये, किन्तु आपके प्रस्तावो को सभी दलो ने अस्वीकार कर दिया।

क्रिप्स के प्रस्ताव—ब्रिटिश पार्लमेंट मे, ११ मार्च १६४२ को, प्रधान मंत्री मि० चर्चिल ने, भारत की समस्या के विषय में, यह घोषणा की कि, युद्ध-मत्रि-मंडल ने भारत की वैधानिक-समस्या के हल करने के लिए एक योजना तैयार की है, जो अन्तिम और पूर्ण है। परन्तु अभी उसे प्रकाशित नहीं किया जायगा। हाउस आफ् कामन्स के नेता तथा युद्ध-मंत्रि-मण्डल के नवीन सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स शीघ्र ही भारत जायँगे और, भारतीय नेताओं के समक्ष योजना को प्रस्तुत कर, उनकी सम्मति प्राप्त करेंगे। जब भारतीय लोकमत के नेता उसे स्वीकार कर लेंगे, तब पार्लमेंट उस योजना को अपनी ओर से, घोषणा के रूप मे, प्रकाशित करेगी।

इस निश्चय के अनुसार सर स्टैफर्ड क्रिप्स, अपने स्टाफ के साथ, हवाई जहाज़ द्वारा, ता० २२ मार्च १६४२ को, भारत मे आ गये। ता० २६ मार्च १६४२ से उन्होने वायसराय, उनकी कौंसिल के सदस्यो, भारतीय राजनीतिक दलो के नेताओ तथा राजनीतिज्ञो से मिलना—भेट करना आरम्भ कर दिया। कांग्रेस की ओर से राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, हिन्दू-महासभा की ओर से वीर सावरकर, मुस्लिम लीग की ओर से श्री मुहम्मदअली जिन्ना तथा अन्य अनेक पक्षो के नेता भी क्रिप्स महोदय से मिले।

३० मार्च १६४२ को सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने युद्ध-मंत्रि-मण्डल के प्रस्ताव प्रकाशित कर दिये। प्रस्ताव इस प्रकार हैं:—

(१) युद्ध की समाप्ति पर भारत मे अग्र-लिखित ढग से एक निर्वाचित संस्था स्थापित की जायगी, जिसका कार्य भारत के लिए नये शासन-विधान का निर्माण करना होगा।

(२) विधान निर्माण करनेवाली परिषद् मे देशी रियासतो के प्रतिनिधित्व की भी निम्नलिखित ढग से व्यवस्था की जायगी।

(३) सम्राट् की सरकार यह स्वीकार करती है कि वह इस प्रकार बनाए गए विधान को स्वीकार कर लेगी तथा उसे लागू करने का प्रबंध करेगी। परन्तु नीचे लिखी शर्तों की पूर्ति आवश्यक होगी:—

(क) ब्रिटिश भारत के किसी भी प्रान्त को, जो नये विधान को स्वीकार करने के लिए तैयार न होगा, अपनी वर्तमान वैधानिक स्थिति को कायम रखने का अधिकार होगा। यदि भविष्य मे वह शामिल होना चाहेगा तो इसके लिए भी विधान मे उल्लेख किया जायगा।

यदि भारतीय सघ (इडियन यूनियन) मे शामिल न होनेवाले प्रान्त यह चाहेगे, तो ब्रिटिश सरकार उन्हे नया शासन-विधान बनाने की सुविधा देगी और उनकी स्थिति भी वैसी ही होगी जैसी कि भारतीय सघ की।

(ख) जो सधि ब्रिटिश सरकार तथा विधान निर्माण करनेवाली परिषद् के बीच होगी, उस पर हस्ताक्षर किये जायँगे। इस सधि-पत्र मे वे सब बाते रहेगी जो ब्रिटिश सरकार से भारतीयो को पूर्ण उत्तरदायित्व हस्तान्तरित करने पर पैदा होगी। इसमे जातीय (racial) तथा धार्मिक (religious) अल्पमतो की रक्षा के लिए विधान होगा। परन्तु इस सधि द्वारा भारतीय सघ की उस सत्ता पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जायगा जिससे वह भविष्य मे ब्रिटिश राज्य-समूह (ब्रिटिश कामनवेल्थ) के दूसरे राज्यों के साथ, संबधो के विषय मे, निर्णय करेगी।

चाहे देशी राज्य विधान को स्वीकार करना पसन्द करे अथवा न करे, नई परिस्थिति मे सधियो की व्यवस्था मे परिवर्तन करने पडेगे।

(४) विधान निर्माण करनेवाली परिषद् का संगठन इस प्रकार होगा, जबतक कि भारतीय लोकमत के नेता मिलकर, युद्ध समाप्ति से पूर्व, कोई दूसरा उपाय निश्चित न करले।

रक्षा करने के लिए साथ-साथ चलता है। यह दो प्रकार के होते हैं। एक बड़े और विशाल तथा दूसरे हलके और छोटे।

केन्द्रियतावाद—इस राजनीतिक प्रणाली के अनुसार देश के समस्त प्रान्तो का शासन एक केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है। इसके विपरीत संघ-शासन मे प्रत्येक प्रान्त तथा राज्य स्वतन्त्रता से अपना शासन-प्रबन्ध करता है।

केन्द्रीय असेम्बली कांग्रेस-दल—केन्द्रीय असेम्बली (धारा-सभा) में कांग्रेस दल के प्रायः ४० सदस्य हैं। श्री भूलाभाई देसाई इस दल के नेता हैं तथा श्री सत्यमूर्ति इस दल के उपनेता। यह केन्द्रीय धारा-सभा का विरोधी-दल है। सन् १६४० मे, युद्ध-अर्थ-मसविदे (बिल) का विरोध करने के लिए, इस दल के सब सदस्य, प्रायः एक साल की अनुपस्थिति के बाद, पुनः उपस्थित हुए। कांग्रेस-दल ने इस बजट-मसविदे का प्रबल विरोध किया और वह असेम्बली द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

केन्द्रीय धारा-सभा(Central Assembly)—यह ब्रिटिश भारत की भारतीय धारा-सभा के बड़े सगठन का नाम है। इसकी स्थापना, मान्टेग्यू-चेम्सफर्ड सुधार-योजना के अनुसार, सन् १६२० मे, हुई थी। तब से यद्यपि सन् १६३५ का नया शासन-विधान प्रान्तो मे लागू हो चुका है, तथापि भारतीय व्यवस्थापिका सभा में कोई परिवर्तन नही हुआ।

कैटालोनिया—यह प्रदेश स्पेन के उत्तर-पूर्वी कोण मे स्थित है। इसमे कैटालान लोग रहते हैं। यह स्पेन का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रदेश है। इसकी जन-सख्या ६०,००,००० है। सन् १६३३ मे उन्हे प्रजातन्त्रवादी स्पेनिश सरकार ने स्वराज्य दे दिया। स्पेन के गृह-युद्ध मे फ्रांको की विजय होजाने से फिर यह प्रदेश स्पेन के अधीन होगया।

कैलॉग-ब्रियान्द-समझौता—यह समझौता पेरिस-पैक्ट के नाम से भी प्रसिद्ध है। २७ अगस्त सन् १६२८ को पन्द्रह राज्यो की सरकारों ने मिलकर यह समझौता किया था। यह समझौता तत्कालीन संयुक्त-राज्य अमरीका के वैदेशिक-मंत्री फ्रांक वी० केलॉग तथा मोशिये ब्रियाद, फ्रांसीसी वैदेशिक-मंत्री, के सहयोग से हुआ था। इस समझौते के द्वारा १५ राष्ट्रो ने युद्ध को, राष्ट्रीय

नीति के साधन के रूप मे, अस्वीकार किया, और यह भी निश्चय किया कि राष्ट्रो के बीच किसी भी प्रकार का विवाद पैदा हुआ हो तो शान्तिमय साधनों के सिवा और किसी प्रकार से उसका निर्णय नही किया जाना चाहिये।

क्रैमलिन—मास्को (रूस) का एक राजमहल, जिसमे पहले ज़ार रहाकरते थे, परन्तु आज जिसमे रूस की सोवियट सरकार का प्रधान-मन्त्रि-कार्यालय (सेक्रेटरियट) है।

कैरोल द्वितीय—रूमानिया के राजा हैं। जन्म १६ अक्टूबर १८६३ को हुआ। सन् १६२५ मे, युवराज की स्थिति मे ही, राजनीतिक कारणो से उन्हें पदच्युत होना पडा। वह फ्रांस मे एक यहूदी महिला के साथ रहने लगे। युवरानी हैलेन ने उन्हे तलाक़ दे दी। १६२७ मे राजा फर्डिनेन्ड की मृत्यु के बाद उनका राजकुमार माइकेल गद्दी पर बैठा। प्रधान-मत्री मैन्यू के निमंत्रण पर वह सन् १६३० मे रूमानिया वापस लौटे। रूमानिया के राजा घोषित कर दिये गये। सन् १६३८ मे उन्होंने लौह-रक्षको (Iron Guards) का दमन किया। रक्षक नाज़ी पक्ष के थे। परन्तु मार्च १६४० में लौह-रक्षकों को पुनः राज्याश्रय दिया गया। रूमानिया तटस्थ रहना चाहता था, परन्तु हिटलर के सामने वह विवश रहा।

कोमागाता मारू—यह एक जापानी जहाज़ का नाम है। इसके साथ एक बडा मनोरंजक, किन्तु वीरतापूर्ण, इतिहास जुडा हुआ है। गत विश्व-युद्ध (१६१४) से पूर्व कनाडा की प्रिवी कौंसिल ने अपने एक आज्ञा-पत्र मे यह घोषणा की कि भारतीयो को कनाडा मे प्रवास के लिए प्रविष्ट न होने दिया जायगा। जो कनाडा में बस गये हैं, वे ही प्रवेश पा सकेंगे। उन दिनो कनाडा के लिए भारत से सीधा कोई जहाज़ नही जाता था। जो भारतीय कनाडा मे अधिवासी बन गये थे उन्हे भी क़ानूनी बाधायें लगाकर तथा अन्य बुरी तरह परेशान किया जाता था। वे भारत से अपने स्त्री-बच्चो को कनाडा मे नही लेजा सकते थे।

उक्त आज्ञा-पत्र के विरोध में सन् १६१४ मे बाबा गुरुदत्तसिंह नामक एक साहसी सिख ने कोमागातामारू नामक एक जहाज़ कनाडा के लिए किराये पर लिया। यह माल ले जानेवाला जहाज़ था। इसमे ६०० सिक्ख

सवार हुए। यह जहाज़ हागकाग या तोकियो पर ठहरे बिना सीधा कनाडा चला गया। यह जहाज़ तीन-चार मास तक कनाडा के बन्दरगाह पर खडा रहा, परन्तु सिखो को कनाडा मे प्रविष्ट न होने दिया गया। कनाडा की सेना के सैनिकों तथा इस जहाज़ के यात्रियों में ख़ूब सघर्ष रहा। यात्रियो को अनेक यातनाएँ भोगनी पडीं। खाने की सामग्री भी समाप्त होगई। अन्त मे भारत मत्री के हस्तक्षेप से जहाज को वापस भारत लौटना पडा।

भारत लौटकर बजबज मे जहाज ने लगर डाला। सिखो को यह आज्ञा दी गई कि वे रेलगाडी मे बैठकर सीधे पजाब चले जायँ। परन्तु सिख रेल मे सवार होने से पहले सरकार के पास एक दरख़्वास्त भेजना चाहते थे। सरकार ने ज़बरदस्ती उन्हे पजाब भिजवाया। गोली भी चली। बाबा गुरुदत्तसिंह जहाज़ मे से ग़ायब होगये। क़रीब ७ वर्ष तक वेष बदलकर वह छिपे रहे। इस समय मे ख़ुफ़िया पुलिस बराबर उनकी तलाश मे रही। नवम्बर १९२१ मे बाबा गुरुदत्तसिंह महात्मा गान्धी से मिले। गान्धीजी ने उन्हे यह सलाह दी कि वह गिरफ़्तार होजायँ। बाबाजी गिरफ़्तार होगये और उन्हे क़ैद की सज़ा दी गई। २८ फरवरी १९२२ को वह लाहोर जेल से मुक्त कर दिये गये। कलकत्ता में उन्होने भारत मन्त्री के विरुद्ध कई लाख रुपये हर्जाने का दावा किया, परन्तु वह ख़ारिज होगया।

कोमिण्टर्न—यह 'कम्युनिस्ट इण्टरनैशनल' शब्द का संक्षिप्त रूप है।

कोमिन तांग (Kuo Min Tang)—यह चीन देश की राष्ट्रीय सस्था है। सन् १९०५ मे डा० सन यात-सेन ने इस संस्था की स्थापना की। इस दल का उद्देश्य चीन की स्वाधीनता की रक्षा तथा प्रजातन्त्र-राज्य की स्थापना है। राष्ट्रीय-सगठन, राष्ट्रीय एकता इसका मूल मत्र है। वर्तमान समय में चियाङ्ग काई शेक इस दल के प्रमुख नेता हैं।

क्रोट्स—उत्तर-पश्चिमी यूगोस्लाविया मे रहनेवाली स्लैव प्रजा। इनकी संख्या ४०,००,००० है। क्रोट्स कैथलिक मत के माननेवाले हैं।

क्रोपाटकिन—इनका पूरा नाम प्रिंस पीटर क्रोपाटकिन है। जन्म सन् १८४२ मे हुआ। यह रूस के प्रसिद्ध भूगोल-विज्ञान-वेत्ता थे। इन्होने 'साम्यवादी अराजकतावाद' सिद्धान्त का विकास किया। जब इन्होने यह अनुभव

किया कि अराजकतावादी व्यवस्था की स्थापना मे बडे-बडे उद्योग-धन्धों से बाधा पडती है, तब इन्होने बडे-बडे उद्योगो को मिटाकर उनकी जगह हाथ की दस्तकारी के प्रचार की सिफारिश की। इनके अनुसार छोटे-छोटे मानव-समूहो के हाथ मे सामान्य सम्पत्ति दे दी जाय और वे अपने सदस्यो के जीवन-यापन के लिये आवश्यक वस्तुओ का निर्माण करे, और इस प्रकार स्वाश्रयी बन जायॅ। श्रम-विभाजन को वह सबसे बडी बुराई मानते थे। इनके मतानुसार काम के घण्टे एक दिन मे चार-पॉच से ज़्यादा न होने चाहिये। कोई नियत वेतन भी न होना चाहिये, प्रत्युत् प्रत्येक व्यक्ति को, उसकी आवश्यकतानुसार, वेतन दिया जाय। प्रारम्भिक काल में यह बडे क्रान्तिकारी थे, परन्तु बाद में सन् १८८६ से लन्दन मे रहे और इनके विचारो मे नरमी आगई। विश्व-युद्ध (१६१४-१८) मे इन्होने मित्र-राष्ट्रो का समर्थन किया। मार्च १६१७ की रूसी राज्य-क्रान्ति के बाद रूस मे वापस आगये। जब साम्यवादियो की विजय हो गई तब प्रिंस क्रोपाटकिन ने मज़दूरो के अधिनायक-तन्त्र (डिक्टेटरशिप) का विरोध किया। सन् १६२१ मे रूस में इनका देहान्त होगया।

ख

खाकसार आन्दोलन—अगस्त १६३२ से इस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। इसके संस्थापक इनायतुल्ला खॉ 'मशरिक़ी' साहब ने कहा कि मिस्र, ईरान, ब्रह्मा तथा अफ़ग़ानिस्तान मे भी ख़ाकसार हैं, और हिन्दू भी इस आन्दोलन मे सम्मिलित हुए हैं। भारत के नवाबों तथा मुस्लिम रियासतों से काफी धन इस आन्दोलन के लिए मिला। 'ख़ाकसार' का अर्थ है सेवक और इस नाम से ऐसा प्रकट होता है कि यह कोई समाज-सेवा की

आन्दोलन था। परन्तु वास्तव मे इस आन्दोलन का अभिप्राय भारत में मुसलमानो का प्रभुत्व स्थापित करना था। इस्लाम की प्रभुता तथा मुसलमानी राज्य की स्थापना ही इसका मुख्य उद्देश्य था। राज्य की स्थापना के लिए सेना की आश्यकता होती है। इसीलिए ख़ाकसारो को सैनिक ढग से जीवन विताना पडता था। वे शिविरो मे रहते थे तथा फौजी पोशाक पहनते और बेलचा धारण करते थे। ख़ाकसारो की पताका लाल रग की थी, जिस पर सफ़ेद निशान था। ख़ाकसारो के चार दर्जे क़ायम किये गये थे—(१) जॉबाज़—जो अपने जीवन का भी बलिदान करने को तैयार रहे। (२) पाकबाज़—यह आन्दोलन को आर्थिक सहायता देते थे। (३) ख़ाकसार—यह साधारण सैनिक बनकर काम करते थे। इनकी संख्या सबसे ज्यादा थी। (४) मुआवनीन्—इनको वर्ष मे ३ मास तक फौजी शिक्षा लेनी पड़ती थी। यह एक प्रकार की स्थायी (रिजर्व) सेना थी। यह आन्दोलन प्रजातन्त्र, अहिंसा तथा साम्प्रदायिक एकता के विरुद्ध था। ख़ाकसार आन्दोलन जर्मनी के नाज़ी आन्दोलन से कई बातो मे मिलता था। इसका आधार, नाज़ी आन्दोलन की भॉति, हिंसात्मक तथा फौजी था। इसकी कार्य-प्रणाली भी शान्ति, व्यवस्था तथा वैधानिक सरकार के अस्तित्व के लिए ख़तरनाक थी।

ख़ाकसारो के उत्पातों से पजाब तथा भारत सरकार बहुत चिंतित होने लगी। अत. फरवरी १९४० मे पजाब सरकार ने एक आर्डर जारी किया जिसके अनुसार सभी अर्द्ध-सैनिक दलों को अपने शस्त्रो को धारण कर परेड करने की मनाही कर दी गई। १५ मार्च १९४० को 'अल-इस्लाह' मे एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमे ख़ाकसारो को आदेश था कि उपर्युक्त प्रतिबन्ध का वे लाहोर मे जमा होकर जवाब दे। २१ मार्च १९४० को लाहोर मे अखिल-भारतीय मुस्लिम लीग का अधिवेशन होनेवाला था। उससे दो दिन पूर्व लाहोर के डब्बी बाज़ार मे अचानक ३१३ बावर्दी ख़ाकसार बेलचे लेकर आगये। उन्होने क़वायद भी की। जब पुलिस अफसर उन्हे समझाने लगे, तो उन्होने बेलचो से उन पर हमले किये। सीनियर पुलिस कप्तान के सख्त चोटे आई। अतः पुलिस ने गोली चलाई। २९ ख़ाकसार तो घटनास्थल पर ही मारे गये, १०-११ अस्पताल मे जाकर मरे। इसके बाद ख़ाकसार आन्दोलन

पंजाब में ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया गया। देहली में अल्लामा 'मशरिक़ी' भारत सरकार द्वारा गिरफ्तार किये गये। लाहोर मे मुस्लिम-लीग के अधिवेशन में श्री मुहम्मदअली जिन्ना ने ख़ाकसारों के प्रति सहानुभूति प्रकट की और पजाब सरकार की आलोचना की तथा घटना की निष्पक्ष जॉच के लिए प्रस्ताव पास हुआ। परन्तु ख़ाकसार फिर भी लीग से अलग ही रहे। श्री जिन्ना यह चाहते थे कि वे मुस्लिम-लीग मे शामिल होजायॅ। परन्तु ८ मई १६४० के वक्तव्य मे श्री जिन्ना ने स्पष्ट शब्दो मे यह कह दिया—"मै यह बतला देना चाहता हूॅ कि ख़ाकसार आन्दोलन लीग से बिल्कुल स्वतत्र है और उसका लीग से कोई सबंध नही है। लीग उनके संबंध मे कुछ भी नही कर सकती, क्योकि उनके संगठन की काररवाइयो पर हमारा कोई नियंत्रण नही और न हमारे पास ऐसा कोई अधिकार है जो उनकी ओर से कोई समझौता कर सके।"

खान अब्दुल ग़फ़्फार ख़ॉ—जन्म सन् १८६०। ख़ुदाई ख़िदमतगार संगठन के नेता तथा सचालक। रौलट-ऐक्ट के विरोध मे, १६१६ मे, आन्दोलन किया। असहयोग-आन्दोलन मे ३ साल की सख़्त सज़ा दी गई। सन् १६२६ मे अफ़ग़ान जिरगो का संगठन किया। सन् १६३२ से १६३४ तक हज़ारीबाग़ जेल (बिहार) मे राजबन्दी रहे। सन् १६३४ मे, अपने भाई डा० ख़ान साहब सहित, पजाब से निर्वासित कर दिये गये। तब वर्धा के निकट सेवाग्राम आश्रम मे गान्धीजी के पास रहे। सन् १६३५ मे, बम्बई कांग्रेस अधिवेशन के संबंध मे भाषण देने पर, दो साल की सख़्त सज़ा दी गई। ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ॉ महात्मा गान्धी के अहिसावाद के कट्टर समर्थक हैं। महात्माजी के बाद ख़ॉ साहब ही हैं, जो अहिसा के अनन्य पुजारी हैं। उनके १,००,००० से भी अधिक अनुयायी हैं जो ख़ुदाई ख़िदमतगार के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह वास्तव मे एक महान् आश्चर्य ही है कि इन वीर पठानो ने हिसा का त्याग कर अहिसा का व्रत लिया है और सत्याग्रह आन्दोलन (१६३०-३२) मे इनकी कठिन परीक्षा भी हो चुकी है। सन् १६३० ई० मे गढ़वाली सैनिको का निहत्थी जनता पर गोली चलाने से इनकार, फिर पेशावर गोली-काण्ड और पठानो का बलिदान, कांग्रेस द्वारा गोली-काण्ड की जॉच और उसकी रिपोर्ट की ज़ब्ती आदि सभी घटनाये इस प्रसङ्ग से सम्बन्धित हैं।

आप सच्चे मुसलमान हैं—सहिष्णु, उदार, सहृदय । आचारिक मर्यादा-पालन को ही आप धर्म नही मानते, बल्कि दैनिक जीवन मे पवित्र आचरण को धार्मिक-कसौटी मानते हैं । ६ अगस्त १६४२ से, 'भारत छोडो' प्रस्ताव के बाद देश मे जो उपद्रव हुए हैं, आपके सीमा-प्रान्त मे शान्ति रही और बावजूद देशव्यापी दमन के कांग्रेस इस प्रान्त मे गैर-क़ानूनी क़रार नही दी गई, अगरचे स्कूलों आदि पर धरने के कारण गिरफ़्तारियाँ हुईं ।

खान साहब, डाक्टर—ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ॉ के बडे भाई तथा सीमा-प्रान्त के कांग्रेस-नेता । जन्म १८८३ ई० । मैट्रिक पास कर विलायत गये । लन्दन से एम० आर० सी० ए० की डिग्री ली । आई० एम० एस० मे शामिल हुए । गत युद्ध के बाद फ्रान्स मे तैनाती हुई । १६२० मे देश लौटे, राष्ट्रोद्धार मे छोटे भाई के सहयोगी बने । आप इण्डियन मेडिकल सर्विस (I M S) के सदस्य हैं । सन् १६३७ मे सीमा-प्रान्त की सरकार के प्रधान मन्त्री नियुक्त किये गये तथा अक्टूबर १६३६ मे तमाम कांग्रेसी सरकारों के साथ, आपके मन्त्रि-मण्डल ने त्याग-पत्र दे दिया । सन् १६४० के युद्ध-विरोधी सत्याग्रह मे गिरफ्तार किये गये ।
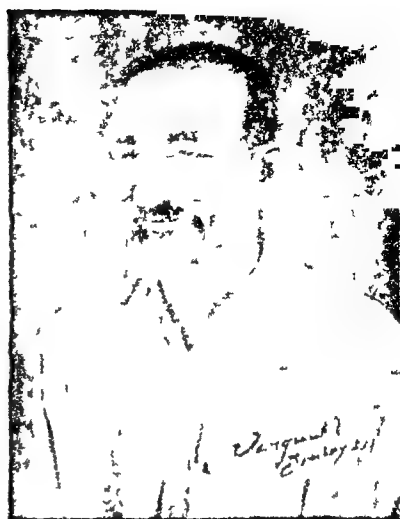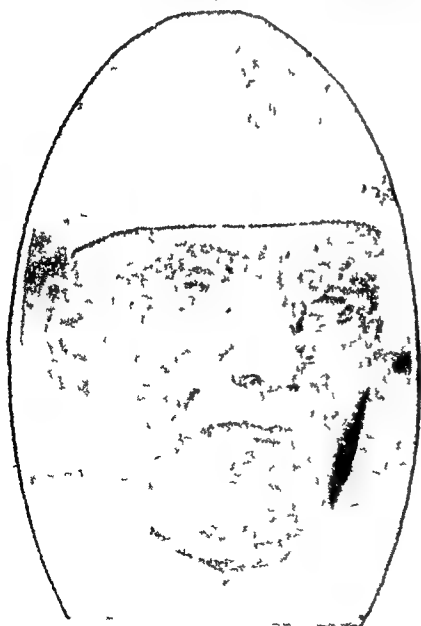
खेर, बालाजी गंगाधर—आपने बी० ए०, एलएल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की है। बम्बई प्रान्त के कांग्रेसी नेता हैं। सन् १९३७ में बम्बई सरकार के प्रधान मंत्री नियुक्त किए गए। बम्बई मे आपकी कांग्रेसी सरकार ने अनेक सुधार किए, जिनमें शराबबन्दी सबसे प्रमुख है। सन् १९३९में अपने तथा आपके साथी कांग्रेस मंत्रियो ने पदत्याग कर दिया। सन् १९४० में युद्ध-विरोधी-सत्याग्रह में जेल गये। सन् ४२ के भारतव्यापी दमन में फिर पकड़े गये।
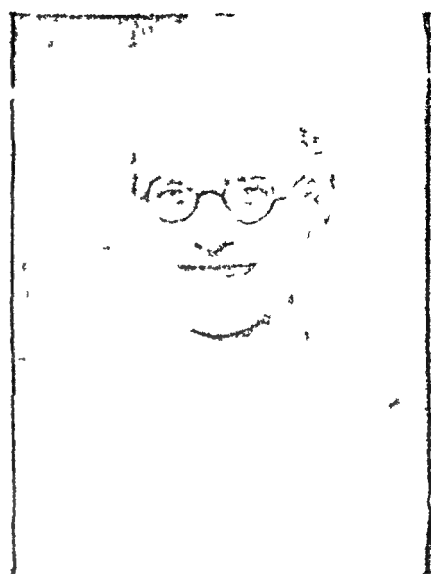
ग

गान्धी, महात्मा मोहनदास कर्मचन्द—२ अक्टूबर सन् १८६९ को पोरबन्दर मे जन्म हुआ। पिता पोरबन्दर-नरेश के २५ वर्ष तक दीवान रहे। भावनगर तथा राजकोट मे मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद लन्दन बैरिस्टरी पास करने गये। बैरिस्टरी पास करके बम्बई तथा दक्षिण-अफ्रीका में वकालत की। जब वह १८९३ ई० मे दक्षिण-अफ्रीका एक मुक़दमे के सिलसिले मे गये, तो उन्होंने वहाँ के प्रवासी भारतीयों की बहुत बुरी स्थिति देखी। भारतीय होने के कारण उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। २५ पौण्ड वार्षिक का कर उन पर लगा दिया गया था, जिसे भारत सरकार ने पीछे ३ पौण्ड सालाना कर दिया। भारतीय विवाहों को जायज़ नहीं माना जाता था। कुछ शहरों की ख़ास बस्तियों में वह

आबाद नही हो सकते थे, आदि। इन सबके विरोध मे, भारतीयो की स्थिति मे सुधार करने के लिए, आपने आन्दोलन शुरू किया, जो निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistence) के नाम से प्रसिद्ध है। यह भी एक प्रकार का अहिंसात्मक सत्याग्रह था। गान्धीजी के सत्याग्रह प्रयोग का यह प्रथम प्रयास था। इसमे उन्हे सफलता मिली, और अपने 'सत्य के प्रयोग' के प्रति गाधीजी की धारणा और भी दृढ होगई। इस आन्दोलन में भारत से भी स्वर्गीय गोखले आदि ने काफी सहायता भेजी। गोखलेजी स्वय दक्षिण अफरीका गये। स्वर्गीय दीनबन्धु ऐंड्रूज से भी गान्धीजी की भेट इसी आन्दोलन-काल मे हुई और ऐन्ड्रूज साहब ने ही, दक्षिण-अफ्रीकी-सत्याग्रह के बाद गान्धीजी और दक्षिण-अफ्रीका-सरकार के प्रधान मन्त्री जनरल स्मट्स मे समझौता कराया। नेटाल के बोअर-युद्ध तथा जूलू-विद्रोह मे गान्धीजी ने भारतीय एम्बुलेंस दल का नेतृत्व किया और आहतो की सेवा की। सन् १६१४ मे भारत आगये।

सन् १६१४-१८ के युद्ध मे उन्होंने, गुजरात की खेड़ा तहसील मे, सरकार की सहायता के लिए, रॅगरूट स्वय-सेवक-दल (Volunteers) का सगठन किया। दक्षिण-अफ्रीका के प्रवास-काल मे ही उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रयोग और विकास किया और उसके सिद्धान्तो को स्थिर किया। सन् १६०८ मे उन्होने "हिन्द स्वराज्य" नामक एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक मे अहिसा तथा सत्याग्रह के सिद्धान्तो के आधार पर उनके अपने विचार हैं। आज भी गान्धीजी इस पुस्तक मे प्रतिपादित सिद्धान्तो को मानते हैं। जब विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद भारत मे नई शासन-सुधार-योजना प्रकाशित की गई और दूसरी ओर रौलट मसविदो (Bills) को स्थायी क़ानून का रूप देने का प्रयत्न किया गया, तो गान्धीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ने की घोषणा की।

सन् १६२० मे, पजाब के अत्याचारो के विरोध मे तथा खिलाफत के सबध मे असहयोग-आन्दोलन शुरू किया। सन् १६२२ मे गान्धीजी को राजद्रोह के अपराध मे ६ साल की सज़ा दी गई, परन्तु सन् १६२४ मे बीमारी के कारण उन्हे मुक्त कर दिया गया। असहयोग-आन्दोलन का अवसान होते-न-होते देश मे साम्प्रदायिक दगो ने ज़ोर पकड़ लिया था, अतएव आपने

प्रायश्चित्तस्वरूप इक्कीस दिन का व्रत किया। देश दहल उठा और स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व मे एकता-सम्मेलन हुआ। ३१ दिसम्बर १६२६ की आधी रात को लाहौर में पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय की घोषणा की गई। इसी वर्ष गान्धीजी के प्रभाव से लार्ड इरविन के प्रति, उनकी स्पेशल को उडाये जाने की घटना से उनके बच जाने के लिये, सहानुभूति का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

साइमन कमीशन की विफलता के बाद सन् १६३० मे गांधीजी ने नमक सत्याग्रह आरम्भ किया। इस आन्दोलन में उन्हे राजबन्दी बनाकर यरवदा जेल में रखा गया। जनवरी १६३१ मे उन्हे मुक्त कर दिया गया। ३१ मार्च १६३१ को गांधीजी तथा भारत के वाइसराय लार्ड इरविन (अब लार्ड हैलीफैक्स) मे समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार गांधीजी ने लन्दन की गोल-मेज़ परिषद् में कांग्रेस की ओर से शामिल होना स्वीकार किया तथा समस्त राजनीतिक बन्दी रिहा कर दिये गये और व्यक्तिगत रूप से नमक बनाने का सबको अधिकार मिल गया।

सन् १६३१ मे वह लन्दन गये और गोल-मेज़ परिषद् में भाग लिया। जब सन् १६३२ के जनवरी मास मे भारत वापस आये तो उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया। सितम्बर १६३२ मे उन्होने यरवदा जेल में, साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध, आमरण उपवास रखा और पूना-पैक्ट के स्वीकार होजाने पर अपना व्रत भंग किया। सन् १६३३ मे उन्होने सत्याग्रह-आश्रम अहमदाबाद को भंग कर दिया। वर्धा (मध्यप्रदेश) मे सेठ जमनालाल की बजाजवाडी मे अपना निवास-स्थान बनाया। इसके बाद वर्धा से पॉच मील दूर सेवाग्राम मे अपना आश्रम स्थापित किया।

देश-नेताओ की प्रवृत्ति फिर धारा-सभाओ मे जाने की हुई और चुनाव लडना तय हुआ, फलतः सत्याग्रह-आन्दोलन समाप्त कर दिया गया, और बम्बई की विशेष कांग्रेस (अक्टूबर १६३५) के बाद गांधीजी ने कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र देदिया। इसके बाद वे अछूतोद्धार, ग्राम-सुधार तथा ग्रामोद्योग संघ के कार्य में पूर्णतया लग गये। सन् १६३७ में जब प्रान्तीय चुनावो में ११ में से ७ प्रान्तो मे कांग्रेस की विजय हुई तब, मार्च १६३७ में, देहली

में पद-ग्रहण का प्रस्ताव काग्रेस ने स्वीकार किया। सन् १६३७ से १६३६ तक कांग्रेसी सरकारो को आदेश देते रहे और यह बतलाते रहे कि कौन-कौन से राष्ट्रनिर्माणकारी कार्य मन्त्रियो को करने चाहिये। महात्मा गाधी के आदेशानुसार ही काग्रेसी मन्त्रियो ने अपने-अपने प्रान्तों मे हरिजनो को सुविधायें—नौकरियाँ आदि—दी, खादी को प्रोत्साहन दिया, ग्राम-सुधार पर अधिक ज़ोर दिया, मादक-द्रव्यों का निषेध करने के लिये प्रयत्न किया तथा बुनियादी (Basic) शिक्षा-पद्धति को पाठ्य-क्रम मे स्थान दिया।

१ सितम्बर १६३६ को यूरोप मे जर्मनी ने वर्तमान महायुद्ध छेड दिया, तब वाइसराय ने गाधीजी को ५ सितम्बर १६३६ को परामर्श के लिये शिमला आमन्त्रित किया। इस भेट के बाद ही गाधीजी ने एक वक्तव्य मे यह कहा कि मेरी सहानुभूति ब्रिटेन तथा फ्रान्स के साथ है।

वाइसराय से समझौते की बातचीत करने के लिए वह दो-तीन बार शिमला तथा नयी दिल्ली गये। परन्तु मुलाक़ातों का कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त मे अपनी अन्तिम मुलाकात मे गान्धीजी ने वाइसराय से यह माँग पेश की कि काग्रेस को, जो अपने अहिंसा के सिद्धान्त के कारण युद्ध मे योग नही दे सकती, भाषण-स्वातन्त्र्य का अधिकार दिया जाय, जिससे काग्रेसजन युद्ध के सबध मे अपने विचार प्रकट कर सके। वाइसराय ने यह माँग स्वीकार नहीं की। फलतः अक्तूबर १६४० मे उन्होने युद्ध-विरोधी वैयक्तिक सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। दिसम्बर १६४१ मे काग्रेस कार्य-समिति ने गान्धीजी को सत्याग्रह के संचालक-पद से मुक्त कर दिया और इस प्रकार सत्याग्रह स्थगित होगया।

महात्मा गान्धी काग्रेस को एक विचारधारा की अनुयायी संस्था बना देना चाहते हैं। इसलिए वह, जब यह देखते हैं कि दूसरी संस्थाएँ या दल कांग्रेस मे शामिल होकर गान्धीवाद-विरोधिनी विचारधारा का प्रचार करते हैं, तो वह इसे सहन नही कर सकते। गान्धीजी प्रजातन्त्र के समर्थक हैं; परन्तु कांग्रेस मे आन्दोलन के संचालन के लिये अधिनायक-तंत्र को ही ठीक मानते हैं।

महात्मा गान्धी काग्रेस के सबसे प्रभावशाली नेता हैं और ससार के एक अद्वितीय महापुरुष। वह अपने अहिंसा-प्रेम के लिये विश्व-विख्यात हैं। वह न केवल नेता ही हैं प्रत्युत् एक उच्चकोटि के विचारक, साधक, अँगरेज़ी

और गुजराती के उत्कृष्ट लेखक-सम्पादक तथा प्रकृति-चिकित्सक भी हैं। उनकी 'आत्म-कथा' बहुत ही सुन्दर तथा उच्चकोटि की रचना है। उन्होने 'यंग इंडिया', 'हरिजन' तथा 'हरिजन-बन्धु' नामक पत्रो का संपादन भी किया है। दक्षिण अफ्रीका मे 'इंडियन ओपीनियन' पत्र निकला था। ८ अगस्त १९४२ को अ० भा० कांग्रेस कमिटी ने बम्बई मे कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के भारतीय स्वतन्त्रता-सम्बन्धी 'भारत छोडो' (Quit India) प्रस्ताव को स्वीकृत किया और ९ अगस्त के प्रातःकाल कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों सहित गांधीजी बम्बई मे पकडे जाकर नज़रबन्द कर दिये गये। प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद गान्धीजी ने घोषणा की थी कि वह अगला क़दम उठाने से पूर्व वाइसराय से भेट करके उनसे समस्त स्थिति पर बातचीत करेंगे, किन्तु ९ अगस्त के प्रातः ५ बजे ही उन्हे गिरफ़्तार कर लिया गया।

गांधीजी की ग्यारह शर्तें—सन् १९३० में, नमक-सत्याग्रह आरम्भ करने से पूर्व, गांधीजी ने तत्कालीन वाइसराय लार्ड इरविन के समक्ष निम्नलिखित ११ माँगे, स्वीकृति के लिए, प्रस्तुत की थीः—

(१) पूर्ण मादक-द्रव्य-निषेध।

(२) रुपये की विनिमय-दर घटाकर १ शिलिंग ४ पैंस करदी जाय।

(३) किसानों की मालगुज़ारी मे कम-से-कम ५० फ़ीसदी कमी कर दी जाय और उसका नियन्त्रण व्यवस्थापिका सभा द्वारा हो।

(४) नमक-कर उठा दिया जाय।

(५) भारत मे फौजी ख़र्चा आधा कर दिया जाय।

(६) उच्च सरकारी पदाधिकारियो के वेतनो में ५० फ़ीसदी कमी की जाय।

(७) विदेशी वस्त्र के आयात पर संरक्षण-कर लगाया जाय।

(८) तटीय यातायात संरक्षण मसविदा (Coastal Traffic Reserv-

ation Bill) पास कर दिया जाय, ताकि हिन्दुस्तानी समुद्र-तट देशी जहाज़ों के लिए सुरक्षित होजाय।

(९) समस्त राजनीतिक वन्दियो को रिहा कर दिया जाय। इनमें वे शामिल नहीं हैं, जिन्हें हत्या करने तथा हत्या का प्रयत्न करने के अपराध में सज़ा मिली है। समस्त राजनीतिक मुक़दमे वापस ले लिए जायँ। भारतीय दण्डविधान की धारा १२४ (अ) तथा सन् १८१८ के तीसरे रेग्यूलेशन को रद कर दिया जाय, और भारतीय निर्वासितो को स्वदेश वापस आने की आज्ञा दी जाय।

(१०) गुप्तचर पुलिस-विभाग उठा दिया जाय अथवा उसको जनता के नियन्त्रण मे दे दिया जाय।

(११) आत्मरक्षा के लिए शस्त्र-प्रयोग के निमित्त लाइसेंस दिये जायँ और उन पर जनता का नियन्त्रण रहे।

गान्धीवाद—महात्मा गान्धी के सिद्धान्तों के लिए आज गान्धीवाद शब्द प्रचलित है। गान्धीवाद आध्यात्मिक होते हुए भी आधुनिक भारत का एक राजनीतिक सिद्धान्त है। गान्धीजी का यह 'वाद' अहिंसा के आधार पर स्थिर है। अहिंसा उसका मेरुदण्ड है। सदैव शान्तिमय साधनों पर ही वह ज़ोर देता है। सघर्ष को वह पसद नहीं करता। समस्त समस्याओं—सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक—को वह सहयोग तथा सामजस्य के सिद्धान्त के आधार पर हल करना चाहता है। गान्धीवाद का साधन अहिंसा और लक्ष्य सर्वोदय है। वह मानव-मात्र का हिताकाक्षी है, और उसके लिए वह समाज मे प्रचलित वर्गों तथा सम्प्रदायो मे परस्पर सहयोग चाहता है। गान्धीवाद प्रत्येक देश की स्वाधीनता का समर्थक है और साथ ही वह अन्तर्राष्ट्रीयता का समर्थन करता है। परन्तु वह कार्लमार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद का विरोधी है। गान्धीवाद आर्थिक समस्या के हल के लिए, सामूहिक उद्योगवाद के स्थान पर वैयक्तिक उद्योग चरखा, खादी, ग्रामोद्योगों तथा घरेलू-धन्धो के सगठन तथा प्रोत्साहन पर अधिक ज़ोर देता है। वह ज़मीदारी प्रथा का नाश नहीं चाहता, और न देशी राज्यों तथा नरेशों का निष्कासन ही उसे पसद है, किन्तु वह इन सत्ताधारियों को जनता के संरक्षक

(trustee) के रूप में और इनकी सम्पत्ति को जनता की धरोहर की भाँति व्यवहृत देखना चाहता है। गान्धीवाद त्याग, तपस्या, कष्ट-सहन तथा ब्रह्मचर्य आदि के पालन पर विशेष ज़ोर देता है। इसलिए उसकी प्रवृत्ति भोगवादी नहीं है। समाज-सुधार का वह समर्थक है। परन्तु वह उसका समर्थन वहाँ तक करता है जहाँ तक उसका सदाचार तथा नैतिकता से संघर्ष नहीं होता। इसी आधार पर गान्धीवाद सन्तान-निग्रह के कृत्रिम साधनों का विरोधी है। संक्षेप में गान्धीवाद शुद्ध हिन्दुत्व का प्रतिरूप है।

गान्धी-सेवा-संघ—सन् १९२४ में सेठ जमनालाल बजाज (अब स्वर्गीय), श्री राजगोपालाचारी, सरदार वल्लभभाई पटेल, डा० राजेन्द्रप्रसाद आदि नेताओं ने इस संघ की स्थापना की। शुरू में इसका कार्य गान्धीजी के विचारों का प्रचार करना था। इस संघ के सदस्यों को राजनीति में भाग लेने की स्वतन्त्रता थी। बारह वर्ष तक इस संघ का कार्य जनता में लोकप्रिय न बन सका और न इसने आन्दोलन का रूप ही धारण किया। पहले इसके सालाना अधिवेशन भी नहीं होते थे। सन् १९३४ में इसका पहला सम्मेलन हुआ। श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला के अनुसार इन सालाना सम्मेलनों में गान्धीजी का पूरा-पूरा भाग रहा। उन्होंने संघ को नया रूप देकर बड़ा बनाया तथा उसको वह अपने विचार और नीति बतलाते रहे। वैसे इस संघ का उद्देश्य "महात्मा गान्धी के सिखाये हुए सत्याग्रह के सिद्धान्तों के अनुसार जनता की सेवा करना है", परन्तु वास्तव में यह संघ गान्धीवादियों का संगठन बनाने के लिए खोला गया। संघ के वृन्दावन (बिहार) अधिवेशन में एक प्रस्ताव में यह स्पष्ट रूप से आदेश किया गया है कि—"समस्त राजनीतिक चुनावों में संघ के एक सदस्य को दूसरे सदस्य का विरोध न करना चाहिये और न मुकाबले में ही खड़ा होना चाहिये।"

मे है। 'सर्वोदय' नामक एक हिन्दी-मासिक भी वहाँ से प्रकाशित होता है।

गिल्ड समाजवाद—सघवादी समाजवाद का ब्रिटिश भेद है। यह आन्दोलन सन् १६०६ मे पेटी और हाब्सन के नेतृत्व मे शुरू हुआ। इसका मन्तव्य यह है कि उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के बाद मजदूर-सघो को उद्योगो का सचालन करना चाहिए। यह वाद राजकीय-समाजवाद के विरुद्ध है, क्योकि उसका ध्येय यह है कि राज्य को उद्योगो का नियत्रण करना चाहिए। इस आन्दोलन का पतन होचुका है। ब्रिटेन मे सन् १६१५ मे राष्ट्रीय गिल्ड लीग बनाकर इसका परीक्षण किया गया। सन् १६२० मे राष्ट्रीय गिल्ड कौंसिल बनाई गई। शुरू मे कुछ सफलता मिली। परन्तु बाद मे परीक्षण विफल रहा।

ग्रीनलैण्ड—यह उत्तरी अमरीका के उत्तर मे द्वीप-समूह है। सामरिक दृष्टि से इसका बडा महत्व है। आज-कल संयुक्त-राज्य अमरीका ने इस पर अपना अधिकार जमा लिया है।

ग्रीनवुड, आर्थर, एम० पी०—मज़दूर-दल के उपनेता हैं। सन् १६२२ मे सबसे प्रथम ब्रिटिश पार्लमेंट के सदस्य चुने गये। लीड्स यूनिवर्सिटी मे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। मज़दूर-दल अन्वेषण-सस्था के प्रधान मत्री हैं। सन् १६२६-३१ तक स्वास्थ्य-मत्री रहे। ग्रीनवुड मजदूर-दल के प्रमुख प्रभावशाली नेता हैं। नवम्बर १६३६ मे आपसे यह आग्रह किया गया कि विरोधी-दल के नेता के चुनाव मे उम्मीदवार बने, परन्तु आपने अपने मित्र एटली के विरुद्ध खडा होना ठीक न समझा। पुनः आप उपनेता चुने गये। मई, ४० में चर्चिल-सरकार बनते समय, जब मजदूर दल ने उसमे शामिल होना स्वीकार किया, तब मि० ग्रीनवुड युद्ध-मन्त्रिमण्डल के सदस्य बनाये गये।

गेस्टापो—यह जर्मनी की गुप्त राजनीतिक पुलिस का नाम है। सन् १६३६

में, जब हिटलर ने जर्मनी की शासन-सत्ता अपने हाथ में ली, तब ही इसका संगठन, नाज़ीवाद के विरोधियो के दमन के लिये, किया गया था। यह बहुत शीघ्र जर्मन-जनता के लिये आतंककारी सिद्ध हुई। गेस्टापो के कर्मचारी गुप्त रूप से प्रत्येक व्यक्ति तथा सस्था के कार्यों की जॉच करते हैं, और जहॉ कही ज़रा भी विरोध की आवाज़ सुनाई पडी कि फौरन् गिरफ़्तारी की। गेस्टापो का प्रधान सचालक हैनरिच हिमलर है।

ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैण्ड—क्षेत्रफल ६४,२७७ वर्गमील; जनसंख्या ४,७५,००,००० है। ब्रिटिश राजसमूह मे इॅगलैण्ड, स्काटलैण्ड, वेल्स तथा उत्तरी आयरलैण्ड शामिल हैं। केवल उत्तरी आयरलैण्ड मे स्वायत्त-शासन है। शेष तीन प्रदेश एक शासन के अन्तर्गत हैं। ब्रिटिश शासन-विधान अलिखित और परम्परागत है। ब्रिटेन का राज्य-सिंहासन पैतृक है। एकच्छत्र शासन मर्यादित है। बहुमत की सरकार होती है। राजा को मसविदो (Bills) पर स्वीकृतिं देने का अधिकार है। वह मन्त्रियो द्वारा कार्य करता है और मन्त्री पार्लमेंट के प्रति ज़िम्मेदार होते हैं। कुछ प्रमुख मन्त्री मन्त्रि-मण्डल (Cabinet) के सदस्य होते हैं। वे उसकी बैठको मे शामिल होते हैं। शेष मंत्री उसके सदस्य नही होते। आजकल ६ सदस्यो की एक युद्ध-समिति (War-Cabinet) है। वर्तमान कामन-सभा का चुनाव सन् १६३५ मे हुआ था। इसमे ३७५ अनुदार, ३३ नरम-राष्ट्रवादी, ७ राष्ट्रीय मज़दूर, ५ सरकारी राष्ट्रवादी, १६८ मज़दूर, १६ उदार, ७ स्वतत्र, और १ साम्यवादी सदस्य हैं।

गोबेल्स, डा० जोसफ—नात्सी जर्मनी के प्रचार-विभाग का मत्री है। नात्सी-दल मे हिटलर तथा गोरिंग् के बाद डा० गोबेल्स का ही स्थान है। राइनलैण्ड मे एक निर्धन किसान-कुल मे, २६ अक्टूबर १८६७ को, गोबेल्स का जन्म हुआ। गोबेल्स यद्यपि ग़रीब था परन्तु वह अनन्य विद्यानुरागी था। अच्छी से अच्छी यूनिवर्सिटी मे जाकर उसने शिक्षा प्राप्त की। सन् १६२२ से पूर्व गोबेल्स, पत्रकार की हैसियत से, जीवन-निर्वाह करता था। सन् १६२२ मे वह नात्सी-दल मे प्रचार-कार्य करने लगा और सन् १६२६ मे उसने उत्तरी जर्मनी मे नात्सी-दल का संगठन किया। इस समय हिटलर दक्षिणी जर्मनी में कार्य कर रहा था। उसी वर्ष वह नात्सी दल का बर्लिन में स्थानीय

नेता बन गया। सन् १६२७ में डा० गोवेल्स ने बर्लिन से "दिर एंग्रिफ' (आक्रमण) नामक एक दैनिक पत्र निकाला। सन् १६२८ में वह राट्स्ताग (Reichstag—जर्मन पार्लमेंट) का सदस्य चुना गया। सन् १६२६ में वह नात्सी-दल का प्रचार-मत्री नियुक्त किया गया। जब सन् १६३३ में हिटलर ने जर्मनी का शासन अपने हाथ मे लिया, तब वह जर्मन-सरकार का प्रचार-मत्री नियुक्त किया गया। उसने बहुत शीघ्र जर्मनी के समाचार-पत्रों, साहित्य, कला, रेडियो, सगीत, नाटक, चित्रपट तथा अन्य सास्कृतिक क्षेत्रों पर नात्सीवाद का पूरा नियत्रण स्थापित कर दिया। ऐसा प्रचार आज तक किसी देश मे नहीं हुआ। डा० गोवेल्स जर्मनी मे प्रचार की व्यवस्था करता है। वह नात्सीवाद के सिद्धान्तों को जनता मे प्रचारित करता है तथा नात्सी-शासन की विशेषताएँ बतलाता है। इसके अतिरिक्त विदेशो मे भी वह ऐसा प्रचार करता है जिससे लोगो मे जर्मनी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो। इस कार्य मे रेडियो तथा समाचार-पत्रों से विशेषतः काम लिया जाता है। वक्तृता मे डा० गोवेल्स का स्थान बहुत ऊँचा है। उसके शब्दो मे गूढ रहस्य तथा व्यंग्य रहता है। यदि जर्मनी मे गोरिंग् शक्ति का प्रतीक है तो गोवेल्स नात्सी-दल के मस्तिष्क का।

गोरिंग्, हरमैन विलहैल्म—गोरिंग् का स्थान जर्मनी मे हिटलर के बाद है। १२ जनवरी १८६३ मे जन्म हुआ। विगत युद्ध मे जर्मन हवाई सेना में भाग लिया। गोरिंग् को स्कूल का वातावरण अच्छा नही लगता था और न पढ़ने मे ही उसकी रुचि थी। उसके पिता ने उसे, इसलिए, एक सैनिक स्कूल मे भर्ती करा दिया। सन् १६१३ मे बर्लिन की मिलिटरी ऐकेडेमी से उसे लेफ्टिनेट की पदवी मिली। विगत विश्व-युद्ध मे वह बडी वीरता से लडा। जुलाई १६२८ मे वह अपने शौर्य के बल पर जर्मन हवाई सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। इसके बाद वह स्वीडन गया और वहाँ वायुयान-सचालन की शिक्षा दी। परन्तु इससे उसे सन्तोष न हुआ। वहाँ उसने एक धनी स्वीडिश कन्या से विवाह किया। अपनी स्त्री के परामर्श से वह जर्मनी वापस आया। सन् १६२२ मे वह म्युनिख मे सबसे पहली बार हिटलर से मिला। वह हिटलर के असाधारण व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुआ। एक सभा मे हिटलर को

 देते हुए सुनकर गोरिंग् ने अपने मन मे कहा—"यह है वह व्यक्ति

जो जर्मनी को पुनः वैभव के शिखिर पर पहुँचा सकता है।" तब से ही गोरिंग् हिटलर का दाहिना हाथ बना हुआ है। म्युनिख़ मे, सन् १६२३ मे, पुलिस-घेरे के विरुद्ध हिटलर ने क़दम बढ़ाया। पुलिस ने गोली चलाई। एक गोली गोरिग् के भी लगी। हिटलर को सरकार ने जेल मे भेज दिया। गोरिग् को आस्ट्रेलिया भेज दिया गया।

सन् १६२६ मे राजबंदियो को मुक्त किया गया। हिटलर भी छोड दिया गया। सन् १६२७ मे गोरिग् फिर जर्मनी आगया और नात्सी तूफानी फौज (Storm Troops) का संगठन किया। सन् १६२८ मे राइख़ताग का सदस्य चुना गया तथा उसका अध्यक्ष बनाया गया। १६३१ ई० मे पहली पत्नी के मर जाने पर, १६३५ ई० मे, ऐमी सोनमैन नामक नटी से विवाह किया। सन् १६३३ मे गोरिग् प्रधान मत्री तथा स्वदेश विभाग का मंत्री नियुक्त किया गया। इस पद पर नियुक्त होते ही उसने अपने विरोधियो, नात्सी-दल के विरोधियो, साम्यवादियो तथा यहूदियो का सार्वजनिक वध कराया। सारे देश मे नात्सी दल का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। २७ फ़रवरी १६३३ को राइख़ताग के अग्नि-काण्ड मे गोरिंग् का भी हाथ था। इसके बाद वह जनरल तथा हवाई सेना-विभाग का मंत्री बनाया गया। उसने थोडे ही समय मे शक्तिशाली हवाई सेना का संगठन कर दिखाया। इसके बाद वह चातुर्वर्षीय योजना का कमिश्नर नियुक्त किया गया। यह योजना बनाई गई कि चार वर्षो मे जर्मनी के उद्योग-धन्धे इतने उन्नत होजायॅ कि वह स्वाश्रयी बन जाय। इससे डा० शाख्त का प्रभाव घट गया। डा० शाख्त अर्थ-मंत्री थे। फरवरी १६३८ मे गोरिग् को फ़ील्ड मार्शल का पद मिला। १६३८ मे जर्मनी से यहूदियो का निष्कासन कराने मे गोरिग् का बहुत हाथ था।

जनवरी १९३६ मे आर्थिक कमिटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। सन् १९३९ के अगस्त मे वह युद्ध-मंत्रि-मण्डल का सदस्य नियुक्त किया गया और १ सितम्बर १९३९ को हिटलर ने उसे अपना उत्तराधिकारी नामज़द किया। 'मक्खन नही बन्दूक' का नारा इसने बुलन्द किया और इस प्रकार जर्मन जाति को जीवनोपयोगी वस्तुओ की मितव्ययिता का पाठ पढाकर बचत को हथियारो मे लगवा दिया। गोरिंग् शान-शौकत और विलासितापूर्ण जीवन के लिए मशहूर है।
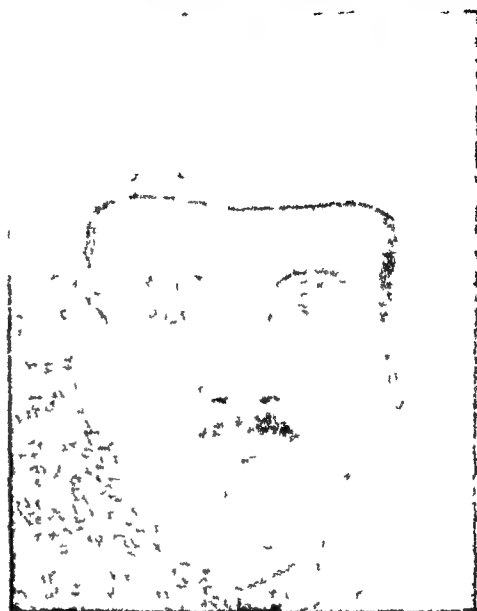
गोविन्ददास, सेठ—जबलपुर के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता तथा हिन्दी के नाटककार भी। सन् १९२१ से आप कांग्रेस-क्षेत्र मे हैं। सन् १९३४ मे कांग्रेस की ओर से केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य चुने गये। 'लोकमत' हिन्दी दैनिक की सन् १९२९ में स्थापना की। पीछे पत्र बन्द होगया। सन् १९३० के और १९४० के सत्याग्रह मे भाग लिया तथा जेल गये। १९२४-३० मे स्वराज्य-दल की ओर से कौंसिल आफ् स्टेट् के सदस्य चुने गये। सन् १९३९ मे त्रिपुरी मे कांग्रेस-अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे। हिन्दी मे कई नाटक लिखे हैं। एकाकी नाटकों के लिखने मे प्रसिद्धि पा चुके हैं। आप गान्धीवादी नेता हैं।
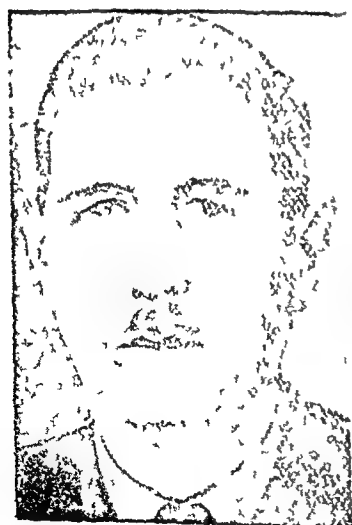
गौल, जनरल डी—यह फ्रान्स के सैनिक अधिकारी थे। इस समय आप अधिकृत तथा

पराजित फ्रान्स को छोड़कर लन्दन मे हैं। आपने यह घोषणा की है कि फ्रान्स का जर्मनी से युद्ध अभी जारी है, मार्शल पेतॉ द्वारा फ्रान्स के साथ जो अविराम संधि हुई है उसे फ्रान्सीसी जनता ने स्वीकार नही किया है। आप 'स्वतंत्र' फ्रान्स के प्रतिनिधि हैं। कुछ सेना भी फ्रान्स के पतन के बाद आपके साथ इँगलैण्ड चली आई थी जो अब अँगरेज़ो के साथ धुरी-सेनाओ से वीरतापूर्वक लड रही है।

च

चर्चिल, राइट आनरेब्ल् विन्स्टन लियोनार्ड स्पेन्सर—जन्म ३० नवम्बर सन् १८७४। हैरो तथा सेंडहर्स्ट मे शिक्षा पाई। सन् १८६५ मे सेना मे भर्ती होगये। दो युद्धो मे भाग लिया। दक्षिण अफ्रीकी-युद्ध मे 'मार्निंग् पोस्ट' के युद्ध-सवाददाता रहे। बोअरों ने इन्हे युद्ध-बन्दी बना लिया, लेकिन आप भाग निकले। १६०० मे अनुदार-दल की ओर से कॉमन-सभा के सदस्य चुने गये। जोसफ़ चेम्बरलेन की तटकर (टैरिफ) नीति का विरोध किया तथा मुक्त-व्यापार का समर्थन। उदार-दल मे शामिल हो गये। १६०५ मे उपनिवेशो के उपमंत्री नियुक्त किये गये और १६०८ मे व्यापार-बोर्ड के अध्यक्ष। सन् १६१२ मे आइरिश होम रूल बिल का समर्थन किया। इसके बाद नौसेना विभाग के मंत्री बनाये गये। सन् १६१५ मे उन्होने मंत्रि-मण्डल से, मतभेद के कारण, त्यागपत्र दे दिया। फ्रान्स में युद्ध-मोर्चे पर भाग लेने गये। कर्नल बनकर काम किया। १६१७ मे अस्त्र-शस्त्र-विभाग के मंत्री बनाये गये। सन् १६१८-२१ तक युद्ध-मंत्री तथा हवाई-सेना-विभाग के मंत्री रहे। सन् १६२१-२३ मे उपनिवेशों के मंत्री रहे। १६२२ मे आयरलैण्ड से हुए समझौते का समर्थन किया। इसके बाद

वह पक्के बोल्शेविक-विरोधी बन गये। उनके विचारों में उदारदली लिबरलों को घृणा होगई। सन् १६२२ में आपने डंडी निर्वाचन-क्षेत्र से, इस कारण, चुनाव में सफल न हो सके। कुछ समय तक क्रियात्मक राजनीति से अलग रहे। युद्ध के संबंध में उन्होंने अपना महान् ग्रन्थ "संसार-संकट" (The World Crisis) लिखा। यह ६ भागों में प्रकाशित हुआ। सन् १६२४ में उन्होंने फिर राजनीति में प्रवेश किया, अनुदार-दल में शामिल हुए और उसकी ओर से ऐपिंग् क्षेत्र से पार्लमेंट के सदस्य चुने गये। तब से बराबर सदस्य हैं। बाल्डविन-सरकार में आप अर्थमंत्री रहे। सन् १६३० से वर्तमान युद्ध के आरम्भ तक उन्होंने मंत्रि-मण्डल में कोई पद ग्रहण नहीं किया। परन्तु वैदेशिक नीति के संचालन में बहुत दिलचस्पी लेते रहे। इन दिनों के चर्चिल के भाषणों और लेखों की जनता ने बहुत दाद दी और अपनी दूरदर्शिता के लिये तो वह पहले ही नाम पा चुके थे। १६३३ तक वह फ्रान्स के निःशस्त्रीकरण के विरोधी रहे, किन्तु यह भी कहते रहे कि जर्मनी की शिकायतों को रफा किया जाय। सन् १६३६ में जर्मनी में नाजीवाद का दौरदौरा होते ही चर्चिल ने कहा कि खबरदार, एक बड़ा खतरा आ रहा है, और उन्होंने बरतानिया की सभी खासकर हवाई ताक़त बढ़ाई जाने पर ज़ोर दिया। उन्होंने बता दिया कि हिटलर अब मध्य यूरोप में बढ़ेगा और वह सारी दुनिया पर छा जाना चाहता है। सन् १६३८ में आपने ईडन तथा डफ कूपर के साथ म्युनिख समझौते को नामज़ूर किया। सन् १६३६ में युद्ध-मंत्रि-मण्डल में चर्चिल नौ-सेना-विभाग के मंत्री नियुक्त किये गये। मई १६४० में जब चेम्बरलेन ने त्यागपत्र दे दिया तब आप ब्रिटेन के प्रधान मंत्री बने। तब से आप बराबर बड़े धैर्य तथा वीरता के साथ ब्रिटिश-साम्राज्य को जर्मनी तथा इटली और अब जापान के आक्रमणों का मुक़ाबला करने के लिये तैयार कर रहे हैं। किंतु आपके प्रधान-मन्त्रि-काल में एक दो दफा हार हुई और इसी कारण आप पर दो बार पार्लमेण्ट में अविश्वास

का प्रस्ताव भी आचुका है, पर आपके दल की विजय होती रही है। चर्चिल एक श्रेष्ठ और प्रभावशाली वक्ता ही नही एक उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ और लेखक भी हैं। भारत के आप विकट विरोधियो में हैं। सन् १९३१ मे जब गान्धी-इर्विन समझौता हो रहा था तब आप बहुत बिगड़े थे, और कहा था कि अफसोस है कि एक अधनंगा फ़क़ीर वाइसराय के महल पर चढ़ता है।

चतुर्दश सिद्धान्त—संयुक्त-राज्य अमरीका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने अमरीका की कांग्रेस के समक्ष, ८ जनवरी १९१८ को, अपना ऐतिहासिक भाषण दिया, जिसमे उन १४ सिद्धान्तो का उल्लेख किया जिनके आधार पर जर्मनी के साथ मित्र-राष्ट्र संधि कर सकते हैं।

वे चौदह सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं:—

(१) संधि प्रकाश्य रूप मे हो। गुप्त रूप से कोई बात तय न की जाय।

(२) समुद्रो पर आवागमन की स्वाधीनता सबको रहे।

(३) आर्थिक प्रतिबंधो का परित्याग किया जाय।

(४) निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त मे विश्वास। शस्त्रीकरण इतना कम कर दिया जाय कि प्रत्येक राष्ट्र के पास केवल उतनी ही सेना रह जाय जितनी उसकी रक्षा के लिये आवश्यक है।

(५) औपनिवेशिक दावो का निष्पक्ष रीति से निर्णय हो।

(६) रूसी अधिकृत-प्रदेश रूस को वापस दे दिया जाय तथा उसको स्वभाग्य-निर्णय का पूरा अधिकार रहे।

(७) बेलजियम से जर्मन-सेनाएँ वापस करली जायँ तथा उसे पूर्वावस्था मे कर दिया जाय।

(८) जिन फ्रान्सीसी प्रदेशो पर जर्मनों का अधिकार है, वह तथा अल्सेस लोरेन प्रदेश फ्रान्स को दे दिये जायँ।

(९) इटली की सीमाएँ स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दीजायँ।

(१०) आस्ट्रिया-हंगरी की प्रजा को स्व-शासन-विकास का पूरा सुयोग प्राप्त हो।

(११) रूमानिया, सर्विया, मोन्टीनिग्रो से जर्मन आधिपत्य वापस किया जाय। सर्विया की समुद्री-तट तक पहुँच स्वीकार की जाय। बल्कान राज्यों के

पारस्परिक सबध, उनकी ऐतिहासिक परम्परा के आधार पर, निर्धारित किये जायँ। उनकी सुरक्षा के लिये अन्तर्राष्ट्रीय निश्चित आश्वासन दिया जाय।

(१२) तुर्किस्तान के ग़ैर-तुर्की प्रदेशों में स्व-शासन का विकास किया जाय। दरेदानियाल मे होकर स्वतत्र मार्ग हो।

(१३) स्वतत्र पोलिश राज्य स्थापित किया जाय और उसकी सीमा समुद्र-तट तक हो। उसकी रक्षा के लिये अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी रहे।

(१४) समस्त राष्ट्रों की एक सभा स्थापित की जाय जो छोटे-बड़े सभी राज्यों की सुरक्षा के लिये दायी हो।

इनमे सिद्धान्त-सख्या १, ३, ४, ५ और ६ को, सन्धि करते समय, अमल मे नही लाया गया। शेष सिद्धान्तों का पालन भी आशिक किया गया।

चातुर्वर्षीय-योजना—सोवियट रूस की पंच-वर्षीय योजना का अनुकरण कर जर्मनी ने, अपने आर्थिक-विकास तथा औद्योगिक उन्नति के लिये, एक चातुर्वर्षीय योजना, सन् १९३३ मे, कोयला, लोहा, तेल, आदि व्यवसायो की उन्नति के लिये बनाई। इस योजना मे भवन-निर्माण, सड़क-निर्माण आदि शामिल थे। वास्तव मे यह योजना स्थगित कर दीगई और शस्त्रीकरण ज़ोरों के साथ आरम्भ किया गया, जिससे जर्मनी की बेकारी में भी बहुत कमी होगई। सितम्बर १९३६ मे हिटलर ने दूसरी चातुर्वर्षीय योजना की घोषणा की। यह योजना सन् १९३७ से १९४० तक के लिये बनाई गई थी। इस योजना मे उद्योगो के विकास पर ज्यादा ज़ोर दिया गया था। हिटलर जर्मनी को औद्योगिक दृष्टि से स्वाश्रयी बनाना चाहता था। यह योजना पूरी भी न होपायी थी कि यूरोप मे जर्मनी ने युद्ध शुरू कर दिया।

चियांग् काई-शेक—चीन के प्रधान सेना-नायक तथा राष्ट्रीय नेता। चियाग् काई-शेक का, चेकियाग् मे, सन् १८८८ मे, जन्म हुआ। इनके पिता शराब के व्यापारी थे। जब इनकी आयु २० वर्ष की थी, तब उत्तरी चीन की एक मिलिटरी ऐकेडेमी (सैनिक शिक्षण-सस्था) मे भरती हो गये। इनकी सैनिक शिक्षा जापान मे समाप्त हुई, जहाँ डा० सन यात-सेन से इनकी भेट होगई। तबसे इन्होने क्रान्तिकारी-दल मे प्रवेश किया तथा को मिन ताग् (चीनी प्रमुख राष्ट्रीय सस्था) के सदस्य बनगये। सन् १९११,१९१२ और

१९१७ की चीनी क्रान्तियो मे भाग लिया। सन् १९१७ से १९२२ तक डा० सन यात-सेन के सहयोगियो मे रहे। सन् १९२३ मे मास्को मिलिटरी ऐकेडेमी मे गये। सन् १९२४ मे कैन्टन के पास व्हाम्पू में चीनी मिलिटरी ऐकेडेमी के अध्यक्ष हुए। इस संस्था के सैनिको को सगठित कर आपने, सन् १९२५ मे, दक्षिण-चीन के प्रतिद्वन्द्वी जनरलो के विद्रोह का दमन किया। जब डा० सन यात-सेन की मृत्यु होगई तो चियांग् को मिन तांग् के नेता होगये। साम्यवादियो (Communists) से सहयोग किया, प्रमुख सेनापति (Generalissimo) बने, और सन् १९२६ मे शघाई पर आधिपत्य जमा लिया। मार्च १९२७ मे उनका साम्यवादियो से तीव्र मतभेद होगया, अतएव शघाई मे आपने बहुसख्या मे उनका वध किया। चियांग् ने नानकिग मे राष्ट्रीय सरकार की स्थापना, पुरानी साम्यवादी को मिन ताग्-सरकार का विरोध करने के उद्देश्य से, की। अन्त मे दोनो सरकारे मिल गई और चियांग् को अधिनायक स्वीकार किया गया। उत्तरी चीन की विजय के लिये प्रस्थान किया और सन् १९२८ मे चियांग् काई-शेक ने वहॉ के सैनिक सर्वेसर्वा मार्शल चाग् सो-लिन को पराजित किया और सम्पूर्ण चीन देश नानकिंग्-सरकार के अधीन कर दिया। इस तरह चियाग् प्रधान मन्त्री और अधिनायक होगये। परन्तु गृह-कलह जारी रहा। सन् १९३१ मे चियांग् ने प्रधान-मन्त्री के पद से त्याग-पत्र दे दिया। सन् १९३२ मे वह फिर उसी पद पर नियुक्त किये गये। साम्यवादी सेनाऍ और कैन्टन मे स्थापित वामपक्षीय सरकार इस समय चियाग् का विरोध कर रहे थे। साम्यवादियो ने दक्षिण के दो प्रान्तो मे सोवियट-शासन स्थापित कर लिया था। चियांग् ने इन प्रान्तो पर सात बार चढ़ाई की और सन् १९३४ मे उन्हे परास्त कर दिया। कम्युनिस्ट सेना भाग तो गई पर उसने पश्चिम के केज़ेकुआन प्रान्त मे जाकर सोवियट सत्ता स्थापित करदी। इसके बाद चियांग् ने जापानियो के साथ समझौता करने की कोशिश की, जिन्होंने मचूरिया पर क़ब्ज़ा कर लिया था तथा शंघाई पर आक्रमण कर दिया था। सन् १९३६ मे चियाग् को एक प्रतिद्वन्द्वी जनरल ने पकड लिया, परन्तु बाद में समझौता होगया और वह छोड दिये गये। जब जुलाई १९३७ मे जापान ने चीन पर हमला किया तब चियांग् काई-शेक ने प्रधान मन्त्री पद से त्याग-पत्र दे

दिया और प्रमुख सेनापति का पद ग्रहण किया ताकि जापान का पूरी तरह मुक़ाबला किया जा सके।

चियाग् काई-शेक ने चीनी राष्ट्र में नवचेतन तथा राष्ट्रीयता को जगा दिया है। वह बड़ी दृढता, वीरता और धैर्य के साथ जापानियो का मुक़ाबला कर रहे हैं। जब दिसम्बर १६३७ मे नानकिंग् का पतन होगया तब उन्होंने चुगकिंग् को अपनी राजधानी बनाया। उनकी धर्मपत्नी, श्रीमती मे-लिंग् सूग्, का भी चीन के राष्ट्रीय सघर्ष मे प्रमुख स्थान है। फरवरी १६४२ मे मार्शल चियाग् श्रीमती चियाग् काई-शेक सहित भारत आये। वह भारत के वाइसराय के अतिथि बने। उन्होंने महात्मा गान्धी, प० जवाहरलाल नेहरू, मौ० आज़ाद तथा मि० जिन्ना आदि नेताओ से भेट की। आपके आगमन से भारत और चीन का पुरातन सास्कृतिक-नैतिक सम्बन्ध, राजनीतिक-सम्बन्ध के रूप मे, और भी दृढ़ हुआ है।

चीन—चीनी-प्रजातन्त्र। चीनी भाषा मे इसे 'चुग् हुआ मिन को' कहते हैं। मुख्य चीन मे १८ प्रान्त हैं तथा क्षेत्रफल १५,३३,००० वर्गमील है। इसमे मगोलिया, सिकियाग्, तिब्बत (जो १६१२ ई० तक चीन के अधीन था और अब स्वतन्त्र है) तथा मन्चूरिया—इन विवादास्पद बाहर के देशो को शामिल करके क्षेत्रफल ४२,७८,००० वर्गमील होजाता है। मुख्य चीन की जनसख्या ४०,००,००,००० है, और यदि उपर्युक्त देशो की जनसख्या भी शामिल की जाय, तो ४५,८०,००,००० हो जायगी। सन् १६११ मे जब चीन मे क्रान्ति हुई, और फलतः मचू राजवश के एकतन्त्र शासन का अन्त होकर प्रजातन्त्र की स्थापना हुई तब से चीन मे स्थायी रूप से गृह-कलह होता रहा। प्रजातन्त्र के सर्वप्रथम पुरातन-पन्थी राष्ट्रपति मार्शल यूआन शि-काई का दक्षिणी चीन के प्रजातन्त्रवादी नेता डा० सन यात-सेन ने विरोध किया। सन् १६१५ में मार्शल यूआन ने अपने को चीन का सम्राट् घोषित दिया। परन्तु थोड़े समय बाद ही उसका देहान्त होगया। क्रान्ति के

परम्परागत केन्द्र दक्षिण-चीन की राजधानी नानकिंग् मे डा० सन यात-सेन ने प्रगतिशील प्रजातन्त्र-शासन की स्थापना की। चीन के उत्तरी तथा दक्षिणी प्रान्तो मे सदैव संघर्ष रहा है। वर्षों गृह-कलह चला; उत्तर और दक्षिण प्रदेश ही नहीं लडते रहे, बल्कि अनेक सेनापति अपने प्रभाव के प्रान्तों मे शासन स्थापित करते और एक-दूसरे से लडते रहे। सन् १६२३ में डा० सन यात-सेन ने को मिन ताग्—चीन की राष्ट्रीय क्रान्तिकारी-सस्था—का, सोवियट सलाहकार बोरोडिन के सहयोग से, सगठन किया। तब से सोवियट रूस बराबर चीन की राज-क्रान्तियो मे दिलचस्पी लेता रहा है। सन् १६३१ और १६३२ में चीन का नया शासन-विधान बनाया गया। को मिन तांग् की राष्ट्रीय-कांग्रेस सर्वोच्च राष्ट्रीय सत्ता है। कांग्रेस केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति (Central Executive Committee) की नियुक्ति करती और यह समिति राष्ट्रीय सरकार बनाती है। सरकार के पॉच विभाग हैं—(१) शासन-प्रबन्ध, (२) व्यवस्था (क़ानून), (३) न्याय, (४) परीक्षा, (५) नियत्रण। यह विभाग 'यूआन' कहलाते हैं। शासन-प्रबन्ध-विभाग ही वास्तव मे सरकार है और इसके प्रमुख का पद दूसरे देशों के प्रधान-मत्री के बराबर है। इसके अतिरिक्त एक राज-परिषद् (State Council) भी है। यह सरकार की सर्वोच्च संस्था है। इसका अध्यक्ष ही राष्ट्रीय सरकार का राष्ट्रपति होता है। शासन-प्रबंध-विभाग के अध्यक्ष चीन के एक महाजन (बेंकर) डा० कुग् हैं, जो च्यांग काई-शेक के साढू हैं। स्वर्गीय डा० सन यात-सेन से भी उनका यही नाता था।

जब चीन में आन्तरिक कलह कुछ शान्त होगया, तब बाहरी आक्रमण होने लगे और जापान ने उस पर हमला कर दिया। सन् १६३१ मे जापान ने चीन के मंचूरिया प्रान्त पर अधिकार जमा लिया और वहाँ दिखावटी मन्चूको राज्य की स्थापना कर दी। सन् १६३२ मे शंघाई मे दोनों मे भयकर युद्ध हुआ। च्यांग् काई-शेक ने समझौता कर लिया, क्योंकि वह जापान के भावी अनिवार्य आक्रमण के मुक़ाबले के लिये, जो समस्त चीन को हड़प जाने के इरादे से था, चीन की छिन्नभिन्नता को नष्ट कर एकता और संगठन पैदा करना चाहते थे। और इसके लिये समय और शान्ति की आवश्यकता थी। सन्धि हो गई, परन्तु जुलाई १६३७ मे ७ ता० को चीनी जापानी सिपा-

हियो मे हुई ज़रा-सी मुठभेड का एक बहाना लेकर जापान ने चीन से युद्ध छेड दिया। जापानी सेना ने चीन के एक विशाल प्रदेश सहित, दिसम्बर १६३७ मे, चीन की राजधानी नानकिंग् पर अधिकार जमा लिया और वहाँ वाग् चिंग्-वी की अध्यक्षता मे खिलौना-सरकार बना दी। चीन-सरकार अपनी राजधानी दक्षिण-पश्चिमी चीन के चुग्किंग् नगर मे उठा ले गयी। ब्रह्मा (बर्मा) से चुग्किंग् तक एक सडक बनाई गई थी। यह बर्मा-रोड कहलाती है, जिसे १६४२ के अप्रैल तक चीन-सरकार इस्तेमाल करती रही; किन्तु अप्रैल मे, ब्रह्मा के पतन के साथ, यह सडक भी जापानियों के अधिकार मे चली गई। जगी रसद और दूसरा अमरीकी और बरतानवी सामान आदि इसी मार्ग से चीन को जाता था, क्योंकि चीन के समुद्र-तटवाले प्रदेशों पर जापानियों का प्रभुत्व है। चीनी साम्यवादियो ने पुराने भेदभाव को भुलाकर, देश की आजादी की प्रेरणा से प्रभावित होकर, जनरलिस्सिमो चियाग् से समझौता कर लिया है और अपनी सेनाएँ, जापानियों से लडने के लिये, उनकी कमान (Command) मे दे दी हैं, पर देश के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध मे उनका आन्तरिक मतभेद है। चीन के साथ सोवियट रूस की सबसे अधिक क्रियात्मक सहानुभूति पहले से रही है। ब्रिटेन और सयुक्त-राज्य अमरीका भी, अपने हितों की रक्षा के लिये, चीन की सहायता-सहानुभूति पीछे से करने लगे हैं और आज रूस के साथ चीन की भी साथी मुल्कों (United Nations) मे गणना करते हैं। भारत और चीन का तो पुरातन सास्कृतिक सम्बन्ध है। सन् १६३६ मे प० जवाहरलाल नेहरू चियाग् काई-शेक तथा अन्य नेताओं से भेट करने चीन गये। उन्होंने चीन का भ्रमण भी किया तथा भारत का सदेश सुनाया। आपके ही प्रयत्न से, काग्रेस की ओर से, एक डाक्टरी सेवा-दल चीनी रणक्षेत्र पर भेजा गया था। अँगरेजों की ४५,००,००,००० पौंड की पूँजी चीन के उद्योगधन्धो और व्यवसायो मे और सयुक्त-राज्य अमरीका की ४०,००,००,००० डालर की पूँजी चीन के उद्योगो मे लगी हुई है। चीन ही अकेला ससार मे सबसे बडा पिछडा प्रदेश है जिसका अभी तक यूरोपीय देश बँटवारा नही कर सके हैं। इसलिये चीन पर आज समस्त

 देशों की दृष्टि लगी हुई है। चीन के मचूरिया (मचूको)

प्रदेश पर जापान का, वाह्य मंगोलिया पर सोवियट रूस का, आन्तरिक मगोलिया पर जापान का, सिंकियांग् पर सोवियट रूस का इस समय नियंत्रण है। यह सभी प्रदेश चीन के अधिकार से पहले या पीछे निकल चुके है, पर चीन इन पर अपना आधिपत्य चाहता है। चीन-जापान-युद्ध मे, ७ जुलाई '४२ ई० तक, पिछले पॉच साल के युद्ध-काल में, २५ लाख जापानी और ३५ लाख चीनी मारे जा चुके हैं। धन-हानि भी अतुल हुई और हो रही है।

चेम्बरलेन, हौस्टन स्ट्युअर्ट—जर्मन राजनीतिक लेखक। राष्ट्रीय-समाजवाद के व्याख्याकार। सन् १८५५ मे जन्म हुआ। वर्साई और जिनेवा मे शिक्षा प्राप्त की। अन्ना हार्स्ट के साथ १८७८ मे विवाह किया। रिचार्ड वैगनर पर जर्मन तथा फ्रेंच भाषाओ मे पुस्तके लिखी। वियना मे रहकर अपनी प्रधान कृति 'उन्नीसवीं शताब्दी की बुनियादे' जर्मन भाषा मे लिखी।

सन् १६०८ में उन्होंने वैगनर की पुत्री से दूसरा विवाह किया। सन् १६२७ में उनका देहान्त होगया। हिटलर को अपने उत्थान में उनकी कृतियों से बड़ी प्रेरणा मिली है।

चेम्बरलेन, राइट आनरेब्ल् (Rt Hon) नेविल—सन् १८६६ में जन्म हुआ। जोसफ चेम्बरलेन के पुत्र। रग्बी और मैसन कालिज बर्मिंघम में शिक्षा प्राप्त की। सन् १६११ में बर्मिंघम की कौंसिल के सदस्य बन गये और सन् १६१५ में उसके मेयर। यहाँ उन्होंने भवन-निर्माण तथा व्यवस्था के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया। सन् १६१८ में कॉमन-सभा के सदस्य चुने गये। सन् १६२२ में पोस्ट मास्टर जनरल हुए तथा १६२३ में स्वास्थ्य-मंत्री। सन् १६२३ के भवन-निर्माण-व्यवस्था कानून के बनाने में इन्हींका हाथ था। अस्वास्थ्यकर तथा गंदे मकानों को नष्ट कराकर नये ढंग से स्वास्थ्यप्रद मकान बनवाने की योजना बनाई। सन् १६३१ में अर्थ-मंत्री नियुक्त किये गये। २८ मई १६३७ को जब बाल्डविन ने त्याग-पत्र दे दिया तब बरतानवी साम्राज्य के प्रधान मंत्री हुए। ३१ अगस्त १६३७ को आप ब्रिटिश पार्लमेंट में अनुदार दल के नेता चुने गये।

चेम्बरलेन की वैदेशिक नीति का मूलाधार सोवियट रूस का बहिष्कार, समाजवादी-अभिमत का विरोध तथा जर्मनी एवं इटली के अधिनायकों के साथ ऐसा व्यवहार था जिससे वे सन्तुष्ट होजायँ और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना में सहायता दें। अपनी इस नीति का पालन करने में उन्होंने बड़ी तत्परता से काम लिया। इटली को प्रसन्न करने के लिये उन्होंने, सन् १६३५ में, उसके विरुद्ध राष्ट्र संघ द्वारा जारी की गई आर्थिक-दण्डाज्ञा का प्रयोग,बन्द कर दिया और ऐन्थनी ईडन, वैदेशिक-मंत्री, को अपना पद छोड़ना पड़ा। स्पेन के गृह-युद्ध में ब्रिटेन को तटस्थ रखा, जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया के अपहरण पर मौन धारण किया, चैकोस्लोवाकिया को कोई मदद नहीं दी तथा तीन बार हवाई यात्रा करके हिटलर से मिले और म्युनिख में समझौता किया। जब मार्च १६३६ में हिटलर ने सम्पूर्ण चैकोस्लोवाकिया को अपने आधिपत्य में ले लिया तब उनकी आँखें खुलीं और तब से उन्होंने हिटलर के ... का विरोध करने का विचार किया। ब्रिटेन ने पोलेण्ड, रूमानिया,

यूनान और तुर्की को आक्रमणो से रक्षा करने का वचन दिया। रूस से भी मेल करने का प्रयत्न किया, परन्तु इस दिशा मे हार्दिक प्रयत्न नही किया गया। उन्होने शान्ति की रक्षा के लिये ब्रिटेन के शस्त्रीकरण पर ज़ोर दिया। जब १ सितम्बर १६३६ को जर्मनी ने पोलैण्ड पर हमला किया तो ब्रिटेन ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। पोलैण्ड के प्रश्न पर भी चेम्बरलेन ने अगस्त १६३६ के अन्तिम सप्ताह मे समझौता करने का भारी प्रयत्न किया। परन्तु हिटलर के आक्रमण से वह विचलित होगये और हिटलरवाद की कडे शब्दो मे निंदा की। उन्होने युद्ध के बाद तुरन्त ही अपने भाषण मे कहा कि ब्रिटेन का उद्देश्य नात्सीवाद का सर्वनाश करना है।

मई १६४० मे नार्वे मे ब्रिटिश-सेना की भारी पराजय से ब्रिटेन तथा मित्र-राष्ट्रो की जनता मे घोर नैराश्य छागया। कॉमन-सभा मे चेम्बरलेन की नीति तथा युद्ध-सचालन की कडे शब्दो मे निदा की गई। पार्लमेंट का बहुमत उनके विरुद्ध होगया और जो सदस्य सरकार के समर्थक थे वे विरोधी दल मे मिल गये। युद्ध-मत्री आदि ने मि० चेम्बरलेन का साथ देना बन्द कर दिया। अतः चेम्बरलेन को प्रधान-मत्रित्व से त्याग-पत्र देना पडा। विन्स्टन चर्चिल प्रधान मंत्री नियुक्त किये गये। चेम्बरलेन कौसिल के लार्ड प्रेसी-डेन्ट नियुक्त किये गये। परन्तु स्वास्थ्य ख़राब होजाने के कारण उन्होने ३ अक्टूबर १६४० को इस पद से त्याग-पत्र दे दिया। ६ नवम्बर १६४० को चेम्बरलेन का देहान्त होगया।
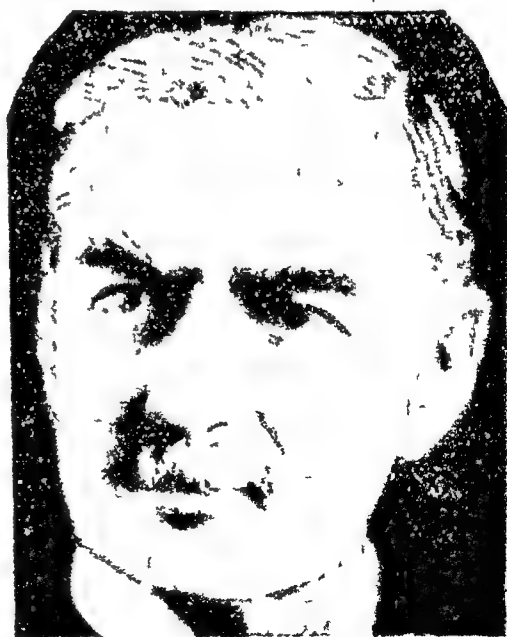
चैकोस्लोवाकिया—यह देश गत महायुद्ध के बाद आस्ट्रिया के पूर्वाधिकृत प्रान्तों बोहेमिया, मोराविया, साइलेशिया और हंगरी के पूर्वाधिकृत स्लोवाकिया

और रूस के लघु कारपेथियन प्रान्तों को मिलाकर बनाया गया था। इसका क्षेत्रफल १६३८ ई० मे ५२,००० वर्गमील और जनसख्या १,५०,००,००० थी। यह प्रजातत्र राज्य था। इसमे कई अल्प-सख्यक जातियाँ हैं, परन्तु चैक जाति बहुमत मे थी। उनकी सख्या ७०,००,००० हैं। स्लोवाक ३०,००,००० से भी कम हैं। चैक यह कहते थे कि चैक और स्लोवाक मिलकर एक राष्ट्र बन जाय। परन्तु स्लोवाक इसके विरुद्ध थे। वह पृथक् राष्ट्र बनाना चाहते थे। मोराविया और बोहेमिया के सीमान्त प्रदेशो (सूडेटनलैण्ड) मे ३२,५०,००० जर्मन रहते थे जो और भी अधिक अधिकार चाहते थे। इनके अतिरिक्त ७,००,००० हगेरियन और ५,५०,००० रूथानियन या यूक्रेनियन थे। इन अल्पसंख्यक जातियो को यद्यपि राजनीतिक और क़ानूनी समान अधिकार प्राप्त थे, तथापि गैर-चैक प्रजा के साथ भेदभाव का बर्ताव किया जाता था, और इसीकी इन सब अल्पसख्यकों को शिकायत थी। जब सन् १६३३ मे हिटलर ने जर्मनी का शासन-भार ग्रहण किया, तब सूडेटनलैण्ड मे जर्मनो ने आन्दोलन शुरू किया। इनका नेता हैनलीन था। सूडेटन जर्मनो ने यह माँग पेश की कि उन्हे चैकोस्लोवाकिया मे स्वराज्य दे दिया जाय। ब्रिटिश मध्यस्थ संसीमैन के प्रभाव से चैकोस्लोवाकिया की सरकार ने सूडेटन जर्मनों को स्वराज्य दे दिया। परन्तु फिर भी हैनलीन तथा हिटलर ने यह माँग पेश की कि सूडेटन ज़िलो को जर्मनी मे मिलाने की बात को चैक स्वीकार करे। सूडेटनलैण्ड मे घोर सघर्ष और उपद्रव मचा। परन्तु ग्रेटब्रिटेन, फ्रान्स और रूस ने, जिन्होने चैकोस्लोवाकिया की रक्षा के लिए वचन दिया था, और जो उनकी सहायता पर निर्भर था, उसका परित्याग कर दिया। तब म्युनिख मे समझौता हुआ और चैकोस्लोवाकिया को सूडेटनलैण्ड जर्मनी को दे देने के लिये बाध्य किया गया। म्युनिख समझौते के बाद हगरी और पोलैण्ड ने भी माँगे पेश की और अपने-अपने प्रदेशो को वापस ले लिया। इस प्रकार चैकोस्लोवाकिया का अग-भंग हुआ। राष्ट्रपति बेनेश ने त्यागपत्र दे दिया। क़िसानवादियो के एक दल ने शासन-सत्ता अपने हाथ मे ले ली। चैक, स्लोवाक तथा रूथानियन सरकारो ने मिलकर एक संघ-राज्य स्थापित किया। अब जर्मनी ने यह आग्रह किया कि संघ-राज्य नात्सी नीति को अपनावे और उसने १० मार्च

१९३९ को स्लोवाको को उत्तेजित किया और विद्रोह कराया। उन्होने पूर्ण स्वतंत्रता की माँग पेश की। हिटलर को यह अच्छा बहाना मिल गया, उसने कहा कि यह विद्रोह जर्मनी की शान्ति के लिये एक ख़तरा है। अतः १५ मार्च १९३९ को जर्मन फ़ौजो ने चैकोस्लोवाकिया मे प्रवेश किया। इसका कोई विरोध या प्रतिरोध नही किया गया। चैकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति हाशा तथा अन्य मंत्रियों से ज़बरदस्ती एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर कराये गये, जिसके अनुसार चैकोस्लोवाकिया के शेष भाग बोहेमिया, मोराविया और चैक प्रान्तो को, जर्मन-संरक्षण मे, जर्मनी में मिला लिया गया। स्लोवाक को भी इसी प्रकार का संरक्षित 'स्वतत्र' राज्य बना दिया गया। चैक सेना को निःशस्त्र कर दिया गया। चैक प्रजा के इस बलिदान ने संसार की आँखे खोल दी और नात्सीवाद का भयंकर रूप प्रकट होगया। डा० बेनेश लन्दन चले गये। वहाँ जाकर उन्होने चैकोस्लोवाकियन राष्ट्रीय समिति बनाई है, जिसे मित्र-राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया है और उसे चैक प्रजा की प्रतिनिधि मानते हैं। यह समिति देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील है।

चौटेम्स, कामिली—फ्रान्स के राजनीतिज्ञ। जन्म सन् १८८५ मे हुआ। पहले कुछ दिनो वकालत की। सन् १९०४ से फ्रान्स की पार्लमेंट के सदस्य रहे। सन् १९२४ मे गृहशासन-विभाग के मत्री थे। सन् १९३० मे, २४ घन्टे के लिये, प्रधान मंत्री बने। सन् १९३३ तक न्याय-मंत्री तथा शिक्षा-मंत्री रहे। तबसे २७ जनवरी १९३४ तक प्रधान-मंत्री रहे। जून १९३७ से मार्च १९३८ तक दुबारा प्रधान-मत्री रहे।

मार्च १९३८ से रिनो सरकार में वह उप-प्रधान-मन्त्री थे।

ज

जनतंत्रवाद—जनतत्र से प्रयोजन ऐसी प्रणाली से है जिसका सचालन जनता के हाथ मे हो। जनतत्र प्रत्यक्ष होता है और अप्रत्यक्ष भी। प्रत्यक्ष जनतत्र मे सब जनता भाग लेती है और प्रत्यक्षतः शासन-प्रबध मे हाथ बटाती है। अप्रत्यक्ष जनतत्र मे जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियो की परिषद् द्वारा शासन-सचालन मे भाग लेती है। भारत मे जनतत्र अत्यन्त प्राचीन सस्था रहा है। वैदिक युग मे यहाँ जनतत्र शासन-प्रणाली स्थापित थी। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् डा० काशीप्रसाद जायसवाल, वैरिस्टर, ने अन्वेषण के बाद यह सिद्ध किया है कि प्राचीन वैदिक युग मे भारत मे जनतत्र-प्रणाली प्रचलित थी। उन्होने इस विषय पर "हिन्दू राजतत्र" नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ भी लिखा है।

आइसलैण्ड मे प्रायः १००० वर्ष से जनतत्र शासन-पद्धति स्थापित है। इँगलैण्ड मे १४वी शताब्दी मे जनतत्रात्मक सस्थाओ का विकास हुआ। जब १८वी शताब्दी मे फ्रान्स तथा अमरीका मे राज्य-क्रान्तियाँ हुईं तब, आधुनिक अर्थ मे, जनतत्र-शासन की वहाँ स्थापना की गई। जनतत्र इस ॲगरेज़ी सिद्धान्त पर आश्रित है कि सत्ता को तीन विभागों मे विभाजित किया जाय: (१) व्यवस्था, (२) शासन-प्रबन्ध और (३) न्याय। आज ससार मे दो प्रकार के जनतत्र मौजूद हैं। एक वह जिनमे सरकार व्यवस्थापिका-सभा (क़ानून बनानेवाली धारा सभा) के प्रति उत्तरदायी होती है। इसे हम ब्रिटेन मे पूर्णरूपेण विकसित पाते हैं। दूसरी वह है जिसमे सरकार व्यवस्थापिका-सभा के प्रति उत्तरदायी नही होती। वह केवल जनता या मतदाताओ के प्रति उत्तरदायी होती है। सयुक्त-राज्य अमरीका यही प्रणाली प्रचलित है। सफल जनतंत्र के लिये दो या अधिक राजनीतिक

दलों की विद्यमानता ज़रूरी है। जिस देश मे केवल एक ही राजनीतिक दल हो उसमे जनतंत्र का विकास नही हो सकता। जनतंत्र मे व्यक्तियो की नागरिक स्वाधीनता, नागरिक समता, सामूहिक रूप से उन्नति तथा सबका सुख निहित है। यही कारण है कि प्रजातंत्र मे व्यक्तिगत स्वाधीनता, जीवन-रक्षा की स्वाधीनता, विचार-स्वाधीनता, मत-प्रकाशन की स्वाधीनता, समाचार-पत्रो की स्वाधीनता, सभा-सम्मेलन करने की स्वाधीनता, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक और व्यावसायिक स्वाधीनता शामिल हैं। इस समय संयुक्त-राज्य अमरीका, ब्रिटेन और ब्रिटिश उपनिवेशो तथा स्विट्जरलैन्ड मे यह प्रणाली प्रचलित है।

जन-सेवक-समिति (सर्वेट्स आफ् दि पीपुल्स सोसाइटी)—सन् १६२० में पंजाब-केसरी स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने लाहौर मे तिलक राजनीति विद्यालय (तिलक स्कूल आफ् पालिटिक्स) की स्थापना की थी। उसके बाद ही लालाजी ने जन-सेवक-समिति की वहाँ स्थापना की। समिति का मुख्य उद्देश्य है राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा-सबधी क्षेत्रो मे, मातृभूमि की सेवा के लिए, लगनशील और शिक्षित देश-सेवी प्रस्तुत करना। इसके प्रत्येक सदस्य को यह प्रतिज्ञा करनी पडती है कि वह कम-से-कम २० वर्ष तक सस्था की सेवा करेगा और उसके उद्देश्यो को सफल बनाने का पूर्ण प्रयत्न करेगा। वह कोई ऐसा कार्य नही करेगा जो संस्था के उद्देश्यों के प्रतिकूल हो। इस संस्था के सदस्य वही युवक बन सकते हैं जो किसी विश्व-विद्यालय अथवा राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था के ग्रेजुएट, स्नातक या उतनी योग्यता रखते हो। लाला लाजपतराय इस सस्था के प्रथम संस्थापक-प्रधान थे। प्रति तीसरे वर्ष प्रधान का चुनाव होता है। समिति का संचालन एक कार्यकारिणी समिति के हाथ में है, जिसमे सिर्फ संस्था के सदस्य ही होते हैं, जिनका प्रतिवर्ष चुनाव किया जाता है। संस्था के सदस्यो को ५०) से १००) मासिक तक वृत्ति दी जाती है। बच्चों के लिए तथा घरभाडा अलग मिलता है। समिति के इस समय १४ सदस्य हैं। माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन समिति के प्रधान हैं।

जमनालाल बजाज, सेठ—गान्धीवादी कांग्रेसी नेता। जन्म सन् १८८६, जयपुर राज। सेठ जमनालाल बजाज भारत के प्रसिद्ध मारवाडी व्यव-

सायियो मे थे। सन् १९२० से कांग्रेस-आन्दोलन मे भाग लेते रहे। गान्धीजी के परम स्नेहभाजन थे। बराबर अनेक वर्षो तक कांग्रेस के कोषाध्यक्ष और कार्यकारिणी के सदस्य रहे। सन् १९२३ के नागपुर-सत्याग्रह का संचालन किया। असहयोग-आन्दोलन में तथा सन् १९३०-३२ के आन्दोलनो मे जेल-यात्रा की। तिलक स्वराज्य फंड मे सेठजी ने एक लाख रुपया दान दिया था। सन् १९३८-३९ मे जयपुर मे आपने सत्याग्रह किया और दो बार क़ैद की सजा मिली। सेवाग्राम मे आपकी ही ज़मीदारी पर गान्धीजी का आश्रम है। गान्धीजी और कांग्रेस की आपने अनेक बार यथेष्ट सहायता की। राष्ट्रीय दृष्टि से आपकी ऐसी साख थी कि कांग्रेस का लाखो रुपया आपके यहाँ, कोषाध्यक्ष की हैसियत से, जमा रहता था। फर्वरी १९४२ मे आपकी हृद्-गति रुक जाने से सहसा मृत्यु होगई।

जयप्रकाश नारायण—भारत के सुप्रसिद्ध कांग्रेस-समाजवादी राजनीतिज्ञ और अग्रणी। आपका जन्म, अब से प्रायः ४१ वर्ष पूर्व, सारन- (बिहार) जिले के सिताबदियारा ग्राम मे एक किसान-परिवार मे हुआ। आरम्भिक शिक्षा बिहार मे प्राप्त की और उसके बाद, सन् १९२२ में, केलीफोर्निया (अमरीका) गये। वहाँ फलो के बगीचो मे काम करते थे, जिससे उन्हे १४) रोज मजदूरी मिल जाती थी। इस प्रकार स्वाश्रयी और स्वावलम्बी बन कर शिक्षा ग्रहण की। सन् १९३० तक वहाँ रहे, और पाँच विश्वविद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त की।

गणित, भौतिक-शास्त्र, रसायन-विज्ञान से शुरू किया और वर्षों तक जीव-विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान तथा अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। सन् १९३१ मे, जब भारत मे सत्याग्रह-आन्दोलन चल रहा था, वापस आये। कांग्रेस के मजदूर-अन्वेषण-विभाग के अध्यक्ष बनाये

गये। कई मास तक कांग्रेस के स्थानापन्न प्रधान मन्त्री का काम किया। नासिक जेल में श्री मसानी, श्री अच्युत पटवर्द्धन तथा श्री जयप्रकाश नारायण ने भारतीय कांग्रेस-समाजवादी-दल के उद्देश्य तथा नियम बनाये। सन् १६३४ मे, पटना में, उन्होने अखिल-भारतीय कांग्रेस-समाजवादी सम्मेलन का आयोजन किया। इस प्रकार समाजवादी-दल की स्थापना हुई। आप इसके प्रधान मन्त्री बनाये गये। सन् १६३६ मे प० जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस-कार्य-समिति मे उन्हे सदस्य नियुक्त किया। उन्होने 'समाजवाद ही क्यो ?' नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी मे लिखी है। विगत रामगढ-कांग्रेस, मार्च १६४०, से पहले सरकार ने उन्हे गिरफ़्तार कर लिया। वह छूटे ही थे कि सन् '४१ मे सरकार ने वाम-पत्नी दल के भारतव्यापी दमन के समय पकडकर उन्हे देवली मे नज़रबन्द कर दिया। सन् '४२ के जुलाई-अगस्त महीनो मे सरकार ने साम्यवादियो (कम्युनिस्टो) को देवली आदि जेलो से छोड दिया, किन्तु जयप्रकाशजी तथा दूसरे समाजवादी नही छोडे गये हैं और उनका दमन जारी है।
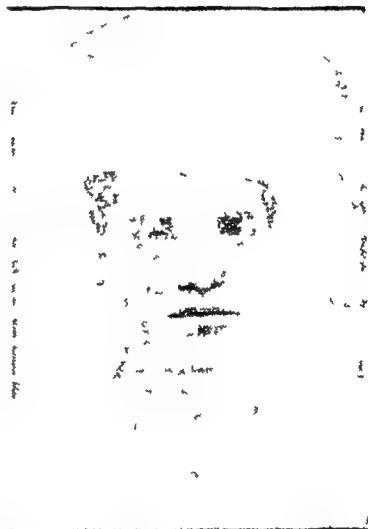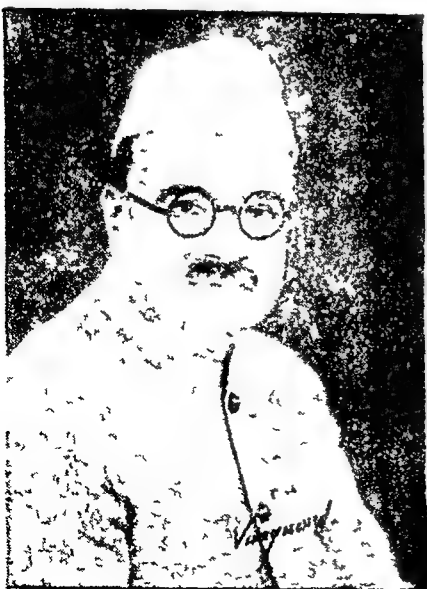
जयरामदास दौलतराम—कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य रहे हैं। सिन्ध के कांग्रेसी नेता हैं। जन्म सन् १८७२ मे हैदराबाद (सिध) मे हुआ। शिक्षा बी० ए०, एलएल० बी० तक। कराची मे वकालत की। सन् १६१७ मे होमरूल लीग मे काम किया। सन् १६२७ से अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के सदस्य रहे। 'भारतवासी' (१६१६), 'हिन्दू' और 'वन्देमातरम्' (१६२१), 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (१६२५-२६) मे संपादन विभाग मे काम किया।

सन् १६२५ से २७ तक हिन्दू महासभा के प्रधान मन्त्री रहे। १६२६ में बम्बई-कौंसिल के सदस्य चुने गये। सत्याग्रह-आन्दोलन १६३०-३२ और १६४० में भाग लिया तथा जेल गये। '४२ ई० के देशव्यापी दमन में जेल में हैं।

जर्मनी—यूरोप का एक शक्तिशाली राज्य, क्षेत्रफल २,१०,००० वर्ग-मील, जन-संख्या ७,८०,००,००० है। इसमें आस्ट्रिया और सुडेटनलैण्ड की जन-संख्या शामिल है, परन्तु बोहेमिया, मोराविया तथा अधिकृत पोलैण्ड की जन-संख्या शामिल नहीं है। सन् १६१८ की पराजय के बाद जर्मनी में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। इससे पूर्व एकच्छत्र शासन-प्रणाली प्रचलित थी। सन् १६३० में जर्मनी में प्रजातन्त्र का ह्रास आरम्भ हुआ और नात्सी दल का बल बढ़ने लगा। १६३३ के जुलाई मास में हिटलर का दौर-दौरा हो गया। इस समय जर्मनी में कोई लिखित शासन-विधान नहीं है। यद्यपि प्रजातन्त्रवादी शासन-विधान का विधिवत् अन्त नहीं किया गया है, परन्तु जर्मनी में हिटलर ने एक अलिखित विधान की निम्न प्रकार से रचना की है।

शासन की समस्त सत्ता नात्सी-दल के नेता (Fuhrer) हिटलर में केन्द्रित है। उसकी इच्छा ही कानून है। वह समस्त मन्त्रियों तथा उपनेताओं की नियुक्ति करता है। यह मन्त्री तथा उपनेता सार्वजनिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा समाज के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए नेताओं की नियुक्ति करते हैं। यह नेतृत्व का सिद्धान्त कहलाता है। चुनाव तथा प्रजातन्त्र से नात्सी और हिटलर घृणा करते हैं। हिटलर को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने का अधिकार है। जर्मन पार्लमेंट (राइखताग—Reichstag) में ८५५ सदस्य हैं। सब नात्सी हैं। यह राइखताग अपना अधिवेशन सिर्फ हिटलर का भाषण सुनने के लिये बुलाती है। किसी भी सदस्य को भाषण करने का अधिकार नहीं है। राइख को कानून बनाने का भी अधिकार नहीं है। क़ानून सरकार द्वारा बनाये जाते हैं जो अपने नेता हिटलर के प्रति जिम्मेदार है। कोई बजट न पार्लमेंट के सामने प्रस्तुत किया जाता, न जनता की सूचना के लिये प्रकाशित ही किया जाता है। सरकार मनमाने ढंग से कर लगाती तथा उन्हें वसूल करती है। नागरिकों को सरकारी किसी भी कार्य में कोई हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। राष्ट्रीय समाजवादी अर्थात् नात्सी दल ही

अकेली संस्था है जो सरकार द्वारा स्वीकृत तथा क़ानूनी है। नात्सी दल का संगठन भी सरकार की तरह है। एक प्रकार से यह दल भी स्थानान्तर सरकार ही है। नात्सी विचारधारा के विरुद्ध कोई बात कहना अपराध है। जर्मनी मे कोई भी नागरिक-स्वाधीनता नागरिको को प्राप्त नही है। न अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता है, न भाषण करने या सभा मे जाने की। व्यक्तिगत स्वाधीनता तो और भी ख़तरे मे है। आतकवाद के कारण नागरिको को हर समय भय का शिकार बने रहना पडता है। यहूदियों के ख़िलाफ़ क़ानून प्रचलित हैं। ईसाई-धर्म (चर्च) की वर्तमान सस्था के अधीन और उसके अन्धानुयायी नात्सी नही रहना चाहते। प्रोटेस्टेन्टवाद को वह अपने राष्ट्रीय-समाजवादी संगठन के अधीन रखना चाहते है। इसी कारण उन्हे गिरजाघरो के प्रति श्रद्धा नही है। मज़दूर सघो की मनाई है तथा सब मज़दूरो को 'नात्सी मज़दूर मोर्चे' मे शामिल होना ज़रूरी है।

सामान्यतया एक-चौथाई औद्योगिक पैदावार जर्मनी बाहर दूसरे देशो को भेजता था। सन् १६२६ मे १३ अरब मार्क (जर्मन सिक्का) का माल विदेशो को गया। सन् १६३३ मे केवल ४ अरब मार्क का माल बाहर गया और सन् १६३८ मे ५ अरब २ करोड मार्क का माल जर्मनी ने विदेशो को भेजा तथा ५ अरब ५ करोड मार्क का माल विदेशो से मॅगाया। जर्मनी सिर्फ कच्चा माल तथा खाद्य पदार्थ बाहर से मॅगाता था। कई साल से जर्मनी मे अन्न और कच्चे माल का टोटा रहा है। कोयला जर्मनी मे पर्याप्त है। कुछ लोहा उसे बाहर से मॅगाना पडता है। युद्ध छेड देने से जर्मनी के वैदेशिक-व्यापार मे लगभग ७० फीसदी की कमी होगई है। जर्मनी का राष्ट्रीय ऋण सन् १६३३ में १२ अरब मार्क और युद्ध शुरू होने के पहले ६० अरब मार्क था। जर्मनी मे कच्चे माल का अभाव है। केवल कोयला ही वहॉ पैदा होता है। अन्न भी कम पैदा होता है। नात्सी-जर्मनी का उद्देश, यूरोपियन लेखको के अनुसार, साम्राज्यवाद और यूरोप तथा संसार पर आधिपत्य स्थापित करना प्रतीत होता है। विगत विश्वयुद्ध की पराज़य से जर्मन-जाति की मनोवस्था पर बहुत प्रतिक्रिया हुई है। उनका कहना है कि पिछले महायुद्ध मे केवल समाजवादी क्रियाकलाप और नेतृत्त्व

के अभाव के कारण जर्मनी की पराजय हुई। इसकी पुनरावृत्ति न हो, इस-लिए समस्त सबल विरोधियो को हटाकर नात्सी जर्मन अपनी जाति को लौह अनुशासन मे सङ्गठित करके वर्तमान युद्ध द्वारा ससार मे 'नवविधान' (World New Order) की रचना करना चाहते हैं।

१९३५ मे जर्मनी मे सार्वजनिक सैनिक-शिक्षा पुनः जारी की गई। इन दिनो अनुमानतः पचास लाख सेना वहाँ है। यह सेना मुकम्मल तौर पर यान्त्रिक शस्त्रास्त्र से लैस है, जिसमे कितने ही बख्तरपोश डिवीजन हैं। १५ से २० हज़ार तक वायुयान नात्सी-सेना में अनुमान किये जाते हैं। नात्सी युद्ध-कला यन्त्रोपयोग की महत्ता और पचम पक्ति के प्रयोग पर आधारित है।

जर्मन नौ-सेना मे २ युद्ध-पोत, ३ छोटे युद्ध-पोत, ६ क्रूज़र, ३१ ध्वसक, ६५ यू-बोट युद्धारम्भ के समय थे। इनके अतिरिक्त कई युद्ध-पोत आदि बन रहे थे। जून १९४१ तक उसकी जलीय हानि की गणना की जाय तो वह इससे बहुत अधिक होती है। लेकिन शायद जर्मनी अपनी इस कमी की पूर्ति जहाँ-की-तहाँ करता जा रहा है। जर्मनी ने ता० १ सितम्बर १९३९ को पोलैएड पर आक्रमण कर महायुद्ध छेड दिया। उसने पोलैएड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, बेलजियम, हालैएड, फ्रान्स, चैकोस्लोवाकिया, रूमानिया, यूनान, क्रीट आदि देशो को अधिकृत कर लिया है।

जर्मन-सोवियट-समझौता—२४ अगस्त १९३९ को सोवियट रूस और जर्मनी मे अनाक्रमण-समझौता हुआ था, जिसके अनुसार निश्चय हुआ कि जर्मनी और रूस एक दूसरे के देश पर आक्रमण नही करेंगे। यह सम-झौता १० वर्षों के लिये हुआ था। किन्तु २० जून १९४१ को हिटलर ने इस समझौते की अवहेलना करके रूस पर आक्रमण कर दिया। आज सवा साल से इन दोनो राष्ट्रो मे भीषण युद्ध होरहा है।

ज़मीदारी-प्रथा—भारत के सयुक्त-प्रान्त, बिहार, उडीसा, बगाल, मदरास तथा देशी राज्यो मे जमीदारी प्रथा प्रचलित है। इसके अनुसार जो लोग ज़मीन के स्वामी होते हैं वे किसानो को ज़मीन, पैदावार के लिये, मनमाने लगान पर उठा देते हैं, और किसान से वसूल हुए लगान मे से एक निश्चित , मालगुज़ारी की शकल मे, सरकार को देते है। ज़मीदार लोग ख़ुद काश्त-

कारी नही करते। किसानो की कडी मिहनत पर पलते और मौज करते हैं। भारत मे ज़मीदारी प्रथा का प्रचलन मुग़ल-काल में हुआ और अँगरेज़ी साम्राज्य-वाद ने इस प्रथा को यहाँ और भी दृढ़ कर दिया। समाज के सामूहिक हित के मौलिक सिद्धान्तो पर आघात करनेवाली इस प्रथा के विरुद्ध अब भारत मे असन्तोष बढ रहा है।

जलियाँवाला बाग़—यह अमृतसर (पंजाब) नगर मे एक सुविशाल मैदान है जो चारो ओर से मकानो से घिरा हुआ है। इस स्थान मे सार्वजनिक सभाएँ होती हैं। सत्याग्रह की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध मे, समस्त देश के साथ, यहाँ भी ६ अप्रैल १६१६ को एक सभा हुई थी। इस स्थान में प्रवेश करने के लिए एक छोटा-सा द्वार है जिसमे होकर एक गाडी भी नही निकल सकती। सभा मे २०,००० नर-नारी तथा बालक उपस्थित थे। जनरल डायर १०० भारतीय तथा ५० गोरे सैनिको के साथ वहाँ पहुँचा। मशीनगनें भी साथ मे थी। जनरल डायर का वक्तव्य है कि उसने सभा भंग करने के लिए आज्ञा दी और उसके दो तीन मिनट बाद ही गोली चलाने की आज्ञा दे दी। १,६०० गोलियाँ चलाई गई, और जब गोलियाँ ख़त्म होगई तब गोली चलाना बन्द हुआ। ४०० व्यक्ति गोलियो के शिकार होकर वही बलिदान होगये तथा एक और दो हज़ार के बीच घायल हुए। इस घटना के बाद पंजाब के कई नगरो और ज़िलो मे फ़ौजी शासन (मार्शल-ला) जारी होगया। पंजाब मे इन दिनो अन्धाधुन्ध दमन-चक्र चला। इस अमानुषिक हत्याकाण्ड की स्मृति मे प्रति वर्ष देश मे अप्रैल मास के आरम्भ मे राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता है। सन् '२०-२१ ई० के असहयोग आन्दोलन का एक प्रबल कारण यह हत्याकाण्ड और इसके साथ फौजी शासन-काल मे पंजाब मे हुए अनेक अत्याचार हैं।

ज़ाकिरहुसैन, डाक्टर—जामिया मिल्लिया इस्लामिया, देहली, के प्रिंसिपल। सन् १८६६ मे जन्म हुआ। शिक्षा एम० ए०, पीएच० डी० (जर्मनी)। अर्थशास्त्र के प्रोफेसर अलीगढ मुसलिम विश्वविद्यालय मे रहे। सन् १६२१ मे आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और राष्ट्रीय मुसलिम विश्वविद्यालय की स्थापना मे सहयोग दिया। सन् १६२३ में जर्मनी

की यात्रा की। सन् १९३७ के अक्टूबर मास मे महात्मा गान्धी ने वर्धा में भारत के शिक्षा-सिद्धान्त-विशारदों को आमन्त्रित कर एक सम्मेलन किया। इसमे उन्होने अपनी नवीन शिक्षा की योजना पेश की। इस पर विचार करके बुनियादी (बेसिक) शिक्षा के लिए कार्य-क्रम तैयार करने के निमित्त, डा० जाकिरहुसैन की अध्यक्षता मे, एक समिति नियुक्त की गई। आपने जर्मन भाषा मे कई ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी वर्धा-शिक्षा-योजना-सबधी रिपोर्ट के आधार पर ही, काग्रेस-सरकारो के युग मे, वर्धा-योजना या बुनियादी शिक्षा का प्रचार बम्बई, मध्यप्रान्त, बिहार तथा सयुक्त-प्रदेश आदि प्रान्तो मे हुआ है।

जार्ज लैन्सबरी—ब्रिटिश मजदूर नेता। २१ फर्वरी सन् १८५९ को जन्म हुआ। ग्रेट ईस्टर्न रेलवे मे टिकिट चैकर का काम किया। सन् १८८४ मे क्वीन्सलैण्ड चले गये। सन् १८८५ मे ब्रिटेन लौटे। लन्दन मे लकडी का व्यवसाय किया। सन् १८९२ तक वह लिबरल रहे। फिर समाजवादी प्रजा-तन्त्र दल मे शामिल होगये। सन् १९१० मे कॉमन-सभा के सदस्य चुने गये। वहॉ महिला-मताधिकार के प्रबल समर्थक थे। १९१२ मे उन्होने सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। १९१२ मे 'डेली हैराल्ड' के सपादक बने। सन् १९२० मे उन्होने सोवियट रूस की यात्रा की। १९२२ मे वह फिर कॉमन-सभा के सदस्य चुने गये। सन् १९२४ मे उन्हे मज़दूर-सर-कार मे मन्त्री का पद देने के लिये आग्रह किया, परन्तु उन्होने मन्ज़ूर नही किया। सन् १९२५-२७ मे 'लेन्सबरीज लेबर वीकली' नामक निजी साप्ताहिक पत्र निकाला। सन् १९२७-२८ मे वह मजदूर दल के अध्यक्ष बनाये गये। ७ मई १९४० को उनका देहान्त होगया।

जार्ज षष्ठम्—जार्ज पंचम् के द्वितीय राजकुमार; ग्रेटब्रिटेन के राजा। १४ दिसम्बर १८९५ ई०। नौ-सेना मे भर्ती होकर जटलैण्ड के युद्ध में

भाग लिया। २६ अप्रैल १९२३ को ऐलिज़ाबैथ के साथ विवाह किया। ज्येष्ठ भ्राता राजा एडवर्ड अष्टम् के राज-सिहासन-त्याग पर, १० दिसम्बर १९३६ को, राज-सिहासन पर बैठे। १२ मई १९३७ को वैस्टमिन्स्टर ऐबी मे राज्याभिषेक समारोह मनाया गया। युद्धकाल मे लन्दन पर बराबर होनेवाले हवाई हमलो मे, सन् १९४० मे, राज-भवन बकिङ्घम पैलेस पर जर्मनी के यानो ने बम-वर्षा की। एक बार तो राजा-रानी एक घातक बम से बाल-बाल बचे। राजा और रानी के दो पुत्रियाँ हैं।

जाति या नस्ल—जर्मन नात्सीवाद का आधार जाति-सिद्धान्त है। हिटलर जर्मन-जाति की, जो उसके दावे के अनुसार आर्य जाति है, विशुद्धता की रक्षा पर सबसे अधिक ज़ोर देता है। उसका यह विश्वास है कि रक्त-सम्मिश्रण से जाति या राष्ट्र का पतन हो जाता है। संसार मे आर्य जाति ही सर्वश्रेष्ठ जाति रही है और, हिटलर के अनुसार, श्रेष्ठ जाति का यह कर्त्तव्य है कि वह संसार की हीन जातियो पर शासन करे। परन्तु सत्य तो यह है कि संसार के इतिहास मे ऐसी कोई भी जाति नही है जिसने दूसरी जातियो के साथ सम्मिश्रण न किया हो। इसलिये जाति की शुद्धता का दावा एक मिथ्या कल्पना ही नही पाखण्ड भी है। वस्तुतः सच तो यह है कि आज संसार मे राष्ट्रो का निर्माण जातियो की रक्त-शुद्धता के आधार पर नही हो सकता। अमरीकी, बरतानवी, क्या कोई भी राष्ट्र विशुद्ध जातियाँ हैं ?

जापान—जापान-साम्राज्य, मुख्य जापान देश का क्षेत्रफल १,४८,८०० वर्गमील। समुद्र पार के अधीनस्थ देश कोरिया, फारमोसा, दक्षिणी साखालिन का क्षेत्रफल १,१४,६०० वर्गमील। जापान देश की जनसंख्या ७,३०,००,००० तथा इन देशो की ३,००,००,००० है। सन् १९०० से १९२२ तक जापान की ब्रिटेन से मित्रता रही और वह भी इसलिये कि सोवियट रूस के विरुद्ध गुटबन्दी

स्थापित होजाय। अमरीका ब्रिटिश-जापान-मैत्री को पसंद नहीं करता था। इस-लिये सन् १६२२ मे यह मित्रता भंग होगई। जापान ने, सैनिक नेतृत्व में, चीन की विजय की योजना बनाई। सबसे पहले उसने मन्चूरिया पर १६३१ ई० मे अधिकार जमाया, जो अब मचूको कहलाता है। मन्चूरिया मे भूमि तो बहुत है, किन्तु जापानियो के लिये वहॉ की जल-वायु अनुकूल नही। इसलिये वे वहॉ उपनिवेश नहीं बसा सकते। सिर्फ २,००,००० जापानी मञ्चूको मे रहते हैं। दक्षिणी चीन, जहॉ आजकल युद्ध हो रहा है, जापानियो के लिये अधिक अनुकूल है, परन्तु उसमे चीनियों की ही अपनी घनी आबादी है।

अतः जापान चीन को अपना उपनिवेश बनाने के लिए नहीं प्रत्युत् कच्चे माल तथा तय्यार माल की मडी के लिये चाहता है। १ करोड़ २१ लाख जापानी उद्योग-धधा करते हैं, और आबादी का ५० प्रतिशत कृषि। जापान मे जमींदारी प्रथा का जोर है। ज़मीन की कमी की वजह से किसान बहुत गरीब हैं। मजदूरो की आर्थिक दशा भी बहुत हीन है, मज़दूरी बहुत सस्ती है, इसी कारण पिछले वर्षो जापान ने प्रतियोगिता मे अन्य देशो को हराकर ससार के, विशेषकर भारत के, बाजार को सस्ते माल से भर दिया था। तीकोकू-गिकाई (जापानी पार्लमेण्ट) मे दो सभाएँ हैं : छोटी सभा (शूगिन) मे ४६३ सदस्य हैं जो ४ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। बडी (किज़ोक्किन) मे ४११ सदस्य हैं जिनमे १६२ आजीवन सदस्य और शेष ७ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। यह सम्पत्ति और सत्ताशालियों की सस्था है। प्रत्येक क़ानून का दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत होना ज़रूरी है। परन्तु सरकार सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होती हैं। सरकारी नीति सरकार निर्धारित करती है। तीकोकू-गिकाई की छोटी सभा मे दो मुख्य दल थे : देहाती और श्रमजीवी समुदाय का प्रतिनिधि मिन्सीतो, जिसकी सख्या १७६ है। सीयूकाई नामक खेतिहर-दल भी था जिसके प्रतिनिधि १७६ हैं। शकाई तैशूतो नामक समाजवादी (सख्या ३५) दल भी था। कोकूमिन डोमी नामक ११ फासिस्ट और तोहोकाई नामक दल के १२ क्रान्तिकारी सदस्य हैं।

जापान मे सार्वजनिक चुनाव ३० अप्रैल १६३७ को हुआ था और १६४० के अगस्त और सितम्बर मे सब दलो ने, गवर्नमेन्ट के दबाव से,

अपने अस्तित्त्व को एकसत्तावादी सरकार में मिला दिया। एशिया मे साम्राज्य-विस्तार के सम्बन्ध मे सब दल एकमत हैं। जापान का चीन से युद्ध छिडे, जुलाई १६४२ मे पॉच वर्ष हो चुके। इस युद्ध मे जापान अबतक, चीनी युद्ध-प्रवक्ताओ के अनुसार, २५ लाख जाने होम चुका है।

जापानी सेना मे ५०,००,००० सीखे हुए सैनिक हैं। संसार की सर्वश्रेष्ठ सेनाओ मे इसकी गणना की जाती है। चीन-संघर्ष मे २०,००,००० सेना संलग्न है। जापानी नौ-सेना का संसार मे तीसरा स्थान है। उसके पास युद्धायुध मे ६ युद्ध-पोत, १४ भारी युद्ध-पोत, २४ हलके क्रूज़र, ११२ ध्वंसक, ६० पनडुब्बियॉ, ६ बम-वर्षको को ले जानेवाले जहाज़ सन् १६३६ मे बताये गये थे।। किन्तु तब से तो जापान अपने युद्ध-प्रयत्नो को चुपचाप आशातीत रूप मे बढा चुका प्रतीत होता है। अपने युद्ध-प्रयत्नो को गुप्त रूप से बढ़ाने के लिये ही वह लन्दन की नौ सेना-सन्धि मे सम्मिलित नही हुआ। जापान अब तक बरतानवी साम्राज्य के मलय, हांग्कांग्, ब्रह्मा, अन्दमनद्वीप-समूह प्रदेशो तथा सिगापुर के विख्यात समुद्री अड्डे को जीत चुका है। अमरीकी प्रदेशों मे फिलिपाइन्स द्वीप, हवाई तथा हालैन्ड के डच पूर्वी द्वीपसमूह और जावा, सुमात्रा को भी वह हथिया चुका है। प्रशान्त महासागर मे, इस प्रकार, जापान बहुत भूमि प्राप्त कर चुका है। आस्ट्रेलिया पर उसने मार्च '४२ मे हमले किये थे। सितम्बर १६४२ के दूसरे सप्ताह से प्रशान्त महासागर में, सोलोमन्स आदि द्वीपसमूह पर, अमरीका और ब्रिटेन ने जापान के मुकाबले मोर्चा अडा रखा है, वहॉ ज़ोरो की लडाई जारी है और मित्र-राष्ट्र जीत रहे हैं। फ्रान्सीसी हिन्द-चीन को भी जापान हडप चुका और स्याम (थाईलैण्ड) को उसने अपने प्रभाव मे ले लिया है। भारत को भी उसकी साम्राज्यवादी लिप्सा का प्रतिक्षण ख़तरा है।

१८६४-६५ ई० मे जापान चीन से लड चुका है। १६०५ मे रूस को हरा चुका है। पिछले महायुद्ध मे मित्रराष्ट्रो की ओर से लड चुका है। सन् १६१८ मे सोवियट रूस मे हस्तक्षेप कर चुका है। १६३१ में मंचूरिया को ले लेने के बाद, १६३७ के जुलाई मास से चीन के साथ उसने फिर युद्ध छेड रखा है। यही कारण हैं जिनसे उसके

हौसले बहुत बढ गये प्रतीत होते हैं; और चूँकि जापानी एक सामरिक जाति है, जापान आज एशिया का सिरमौर बनने के सुखस्वप्न देख रहा है। (विशेप जानकारी के लिये देखिये—चीन, तोजो, थाईलेंड, प्रशान्त महासागर का युद्ध)।

जिन्ना की १४ माँगें—सन् १६३८-३६ के बीच, साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के सम्बन्ध मे, गाधीजी, सुभास बाबू, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा श्री मुहम्मद अली जिन्ना के बीच, समय-समय पर, जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उससे यह ज्ञात होता है कि साम्प्रदायिक समझौता होने से पूर्व मुसलिम लीग नीचे लिखी शर्तों की पूर्ति आवश्यक समझती थी:—

(१) मुसलिम-लीग की उन माँगों की स्वीकृति जो सन् १६२६ में निर्धारित की गई थीं।

(२) काग्रेस न तो साम्प्रदायिक निर्णय (कम्युनल ऐवार्ड) का विरोध करे और न उसे राष्ट्रीयता-विरोधी बतलावे।

(३) सरकारी नौकरियो मे मुसलमानों का प्रतिनिधित्व शासन-विधान द्वारा निर्धारित कर दिया जाय।

(४) क़ानून द्वारा मुसलमानों के ज़ाती क़ानून (Personal Law) और सस्कृति की रक्षा की जाय।

(५) शहीदगज की मसजिद वाले आदोलन मे काग्रेस भाग न ले और अपने नैतिक प्रभाव से उसके मिलने मे मुसलमानो की सहायता करे।

(६) अज़ाँ, नमाज़ और मुसलमानो की धार्मिक स्वाधीनता के अधिकार मे किसी प्रकार की बाधा न डाली जाय।

(७) मुसलमानो को गो-वध की स्वाधीनता रहे।

(८) प्रान्तो के पुनर्निर्माण में उन प्रदेशो में कोई परिवर्त्तन न किया जाय जहाँ पर मुसलमान बहुसख्या में हैं।

(९) 'वन्देमातरम्' राष्ट्रीय गायन का परित्याग किया जाय।

(१०) मुसलमान लोग उर्दू को भारत की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते है, अतः उर्दू का न तो प्रयोग कम किया जाय और न उसे किसी प्रकार की क्षति ही पहुँचायी जाय।

(११) स्थानीय संस्थाओ मे मुसलमानो का प्रतिनिधित्व, साम्प्रदायिक निर्णय के आधार पर, हो।

(१२) तिरंगा झण्डा या तो बदल दिया जाय या मुसलिम लीग के झण्डे को बराबरी का स्थान दिया जाय।

(१३) मुसलिम लीग को मुसलमानो की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था स्वीकार किया जाय।

(१४) प्रान्तो मे संयुक्त मत्रिमण्डल बनाये जायँ।

'पाकिस्तान' की माँग के आगे, कदाचित्, ये माँगे अब व्यर्थ हो गई हैं।

जिन्ना—देखो 'मुहम्मद अली जिन्ना।'

जिबूटी—लाल-सागर के पश्चिमी समुद्र-तट पर फ़ान्सीसी शुमालीलैण्ड का एक प्रधान नगर है। यह उपनिवेश उत्तर मे इरीट्रिया, दक्षिण मे ब्रिटिश शुमालीलैण्ड और पूर्व मे अबीसीनिया से घिरा हुआ है। जिबूटी से अबीसीनिया की राजधानी अद्दीस अबाबा तक रेलवे है, जिसकी मालिक एक फ्रान्सीसी कम्पनी है। जिबूटी अबीसीनिया का समुद्री निकास भी है। इसीलिये इटली फ्रान्सीसी अधिकार को इस देश से निकाल देना चाहता है।

जी० पी० यू०—यह सोवियट रूस की गुप्त राजनीतिक पुलिस का सक्षिप्त नाम है। सन् १९१७ के बाद ही इसका सगठन, साम्यवाद-विरोधियो के दमन के लिए, किया गया है।

ज़ोग़, प्रथम—मार्च १९३९ तक अलबानिया का राजा, असली नाम अहमद ज़ोग़ू। ८ अक्टूबर १८९५ को ज़ोग़ोली के सम्पन्न मुस्लिम वश मे जन्म हुआ। विश्व-युद्ध मे आस्ट्रिया की ओर से लडाई मे भाग लिया। सन् १९२०

मे अलबानिया के स्वराष्ट्र-विभाग का मंत्री बना और '२२ मे प्रधान मंत्री। त्यागपत्र देना पडा तथा सन् १९२४ मे यूगोस्लाविया भाग जाना पड़ा। सन् १९२५ मे अलबानिया वापस आया। अपने प्रतिद्वन्द्वी बिशप फाननोली को हटाकर स्वयं राष्ट्रपति और सन् १९२८ मे बादशाह बन गया। नरमी के साथ देश मे सुधार करने शुरू किये। जोग के मुसोलिनी का पक्षपाती होने और इटली के उक्त तानाशाह का कुछ ही दिन पहले जोग के नवजात पुत्र का धर्मपिता बनने के बावजूद मार्च १९३९ मे इटली की सेना ने यकायक अलबानिया पर आक्रमण करके देश पर जब क़ब्जा कर लिया तो जोग सपरिवार विदेश को भाग गया और इस समय वह इँगलैंएड मे शरण लिये हुए है।

ट

टंगानिका—अफ़्रीका का एक प्रदेश, जो पहले जर्मन उपनिवेश था। सन् १९१८ के बाद से, राष्ट्र-संघ की शासनादेश (Mandate) प्रणाली के अन्तर्गत, ब्रिटेन के संरक्षण मे आ गया। इसका क्षेत्रफल ३,६६,००० वर्गमील तथा जनसंख्या ५१,००,००० है, जिसमे ९,००० यूरोपियन हैं। यह प्रदेश पिछड़ा हुआ है। यहाँ क़हवा, तम्बाकू, रुई आदि पैदा होती हैं। सोने तथा हीरे की खाने भी हैं। यहाँ भारतवासी भी बसे हुए हैं।

टंडन, पुरुषोत्तमदास—संयुक्तप्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के अध्यक्ष (स्पीकर) है। प्रारम्भिक जीवन मे वकालत-व्यवसाय करते रहे। परन्तु सार्वजनिक कार्यों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन मे, सन् १९१७ के होमरूल-युग से ही, संलग्न हो जाने के कारण आपको वकालत का परित्याग कर देना पडा। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों मे आप मुख्य हैं तथा उसके वर्तमान

कर्णधार भी। सम्मेलन ने जो उन्नति की है, उसका बहुत-कुछ श्रेय आपको ही है। आप विशुद्ध हिन्दी के समर्थक हैं। हिन्दोस्तानी को हिन्दी के लिए अहितकर मानते हैं। हिन्दी-क्षेत्र और राष्ट्रीय प्रगति में आपकी सेवायें मूल्यवान हैं। आप पुराने नेता और कार्यकर्त्ता हैं। आप विधान के विशेषज्ञ हैं तथा प्रत्येक ऐसे प्रश्न पर, जिसका विधान से संबंध है, बड़ी गंभीरता से विचार करते हैं। आपकी चहुँमुखी सेवायें अमूल्य हैं। 'जन-सेवक-समिति' के आप प्रधान हैं। देश-व्यापी दमन के कारण आप भी अगस्त १९४२ से जेल में हैं।

टामस मैन—प्रसिद्ध जर्मन उपन्यासकार। सन् १८७५ में जन्म हुआ। नोबल-पुरस्कार प्राप्त किया। बुडेन ब्रुक्स, दि मैजिक माउंटेन, जोसफ इन ईजिप्ट, आदि उपन्यास लिखे। यह पक्के प्रजातंत्र-वादी हैं। इसलिये सन् १९३३ के बाद उन्हें जर्मनी से निर्वासित होना पड़ा। उनकी पुस्तकों की सार्वजनिक रूप से होली जलाई गई तथा उन्हें जर्मन नागरिकता से वंचित कर दिया गया। फ्रान्स में वह बस गये और वहाँ नात्सीवाद के ख़िलाफ साहित्य-रचना की। सन् १९३८ में वह संयुक्त-राज्य अमरीका चले गये। टामस मैन अपने युग के सबसे महान् जर्मन लेखक माने जाते हैं।

टारपीडो—यह समुद्र के गर्भ में चलनेवाला आक्रमण करने का शस्त्र है, जिसमें विस्फोटक द्रव्य आदि भरे रहते हैं। जब यह किसी जलयान में टक्कर मारता है तो वह विस्फोटक पदार्थ उस जलयान के पेंदे में छेद कर देता है और फलतः जहाज पानी भरने से डूब जाता है।

टारपीडो-बोट—यह एक छोटा युद्ध-पोत है जो अपने साथ टारपीडो ले जाता है और उसके द्वारा शत्रु-पोत पर हमला करता है। इसकी चाल बहुत तेज़ होती है।

टारपीडो-बोट-विध्वंसक—यह एक बड़ा और शक्तिशाली अस्त्र

है, जो समुद्र के भीतर चलता और टारपीडो-बोट को विनष्ट कर देता है।

ट्रात्स्की, लियो देविदोविच—प्रमुख क्रान्तिकारी रूसी नेता। जन्म १८७७ ई०। ट्रात्स्की एक यहूदी किसान का पुत्र था। कीफ विश्वविद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की। उसका असली नाम ब्रान्स्टीन था, परन्तु उसने ट्रात्स्की नाम रख लिया और क्रान्तिकारी दल मे शामिल हो गया। सन् १८६८ मे ज़ारशाही ने उसे साइबेरिया मे निर्वासित कर दिया। सन् १६०२ मे ट्रात्स्की नाम से पासपोर्ट प्राप्त कर लिया और इंगलैण्ड को भाग गया। वहाँ उसकी दो क्रान्तिकारियो, प्लेखानोव तथा लेनिन, से भेंट हुई, जो रूस की ज़ारशाही का खात्मा करने की युक्ति सोच रहे थे। सन् १६०५ मे वह रूस वापस आया। जब वह सेंटपीटर्सबर्ग की एक मजदूर-सभा मे अध्यक्ष के पद से सभा-सचालन कर रहा था, तब उसे पुनः गिरफ़्तार करके निर्वासित कर दिया गया। सन् १६०५ से १६१४ तक उसने यूरोप के प्रत्येक देश मे क्रान्तिकारी दल का सगठन किया। जब पिछला विश्वयुद्ध छिडा तब वह जर्मनी मे था। उसने वहाँ युद्ध के कारणों पर एक पुस्तक लिखी, जिसमे क़ैसर-सरकार की कडी आलोचना की। उसे गिरफ़्तार किया गया और ८ मास की क़ैद की सज़ा दी गई। रिहा होकर वह फ्रान्स गया। फ्रान्स से भी उसका निर्वासन हुआ। फ्रान्स के बाद उसने स्पेन जाना तय किया, किन्तु कामयाबी न मिली। सन् १६१६ मे वह कनाडा मे नज़रबन्द रहा और वहाँ उसने 'न्यू वर्ल्ड' (नई दुनिया) का सम्पादन किया। जब रूस मे सन् १६१७ के मार्च मास मे क्रान्ति हुई, तब उसे स्वदेश वापस लौटने की आज्ञा मिली, किन्तु हैलीफैक्स मे ब्रिटिश अधिकारियो ने उसे गिरफ़्तार कर लिया और वह तब रिहा किया गया जब रूस की अस्थायी सरकार ने उसकी रिहाई के लिए कहा। अपने प्रवास-काल मे लैनिन से उसका निरन्तर सम्बन्ध बना रहा। जुलाई १६१७ मे उसने लैनिन की बोल्शेविक पार्टी मे शामिल होना स्वीकार किया। अक्टूबर १६१७ मे रूस मे जो सफल और व्यापक राज्य-क्रान्ति हुई, उसमे लैनिन के बाद ट्रात्स्की ने सबसे अधिक भाग लिया। इसी क्रान्ति मे जारशाही का पतन और क्रान्तिकारियो की विजय हुई। क्रान्ति के बाद वह सोवियट रूस के वैदेशिक विभाग का मत्री नियुक्त

किया गया। इसके बाद युद्ध-मंत्री बनाया गया। उसने लाल सेना का संगठन किया। सन् १९२३ तक साम्यवादी-दल के दूसरे नेताओं का, जिनमें साम्यवादी दल (Communist Party) का मन्त्री स्तालीन मुख्य था, ट्रात्स्की से बहुत गहरा मतभेद हो गया। यद्यपि रूसी क्रान्ति के दो ही नेता—लैनिन और ट्रात्स्की—संसार में प्रसिद्ध थे, किन्तु साम्यवादी-दल में उसका कोई प्रभाव नहीं था क्योंकि उसने सन् १९१७ में ही इस दल की सदस्यता स्वीकार की थी। स्तालीन ने उस पर दोषारोप किये और १९२४ ई० में, लैनिन की मृत्यु के बाद, ट्रात्स्की को उसने नेतृत्व से निकाल ही दिया। उसे युद्ध-मन्त्रित्व-त्याग के लिये बाध्य किया गया। सन् १९२५ में उसने त्यागपत्र दे दिया। उसे काकेशस में निर्वासित कर दिया गया। सन् १९२७ में उसे फिर बुला लिया गया, पर उसका पक्ष बढ़ते देख ट्रात्स्की को साम्यवादी-दल से पृथक् करके बाद में उसको रूस से भी निर्वासित कर दिया गया। वह टर्की में जाकर रहा। १९३४ में फ्रान्स चला गया और बाद में १९३६ तक नार्वे में टिका रहा। रूसी सरकार ने ट्रात्स्की के निष्कासन के लिये नार्वे पर दबाव डाला। अन्त में वह मैक्सिको चला गया। यही एक देश था जो उसे रख लेने पर राजी हुआ। अन्त समय तक ट्रात्स्की वहीं रहा और निरन्तर स्तालीन की नीति को समाजवाद (Communism) के सिद्धान्तों के विपरीत बताता रहा। लैनिन के बाद सबसे विद्वान तथा योग्य रूसी नेता ट्रात्स्की ही था। १९३८ में उसने रूसी साम्यवादी शासन-सत्ता के विरोध में 'The Revolution Betrayed' (क्रान्ति के प्रति

विश्वासघात) लिखी, जिसमें उसने केवल रूस तक सीमित स्तालीन के राष्ट्रीय साम्यवाद की कडी आलोचना करते हुए अपने अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद और ससार-व्यापी क्रान्ति की विचारधारा की पुष्टि की है। यह वास्तव मे एक दुःखद प्रसग है कि ट्राट्स्की अपने सहयोगियो तथा जनता का, लेनिन की भाँति, विश्वास-पात्र न बन सका। जब वह रुग्णावस्था मे मोटर मे बैठकर अस्पताल जा रहा था, तब मार्ग मे, २१ अगस्त १६४० को, फ्राक जैक्सन नामक एक यहूदी ने उसके सिर पर हथौडे मारकर उसकी हत्या कर दी।

टाइरोल—पिछली लडाई के बाद, सन् १६१६ मे, आस्ट्रिया का यह दक्षिणी प्रदेश इटली ने अपने राज्य मे मिला लिया। इसमे इटालियन और जर्मन दोनो रहते है। ब्रेनर दर्रे के कारण इटली इसे अपने अधिकार मे रखना चाहता है। यहाँ के प्रवासी जर्मनो ने जर्मनी की सहायता से अपना छुटकारा चाहा, किन्तु हिटलर ने यह देश दोस्ताने मे इटली को छोड दिया। फिर भी इटली ने अगस्त १६३६ मे यहाँ जर्मनो को यह सुयोग दिया कि वे १६४२ के अन्त तक जर्मनी चले जायँ। इस पर १,८५,००० जर्मनो ने चले जाना तय किया। ८२,००० वही रहेंगे।

ड

डन्कर्क—डोवर जल-डमरूमध्य मे, फ्रास के समुद्री तट पर, यह फ्रास का बन्दरगाह है। २८ मई १६४० को जब बेलजियम के बादशाह ने जर्मनी के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया, तब जर्मन लोगो ने डन्कर्क से होकर फ्रास [illegible] किया। डन्कर्क मे ब्रिटेन तथा फ्रास की सर्वोत्तम सेनाएँ थी।

जर्मन-सेनाओं ने अचानक बड़े वेग से उन्हें चारों ओर से घेर लिया। ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी सैनिकों ने बड़ी वीरता से मुक़ाबला किया, किन्तु जर्मन सेना ने ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी सेना का पेरिस तथा अन्य स्थानों की सेनाओं से पृथक्करण कर दिया। इससे उनकी सहायता के लिए न तो रसद पहुँच सकी और न कुमुक ही भेजी जा सकी।

जर्मन सेना के आठ-नौ डिवीज़नों ने (प्रत्येक डिवीज़न में ४०० विविध प्रकार की बख्तरदार गाड़ियाँ तथा यान्त्रिक सैन्य थी) एकदम पीछे से ब्रिटिश फौज पर हमला किया। इसमें ३०,००० ब्रिटिश सैनिक मारे गये और ३,३५,००० सैनिक जहाज़ों में बिठाकर ब्रिटेन वापस लाये गये। ५०,००० जर्मन सैनिक मारे गये। परन्तु इसमें फ्रांस की शक्ति का भारी नाश हुआ। जिस मैजिनो क़िलेबन्दी पर फ्रांस को अपार गर्व था, वह व्यर्थ सिद्ध हुई। ३-४ जून १९४० तक सब ब्रिटिश सेना डन्कर्क से वापस ब्रिटेन चली गई। ४ जून १९४० को मि० विन्स्टन चर्चिल ने पार्लमेंट में भाषण देते हुए कहा—"हमारी सेना तथा जनता के सुरक्षित रूप से बच आने पर कृतज्ञता-प्रकाशन करते हुए हमें यह तथ्य विस्मृत न कर देना चाहिए कि फ्रांस तथा बेलजियम में जो कुछ घटित हुआ है, वह महान् सैनिक संकट है। फ्रांस की सेना
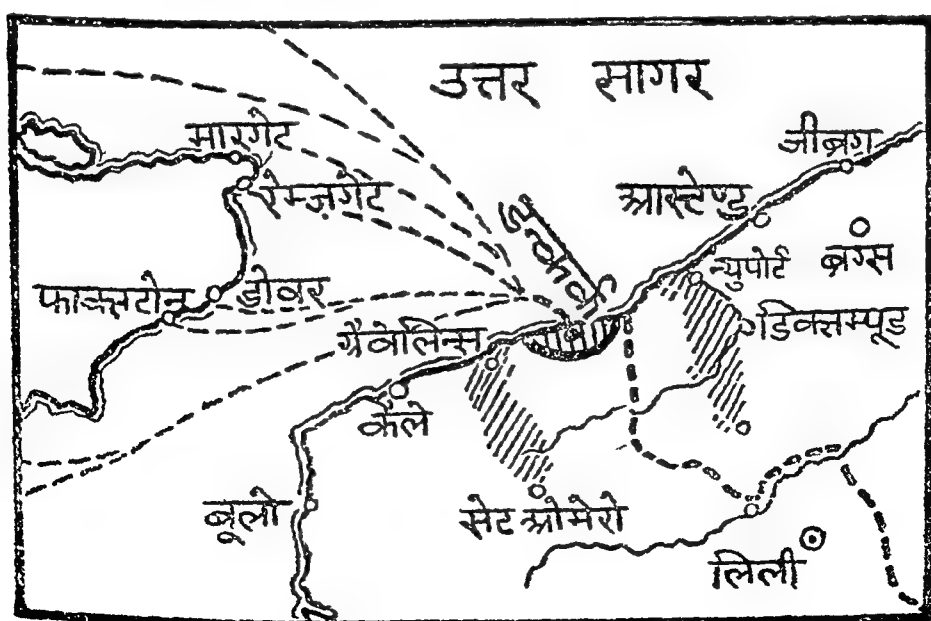
कमजोर हो गई है, वेलजियम की सेना नष्टप्राय हो चुकी है। फ्रास की वह क़िलेवन्दी, जिस पर इतना भारी विश्वास था, नष्ट हो चुकी है। वहुत-सी खाने तथा कारखाने शत्रु के हाथ मे पड गये है।"

इस घटना के बाद ही ब्रिटेन ने आक्रमक युद्ध आरम्भ किया। अब तक वह रक्षात्मक युद्ध करता आ रहा था।

डाउनिङ्ग स्ट्रीट—लन्दन के इस हलक़े मे ब्रिटिश प्रधान-मंत्री का निवास-भवन (मकान न० १०) और अर्थ-मत्री का मकान (नं० ११) तथा वैदेशिक-मत्री के भवन ह।

डायर—जनरल डायर, जिसने ६ अप्रैल १६१६ को जलियाँवाला वाग मे २०,००० की सार्वजनिक सभा पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलाने की आज्ञा दी थी।

डायरशाही—डायर के जैसे अत्यत अविचारपूर्ण अत्याचारो का पर्यायवाची शब्द बन गया है।

डी वैलरा—प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, नेता और आयरिश स्वतत्र राज्य के प्रधान मत्री। १४ अक्टूबर १८८२ को न्यूयार्क मे जन्म हुआ। इनकी माता आयरिश तथा पिता प्रवासी स्पेनिश थे। अपने बाल्यकाल मे ही डी वैलरा आयरलैण्ड भेज दिये गये। १६०४ मे डवलिन विश्वविद्यालय से गणित मे बी० ए० पास किया। ग्रेजुएट होकर वह अध्यापक बन गये। राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लिया। १६१६ मे डवलिन मे ईस्टर सप्ताह के विद्रोह मे शामिल हो गये। वह एक विद्रोही दल के नेता थे। उन्हे गिरफ़्तार किया गया तथा प्राणदण्ड की सजा सुना दी गई। यह सज़ा बाद मे आजन्म क़ैद मे बदल दी गई। परन्तु जून १६१७ मे उन्हे क्षमा-दान मिल गया। फिर उन्होंने नई शिनफीन प्रवृत्ति का नेतृत्व किया। मई १६१८ मे उन्हे फिर एक साल की कैद की सजा दी गई। बाद मे वह आयरिश प्रजातत्र के राष्ट्रपति चुने गये। जब १६२१ मे ब्रिटिश-आयरिश सधि हुई तब डी वैलरा ने पूर्ण आयरिश स्वाधीनता पर ज़ोर दिया। उन्होने इस सधि को अस्वीकार कर दिया। सधि के अनुसार आयरिश स्वतत्र उपनिवेश राज्य (Dominion) की स्थापना की गई। सधि से पूर्व जो प्रथम गृहयुद्ध आयरलैण्ड मे हुआ उसमे डी वैलरा ने कोई भाग नही लिया। इसी प्रकार सधि के बाद जो गृहयुद्ध हुआ उसमे भी कोई भाग

नही लिया। सन् १६२३ मे उन्हे गिरफ़्तार किया गया और १६२४ मे रिहा कर दिया गया। इसके बाद उन्होने प्रजातन्त्रवादियो का नेतृत्व किया और स्वतन्त्र आयरिश राज्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। सन् १६२५ मे 'आयरलैण्ड के सैनिक' (फियन्नाफेल) दल का संगठन किया। आयरिश स्वतन्त्र पार्लमेट के साथ सहयोग किया और पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित किया। सन् १६२७ मे आयरिश स्वतंत्र पार्लमेट के सदस्य चुने गये। सन् १६३२ में उनके फियन्नाफेल दल का बहुमत होने पर वह प्रधान मन्त्री बन गये। उन्होने ब्रिटेन से सबंध-विच्छेद करने पर बराबर ज़ोर दिया। डी वैलरा यद्यपि गरम दल के नेता है, परन्तु वह समाजवादी नही है। वह स्वाधीनता के समर्थक है तथा उत्तरी (अल्स्टर) और दक्षिणी (आयर) प्रदेशो के संयुक्त करने के पक्ष मे है। वर्त्तमान यूरोपीय युद्ध मे आयर (आयरिश दक्षिणी स्वतंत्र राज्य) तटस्थ है। डी वैलरा का यह मत है कि आयर स्वतंत्र राज्य की सुरक्षा और हित इसी मे है कि वह युद्ध में भाग न ले, वह एक छोटा-सा देश है। पर मई १६४० से देश-रक्षा की योजना की जा रही है।

डेनमार्क—क्षेत्रफल १६,५००वर्ग-मील और जनसख्या ३८,००,०००। इसकी राजधानी कोपनहेगन है। राजा क्रिश्चियन दशम् है। सन् १८७० मे उसका जन्म हुआ तथा सन् १६१२ मे वह राज-सिहासन पर बैठा। यह देश सदैव से तटस्थ रहा है। यह कृषि-प्रधान देश है, जिसमे गोरस-व्यवसाय (डेरी फार्मिग्) मुख्य है। यहॉ से कृषि-पैदावार जर्मनी और

ब्रिटेन जाती थी। सन् १६२४ मे यहाँ समाजवादी सरकार थी और उसने इसे निःशस्त्र बना दिया। पर पिछले कुछ सालों मे देश-रक्षा के लिये थोडा प्रयत्न किया गया है। ८ अप्रैल १६४० की रात को जर्मन-सेनाओं ने डेनमार्क पर आक्रमण किया। डेनमार्क की सरकार ने प्रतिवादपूर्वक आत्मसमर्पण कर दिया। यद्यपि डेनमार्क तटस्थ था, फिर भी जर्मनी ने हमला करके उसे अपने अधीन कर लिया। सिर्फ दो कारणों से ऐसा किया गया—एक तो नार्वे पर आक्रमण करने के लिये जर्मनी इस देश को अपना हवाई अड्डा बनाना चाहता था, दूसरे डेनमार्क की कृषि-पैदावार से भी वह फायदा उठाना चाहता था।

डेल आइरीन—आयरिश स्वतत्र राज्य की पार्लमेंट की द्वितीय परिषद्।

त

तटस्थता—राष्ट्रों मे परस्पर युद्ध होने पर उसमे भाग न लेने की स्थिति। अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार तटस्थ देश को युद्ध मे किसी प्रकार भी भाग न लेना चाहिये। उसे किसी भी विग्रही राष्ट्र के सैन्य-सङ्गठन मे न बाधा डालनी चाहिये और न सहायता ही देनी चाहिये। यदि उसकी तटस्थता मे कोई बाधा डाली जाय तो उसे आत्मरक्षा का पूरा अधिकार है। जो विग्रही देश तटस्थ देश की तटस्थता को भग करने के लिए हवाई यानो अथवा नौसेना का प्रयोग करे, उसके विरुद्ध बलप्रयोग का उसे पूरा अधिकार है। तटस्थ देश मे होकर विग्रही राष्ट्र की सेना को न मार्ग दिया जा सकता उस देश के प्रदेश मे हवाई सेना या नौ-सेना के अड्डे ही बन सकते हैं,

और न उस देश में विग्रही राष्ट्रों के लिए सैनिकों की भर्ती ही की जा सकती है। विग्रही राष्ट्रों के युद्ध-पोत तटस्थ राष्ट्रों के बन्दरगाहों में २४ घंटे तक ही ठहर सकते हैं। वे ऐसे बन्दरगाहों में अपने युद्ध-पोतों की मामूली मरम्मत कर सकते हैं तथा भोजन-सामग्री आदि ले सकते हैं। तटस्थ देश के बन्दरगाह पर ठहरे हुए विग्रही राष्ट्र के युद्धपोत में यदि युद्धबन्दी पाये जायँ तो उन्हें मुक्त किया जा सकता है। तटस्थ राष्ट्र विग्रही राष्ट्रों के साथ व्यापार कर सकते और उन्हें युद्ध-सामग्री भेज सकते हैं।

तटस्थता कानून, १९३९—संयुक्त-राज्य अमरीका ने यह क़ानून ४ नवम्बर १९३९ को स्वीकार किया था। इसका आशय यह था कि जैसे ही राष्ट्रपति यह घोषणा कर देंगे कि अमुक देश विग्रही है, वैसे ही उन देशों को अमरीकन अस्त्र-शस्त्र, युद्ध-सामग्री तथा अन्य वस्तुएँ नक़द मूल्य पर बेची जा सकेंगी। संयुक्त-राज्य अमरीका में कोई व्यक्ति किसी विग्रही देश की सरकार के द्वारा युद्ध के बाद जारी किये गये ऋण-पत्रकों को न ख़रीद सकेगा और न रुपया ही उधार दे सकेगा। हाँ, व्यापारिक मामलों में ऐसा किया जा सकेगा। अमरीकन जहाज़ों द्वारा विग्रही देशों के लिए कोई रसद न भेजी जा सकेगी। विग्रही राष्ट्रों को स्वयं अपने जहाज़ों में माल मँगाना होगा। अमरीकन जहाज़ों को युद्ध-क्षेत्र में नहीं जाना होगा। किंतु दिसम्बर १९४१ में वर्तमान युद्ध में अमरीका के शामिल होते ही यह क़ानून अपने आप बेकार हो गया। अमरीका अब हथियार तथा अन्य युद्ध-सामग्री केवल मित्र देशों—ब्रिटेन, रूस और चीन—को दे रहा है। सन् '४० के शुरू तक ब्रिटेन, फ्रान्स, बेल्जियम, हालैंड, जर्मनी तथा स्केन्डिनेविया के समुद्र-तट युद्ध-क्षेत्र घोषित किये जा चुके थे, और अब स्वयं अमरीका के विग्रही देश बन जाने से उसका समुद्र-तट भी युद्ध-क्षेत्र घोषित हो चुका है।

तटस्थ-क्षेत्र (अमरीकन)—३ अक्टूबर १९३९ को अमरीका के २१ प्रजातंत्र राज्यों के एक सम्मेलन में तटस्थ-क्षेत्र की सीमा निर्धारित की गई। यह सीमा समस्त अमरीका (कनाडा को छोड़कर) के चारों ओर ३०० मील तक और कहीं-कहीं ६०० मील तक निर्धारित है। यह निश्चय किया गया कि इस क्षेत्र में युद्ध-सम्बंधी कोई काम न किया जा सकेगा। इस [illegible]

क्षेत्र मे ॲगरेजो के जहाजो ने जर्मन जहाजो को डुबोया, तब विशेषज्ञो ने सब प्रजातत्रो से यह सिफारिश की कि विग्रही राष्ट्रो के जो जहाज अमरीकन बन्दरगाहो पर आवेगे उन्हे नज़रबन्द कर लिया जायगा। ब्रिटेन ने इस तटस्थ-क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय विधान के विरुद्ध बतलाकर इसका विरोध किया। अमरीका के युद्ध मे शामिल होते ही यह क्षेत्र अब रक्षा-क्षेत्र बन गया है।

तटावरोध—समुद्र द्वारा शत्रु के जहाजो तथा रसद के भेजे जाने मे बाधा डालना। तटावरोध शत्रु-राज्य के तट पर ही किया जा सकता है, तटस्थ देशो के समुद्र-तट पर नही। अत' शत्रु तटस्थ राष्ट्रो से माल मॅगवा सकता है। यही कारण है कि इस युद्ध मे तटावरोध की घोषणा नही की गई है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार विग्रही राज्य को यह अधिकार है कि वह उस रसद को रोक सकता है जो शत्रु-देश को पहुॅचाई जा रही हो, फिर चाहे जहाज तटस्थ देशो के बन्दरगाहो मे होकर ही क्यो न जाय।

तिब्बत—क्षेत्रफल ४,६३,००० वर्गमील, जनसख्या ६०,००,०००। राजधानी लासा। इस देश का शासक दलाई-लामा है। आबादी का पॉचवॉ भाग लामा (बौद्ध भिक्षुओ) का है। सन् १९१२ तक तिब्बत चीनी नियत्रण मे था। तब से यह स्वाधीन देश है। यहॉ विदेशी लोग कम जाते है। यह भारत के उत्तर-पूर्व मे हिमालय की गोद मे स्थित है।

तिमोशेंको, मार्शल—मार्शल तिमोशेको की आयु ४६ वर्ष की है। समय वह सोवियट रूस के सेना-विभाग के मंत्री (People's

Commissar for Defence) हैं। उन्होंने अपनी सैनिक योग्यता से ही यह उच्च तथा उत्तरदायित्वपूर्ण पद प्राप्त किया है। जब आप नवयुवक थे तब आपको प्लेटून चुना गया। तदनन्तर कालेसागर के घुडसवार रिसाले के आप नायक बनाए गए। तब से आपने उत्तरी काकेशश, ख़ारकोफ़ और कीफ़ के रणक्षेत्रो का सचालन बडी योग्यता के साथ किया है। सन् १६३६ मे वह लाल सेना को लेकर पूर्वीय पोलैण्ड गये और बाद को फिनलैण्ड के युद्ध मे सफलता प्राप्त की। फ़िनलैण्ड की मेनरहीम दुर्गपंक्ति को बेधने मे सफलता प्राप्त करने के उपलक्ष्य मे आपको मार्शल की पदवी प्रदान की गई। मार्शल ऐस० बुदेनी मार्शल तिमोशेको के सहकारी है। ऐस० कुशनेजोव् लाल जल-सेना के प्रधान सेनापति है। वोरिस शापो शिनीकोव् सोवियट स्टाफ़ के चीफ है।

तिलक, लोकमान्य बाल (बलवन्तराव) गङ्गाधर—कोकण (महाराष्ट्र) के रत्नगिरि ज़िले के एक ग्राम मे चित्पावन ब्राह्मण-कुल मे २३ जुलाई सन् १८५६ को जन्म हुआ। १८७६ ई० मे प्रथम श्रेणी मे बी० ए० (आनर्स) पास हुए और १८७६ में बंबई से उन्होंने क़ानून की परीक्षा पास की। १८८० मे तिलक तथा श्री चिपलूणकर शास्त्री ने न्यू इगलिश स्कूल की स्थापना की और १८८४ मे उन्ही के प्रयत्न से दक्षिण-शिक्षा-समिति की प्रस्थापना हुई। इसी समिति की ओर से जब फर्गुसन कालेज की स्थापना की गई तो लोकमान्य ने उसे अपनी अध्यापकीय सेवायें अर्पित की। पर कुछ दिन बाद आपने इस संस्था से सम्बन्ध तोड लिया। सन् १८८१ मे, लोकमान्य तिलक तथा उनके सहयोगी श्री आगरकर ने मराठी मे 'केसरी' तथा अँगरेज़ी मे 'मराठा' पत्रो को जन्म दिया और स्वयं उनके संपादक बने। तिलक की ओजस्विनी विचारधारा जनता मे जीवन और जागरण उत्पन्न करने लगी। इसी उद्देश्य से तिलक ने गणपति-उत्सव और शिवाजी-उत्सव आरम्भ किए। १८६५ मे

वह बबई-धारासभा के सदस्य चुने गए। दो वर्ष बाद पूने मे प्लेग महामारी फूट पडी। प्लेग से रक्षा के लिए सरकार ने बडी कड़ाई के साथ स्वास्थ्य-सबधी नियमो के पालन पर जोर दिया और इसकी व्यवस्था का भार गोरे सैनिको के हाथो मे सौप दिया। सैनिक जनता को हर प्रकार से तंग करने लगे। इन्ही दिनो दामोदर हरि चापेकर नामक एक व्यक्ति ने प्लेग-समिति के अध्यक्ष मि० रैण्ड की हत्या कर दी और लेफ्टिनेन्ट आयरेट नामक एक अफसर भी मार दिया गया। ऐंग्लो-इडियन समुदाय और उनके पत्रो ने गुहार मचानी आरम्भ की और शासको द्वारा आतक की वृद्धि हुई। लोकमान्य तिलक ने अपने किसी लेख मे शिवाजी द्वारा अफजलखॉ के वध को नीतिविहित सिद्ध किया था। आवाज उठने लगी कि तिलक राजनीतिक हत्याओ को उत्तेजना देते हैं। इससे समस्त देश मे बडी सनसनी फैल गई। तब 'केसरी' मे प्रकाशित कुछ लेखो के कारण लोकमान्य पर राजद्रोह का मुकद्दमा चला और उन्हें १८ मास क़ैद की सज़ा दी गई। इस जेल-जीवन मे लोकमान्य ने वेदो मे खोज करके 'ओरायन' नामक ससार-प्रसिद्ध ग्रन्थ की अँगरेजी मे रचना की। प्रसिद्ध योरपीय विद्वान् प्रो० मैक्समूलर इससे बहुत प्रभावित हुए। उन्होने महारानी विक्टोरिया को लिखा और लोकमान्य ६ मास पूर्व जेल से छोड दिये गये। लोकमान्य प्रथम बार १८६० मे कांग्रेस मे शामिल हुए थे। फिर जब १८६५ मे पूना मे अधिवेशन हुआ तो आपको स्वागत-समिति का मन्त्री बनाया गया। काग्रेस मे तब माडरेट लोगो का ही बोलबाला था। पर लोकमान्य काग्रेस को तीन दिन के तमाशे के बजाय निरन्तर कार्यशील और जागरूक सस्था बनाना चाहते थे। १६०५ मे जब लार्ड कर्जन ने बगाल के दो टुकडे कर दिए और फलतः उसके विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन उठा तो तिलक ने पैसा-फंड खोला और आन्दोलन के सचालनार्थ लाखो रुपये इकट्ठा हो गये। सन् १६०७ मे सूरत मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन मे तिलक के गरम दल और रासबिहारी घोष तथा सुरेन्द्रनाथ आदि के नरम दल के बीच जोरो का सघर्ष हुआ और फलतः काग्रेस पर कुछ वर्षों के लिए माडरेटो का आधिपत्य और भी प्रबल हो गया। 'केसरी' के कुछ लेखो के कारण लोकमान्य को २४

जून सन् १६०८ को दफा १२४ ए० (राजद्रोह) और १५३ ए० (जातिगत-विद्वेष) के अभियोग मे गिरफ्तार किया गया और उनकी ५२वी वर्षगॉठ से एक दिन पूर्व, ६ वर्ष के लिए निर्वासन और १०००) जुर्माना का दण्ड दिया गया। मुक़दमे के दौरान मे उन्होने जो बयान दिया वह बहुत मार्मिक था। लोकमान्य ने कहाः—'मै केवल यह कहना चाहता हूॅ कि यद्यपि जूरी ने मुझे अपराधी ठहराया है, किन्तु मै बलपूर्वक कहता हूॅ कि मै निर्दोष हूॅ। विश्व मे एक महती शक्ति भी है जो भौतिक जगत् का सूत्र-सचालन करती है, और सम्भवतः विधाता का ऐसा ही विधान हो कि वह उद्देश, जिसका मै प्रतिनिधित्व करता हूॅ, मेरे स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट-सहन द्वारा अधिकाधिक फलीभूत होगा।' लोकमान्य माडले (ब्रह्मा) के क़िले मे एक लकड़ी के बने कठघरे मे बन्दी बनाकर रखे गये। इस बन्दीगृह मे उन्होने कठिन यातनाऍ भोगी। परन्तु कर्मयोगी तिलक ने इन यातनाओ की तनिक भी चिन्ता न कर अपना समय स्वाध्याय और चिन्तन मे बिताया। अपना सबसे लोकप्रिय तथा सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "गीतारहस्य" उन्होने इसी बन्दीगृह मे लिखा। जून १६१४ मे वह रिहा हुए।

२३ अप्रैल १६१६ को उन्होने पूना मे होमरूल-लीग की स्थापना की। सूरत के बाद सन् '१६ के लखनऊ अधिवेशन मे लोकमान्य पुनः काग्रेस मे सम्मिलित हुए। १६०७ से बिछुड़े हुए कांग्रेस के दोनो दल एक हुए, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए काग्रेस-लीग योजना स्वीकृत हुई; स्वराज्य की योजना बनी। इन सबमे, विशेषकर, साम्प्रदायिक-योजना के निपटारे मे लोकमान्य का बहुत हाथ था। वास्तव मे भारत मे राष्ट्रीयता का क्षेत्र तैयार करके बीज वपन करने का समस्त श्रेय लोकमान्य को है। "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार और हम इसे लेकर रहेगे"—यह मूलमन्त्र करोडो भारतीयो को उन्होने ही पढाया। राष्ट्रीय-भावना को वह सबल अकुरित रूप मे छोड गये।

लोकमान्य राजनीतिक अग्रणी ही नही, समाज-सुधारक और ज्योतिष तथा आयुर्वेद के विद्वान् भी थे। वर्णव्यवस्था के वर्तमान रूप को उन्होने वेद-विरुद्ध ठहराया था। वह जात-पॉत के विरोधी थे।

सर वेलंटैन शिरोल ने अपनी 'भारत मे अशान्ति' (Unrest in

India) नामक पुस्तक मे लिखा कि तिलक राजद्रोही हैं और वह भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड फेकना चाहते हैं । इस पर लोकमान्य तिलक ने लन्दन जाकर शिरोल के विरुद्ध मानहानि का मुकद्दमा चलाया। पर इस मुकद्दमे मे तिलक की विजय न हो सकी।

पहली अगस्त १६२० को असहयोग आन्दोलन का आरम्भ होनेवाला था। लोकमान्य तिलक ने मुसलमानो को आश्वासन दिया था कि वह खिलाफत आंदोलन मे सहयोग देगे। परन्तु आन्दोलन के आरम्भ होने से पूर्व ही ३१ जुलाई १६२० को रात्रि मे उनका स्वर्गवास हो गया।
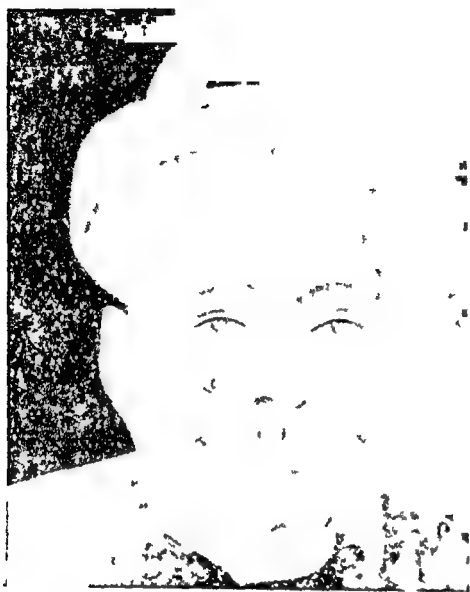
तुर्किस्तान (टर्की)—क्षेत्र-फल ३,००,००० वर्गमील, जन-संख्या १,६५,००,०००। राजधानी अकारा। पुराने उसमानिया साम्राज्य के पतन के बाद तथा अलबानिया, अरब के कई प्रदेश, एव फिलस्तीन आदि मुल्कों के इस सल्तनत मे से निकल जाने के उपरान्त, सन् १६२२ मे, कमाल अतातुर्क ने तुर्की प्रजातन्त्र की नींव डाली। अतातुर्क ने टर्की मे अनेक राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक सुधार किये और देश का, आधुनिक युग के अनुकूल, पूर्णतः पाश्चात्यीकरण किया। सन् १६३४ मे कमाल ने एक चातुर्वर्षीय योजना बनाई। राष्ट्र (सल्तनत) की ओर से १५ बडे कारखाने बनाये गये। सोवियट रूस से मशीने मॅगाई गई। यहॉ राष्ट्र ही आर्थिक योजना तैयार करता है और वही अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्योगो का स्वामी है। व्यक्तिगत स्वत्वाधिकार के लिये भी गुजाइश है। परन्तु राष्ट्र का फिर भी नियत्रण रहता है। टर्की मे अधिनायक-तत्र है। प्रजादल (People's Party) ही अकेला राजनीतिक दल है। देश की राष्ट्रीय परिषद् मे कुल ३६६ प्रतिनिधि हैं। इनमे ३८१ प्रजादल

के हैं, सिर्फ १० स्वतंत्र हैं। सेना मे १०,००,००० सैनिक हैं। यद्यपि तुर्किस्तान मे साम्यवादियो का दमन होता रहता है, तथापि वह १६२० से रूस से मैत्री-सबंध बनाये हुए है। दरेदानियाल का रक्षक होने के कारण तुर्की की मित्रता रूस के लिये ज़रूरी है। यूनान से भी उसकी मैत्री है। बलकान-राष्ट्रो मे उसकी दिलचस्पी है। तुर्किस्तान बलकान मे जर्मन-प्रसार का विरोधी है, इसलिये कि जर्मनी तुर्की के रास्ते मध्य-पूर्व या मोसल के तैल-कूपो तक न बढ़ सके। मई १६३६ मे फ्रान्स तथा ब्रिटेन ने तुर्किस्तान को यह गारटी दी थी कि उस पर आक्रमण होने पर यह दोनो देश उसकी रक्षा करेगे। १६ अक्टूबर १६३६ को फ्रान्स-ब्रिटेन-तुर्की मे १५ वर्षों के लिए पारस्परिक सहायता देने की सधि भी होचुकी है।

इस सधि का आशय यह है कि यदि किसी योरपियन राष्ट्र ने तुर्किस्तान पर हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप भूमध्यसागर मे युद्ध हुआ, जिसमे तुर्किस्तान भी संलग्न हुआ, तो फ्रान्स तथा ब्रिटेन उसकी सहायता करेगे। इसी प्रकार तुर्की ब्रिटेन तथा फ्रान्स की सहायता करेगा, परन्तु सिर्फ रूस के विरुद्ध नही। इटली के वर्तमान युद्ध मे सलग्न होने के उपरान्त भी तुर्की तटस्थ रहा। धुरी राष्ट्रो का वह विरोधी है। इटली के विरुद्ध यूनान को भी उसने ग़ैर-सरकारी तौर पर मदद दी। किन्तु अप्रैल '४१ मे जब हिटलर ने यूगोस्लोविया और यूनान पर धावा किया तो तुर्की ने बलकान-राष्ट्रो से सहयोग करने से इनकार कर दिया। इससे कुछ ही पूर्व, २४ मार्च '४१ को, उसने सोवियत रूस से अनाक्रमण और तटस्थता की सन्धि भी की। बलकान मे हिटलर की विजय के बाद तुर्की का रुख जर्मनी के प्रति दोस्ताना होगया।

पिछली शताब्दी के आदि से गत महायुद्ध के अन्त और अतातुर्क कमाल के उद्भव के समय तक तुर्किस्तान को योरपियन

राष्ट्र 'योरप का रुग्ण मानव' (Sick man of Europe) कहकर उसकी भर्त्सना किया करते थे। यह कमाल का ही कमाल है जो उसने आज के तुर्की को ससार के सबल और समृद्ध राष्ट्रों की कोटि मे खड़ा कर दिया है।

तृतीय राइख—जर्मनी का वर्त्तमान नात्सी शासन-काल तृतीय राइख या साम्राज्य कहलाता है। मध्ययुगीन जर्मन-साम्राज्य प्रथम साम्राज्य था। सन् १८७१ से १६१८ तक द्वितीय राइख रहा। इसके बाद हिटलर के उदय, सन् १६३३ से, वर्त्तमान शासन तृतीय राइख है। १६१६ से १६३३ के बीच का जर्मन-प्रजातन्त्र मध्यवर्त्ती साम्राज्य कहा जाता है।

तेल—सन् १६३६ मे ससार मे प्रायः २६,००,००,००० मैट्रिक टन (मैट्रिक-टन=लगभग २००५ पौंड) तेल निकाला गया। तेल पैदा करनेवाले प्रमुख देश इस प्रकार हैः—(१६३६ की निकासी १००० गुने मैट्रिक टनो मे):—सयुक्त-राज्य अमरीका १,७५,०००, सोवियत रूस ३१,०००, वेनेज्युला २६,०००, ईरान ११,०००, डच इन्डीज ७,४००, रूमानिया ६,०००, मैक्सिको ५,०००, इराक़ (मोसल) ४,३००, कोलम्बिया ३,०००, ट्रिनीडाड २,५००, अरजेंटाइना २,४०० और पेरू २,१००। मिस्र, ब्रह्मा, पोलैण्ड तथा जर्मनी मे भी तेल निकलता है, पर कम। तेल की उपयोगिता पिछले कुछ दशकों से बहुत बढ गई है, क्योंकि लडाकू वायुयानों, बरबरदारी की मोटरों, यान्त्रिक सेनाओ, बख़्तरदार गाडियो तथा युद्ध-पोतो मे तेल का प्रयोग बहुतायत से किया जाने लगा है। यही कारण है कि आज के साम्राज्यवादी राष्ट्रो की दृष्टि उन देशो पर लगी है, जिनमे तेल अधिक पैदा होता है। तेल का व्यवसाय करनेवाली प्रसिद्ध कम्पनियाँ—(१) रॉयल डच शैल (इन कम्पनियो पर ॲगरेज़ो तथा डचो का नियत्रण है), (२) स्टैंडर्ड आयल कम्पनियाँ (सयुक्त-राज्य अमरीका)। इन दोनो कम्पनियो मे खूब व्यापाराना प्रतियोगिता रहती थी, जिसका असर इन देशो की राजनीति पर भी पडता था। किन्तु सम्प्रत्ति यह होड मित्रता मे बदल गई है। (३) ऐंग्लो ईरानियन कम्पनी (ब्रिटिश सरकार की) और (४) टैक्सस कारपोरेशन (अमरीका)। जर्मनी मे तेल नही है। इसलिए उसने कोयले से तेल निकालना शुरू किया है। सन् १६४० मे करीब

२५,००,००० टन तेल कोयले से वहाँ निकाला गया किन्तु यह तेल प्राकृतिक तेल से चौगुना महँगा पड़ा।

तोजो—सन् १९३६ से जापान जर्मनी का पदानुसरण कर रहा है। इसी नीति के कारण वह कामिन्टर्न-विरोधी दल मे शामिल हुआ। किन्तु १९३९ के अगस्त मे, जब जर्मनी ने सोवियत रूस से अनाक्रमण-सन्धि की तो जापान की राजनीति मे शीघ्रतापूर्वक परिवर्तन हुए और जापान के तत्कालीन प्रधान मन्त्री बैरन हिरानूमा की सरकार ने इस्तीफा दे दिया, क्योंकि वह कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की विरोधिनी थी। तब अधिक उदार विचारवाले, एक सामरिक नेता, जनरल आवे ने मन्त्रिमण्डल बनाया। किन्तु आवे-सरकार भी अधिक दिन न टिकी और जनवरी १९४० मे नौसेनापति (ऐडमिरल) योनाई ने जापानी मन्त्रिमण्डल बनाया। योनाई ने घोषणा की कि उसकी सरकार चीन के मामले के निपटारे पर अधिक ध्यान देगी और योरपीय युद्ध से अलग रहेगी।

किन्तु, जून १९४० मे फ्रान्स का पतन होते ही, जापान की वैदेशिक नीति एकदम उग्र होउठी। योनाई मन्त्रिमण्डल ने भी त्यागपत्र दिया, और प्रिन्स फ़्यूमीमारो कोनोय ने सरकार बनाई। जापान मे ब्रिटिश-विरोधी भावना तीव्रतर होउठी। अक्तूबर १९४० मे कामिन्टर्न-विरोधी (रोम-बर्लिन-तोक्यो)-त्रिगुट, त्रिराष्ट्र-सन्धि के रूप मे, पुनर्निर्मित हुआ। किन्तु फिर भी अप्रैल १९४१ मे जापान और सोवियत रूस के बीच, इन दोनो मे से किसी राष्ट्र पर आक्रमण होने की दशा मे, पारस्परिक निरपेक्षता-सन्धि हुई। वास्तव में जापान, जून १९४१ मे रूस पर जर्मन-आक्रमण होने के समय, निरपेक्ष रहा। किन्तु ज्योंही नात्सी सेनाये रूस मे आगे बढ़ती दिखाई दी त्योंही जापान का सामरिक दल अधिक क्रियाशील होउठा, और १५ अक्तूबर १९४१ को नरम विचार के प्रिन्स कोनोय की सरकार ने भी इस्तीफा देदिया। तब, युद्धवादी दल के, जनरल तोजो ने सरकार बनाई और ७ दिसम्बर १९४१ को जापानी सेनाओ ने, बिना किसी चेतावनी के, सुदूरपूर्व में अमरीकी और बरतानवी अधिकृत देशो पर आक्रमण कर पश्चिमी प्रशान्त महासागर मे युद्ध छेड़ दिया। इन देशो को भुलावे मे डालने और अपने युद्ध-प्रयास को पूर्ण करने की

नीयत से जापान-सरकार ने एक विशिष्ट दूत, प्रशान्त के सम्बन्ध मे शान्ति-पूर्ण समझौता करने के लिये, वाशिंगटन भेजा था। यह दूत अभी वहीं था कि इधर जापान ने आक्रमण कर दिया। फलतः चीन और हालैन्ड ने (प्रशान्त मे इसके भी अधिकृत देश थे) जापान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। (वास्तव मे इससे पूर्व चीन ने नियमानुकूल जापान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा नहीं की थी)। इसके बाद ही जापान ने जर्मनी और इटली के साथ सामरिक-सन्धि करली।

जब यह पक्तियाँ छप रही हैं तोजो ही जापान की युद्ध-लिप्सा और साम्राज्यवाद के प्रतीक के रूप मे ब्रिटेन, अमरीका और हालैण्ड के विरुद्ध, सुदूर-पूर्व और चीन मे, युद्ध का सचालन कर रहा है। तोजो शुरू से ही जर्मनी का पक्षपाती रहा है। १६१६ मे वह बर्लिन में जापान का सामरिक दूत था। उसके बाद मचूको में पुलिस का प्रधान अधिकारी रहा, जहाँ उसने अमानुषिकतापूर्वक दमन किया। उपरान्त चीन मे जापानी सेना का मुख्य अधिकारी रहा। तोजो बडा दुराग्रही और कठोर है। जापानी उसे 'उस्तरा' कहा करते हैं।

त्रिराष्ट्र-सन्धि—२७ सितम्बर १६४० को जर्मनी, इटली और जापान के बीच, दस वर्षों के लिये, हुई सन्धि। इसके अनुसार जापान ने योरप मे नवीन विधान (न्यू आर्डर) की स्थापना मे जर्मनी और इटली की प्रधानता को स्वीकार किया है। इसी प्रकार जर्मनी और इटली ने एशिया मे जापान द्वारा नवीन राजनीतिक-रचना मे उसके नेतृत्व को माना है। सन्धि-कर्त्ता तीनो राष्ट्र, किसी पर भी ऐसे राष्ट्र द्वारा आक्रमण होने पर, जो वर्तमान योरपीय अथवा चीन-जापान युद्ध से सम्बन्धित नहीं है, एक-दूसरे की, पूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक रूप से, सहायता करेंगे। सोवियत रूस के सम्बन्ध मे तीनो राष्ट्रो की अपनी-अपनी नीति पर इस सन्धि का कोई प्रभाव नहीं है। यह सन्धि वास्तव मे सयुक्त-राष्ट्र अमरीका के विरुद्ध की गई है, किन्तु परोक्ष रूप से यह रूस के विरुद्ध भी है। हगरी, स्लोवाकिया और

रूमानिया इस सन्धि में तत्काल ही शामिल होगये। ११ दिसम्बर '४१ को यह सन्धि पूर्ण सामरिक गुट मे परिवर्तित होगई। यह सन्धि कामिन्टर्न विरोधी समझौते का ही एक प्रतिरूप है।

थ—द

थाईलैण्ड—(देखिये 'स्याम')।

दण्डाज्ञा—अन्तर्राष्ट्रीय सधि-शर्तों के पालन के लिए उपाय। राष्ट्रसंघ के विधान की १६वी धारा मे, राष्ट्रसघ के विधान के विरुद्ध, युद्ध करनेवाले राष्ट्र के ख़िलाफ आर्थिक तथा सैनिक दण्डाज्ञाओ का उल्लेख है। इटली-अबीसीनिया युद्ध के बाद इटली के विरुद्ध इनका प्रयोग किया गया।

दरेदानियाल (Dardanelles)—यह डमरूमध्य दक्षिण मे काले-सागर तथा भूमध्य-सागर को मिलाता है। १८४१ ई० से यह तुर्की के अधि-कार मे है। १८वी तथा १६वी शताब्दी मे रूस इस पर अपना अधिकार करके भूमध्य-सागर मे अपना आधिपत्य जमाना चाहता था। परन्तु ब्रिटेन, फ्रान्स और तुर्की ने इसका विरोध किया और, इस कारण, क्रीमियन युद्ध छिडा। विगत विश्व-युद्ध तक यह तुर्की के अधिकार मे रहा। युद्ध के बाद मित्र-राष्ट्रो ने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया और गैलीपोली प्रायद्वीप, जिसमें इस जल-डमरूमध्य का योरपियन-तट पडता है, यूनान को दे दिया गया। उपरान्त यह निरस्त्र कर दिया गया और हर प्रकार की जहाज़रानी के लिए इसे खोल दिया गया तथा इसका नियत्रण एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन के हाथ मे दे दिया गया। परन्तु कमाल के नेतृत्व मे, तुर्की के यूनान पर विजय प्राप्त करने के बाद, गैलीपोली फिर तुर्की को दे दिया गया और, ४ अगस्त १६२३ के लौसेन-समझौते के अनुसार, इस पर अन्तर्राष्ट्रीय-नियन्त्रण हलका कर दिया गया, और तुर्की का इस पर आंशिक प्रभुत्व

होगया। ऐतिहासिक परम्परा के विरुद्ध रूस ने, आक्रमण का रास्ता खुल जाने की आशङ्का से, इसका विरोध किया और बरतानिया ने आग्रह। परन्तु, २० जुलाई १९३६ के मोन्ट्रियो-समझौते के अनुसार, तुर्की को इस डमरूमध्य का शस्त्रीकरण और क़िलेबन्दी करने का अधिकार मिल गया। अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन का पचायती नियंत्रण भी हट गया और तुर्की को इस पर पूरा कब्जा मिल गया। परन्तु इस पूर्ण प्रभुत्व पर यह मर्यादायें लगा दी गईं कि शान्ति के समय इसमें व्यापारिक जहाजरानी स्वतंत्र रूप से हो सकेगी. १०,००० टन से ज्यादा के युद्ध-यान, पनडुब्बियाँ तथा लड़ाकू वायुयानों को ले जानेवाले जहाज़ इसमें से न गुजर सकेंगे। इनके अतिरिक्त दूसरे लड़ाकू जहाज़ भी केवल दिन मे निकल सकेंगे। युद्ध के समय तुर्की तटस्थ रहेगा तथा विग्रही राष्ट्रों के युद्ध-पोतों को इसमें से गुजरने नहीं दिया जायगा। परन्तु यदि युद्ध-पोत राष्ट्रसंघ के आदेश से अथवा किसी विशेष समझौते की रक्षा के लिए भेजे जायँगे, तो उन पर तुर्की द्वारा कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायगा। अन्यथा दरेदानियाल डमरूमध्य पर तुर्की का पूरा क़ब्जा है।
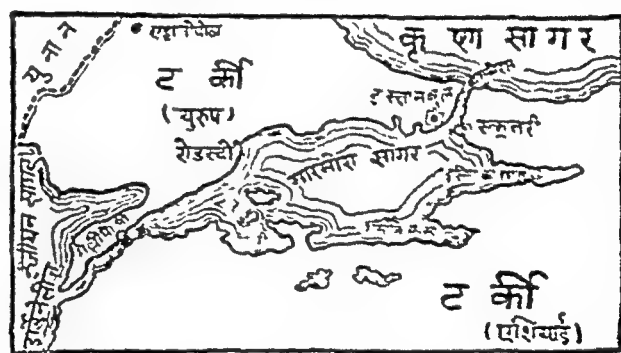
दलादिये, ऐडुअर्ड—फ्रान्स का राजनीतिज्ञ। सन् १८८४ मे जन्म हुआ। इसका पिता नानबाई था। यह अध्यापक बन गया। विगत विश्व-युद्ध मे कप्तान बनकर लड़ा। सन् १९१९ मे क्रान्तिकारी समाजवादी दल की ओर से पार्लमेण्ट का सदस्य (डिपुटी) चुना गया। सन् १९२४ मे उपनिवेश-मंत्री, १९२५ मे युद्ध-मंत्री और १९२६ में शिक्षा-मंत्री बना। १९२७ मे क्रान्तिवादी-दल का प्रधान होगया। १९३३ मे १० मास के लिए प्रधान-मन्त्री रहा। सन् १९३४ फिर प्रधान मंत्री रहा। सन् १९३४ से युद्ध-मंत्री हुआ। पुनः अप्रैल १९३८

से मार्च १९४० तक प्रधान-मंत्री रहा और युद्ध-मंत्री भी। फ्रान्स की आर्थिक और धन-सम्बन्धी स्थिति को कायम रखने के लिए अनुदार उपायो का अवलम्बन किया। फ्रान्स मे इन दिनो जन-दल (पापुलर-फ्रन्ट) की साम्यवादी और क्रान्तिवादी त्रिगुट सरकार थी, पर पीछे उसमे दक्षिणपन्थी विचारो का बाहुल्य होता गया और दलादिये भी इसी ओर झुकता गया। सन् १९३८ मे म्युनिख की संधि पर उसने हस्ताक्षर किये। दलादिये अपने दल के वाम पक्ष मे था। फ्रान्स मे वह 'शक्तिशाली शासक' माना जाता था। अपनी ओर से हुक्म जारी किया करता था। एक हुक्म निकालकर उसने, सन् १९३९ मे, चुनावो को दो साल के लिये स्थगित कर दिया। जब चेम्बर (पार्लमेन्ट) उसके व्यक्तिगत शासन से तग आगया और उसने युद्ध को और ज़ोरो से लडने की मॉग की, तब २१ मार्च १९४० को उसने त्याग-पत्र दे दिया और बादको रिनो के मंत्रि-मण्डल मे वह युद्ध-मंत्री और वैदेशिक मन्त्री रहा, किन्तु जून '४० मे हटा दिया गया। जब फ्रान्स हार गया तो बाद मे संवाद आया कि दलादिये मार्शल पेतॉ द्वारा क़ैद कर लिया गया है।

द्यूचे (Duce)—इटालियन भाषा में यह पद नेता का पर्याय है। मुसोलिनी की यह पदवी है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—भौतिकवादी विचारधारा के साथ द्वन्द्वात्मक प्रणाली का सयोग। राजनीतिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व इसलिए है कि इसका वैज्ञानिक समाजवाद से विशेष सम्बन्ध है। यह एक प्रकार से मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद का आधार है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जर्मन आदर्शवादी दार्शनिक हैगल ने द्वन्द्वात्मक-प्रणाली का विकास किया। उसने

यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि इतिहास, मानव-विचारों के विकास मे, द्वन्द्वात्मक पद्धतिकी ही प्रतिच्छाया है। कार्ल मार्क्स ने हेगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली को तो अपना लिया, परन्तु उसने यह स्वीकार नही किया कि यह द्वन्द्वात्मक प्रणाली विचारों के विकास की प्रतिच्छाया है। इसके विपरीत मार्क्स ने यह बतलाया कि विचार ही पदार्थों की वास्तविकता की प्रतिच्छाया है। इस प्रकार मानव-समाज की प्रत्येक अवस्था मे, भौतिक शक्तियो की प्रेरणा से, द्वन्द्वात्मक प्रणाली का विकास होता है जिससे वह स्वयं अपने मे विरोध को जन्म देती है। इस विचार-प्रणाली के अनुसार सर्वहारा (प्रोलेटरियन)-वर्ग का विकास पूँजीवादी समाज का ही फल है। इन दोनो मे द्वन्द्व-भाव है—विपरीतता है, विरोधाभास है। परन्तु सर्वहारा-वर्ग का जन्म पूँजीवादी समाज से हुआ है।

दक्षिण-अफ्रीकी यूनियन—ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह का एक सदस्य; क्षेत्र० ४,७२,००० वर्गमील, जन-सख्या ६६,००,०००। इनमे २०,००,००० योरपियन तथा शेष अफ्रीक़ी हैं। योरपियन जनता मे ५८ फीसदी बोअर हैं, जो डच भाषा बोलते हैं, शेष अँगरेजी भाषा का प्रयोग करते हैं। केप टाउन मे धारा-सभा-भवन है। प्रिटोरिया राजधानी है। सन् १८६६-१६०२ की दक्षिण अफ्रीका की लडाई मे ब्रिटिश सरकार ने विजित बोअर-प्रजातन्त्रो में स्वराज्य की स्थापना तथा दक्षिण अफ्रीका मे सघ-राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। फलतः १६१० मे केप-प्रान्त, नेटाल, ट्रान्सवाल और औरेंज फ्रीस्टेट को मिलाकर दक्षिण अफ्रीकी यूनियन का निर्माण किया गया। यह एक प्रकार का सघ राज्य है। प्रत्येक उपर्युक्त प्रान्त को स्वायत्त शासन प्राप्त है। जनरल बोथा और फील्ड मार्शल स्मट्स ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य से सन्तुष्ट हैं। अन्य राष्ट्रवादी, हर्टजोग के नेतृत्व मे, स्वाधीन प्रजातन्त्र चाहते हैं। विगत विश्व-युद्ध मे यूनियन ने योरप मे कोई सेना नही भेजी, सिर्फ एक ब्रिगेड भेजा था। युद्ध के बाद राष्ट्रवादियो की शक्ति बढ गई। विगत विश्व-युद्ध से पहले राष्ट्रवादियो के धारासभा मे ५ प्रतिनिधि थे। सन् १६२४ मे ६३ होगये। मजदूर-दल से समझौता करने के बाद धारासभा मे राष्ट्रवादियो का बहुमत होगया और जनरल हर्टज़ोग प्रधानमत्री बना। इस काल मे सरकार ने ब्रिटेन की वैदेशिक नीति से मतभेद प्रकट किया।

संसार का ४० प्रतिशत सोना दक्षिण अफ्रीका मे पैदा होता है। इस देश मे सबसे अधिक हीरा निकलता है। कोयला, ताँबा तथा प्लेटिनम भी मिलते हैं। खानो का उद्योग तथा कृषि ही यहाँ के मुख्य व्यवसाय हैं। गेहूँ, मक्का तथा फल काफी पैदा होते हैं।

शासन-प्रणाली पार्लमेन्टरी है। पार्लमेंट मे दो सभाएँ है : सीनेट तथा असेम्बली। पहली का चुनाव १० साल तथा दूसरी का ५ साल के लिये होता है। सम्राट् का प्रतिनिधि गवर्नर जनरल है। अफ्रीका के आदिमवासियो को केवल केप-प्रान्त मे मताधिकार प्राप्त है। वह अपने ३ प्रतिनिधि चुनते हैं। नौ-सेना का नियंत्रण ब्रिटेन के अधीन है।

इस समय हर्टज़ोग तथा स्मट्स के सयुक्त दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रीय दल मे १०६ सदस्य हैं। प्रधानमत्री जनरल हर्टज़ोग इस युद्ध मे तटस्थता के पक्ष मे है। परन्तु जब पार्लमेंट मे यह प्रस्ताव रखा गया तो इसके पक्ष मे सिर्फ ६७ मत मिले, विरुद्ध ८०। इस पर हर्टज़ोग ने त्याग-पत्र दे दिया और स्मट्स ने सयुक्त सरकार बनाई, तथा ६ सितम्बर १६३६ को, धुरीराष्ट्रो के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी और यूनियन की फौजें पूर्वी और उत्तरी अफ्रीका मे लड रही हैं। जनवरी १६४० मे हर्टज़ोग ने डा० मलान के क्रान्तिवादी-प्रजातत्र-राष्ट्रीय-दल के साथ समझौता कर लिया। यह दल साम्राज्य से सबध-विच्छेद का समर्थक है। यह दोनो नेता अफ्रीका मे ५० फीसदी बोअरो के प्रतिनिधि हैं, शेष अँगरेज़ी-भाषा-भाषी स्मट्स का समर्थन करते हैं। १२ सितम्बर '४१ को यूनियन ने जापान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी है।

आदिम - निवासी अधिक अधिकार चाहते हैं, और बोअर शुरू से ही उनके विरोधी

हैं। वह, रंगभेद के कारण, उन्हें समानता के अधिकार नहीं देना चाहते। बोअर और ब्रिटेन उनकी 'क्रमिक उन्नति' चाहते हैं। यूनियन की राजनीति में आदिम-निवासियों का प्रश्न मुख्य है, पर बिना सुलझा पड़ा है।

दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका—विगत विश्व-युद्ध से पूर्व जर्मन-उपनिवेश था। क्षेत्रफल ३,१७,००० वर्गमील, जनसंख्या ३,६०,०००। इसमें ३१,००० योरपियन हैं, जिनमें से ८,००० जर्मन हैं। यह उपनिवेश राष्ट्र-संघ के शासनादेश के अनुसार दक्षिण अफ्रीकी यूनियन के नियंत्रण में है। इस प्रदेश में हीरे की खानें हैं।

दार्लां, ऐडमिरल जीन फ्रे.काइ—फरान्सीसी नौसेनापति। १८८१ ई० में जन्म हुआ। सन् १८६६ में फरान्सीसी नौसेना में भर्ती हुआ। पिता को छोड़कर, जिसने न्याय-मंत्री पद से नौकरी ख़त्म की, दार्लां के पूर्वज भी नाविक अथवा नौसैनिक थे। जल-सेना में दार्लां अनेक मोर्चों पर सेनापति रहा। १६३७ में उसे नौसेना के अफसरों का प्रधान बनाया गया और १६३६ में प्रधान नौसेनापति। १६३६-४० के महायुद्ध में उसने फरान्सीसी नौसेना का संचालन किया। १६४० में जब मार्शल पेताँ ने मंत्रिमण्डल बनाया तो दार्लां उसमें शामिल हुआ और नौसेना-मन्त्री बन गया। पेताँ की भाँति दार्लां भी जर्मनी का पक्षपाती और ब्रिटिश-विरोधी होगया। उपप्रधान-मन्त्री बना। फरवरी १६४१ में पेताँ का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। साथ ही वह वैदेशिक मन्त्री और स्वराष्ट्र मन्त्री भी बनाया गया।

अक्टूबर १६४२ में जब अमरीकी फौजें उत्तरी फरान्सीसी अफ्रीका में उतरीं तो मार्शल पेताँ ने उनका मुक़ाबला किया जाने का आर्डर दिया, किन्तु दार्लां ने, जो उस समय वहाँ का हाई कमिश्नर था, लड़ाई को रोक दिया। इधर दार्लां को अपनी पिछली भूलों का भान होने लगा था, और, यद्यपि जनरल द गौल को उसमें अब भी विश्वास नहीं था, दार्लां संयुक्तराष्ट्रों का पक्षपाती बनता जारहा था, कि २४ दिसम्बर १६४२ को, उसके आफिस, अल्जीयर्स में, एक नौजवान फरान्सीसी ने ऐडमिरल जीन फ्रेकाइ दार्लां को गोली चलाकर मार डाला।

जनरल जिरौ दार्लां का उत्तराधिकारी, उत्तरी फरान्सीसी अफरीका का

हाई कमिश्नर, नियुक्त हुआ है। फ्रान्स के युद्ध में जिरौ जर्मनों के हाथ क़ैद होगया था। दिसम्बर '४२ मे वह उनकी क़ैद से भागकर आया है। पिछले महायुद्ध मे भी वह इसी प्रकार क़ैद हुआ और वहाँ से भाग निकलाथा। जिरौ सोलह आना संयुक्तराष्ट्रो का साथी बनगया प्रतीत होता है और, जब यहाँ पंक्तियाँ छप रही हैं, उनके तथा जनरल चार्ल्स द गौल के साथ फ्रान्स की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होने का प्रयास कर रहा है।

दांजिग—विस्चुला नदी के मुहाने पर, बाल्टिक सागर के किनारे, यह एक बन्दरगाह है तथा इसी नाम का एक नगर भी। ज़िले की जनसख्या ४,००,००० और म्युनिसिपैलिटी की २,६०,००० है। वर्त्तमान युद्ध से पूर्व यहाँ ९७ प्रतिशत जर्मन आबाद थे। इस नगर की बुनियाद, सन् १३१० में, स्लैव जाति के लोगो ने डाली थी। स्लैव लोगों को ट्यूटोनिक लोगों ने हरा दिया तब इसमे जर्मन बसाये गये। तब से ही यह जर्मन नगर रहा है। परन्तु पोलैण्ड के लिए यही एक समुद्री मार्ग है। सन् १४५० से १७९३ तक दाज़िग, पोलिश सरकार के अधीन, स्वतत्र नगर रहा। प्रशा (जर्मन प्रदेश) ने, सन् १७९३ मे, इसे अपने राज्य मे मिला लिया। सन् १८०७ से १८१५ तक फिर पोलैण्ड के पास रहा। इसके बाद वह फिर प्रशा में मिला दिया गया। इस प्रकार यहाँ के अधिवासियों में जर्मन राष्टीयता का जागरण हो गया। जब १९१८ मे वार्सेई की सधि के समय इसे प्रशा से अलगकर, पोलैण्ड के सरक्षण मे, स्वतत्र नगर बनाया गया तब देश-प्रेमी दाज़िगी जर्मनो ने इसका विरोध किया। बन्दरगाह का प्रबंध एक बोर्ड के अधीन कर दिया गया जिसमें दाज़िग तथा पोलैण्ड के प्रतिनिधि नियुक्त किये गये। परन्तु इस प्रदेश की रेलवे तथा तट-कर—आयात-निर्यात कर—पर पोलैण्ड का नियन्त्रण रहा। पोलैण्ड के इतिहास में दाज़िग एक महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। प्रशा के शासक फ्रेडरिक (द्वितीय) ने एक बार कहा था—"जो विस्चुला के मुहाने पर अधिकार रखता है वह पोलैण्ड के बादशाह से भी अधिक शक्तिशाली है।" पोलैण्ड तथा दाज़िग को मिलाने के लिए एक लम्बी पट्टी (कॉरीडर) बनाई गई। दाज़िग के पास बाल्टिक तट पर एक छोटी-सी ज़मीन की पट्टी पोलैण्ड को दे दी गई जिस पर उसने गाडीनिया नामक अपना बन्दरगाह बना लिया।

१६३६ के मार्च मे हिटलर यकायक दाज़िग को वापस मॉग बैठा, और थोड़े दिन बाद समूचे कोरीडर को भी पोलैण्ड ने सुलह की बातचीत चलाने का तत्काल विचार प्रकट किया, जिससे कि दोनो की बात बनी रहे। बरतानिया ने आक्रमण के समय अपने सहयोग का पोलैण्ड को विश्वास दिलाया और मध्यस्थ बनने का प्रयास किया। किन्तु हिटलर ने आक्रमण को ही पसन्द किया और १६३६ के अगस्त मास मे छद्मवेशी जर्मन सेना ने दाजिग पर कब्जा कर लिया। हिटलर ने पोलैण्ड पर हमला कर दिया और वर्त्तमान युद्ध छिड़ गया।
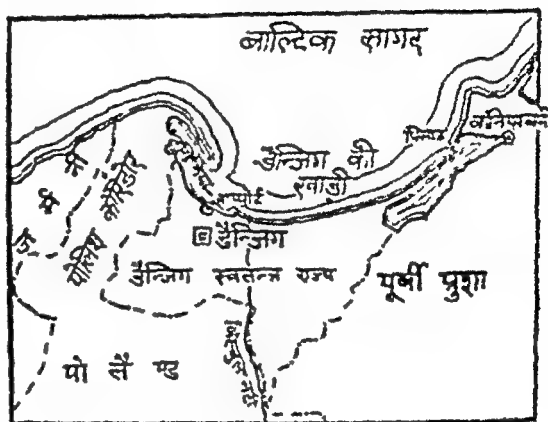
देशी रियासतें—भारतवर्ष दो भागो मे विभाजित है : एक ब्रिटिश-सरकार द्वारा शासित, जिसमे ११ गवर्नरों के प्रान्त, चीफ कमिश्नरियॉ आदि हैं—दूसरा देशी राज्य। देशी राज्यो या रियासतो का शासन भारतीय राजा, महाराजा या नवाबो के अधीन है। ब्रिटिश सरकार उनकी सर्वोच्च सत्ता है। भारतवर्ष मे ५६२ छोटी-बड़ी देशी रियासते हैं। इनमे ४५४ राज्य ऐसे हैं, जिनका क्षेत्रफल १,००० वर्गमील से भी कम है। ४५२ ऐसे राज्य हैं, जिनकी जन-सख्या १,००,००० जन से भी कम है। ३७४ राज्यो की वार्षिक आमदनी १ लाख रुपये से भी कम है। केवल १२ राज्य ऐसे हैं, जिनका क्षेत्रफल १०,००० वर्गमील और जन-सख्या १०,००,००० और वार्षिक आमदनी ५० लाख रुपये से भी ज्यादा है।

ब्रिटिश भारत की जन-सख्या २७ करोड़ तथा क्षेत्रफल १०,६४,३०० वर्गमील है। इन देशी राज्यो का शासन स्वेच्छाचारी एकतन्त्र-प्रणाली के अनुसार मध्ययुगीन ढॅग पर है। कुछ बड़े तथा प्रगतिशील राज्यों मे धारा-सभाऍ अब बन गई हैं। परन्तु उन्हे कोई वास्तविक उत्तरदायित्व का अधि-

कार प्राप्त नहीं हैं। नागरिक स्वाधीनता तो वहाँ नाममात्र को भी नहीं है। इन रियासतो मे राष्ट्रीय आन्दोलनो का बहुत बुरी तरह दमन किया जाता है। कांग्रेस द्वारा भारत मे जो राष्ट्रीय आन्दोलन होरहा है उससे प्रभावित होकर देशी राज्यो की जनता मे भी जाग्रति पैदा होगई है और इन रियासतो मे उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए माँग की जा रही है।

ध

धरना—यह सत्याग्रह का एक रूप है। सन् १९२०-२१ और १९३०-३२ के सत्याग्रह आन्दोलन मे विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार, मादक द्रव्यो के निषेध तथा स्कूल और कालिजो मे विद्यार्थियो को जाने से रोकने के लिए, सत्याग्रहियो द्वारा, इसका प्रयोग किया गया। सत्याग्रही दूकानो पर तथा कालिज और स्कूल के द्वार के सामने खडे होकर ग्राहको तथा विद्यार्थियो से शान्तिपूर्ण आग्रह करते थे कि वे विदेशी वस्त्रो, शराब आदि को न बेचे-खरीदे तथा सरकारी स्कूल वा कालेज मे अध्ययन न करे। सन् १९४२ मे सीमान्त प्रदेश मे लालकुर्ती दलवालो ने अदालतो पर धरना दिया तथा विद्यार्थियो ने शिक्षा-संस्थाओ पर।

धुरी राष्ट्र—रोम-बर्लिन-धुरी (Axis)—इन शब्दो का प्रयोजन इटली तथा जर्मनी की राजनीतिक सहकारिता से है। सन् १९३५ मे जब इटली ने अबीसीनिया को अपने साम्राज्य मे हडप करने के लिए उस पर धावा किया तब इस नीति का श्रीगणेश हुआ। सन् १९३७ मे कामिण्टर्न-विरोधी समझौते से यह सहचारिता और भी सबल होगई। १९३८ मे हिटलर और मुसोलिनी एक-दूसरे से मिले। इसी वर्ष सितम्बर मास मे जर्मनी द्वारा चैकोस्लोवाकिया के संघर्ष मे इटली चुप रहा। जर्मनी को प्रसन्न करने के लिए इटली ने यहूदी-

विरोधी नीति ग्रहण की, और १९३९ के मार्च मास मे जब जर्मनी चेकोस्लोवाकिया के शेष भाग को भी दबा बैठा, तब इटली ने अलबानिया को धर दबाया। सन् १९३९ की २२ मई को इटली तथा जर्मनी में जो राजनीतिक तथा सैनिक समझौता हुआ उससे तो यह धुरी सर्वथा ध्रुव बन गई। इटली वास्तव मे पश्चिमी योरपियन राष्ट्रो का हिमायती रहा है। वह नहीं चाहता था कि डैन्यूब के कछार मे जर्मनी का विस्तार हो। यहाँ तक कि १९३४ की गर्मियो मे, आस्ट्रिया मे प्रथम नात्सी-उत्थान के समय, वह नात्सियो का सशस्त्र मार्गावरोध करने पर तुल गया था। लेकिन जब वह अबीसीनिया को हडप चुका, और पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा उस पर दण्डस्वरूप लगाये गये प्रतिरोध हटा लिये गये, तब वह धुरी-नीति की ओर झुका। इस नीति के प्रथम परिणामस्वरूप इटली की अबीसीनिया पर विजय पुष्ट होगई और उधर जर्मनी ने राइनलैण्ड पर अपना कब्ज़ा जमा लिया। इन दोनों राज्यो ने स्पेन के गृह-युद्ध मे जनरल फ्राको को भारी मदद दी। १९३८ में जर्मनी आस्ट्रिया को दबा बैठा, तब इटली ने चूँ तक नहीं की और न डैन्यूब के कछार में जर्मनी के विस्तार का विरोध किया, यद्यपि ऐसा होने से हगरी और यूगोस्लाविया के प्रदेश मे इटली के हितो की हानि होती थी। फिर दोनों ने मिलकर योरप के छोटे राष्ट्रो को तलवार के बल पर हडपना शुरू कर दिया। जर्मनी यह चाहता है कि पूर्वी, दक्षिणी तथा मध्य योरप मे जर्मन-राज्य का विस्तार हो तथा भूमध्यसागर के तटवाले प्रदेशो मे इटली का। फ्रान्स, ब्रिटेन, तथा रूस से इनका विरोध था। जापान रूस का सदैव शत्रु रहा

है, और ब्रिटेन तथा संयुक्त-राष्ट्र अमरीका से भी उसकी, चीन के कारण, नही पटती। इसलिए उसने इसीमे भलाई समझी प्रतीत होती है कि वह धुरी राज्यो मे शामिल होजाय। जब उसने कामिण्टर्न-विरोधी-सधिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये तो वह भी इस गुट मे शामिल होगया और पीछे बर्लिन-रोम-तोक्यो सामरिक त्रिगुट भी बन गया।

न

नज़रबन्दी—शासक-वर्ग द्वारा किसी व्यक्ति को, उस पर बिना कोई अभियोग लगाये तथा बिना न्यायालय मे उसका अपराध प्रमाणित किये, स्वेच्छाचारितापूर्वक, जेलख़ाने या अन्य किसी स्थान मे, बन्दी बनाकर रखना।

नरीमान, खुरशीद फरीदूँ—१९३७ तक बम्बई प्रान्त और शहर के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता। बम्बई हाईकोर्ट के बैरिस्टर। बम्बई प्रान्तीय धारासभा के कई बार सदस्य और बम्बई कारपोरेशन के मेयर रहे। बम्बई प्रान्तीय युवक परिषद् के नेता। अखिल भारतवर्षीय युवक परिषद् के सभापति। अनेक बार बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के सभापति चुने गये। अक्टूबर १९३४ की बम्बई-कांग्रेस की स्वागतकारिणी-समिति के आप स्वागताध्यक्ष थे। सन् १९३६ तक कांग्रेस मे उनका यथेष्ट प्रभाव रहा। उसके बाद बम्बई की चुनाव-राजनीति की गंदगी मे आपका गौरव नष्ट होगया। कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल तथा मि० के० एफ० नरीमान मे, चुनाव के सबध मे, मनोमालिन्य होगया। सन् १९३७ मे उन पर अनुशासन की कार्यवाही कीगई और कांग्रेस से उनका निष्कासन कर दिया गया।

नरेन्द्रदेव, आचार्य—जन्म कार्तिक सम्वत् १९४६ वि०। शिक्षा—एम० ए०, एलएल० बी०। पाली, संस्कृत, प्राकृत तथा बौद्ध साहित्य के

प्रकाण्ड पडित। काशी विद्यापीठ के पूर्व आचार्य। सन् १६१६ में फ़ज़ाबाद होमरूल लीग के मन्त्री रहे। सन् १६२० में, असहयोग-आन्दोलन के समय, वकालत छोड़ी और काशी-विद्यापीठ के आचार्य हुए। 'विद्यापीठ' नामक त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन किया। सन् १६३४ में पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल के सम्मेलन के सभापति चुने गये। सन् १६३६ में कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्य बनाये गये। देश में अनेक समाजवादी-सम्मेलनों, किसान-सम्मेलनों, तथा देशी राज्य प्रजा-सम्मेलनों का सभापतित्व ग्रहण किया। सन् १६३७ में युक्तप्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में कांग्रेस-सदस्य चुने गये। सन् १६३८ में आपको लखनऊ-विश्वविद्यालय की सीनेट ने वाइस-चान्सलर बनाने का निश्चय किया, परन्तु आपने इस पद को अस्वीकार कर दिया। मार्च १६३७ में देहली कांग्रेस-अधिवेशन में आपने मन्त्रिपद ग्रहण के विरुद्ध आन्दोलन किया। आपको सयुक्तप्रान्तीय मन्त्रिमण्डल का सदस्य बनाने के लिए बहुत प्रयत्न किया गया, परन्तु आपने मन्त्रित्व ग्रहण नहीं किया। सन् १६३८ में सयुक्तप्रान्त की शिक्षा के पुनर्संगठन के लिए एक जॉच-समिति सरकार द्वारा आचार्य नरेन्द्रदेव के सभापतित्व में नियुक्त कीगई। सन् १६४० में सयुक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के दुबारा प्रधान बनाये गये। किन्तु १६४१ के आरम्भ में पकड़कर नजरबन्द कर दिये गये। अत्यन्त रुग्णावस्था में जेल से छूटे।

आचार्यजी समाजवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं। कांग्रेस-समाजवादी-दल के सगठन में उनका विशेष हाथ है। महात्मा गाधी उनका आदर और भरोसा करते हैं। आचार्यजी ने समाजवाद पर कई पुस्तकें लिखी हैं। लखनऊ के समाजवादी हिन्दी साप्ताहिक 'सघर्ष' के आप सपादक हैं। इस समय, ८ अगस्त, ४२ के बाद हुई उथल-पुथल में आपको भी रुग्णावस्था में ही पकड़ लिया गया।

नवराष्ट्र-सन्धि—सन् १६२२ में यह अन्तर्राष्ट्रीय सधि चीन के सम्बन्ध में ब्रिटेन, सयुक्त-राज्य अमरीका, जापान, चीन, फ्रान्स, इटली, पुर्तगाल, बेलजियम और नीदरलैण्ड्स इन नौ राष्ट्रों के बीच, हुई थी। इस सन्धि ने चीन के प्रभुत्व, उसकी स्वाधीनता तथा शासन-संबधी सगठन का दायित्वपूर्ण आश्वा-

सन (गारंटी) दिया था। इसके अनुसार उपर्युक्त नौ-राष्ट्र चीन में स्थायी सरकार स्थापित करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध थे, साथ ही चीन मे सभी राष्ट्रो के व्यापार के लिये द्वार खुल गया था और किसी राष्ट्र को चीन मे विशेष अधिकारों की मनाई करदी गई थी। सन् १९३१ मे जापान ने चीन के मंचूरिया प्रदेश पर हमला करके और १९३७ मे चीन के विरुद्ध युद्ध छेड़कर इस सन्धि का उल्लघन सबसे पहले किया। बाद मे सात राष्ट्र अपने स्वार्थों की रक्षा के लिये ब्रुसेल्स मे इकट्ठे हुए, किन्तु सन्धि-रक्षा के लिये वह कुछ कर न सके।

नवीन योजना—सन् १९२९ के विश्व-व्यापी आर्थिक-सकट के निवारण के लिये सन् १९३३ मे अमरीकी राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने अपने संयुक्त-राज्य के लिये एक योजना तैयार की थी जो New Deal के नाम से प्रसिद्ध है।

इस नवीन योजना के अनुसार सरकार की ओर से क़र्ज़ देने की व्यवस्था की गई तथा जनता की क्रय-शक्ति को बढाने के लिये प्रयत्न किया गया। डालर की क़ीमत ४० फीसदी तय कर दी गई। सरकारी सहायता से जनता के लिये भवन-निर्माण की योजना बनाई गई। इस योजना को सफल बनाने के लिये सरकार की ओर से आर्थिक सहायता दीगई। बेकार मज़दूरो की भर्ती के लिये प्रयत्न किया गया।

मज़दूरो को अपने संघ बनाने के लिये प्रोत्साहन दिया गया। सामाजिक बीमा के लिये भी प्रबध किया गया। किसानो को सहायता देने की व्यवस्था की गई। कृषि-प्रबंध-संस्था (Agricultural Adjustment Administration), सार्वजनिक भवन-निर्माण-सस्था (Public Works Administration), कार्यप्रगति-संस्था (Works Progress Administration) और भवन-व्यवस्था-संस्था (Housing Authorities) ने अपने विभागों की योजनाओ पर १५ अरब डालर से भी अधिक धन व्यय किया। इस योजना ने यद्यपि अमरीका की बेकारी को दूर नही किया, तथापि १ करोड ७० लाख बेकार मज़दूरो की सख्या मे केवल ७० लाख की कमी होगई।

नशाबन्दी—भारतीय राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के रचनात्मक कार्य-क्रम मे महात्मा गाधी ने नशाबन्दी को विशेष महत्व दिया है। जब जुलाई १९३७ में कांग्रेसी सरकारे बनी, तब महात्माजी ने उन्हे यह आदेश दिया कि वे

अपने-अपने प्रान्तों में नशाबन्दी जारी करे और तीन साल मे पूर्णतया नशाबन्दी हो जानी चाहिये।

सितम्बर, १६३७ ई० में कांग्रेस-कार्यसमिति ने महात्माजी के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर कांग्रेसी मन्त्रियों को आदेश भेजा कि वे नशाबंदी शुरू करदें। १ अक्टूबर १६३७ को मदरास सरकार ने सबसे पहले नशाबन्दी का कार्य आरम्भ किया। प्रत्येक प्रान्त में नशाबन्दी पहले एक या दो जिलों में शुरू की गई। मदरास मे सेलम, विहार मे सारन, सयुक्तप्रान्त मे एटा और मैनपुरी, मध्यप्रान्त मे सागर, जबलपुर, अमरावती और अकोला, सीमाप्रान्त में डेराइस्माइलखॉ, और बम्बई में अहमदाबाद तालुका मे नशाबन्दी शुरू की गई। कांग्रेस-सरकारो से प्रभावित होकर बगाल मन्त्रिमण्डल ने भी नोआखाली और चटगॉव मे नशाबदी जारी की। पीछे प्रत्येक प्रान्त मे एक-एक, दो-दो जिलों मे इस योजना को और बढाया गया। कुल सरकारी आमदनी से प्रत्येक प्रान्त की आबकारी-कर से हुई आमदनी का अनुपात इस प्रकार है:—मदरास ३६ प्रतिशत, बिहार-उड़ीसा ३४ प्रति०, बम्बई २८ प्रति०, मध्य-प्रान्त २५ प्रति०, बंगाल २० प्रति०, सयुक्त-प्रान्त १२ प्रति०, पजाब ११ प्रति०। ३१ मार्च १६४३ को सयुक्तप्रान्तीय गवर्नर ने नशाबन्दी का अन्त कर दिया।

नागरिक-रक्षक-दल (सिविक गार्ड)—१६ अगस्त १६४० को भारत के गवर्नर जनरल ने नागरिक-रक्षक दल बनाने के सम्बन्ध मे आर्डिनेंस जारी किया, जिसमे नागरिक-रक्षकों के विधान, सगठन तथा उनके कर्त्तव्यों और अधिकारों के विषय में नियम हैं। इनके अनुसार प्रत्येक प्रान्त मे प्रत्येक जिला मजिस्ट्रेट तथा प्रेसीडेंसी मे पुलिस कमिश्नर को नागरिक-रक्षकों का सगठन करने का अधिकार प्राप्त है। नियमों मे बताया गया है कि सिविक गार्ड व्यक्तियो तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए निर्धारित कार्य करेंगे। ज़िला मजिस्ट्रेट को यह अधिकार है कि वह नागरिक-रक्षकों के शिक्षण की व्यवस्था करे तथा जब वह किसी कार्य पर नियुक्त करने के लिए बुलाये जायॅ तब उन्हे उपस्थित होना चाहिए। जब धारा ४ के अन्तर्गत उन्हे किसी कार्य पर नियुक्त किया जाय, तब उन्हें पुलिस के सभी अधिकार, विशेषाधिकार तथा सरक्षण प्राप्त हों। यह लोग पुलिस अफसर के नियत्रण मे रहेगे। जो नागरिक-रक्षक

धारा ४ के अन्तर्गत बुलाये जाने पर अपने कर्त्तव्य का पालन न करेगा, उस पर न्यायालय मे मुक़द्दमा चलाया जायेगा और अपराधी साबित हो जाने पर ५०) तक जुर्माना हो सकेगा। भारतवर्ष के सभी प्रान्तो के प्रत्येक नगर मे नागरिक-रक्षको का सगठन किया गया है।

नार्डिक—यह शब्द स्कैन्डीनेवियन राष्ट्रो (स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क तथा आइसलैंड) के अधिवासियो के लिए प्रयुक्त होता है। इसका जाति-विज्ञान से भी सम्बन्ध जोडा जाता है। नार्डिक जाति वह है जिसके व्यक्ति लब-तडगे, गोरे, नीली ऑख और लम्बे सिर वाले हो। सामान्यतया इनका निकास स्कैन्डीनेविया से बताया जाता है। यह सिद्धान्त कि नार्डिक जाति के व्यक्ति श्रेष्ठ-गुण-सम्पन्न, साहसी, विचारक तथा विद्वान् होते हैं, और वे ही समस्त योरपीय सभ्यता के जन्मदाता हैं, एक फरान्सीसी लेखक काउट जोसफ द-गोबिन्यू ने, उन्नीसवी शताब्दी मे, बनाया। इस सिद्धान्त का विकास जर्मन-वादी ॲगरेज़ लेखक हौस्टन स्ट्युअर्ट चेम्बरलेन ने किया। कारलाइल तथा मैडी-सन ग्रान्ट ने भी इसकी पुष्टि की। इस सिद्धान्त का जर्मनी मे ख़ूब प्रचार रहा। इस सिद्धान्त का मूल प्रयोजन यह है कि नार्डिक लोग समय-समय पर उत्तर से योरप मे आये। उन्होने पश्चिमी तथा दक्षिणी भागो पर विजय प्राप्त की और विजित जातियो के साथ उनका सम्मिश्रण होगया। इस सिद्धान्त के अनुसार योरप मे सभ्यता और सस्कृति का विकास नार्डिक जनों ने ही किया, और जैसे-जैसे नार्डिक जनों का सम्मिश्रण होता गया—वर्णसंकरता बढती गई—वैसे-वैसे योरप की सभ्यता का पतन होता गया। इस सिद्धान्त के पोषको का दावा है कि कला, साहित्य, इतिहास, विज्ञान आदि मे जो महा-पुरुष हुए हैं, वे सब नार्डिक थे। इन लोगों का यह भी कहना है कि ईसा से २०००वर्ष पूर्व धवल नार्डिक लोगो ने ही यूनान को विजय करके यूनानी सभ्यता का निर्माण किया। इनका तो यहॉ तक कहना है कि भारत, उत्तरी अफरीका तथा कुछ अन्य देशो मे भी सभ्यता का प्रसार, पुरातन दन्तकथाओ मे वर्णित नार्डिक दरियाई-डाकुओ के, इन देशवासियों से रक्त-मिश्रण से हुआ।

आर्य जाति-सिद्धान्त के सम्बन्ध मे भी योरपीय लोगों मे दो प्रकार के

विचार प्रचलित हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि 'आर्य' तथा 'नार्डिक' दोनो पर्याय हैं। दूसरे लोग नार्डिक को आर्य जाति की एक शाखा बतलाते हैं। परन्तु वास्तव मे नार्डिक जाति एक पौराणिक कल्पना मात्र है। नार्डिक शक्ल की जाति स्कैन्डीनेविया मे ७० फीसदी, २० फीसदी से भी कम जर्मनी, हालैण्ड और ग्रेट ब्रिटेन मे, और १५ फीसदी से भी कम संयुक्त राष्ट्र अमरीका मे बताई जाती है।

नात्सी जर्मनी ने नार्डिक जाति के सिद्धान्त को सबसे अधिक महत्व दिया है। वह जर्मन जाति को नार्डिक मानते हैं, और उनके अनुसार, जर्मन जाति के ससार मे सर्वश्रेष्ठ होने के कारण, उसे विश्व पर शासन करने का अधिकार है। जर्मन-सरकार की नीति का यह प्रमुख अग है कि वह नार्डिक नस्ल की शुद्धता पर जोर देती है तथा उसकी वृद्धि के लिए सामूहिक विवाहो का आयोजन भी करती है। परन्तु वास्तव मे आश्चर्य तो यह है कि हिटलर और गोबेल्स, जो सबसे अधिक इस सिद्धान्त पर ज़ोर देते हैं, नार्डिक नस्ल के नहीं हैं।

नात्सी—यह शब्द राष्ट्रीय समाजवादी (National Socialist) शब्दो का तद्भव रूप है : 'नेशनल' से 'ना' (NA) और सोजीयलिस्ट (Sozialist) से त्सी (ZI) ले लिए गये हैं। इस दल का ससार के साधारण समाजवाद (Socialism) से कोई सम्बन्ध नही है, अपितु नात्सी उसके सर्वथा विरोधी हैं।

नात्सीवाद—राष्ट्रीय-समाजवाद का प्रसिद्ध तथा प्रचलित वाद, वास्तव में Nazism शब्द राष्ट्रीय समाजवाद (National Socialism) का सक्षिप्त रूप है। नात्सीवाद जर्मनी का राजनीतिक-सामाजिक सिद्धान्त है।

नार्वे—जनसख्या ३०,००,०००; क्षेत्रफल १,२५,००० वर्गमील। राजधानी ओसलो। राजा हाकोन सप्तम, जिसका जन्म १८७२ ई० मे हुआ। नार्वे के स्वीडन से अलग होजाने पर, सन् १६०५ मे, हाकोन गद्दी पर बैठा। यह देश परम्परा से तटस्थ रहा है। स्वीडन तथा डेनमार्क से इसकी राजनीतिक सहकारिता रही है। इसकी पार्लमेंट (Storting) की प्रथम परिषद् के १५० प्रतिनिधियों मे से ७० वामपक्षी मजदूर-दल के थे। इस दल का द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सघ (Second International)

से था। आरम्भ मे इस दल ने तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय (साम्यवादी—कम्युनिस्ट) दल से सम्बन्धित होना तय किया था। सन् १६३५ से मज़दूर-दल की सरकार रही। पार्लमेन्ट मे कृषक, प्रजासत्ता और साम्यवाद-विरोधी दक़ियानूसी दल भी थे। मज़दूर सरकार ने किसानो तथा मज़दूरो के सुधार के लिए कार्य किया। परन्तु आर्थिक व्यवस्था मे कोई मौलिक परिवर्तन नही हुआ। नार्वे का प्रधान व्यवसाय सामुद्रिक व्यापार है। उसके पास व्यापारी जलयानो का ४०,००,००० टन का बेडा था।

१६३६ ई० के सोवियत-फ़िनलैण्ड-युद्ध मे नार्वे की सहानुभूति फिनलैण्ड के साथ थी। उसको रसद देकर तथा उसके वालटियरो को अपने देश से मार्ग देकर इसने सहायता की। परन्तु फिनलैण्ड के लिए मित्रराष्ट्रो की पलटन को उसने रास्ता नही दिया। वर्त्तमान युद्ध मे, सदैव की भॉति, नार्वे तटस्थ था; किन्तु उसे लडाई मे घसीटा गया। ८ अप्रैल १६४० को मित्र-राष्ट्रो ने, जर्मन मार्गावरोध के लिए, नार्वेजियन-समुद्रतट के साथ-साथ नार्विक, वोडोई तथा स्ट्रैटलैण्ड नामक तीन स्थानों मे सुरगे बिछादी। किन्तु दूसरेही दिन जर्मनी ने नार्वे पर हमला कर दिया, जिसकी तय्यारी वह पूर्व से ही कर चुका था और मित्रराष्ट्रो की कार्यवाही से पूर्व ही उसकी सेनाऍ चल पडी थी। नार्वे ने जर्मन आक्रमण का मुक़ाबला किया। जर्मनी ने समुद्री तथा हवाई जहाज़ो द्वारा ओस्लो, क्रिश्चियन सुण्ड, स्ट्रावेजर, बरगेन, ट्राण्डद्वीप और नार्विक नामक स्थानो पर एक साथ अपनी सेनाऍ उतारदी और १००० मील लम्बे नार्वेजियन समुद्र-तट के, सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण, सब बन्दरगाहो पर अधिकार कर लिया। १५ दिन के भीतर ८५,००० नात्सी सैनिक वहॉ पहुँच गए। सहायता के लिये, एक सप्ताह बाद, नार्वेकी भूमि पर मित्र-सेना उतरी। मित्र-राष्ट्रो की योजना उत्तर तथा दक्षिण के मार्ग को बन्द करने की थी, ताकि ओसूलो से आनेवाली जर्मन सेना रेलवे लाइन तक न पहुँच सके। नार्विक मे घोर युद्ध हुआ। हाथ से गये हुए नार्विक को फिर से जीत लिया गया। किन्तु इस युद्ध मे मित्र-राष्ट्रो की पराजय इसलिये हुई कि नार्वे के राजनीतिज्ञ मेजर क्विसलिग् के विश्वासघात के कारण नात्सी-सेना नार्वे के प्रमुख हवाई अड्डो और बन्दरगाहो को प्रथम

दिवस ही अधिकृत कर चुकी थी। ७ जून १६४० को मित्र-सेनाएँ नार्वे के रण-क्षेत्र से हटाली गई। राजा हाकोन और उसका प्रधान मत्री ब्रिटेन को भाग गये। कुछ नार्वेजियन सेनाएँ भी, अन्य क्षेत्रों पर लडने के लिये, साथ लेजाई गई, शेष सेना ने हथियार डाल दिये। कामन्स-सभा मे, नार्वे के युद्ध के सम्बन्ध मे, ब्रिटिश पार्लमेंट के विरोधी दल के नेता मेजर एटली, सर आर्चीवाल्ड सिंक्लेयर, मि० आर्थर ग्रीनवुड और सर रोमेर ने बडे कडे शब्दों मे आलोचना की। तत्कालीन प्रधान-मत्री चेम्बरलेन ने भाषण में यह स्वीकार किया कि "मै यह भलीभाँति जानता हूँ कि इन घटनाओं के परिणाम पर केवल इस दृष्टि से विचार नही करना है कि नार्वे मे क्या हानि हुई है; हमे तो इस बात पर विचार करना है कि इससे हमारे गौरव का कितना नाश हुआ है। इससे इस मिथ्या कहानी को भी कुछ रग मिल गया है कि जर्मन सेना अजेय है। हमारे कुछ मित्रों का उत्साह भी भग हुआ है और हमारे शत्रु चीख-पुकार कर रहे हैं।" इस पराजय से मित्र-राष्ट्रो को भयकर आर्थिक हानि उठानी पडी। नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क तथा बाल्टिक राज्यों से ब्रिटेन को रसद मिलना बन्द हो गया और बाल्टिक सागर से ब्रिटेन का प्रभुत्व उठ गया। प्रति वर्ष ५,७०,००० टन लोहा ब्रिटेन नार्वे से मँगाता था। इस विजय से उस समय जर्मनी की स्थिति मज़बूत हुई और नार्वे की लकडी, जहाजों तथा लोहे पर भी उसने अपना अधिकार जमा लिया।

नार्वे मे जर्मन-आधिपत्य का विरोध बराबर जारी है। वहाँ उन्होंने क्विसलिंग के सगी-साथियों के सहयोग से नात्सी राइख (पार्लमेन्ट) ... है, किन्तु जनता उसके

प्रति विद्रोह कर रही है और ब्रिटेन-प्रवासी राजा की ही भक्त है। नात्सिय
का अत्याचार चालू है। १६४१ मे अनेक नार्वेजियनो को वह फॉसी
चुके हैं। देशघाती क्विसलिंग् का विश्वासघात ससार मे, अन्य देशों को हड़प
के लिये, अब जर्मन दुर्नीति का पर्याय बन गया है।

निरस्त्रीकरण—राज्यो की सेना तथा अस्त्र-शस्त्रो मे इतनी कम
करना जितनी कि उस राज्य की आन्तरिक सुरक्षा के लिए आवश्यक हो औ
जिससे एक राष्ट्र दूसरे पर हमला न कर सके।

निरस्त्रीकरण-सम्मेलन—यह अन्तर्राष्ट्रीय-सम्मेलन राष्ट्रसंघ के कार्य
लय, जिनेवा, मे २ फरवरी १६३२ को, शस्त्रीकरण मे कमी करने के उद्देश
मे हुआ था। लोकार्नो-सधि के बाद, १२ दिसम्बर १६२५ को, निरस्त्रीकर
सम्मेलन के लिए एक कमीशन की नियुक्ति का निर्णय किया गया। १५ फ
वरी १६२६ को कमीशन की बैठक हुई। ६ दिसम्बर १६३० को एक मसविद
तैयार किया गया जिसमे वास्तव मे निरस्त्रीकरण के लिये कोई प्रभावका
योजना नही थी। इसमे इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि जर्मनी क
निरस्त्रीकरण ठीक उसी सीमा तक स्थिर रहे जो वर्साई की सधि मे तय ह
चुका है। जर्मनी ने इसे अस्वीकार किया और समानता का दावा किया
२४ जनवरी १६३१ को राष्ट्रसघ की कौंसिल ने यह निश्चय किया कि शस्त्री
करण की कमी के लिए एक सम्मेलन किया जाय। २ फरवरी १६३२ को य
सम्मेलन हुआ।

ब्रिटिश राजनीतिज्ञ आर्थर हेडरसन इस सम्मेलन के सभापति थे
सयुक्त-राज्य अमरीका ने भी इसमे भाग लिया। सोवियत रूस ने निरस्त्री
करण के लिए एक क्रान्तिकारी योजना पेश की। जर्मनी ने समानता क
दावा पेश किया। फ्रान्स ने अपनी सुरक्षा का राग गाया। २३ जुलाई को
कठिनाइयो का सामना करने के बाद, वह स्थगित होगया। ११ दिसम्ब
१६३२ को जर्मनी का समानता का दावा स्वीकार किया गया। १६ मा
१६३३ को तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान-मत्री रैम्ज़े मैकडानल्ड ने एक मसविद
तैयार किया। इसमे पूर्ण रूप से निरस्त्रीकरण की तो नही किन्तु शस्त्रो तथ
सेना को मर्यादित बनाने की योजना थी। ८ जून १६३३ को यह योजना स

सम्मति से स्वीकार करली गई। जर्मनी तथा फ्रान्स ने बाधाएँ डाल दीं। इस प्रकार १४ अक्टूबर १६३३ को, जर्मनी के सम्मेलन से निकल जाने के बाद, यह प्रयास विफल होगया।

निहिल्जिम—सन् १८६० के बाद रूस मे इस बौद्धिक विचारधारा का उदय हुआ, जो प्रसिद्ध उपन्यासकार तुर्गनेव की रचना 'पिता और पुत्र' द्वारा और सम्पुष्ट होगई। राष्ट्र मे व्यक्ति की स्वाधीनता पर ही यह अधिक जोर देती है। वास्तव में इसका अराजकतावाद से कोई सबध नही है। यद्यपि यह एक क्रान्तिकारी विचारधारा है, परन्तु यह केवल एक दार्शनिक तथा साहित्यिक-धारा ही रही है। व्यावहारिक राजनीति मे इसका कोई उपयोग नही है।

न्यूजीलैण्ड—ब्रिटिश राष्ट्र-समूह का एक देश। क्षेत्रफल १,०३,४०० वर्गमील, जन-सख्या १६,००,०००। राजधानी वेलिङ्गटन। सन् १८४० मे अँगरेजों ने इसे अपना उपनिवेश बनाया। ब्रिटिश गवर्नर-जनरल रहता है। एक पार्लमेंट है, जिसमे दो सभाएँ हैं : एक प्रतिनिधि सभा, दूसरी व्यवस्थापिका परिषद्।

ससार मे इस देश के नागरिको का जीवन-मापदड सर्वोत्कृष्ट है। न्यूजीलैण्ड ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति सबसे अधिक राजभक्त है। ६० प्रतिशत न्यूजीलैण्ड का निर्यात-व्यापार ब्रिटेन के साथ ेत है। ब्रिटेन न्यूजी-

लैएड से मास, बकरियाँ, भेडे, पनीर तथा मक्खन अधिक मात्रा मे मँगाता है। सन् १६३५ से यहाँ मज़दूर सरकार क़ायम है। इस सरकार ने समाजवादी अनेक सुधार किये हैं : ४४ घण्टे का सप्ताह, निश्चित वेतन, अनिवार्य मज़दूर-संघ, पेंशनों मे वृद्धि, कृषि-मज़दूरो के लिये नियत दैनिक मज़दूरी, राज्य की ओर से पैदावार की बिक्री का प्रबध, स्वास्थ्य तथा प्रसूताओ के लिये समुचित व्यवस्था, विधवाओ, अनाथो और अपाहिजो के लिये पेंशन तथा पारिवारिक वृत्तियाँ। वर्त्तमान युद्ध मे न्यूज़ीलैण्ड ने ब्रिटेन की ख़ूब मदद की है। उसकी सेनाएँ क्रीट, यूनान और अफ्रीका मे लडी हैं और लड रही हैं।

न्यू फाउंडलैंड—यह सबसे पुराना अँगरेज़ी उपनिवेश है। सन् १६३३ तक यह औपनिवेशिक-स्वराज्य-भोगी देश रहा। इसके बाद, राजस्व-संबंधी कठिनाइयो के कारण, उसका 'औपनिवेशिक स्वराज्य' पद वापस ले लिया गया। आजकल इसका शासन-प्रबध एक गवर्नर तथा कमीशन द्वारा किया जाता है। कमीशन मे ब्रिटेन तथा न्यू फाउंडलैण्ड के तीन-तीन प्रतिनिधि हैं। इसका क्षेत्रफल ४२,७०० वर्गमील तथा जनसख्या २,८५,००० है।

नेहरू, पंडित जवाहरलाल—महात्मा गांधी के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सबसे लोकप्रिय तथा प्रभावशाली नेता। १४ नवम्बर सन् १८८६ को काश्मीरी (सारस्वत)-ब्राह्मण-कुल मे, प्रयाग के मीरगज मुहल्ले मे, जन्म हुआ। १५ वर्ष की आयु तक घर पर ही शिक्षण हुआ। उसके बाद पढने विलायत भेजे गये। हैरो तथा ट्रिनिटी कॉलिज (केम्ब्रिज) मे शिक्षा प्राप्त की। बी० एससी० और एम० ए० के बाद आपने बैरिस्टरी पास की। १६१२ मे देश लौटे और इसी वर्ष प्रथम बार कांग्रेस-अधिवेशन मे शरीक हुए। पिता के साथ इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत शुरू की। १६१६ मे कमलाजी के साथ आपका विवाह हुआ. १६१७ मे इंदिरा का जन्म। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह, १६१४ मे, आपने ५०००) इकट्ठा करके गांधीजी को भेजा। सन् १६१८ मे इंडियन होम रूल लीग के मत्री रहे। उसी वर्ष कांग्रेस मे प्रवेश किया। १६१६ में रौलट क़ानून के विरुद्ध छिडे आन्दोलन के समय से आप पूर्ण वेग के साथ देश के काम मे एकनिष्ठा से लग पडे। इसी समय आप अपने यशस्वी और वैभवशाली पिता, पं० मोतीलाल नेहरू, को भी पूर्ण रूप से राष्ट्रीय

क्षेत्र मे उतार लाये। १९२० मे वकालत छोडदी और सन् २०-२१ के असहयोग आन्दोलन मे दो बार जेल-यात्रा की। असहयोग के अवसान के बाद प्रयाग म्युनिसिपल बोर्ड के प्रधान बनाये गये। आपने इसमे अनेक सुधार किये। १९२३ के नागपुर झडा सत्याग्रह का सगठन किया। इसी साल कोकनाडा कांग्रेस मे प्रथम बार स्वयसेवक दल का सगठन हुआ और आप उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसी साल आपको प्रथम बार कांग्रेस का प्रधान मन्त्री चुना गया।

१९२६ मे योरप गये। वहॉ साम्राज्य-विरोधी परिषद् के अधिवेशन मे एक दिन आप प्रधान बनाये गये। आप रूस भी गये और वहॉ से पूर्ण प्रभावित होकर लौटे। भारत मे आपने ही प्रथम बार साम्यवादी विचारधारा को प्रवाहित किया। १९२८ मे भारतीय स्वाधीनता सघ की स्थापना आपके ही प्रयत्न से हुई। १९२९ मे नेहरूजी ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष भी। लाहौर मे इसी साल, आपके नेतृत्व मे, पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। २६ जनवरी '३० ई० को समस्त देश मे प्रथम स्वाधीनता दिवस मनाया गया।

सन् १९३० में ६ मास की क़ैद की सजा मिली। जब आप जेल में ही थे, तब अपने पिता, प० मोतीलाल नेहरू, सहित—जिन्हें भी उस समय तक सज़ा दी जा चुकी थी और जो नैनी जेल मे अपने पुत्र के साथ ही थे—गाधी-इर्विन-समझौते के सम्बन्ध मे, स्पेशल ट्रेन द्वारा प्रयाग से यरवदा जेल गाधीजी से परामर्श करने के लिये लेजाया गया। कांग्रेस प्रेसिडेण्ट की हैसियत से, आपकी अनुमति के बिना, समझौता कैसे होता। सन् १९३२ मे, लार्ड विलिंगडन के शासन-काल से, गाधी-इर्विन समझौता टूटने पर, आपको सयुक्त-प्रान्त के पीडित और त्रस्त किसानो की सुध लेने के कारण, २ वर्ष क़ैद की सजा दी गई। किन्तु माता की बीमारी के कारण, सजा पूरी होने से पेश्तर, छोड दिये गये।

सन् १९३४ मे बिहार-भूकम्प के बाद, पिछले दिनों कलकत्ते मे दिये गये किसी भाषण के कारण, 'राजद्रोह' के अपराध मे, आपको दो वर्ष की सजा दीगई। किन्तु कमलाजी की बीमारी के कारण आपको बीच मे छोड दिया

गया। सरकार इस बार आप पर कुछ प्रतिबन्ध लगाकर छोड़ना चाहती थी, किन्तु आपने शर्तबन्द रिहाई को नामंज़ूर कर दिया। छूटते ही आप स्विट्ज़रलैंड गये जहॉ कमलाजी इलाज के लिए भेजी गई थी और इन दिनों अपनी अन्तिम अवस्था मे पडी थीं। सन् '३५ तक पण्डित नेहरू बराबर काग्रेस के मन्त्री चुने जाते रहे।

१६३६ मे देश ने आपको काग्रेस का फिर प्रेसिडेन्ट चुना और १६३७ मे भी आपही अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस समय, सार्वजनिक चुनावो के अवसर पर, आपने देश का अथक तूफानी दौरा किया। चुनावो मे, इस कारण, ज़बरदस्त सफलता मिली।

सन् १६३८ मे आप पुनः योरप गये। गृह-युद्ध-ग्रस्त स्पेन और चीन का भी आपने भ्रमण किया। सन् १६३६ के अन्तिम दिनो मे आपको गोरखपुर मे चार वर्ष कैद की सज़ा मिली। सन् १६४० मे व्यक्तिगत सत्याग्रह छिड़ा। सन् '४१ की आम रिहाई के समय आप छोड दिये गये। क्रिप्स प्रस्तावो की विफलता के बाद देश मे उत्पन्न हुए वातावरण और 'भारत छोडो' प्रस्ताव के बाद, आपभी ६ अगस्त १६४२ के प्रातःकाल, बम्बई मे, गान्धीजी आदि अन्य नेताओ के साथ, पकड लिए गये।

वह राष्ट्र के उद्योगीकरण के पक्ष मे हैं, और राष्ट्रीय उद्योग-निर्मात्री समिति के भी अध्यक्ष हैं। वह फासिज़्म के भी उतने ही विरोधी हैं जितने साम्राज्यवाद के। कांग्रेस मे वह एक शक्ति हैं। उनमे विश्लेषणात्मक बुद्धि है तथा वह सिद्धान्तो के प्रेमी हैं। वह अंग्रेज़ी के विद्वान् तथा उच्च कोटि के लेखक हैं। उनकी अंग्रेज़ी लेखन-शैली की आक्सफर्ड के प्रसिद्ध आलोचक प्रोफेसर ऐडवर्ड टामसन और सुविख्यात अँगरेज़ लेखक मि० गुन्थर ने बहुत प्रशंसा की है। अंग्रेज़ी मे उनकी "मेरी कहानी," "विश्व इतिहास की झलक," "हिन्दुस्तान की सम-

स्याएँ," "पिता के पत्र पुत्री के नाम," "लडखडाती दुनिया," आदि विश्व-विख्यात पुस्तकें हैं। इनके हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित होचुके हैं।
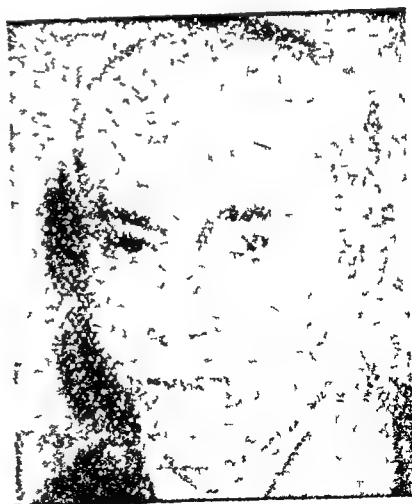
नोबेल पुरस्कार—ए० बी० नोबेल स्वीडन का एक रसायन-शास्त्री, वैज्ञानिक तथा इन्जीनियर था। सन् १८९६ मे उसकी मृत्यु हुई। उसने अपने जीवन मे कई युद्धोपयोगी विस्फोटक रासायनिक अन्वेषण किये, जिनसे वह थोडे ही समय मे मालामाल होगया। मृत्यु के उपरान्त, उसकी आन्तरिक इच्छा-पूर्ति के लिए, एक ट्रस्ट बनाया गया और उसकी ओर से प्रति वर्ष पॉच पुरस्कार भौतिक-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, शरीर-विज्ञान अथवा चिकित्सा, साहित्य तथा सान्सारिक शान्ति के लिए ससार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक, लेखक, कवि तथा शान्ति-प्रचारक व्यक्ति वा सस्था को भेट किये जाने की व्यवस्था कीगई। पिछले १७ वर्षो मे,शान्ति-प्रयास के लिये, यह पुरस्कार तीन अँगरेज सर आस्टिन चेम्बरलेन, सर नार्मन ऐन्जेल तथा लार्ड सैसिल को प्राप्त हो चुका है। प्रत्येक पुरस्कार एक लाख रुपये से अधिक का है। भारतीयो मे अब तक यह स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर को (साहित्य) और सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमण को (भौतिक-विज्ञान) मे मिल चुका है।

ए० बी० नोबेल

नौकरशाही—उच्च राज-कर्मचारियों द्वारा किसी देश का यथेच्छ शासन। जो देश का नौकर होकर भी उस पर मनमानी हुकूमत करे—जैसे भारत के सिविल सर्वेन्ट (नौकर)। भारत मे यह शब्द सन् १९१९ से बहु-प्रचलित है, जबकि, यथेष्ट राजनीतिक विकास के अभाव मे यहाँ, इडियन सिविल सर्विस के सदस्यो द्वारा, शासन-सूत्र सचालित होता रहा। बीच के कुछ राजनीतिक सुधारो के बाद जब, नवम्बर १९३९ मे, युद्ध के प्रश्न पर काग्रेस मन्त्रि-मण्डलो ने त्याग-पत्र दे दिए तब मदरास, बम्बई, सीमाप्रान्त, बिहार, उडीसा (जहाँ

दो वर्ष बाद दिखाऊ मंत्रि-मण्डल फिर बन गया), मध्य-प्रदेश, आसाम (पीछे अगस्त '४२ मे वहाँ, लगभग तीन वर्ष बाद, मंत्रिमण्डल बन गया) तथा संयुक्त-प्रान्त मे गवर्नरों ने इंडियन सिविल सर्विस के सदस्यो की सलाह से शासन करना शुरू कर दिया । इस समय भारत के ६ प्रान्तो मे नौकरशाही शासन है ।

प

पंचम पंक्ति या दल—(फिफ्थ कालम) इन नीति का सृजन और प्रथम प्रयोग स्पेन के गृह-युद्ध (१९३६-३९) के समय हुआ । स्पेन के गृह-युद्ध मे प्रजातन्त्र-द्रोही जनरल फ्रांको के एक सहयोगी, जनरल मोलर, ने भी भाग लिया। फ्रांको के नियन्त्रण मे देशद्रोही सेना के चार दस्ते प्रजातंत्र सरकार की फ़ौज पर आक्रमण कर रहे थे । उस समय जनरल मोलर ने कहा—"हमारा पंचम दल पहले से ही नगर मे है । वह मैड्रिड को हस्तगत करने मे हमारी बड़ी सहायता करेगा ।" यह स्पष्ट है कि 'पॉचवे दल' से उसका अभिप्राय, उन मैड्रिड-निवासियो से था, जिनकी आन्तरिक सहानुभूति जनरल फ्रांको के साथ थी। जनरल फ्रांको के गुप्तचर तथा छद्मवेशी कर्मचारी गुप्त रूप से प्रजातंत्र सरकार से मिलकर फ्रांको की विजय की बुनियाद डाल चुके थे । हर हिटलर ने भी स्पेन की इस युद्ध-कला का ख़ूब प्रयोग किया है ।

पंचवर्षीय योजना—सोवियत रूस ने, आर्थिक-जीवन के निर्माण के लिये, सबसे पहले सन् १९२७ मे, पॉच वर्षो के लिये, कार्यक्रम निर्धारित किया । इस कार्यक्रम मे आधारभूत उद्योगो के विकास पर सबसे अधिक ज़ोर दिया गया । जनता ने, अभाव की अवस्था मे होने पर भी, इस योजना मे सहयोग दिया । सन् १९३२ मे पॉच वर्ष के लिये फिर एक कार्यक्रम बनाया गया । इसी प्रकार सन् १९३७ मे १९४२ ई० तक के लिये तीसरी पंच-वर्षीय योजना

बनाई गई। इन योजनाओं से रूस के उद्योगो मे जो उन्नति हुई है, वह निम्न-लिखित अंको के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है:—

(आँकडे दस लाख गुने टनों में)

सन् १९२७		सन् १९३८	सन् १९२७		सन् १९३८
कोयला	३५	१४०	तेल	११	३०
कच्चा लोहा	३	१५	सीमेंट	११	६६
ईसपात	३	१८	मोटरें	०	१,७०,००० (Units)

इन योजनाओ द्वारा खेती को सामूहिक और कृषि-उत्पादन को यान्त्रिक बनाया गया। फलतः करोडो देहाती जनता मे नये धन्धो को करने की क्षमता उत्पन्न होगई। इसीके कारण सन् १९१३ में इनमे जो औद्योगिक पैदावार थी उससे सन् १९३८ मे ९ गुनी अधिक बढ गई, और इस अवधि मे कृषि मे ११८ प्रतिशत वृद्धि हुई तथा पशुओ मे, सन् १९१६ की अपेक्षा, १०४ प्रतिशत। इन योजनाओं का उद्देश्य है देश को इतना स्वाश्रयी बना देना कि बहुत कम मात्रा मे विदेशों से माल ख़रीदना पडे।

पनडुब्बी (सबमैरीन)—यह एक प्रकार का युद्ध-पोत है, जो समुद्र पर चलता है और शत्रु के जलयानो पर, टारपीडो के द्वारा, हमला करता है। यह अपनी इच्छा से समुद्र मे जलमग्न होजाता है और शत्रु के जलयान के निकट जाकर पानी के ऊपर आजाता है। पनडुब्बी पानी के ऊपर तेल के इजिन से और पानी के भीतर बिजली की मोटरों से चलती है। समुद्र मे आने-जानेवाले जहाजो को पनडुब्बियो से बडा ख़तरा रहता है।

पन्त—पंडित गोविन्द वल्लभ—कांग्रेसी नेता। बी० ए०, एलएल० बी०। सन् १९३४ मे केन्द्रीय धारासभा के सदस्य चुने गये। केन्द्रीय धारासभा की कांग्रेस-पार्टी के उप-नेता रहे। राजस्व तथा अर्थशास्त्र [illegible] हैं। सन् १९३७ मे जब कांग्रेस ने
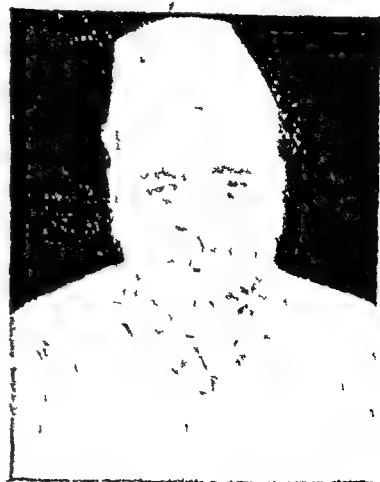
पदग्रहण की नीति स्वीकार की तब पन्तजी संयुक्त-प्रान्तीय सरकार के प्रधान-मंत्री नियुक्त किये गये। उन्होंने अपने शासन-काल (१९३७–३९) में शिक्षा, उद्योग-व्यवसाय, कृषि, ग्राम-देहात, निरक्षरता, जेल-शासन, शराबखोरी में थोड़े सुधार किये। आप दकियानूसी प्रकार के राजनीतिज्ञ हैं। सन् १९३९ के अक्टूबर में कांग्रेस के निश्चयानुसार पन्त-सरकार ने मन्त्रित्व से त्याग-पत्र दे दिया। सन् १९४० के युद्ध-विरोधी सत्याग्रह में आपको एक साल की सजा मिली। सन् '४२के अगस्त में देशव्यापी दमन में आप भी जेल भेज दिये गये।

परमानंद, भाई—दो वर्ष पूर्व तक हिन्दू महासभा के प्रथमकोटि के नेता। लाहौर के डी० ए०-वी० कालिज में अध्यापक थे। सन् १९१५ में गदर-पार्टी-केस में मुक़दमा चला और प्राणदण्ड की आज्ञा दीगई। बाद में सज़ा कालेपानी (आजन्म देश-निष्कासन) में बदल दीगई। कालेपानी में मनस्विता-पूर्वक विकट यातनाएँ झेलीं। दो मास तक वहाँ भूख हड़ताल की। सन् १९२० के क्षमा-दान में रिहा हुए। स्वर्गीय पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय के साथ राष्ट्रीय-क्षेत्र में योग-दान दिया। पंजाब राष्ट्रीय विद्यापीठ के पीठस्थविर (चान्सलर) रहे। सन् १९२५ के वृन्दावनवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति निर्वाचित हुए। सन् १९३३ में हिन्दू महासभा (अजमेर) अधिवेशन के सभापति बने। सन् १९३४ में ज्वाइंट पार्लमेंटरी कमिटी के समक्ष लन्दन में, हिन्दू महासभा की ओर से, गवाही देने गये। उसी वर्ष केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में पंजाब से, हिन्दू-महासभा की ओर से, चुने गये। भाईजी पुरातन देशभक्त, हिन्दू-महासभा के प्रभावशाली नेता, वक्ता

तथा हिन्दी के विद्वान् लेखक हैं। हिन्दी-साप्ताहिक 'हिन्दू' के आप सम्पादक हैं।

पाइस द्वादश—रोम का २६१वॉ पोप। जन्म २ मार्च १८७६ ई०। रोम मे सन् १६०६–१४ तक धार्मिक (ईसाई) कूटनीति का प्रोफेसर रहा। सन् १६३० मे राज्य के धर्म-विभाग का मत्री नियुक्त किया गया। पाइस एकादश का प्रधान सलाहकार रहा। २ मार्च १६३६ को, पाइस एकादश की मृत्यु के बाद, पाइस द्वादश नियुक्त किया गया। पोप रोमन-कैथलिक ईसाई-सम्प्रदाय का प्रधान आचार्य या महन्त है। कैथलिक ईसाइयत सनातनवादी, रूढि-प्रधान सस्था है, जिसके धार्मिक-उपचारो मे ईसा, उनकी माता मरियम, तथा उनके शिष्यो की मूर्तियो के प्रति आस्था और भक्ति-भावना भो सम्मिलित है। रोम कैथ-लिक ईसाइयों का गढ है। पोप यहाँ, अपने वैटीकन मे, रहता है। उसके वहाँ शानदार महल हैं, जहाँ वह राजसी वैभव से रहता है। कैथलिक धर्मानुयायी देशो मे पोप का बडा प्रभाव है। उत्तरी अमरीका, दक्षिणी अमरीका, ब्रिटेन और रूस को छोडकर ससार की सभी महत्वपूर्ण राजधानियो मे पोप के दूत—प्रतिनिधि—रहते हैं।

अठारहवीं सदी तक मध्य इटली मे पोप की बडी रियासत थी, जिसे १८७० मे इटली के साम्राज्य मे मिला लिया गया। इटली की इस कार्यवाही को स्वीकार करने से पोपों ने इनकार कर दिया। १८२६ तक यह हालत रही कि नये पोप के निर्वाचन के बाद, उक्त कार्यवाही के विरोध स्वरूप, प्रत्येक पोप ने अपने वैटीकन से बाहर जाना बन्द कर दिया। बाद में मुसोलिनी ने पोप और साम्राज्य मे समझौता करा दिया है। एक अरब लीरा (इटली का सिक्का) वैटीकन को क्षतिपूर्ति मे दिये गये। अब पोप का आधिपत्य केवल वैटीकन तक सीमित है। वैटीकन—पोप के गढ—मे उसीकी सत्ता क़ायम है। उतने क्षेत्र मे उसीका सिक्का और डाक-टिकट चलता है।

पोप समाजवाद और साम्यवाद का विरोधी है। वह नात्सीवाद का भी विरोधी है—इसलिए कि हिटलर कैथलिक विरोधी है। इटली के फासिज्म का वह विरोधी नहीं, फिर भी उसने वर्त्तमान युद्ध को रोकने और तदुपरान्त इटली को इसमे शामिल होने से रोकने की व्यर्थ चेष्टाऍ की थीं।

पाकिस्तान—सितम्बर १६३६ मे, योरप मे युद्ध छिड़ जाने के बाद से, मुसलिम-लीग के अधिनायक मि० मुहम्मदअली जिन्ना ने यह ज़ोरो से कहना

शुरू कर दिया है कि भारतवर्ष प्रजातंत्र के अनुकूल नही है। भारत मे कोई एक राष्ट्र नही है। इस देश मे हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र है। पूर्व की भॉति भारतीय मुसलिमो को वह अल्पसंख्यक सम्प्रदाय न मानकर अलग एक जाति कहने लगे हैं। दोराष्ट्र-सिद्धान्त के आधार पर पिछले लाहौर के मुसलिम-लीग अधिवेशन, मार्च १६४०, मे एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया था, जिसका आशय यह है कि भारत के भावी शासन-विधान के अन्तर्गत यहॉ दो अलग-अलग राज्य स्थापित किये जायॅ: एक हिन्दोस्तान, जिसमे समस्त भारत तथा देशी राज्य शामिल हैं (परन्तु हैदराबाद तथा बगाल प्रान्त शामिल नहीं हैं)। दूसरा पाकिस्तान, जिसमे पजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त, बलोचिस्तान के सूबे तथा काश्मीर-जम्मू, मडी, चम्बा, सुकेत, फरीदकोट, बहावलपुर, नाभा, पटियाला, कपूरथला, मलेरकोटला, दारेक़लात, लोहारू, बिलासपुर के पंजाबी तथा शिमला के पहाडी राज्य शामिल है। इसके अनुसार बंगाल-प्रान्त मे अलग मुसलिम-राज्य क़ायम होगा।

पाकिस्तान योजना का भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस), भारतीय राष्ट्रीय उदार सघ (लिबरल फैडरेशन), सिख लीग, दलित जाति-सम्मेलन तथा प्रत्येक हिन्दू-सिख सस्था ने घोर विरोध किया है। अनेक मुस्लिम संस्थाऍ भी इस योजना को देश के लिये विनाशकारी समझती हैं, तथा देहली मे अ० भा० आज़ाद मुस्लिम-सम्मेलन, अप्रैल १६४०, के देहली अधिवेशन मे इसका घोर विरोध किया गया था। इसके अतिरिक्त मजलिसे अहरार, जमीअतुल-उलमा-इ-हिन्द, भारतीय शिया कान्फरेन्स, बिहार मुसलिम स्वतत्र-दल, अजुमने वतन, अ० भा० मोमिन सम्मेलन तथा सभी राष्ट्रवादी मुसलमानो ने एक स्वर से पाकिस्तान का घोर विरोध किया है। मोमिन सम्मेलन ने तो १६४१ और '४२ मे भारत-मन्त्री को तार देकर सूचित किया था कि भारत के चार करोड मोमिन पाकिस्तान के विरोधी हैं और वह मि० जिन्ना को सब मुसलमानों का क़ाइदे-आज़म (प्रमुख नेता) नही मानते। अपनी कान्फरेन्सों मे वह अनेक बार इसका विरोध कर चुके हैं।

मुसलिम लीग-कार्यकारिणी के सदस्य और पजाब सरकार के प्रधान-मंत्री सर सिकन्दर हयात खॉ मरहूम ने कभी खुलकर इस मसले का समर्थन

नही किया था। बगाल-सरकार के प्रधान-मत्री मौलवी फज़लुल हक़ ने भी, जो मुस्लिम लीग कार्य-समिति के प्रभावशाली प्रमुख सदस्य रहे हैं, इस योजना का ज़ोरदार विरोध किया है। सन् १९४१ मे जो हक़-जिन्ना-पत्र-व्यवहार समाचार-पत्रो मे प्रकाशित हुआ था, उसमे यह स्पष्ट प्रकट होता है। हक साहब ने मि० जिन्ना को लिखा था:—" ' कृपया कोई ऐसा हल सोचिए जिससे भारत आगे बढ सके। अगर आप यह सोचते हैं कि वह केवल पाकिस्तान योजना है और कुछ भी नही, तो आप, लोगो को बुलाकर उन्हे अपना आशय स्पष्ट क्यो नही कर देते? जनता ने अभी तक न तो इसे भलीभाँति समझा है और न वह इसकी प्रशसा करने के योग्य है।"

इसका विरोध करते हुए महात्मा गाधी ने लिखा है—"मै इसका विरोध करने मे प्रत्येक अहिंसात्मक उपाय का प्रयोग करूँगा। क्योंकि इसका अर्थ होगा सदियों से असख्य मुसलमानो तथा हिन्दुओ द्वारा एक राष्ट्र की नाई साथ-साथ मिलकर रहने के प्रयत्न का सर्वनाश।" ('हरिजन' १३-४-४०)

पाकिस्तान की समस्या को क्रिप्स की योजना से बल मिला। साथ ही गत वर्ष पार्लमेन्ट मे ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल और भारत-मन्त्री मि० ऐमरी के भाषणो ने भी इस समस्या को दुरूह बनाया है। इसी योजना के आधार पर ब्रिटिश अधिकारी भारतीय सम्प्रदायो के मतैक्य के अभाव का नाम लेकर भारतीय राजनीतिक सङ्कट का कोई निपटारा नहीं कर रहे हैं। यह योजना वास्तव मे हैदराबाद उसमानिया विश्वविद्यालय के प्रो० डा० सय्यद अब्दुल लतीफ के मस्तिष्क की उपज है। प्रो० लतीफ ने पहली बार, सन् १९३७ मे, इसका उल्लेख किया, जब वह विलायत मे पढ रहे थे। किन्तु डा० लतीफ साहब आज पाकिस्तान को उस रूप मे नही मानते, जिसमे कि मि० जिन्ना इसे पेश करते हैं। मि० जिन्ना के पाकिस्तान के डा० लतीफ अनुयायी नही। वह समझौता नीति के पोषक और मि० जिन्ना की हठधर्मी के विरोधी हैं। अभी तक मुस्लिम-लीग ने पाकिस्तान की कोई प्रामाणिक योजना नही बनाई है। विविध स्वतंत्र मुसलिम लेखको ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार प्रकट किये है।

पीत आतङ्क—जापानी साम्राज्यवाद अथवा साम्राज्य-विस्तार के विरुद्ध उत्पन्न हुई योरपीय जातियों की मनोभावना, जिसका अन्तिम जर्मन-सम्राट्, कैसर विल्हैल्म, ने सबसे अधिक विरोधात्मक प्रचार किया। बहुत दिनों से योरपीय साम्राज्यवादी देश जापानी-विस्तार से भयभीत हैं और इसे पीत आतङ्क (पीला ख़तरा—'यलो पैरिल') कहकर पुकारते हैं, और जब से जापान ने चीन को हथियाने के लिए लड़ाई छेडी है तब से तो इन देशों—योरपीय और अमरीकी—का भय और भी बढ गया है, और उनका कहना है कि योरप को पददलित करने के लिए ही जापान चीन को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत कर लेना चाहता है। मगोल होने के कारण, चीनियों की भाँति, जापानी जाति का रग पीला है, इसलिए उससे सम्भावित ख़तरा भी पीला कहलाया। 'पीत आतङ्क' शब्द से बहुत पूर्व, पूर्वीय देशों में, इसी प्रकार, पाश्चात्य गोरी जातियों के विरुद्ध, उनके साम्राज्यवाद और उससे उत्पन्न अत्याचारों के तिरस्कार के रूप में, श्वेतजन का बोझ' ('ह्वाइटमैन्स बर्डन्')-शब्द संसार में बहु-प्रचलित है।

पुर्तगाल—क्षेत्रफल ३५,४०० वर्गमील, जनसख्या ७५,००,०००। १९१० में राजतन्त्र से प्रजातत्र बना। तब से इस देश में २४ क्रान्तियाँ हुई हैं। सन् १९२६ में प्रजातत्रवादी सरकार को फौजी दल ने पलट दिया। सन् १९३२ में डा० अन्तोनियो प्रधान-मत्री बन गया। तबसे वही इस देश का अधिनायक है। पुर्तगाल की पार्लमेंट मे दो चेम्बर हैं। अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति ७ वर्ष के लिये जनता द्वारा चुना जाता है। पुर्तगाल का औपनिवेशिक साम्राज्य २७,००० वर्गमील में
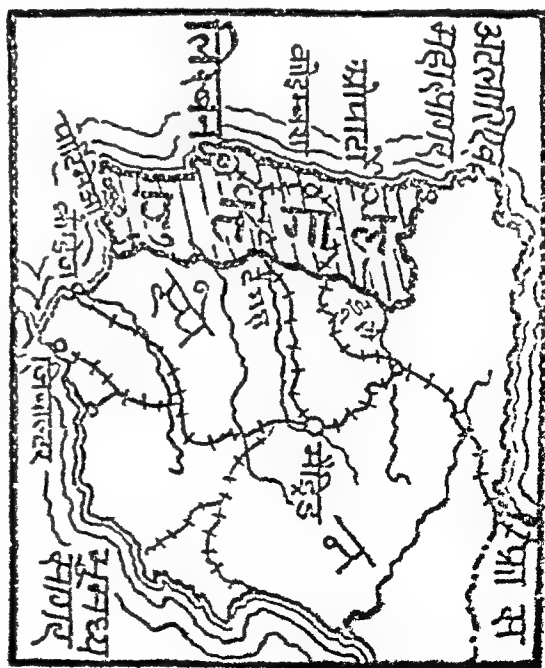
है, जिसमे अंगोला, गिनी, मोज़ामबिक हैं। इनके अलावा गोआ (भारत) तथा सुदूरपूर्व मे भी उसके उपनिवेश हैं। यह देश तटस्थ है। ब्रिटेन से इसका मित्रता का सम्बन्ध है। पुर्तगाल के अजोर और केप वर्डे द्वीपसमूह, अतलान्तिक मे, सामरिक दृष्टि से, बहुत महत्त्वपूर्ण टापू हैं। सुदूर पूर्व में उसके चीन के मकाओ नामक देश पर जापान क़ब्ज़ा कर चुका है और तिमोर पर १६४१ के दिसम्बर मे मित्रराष्ट्रो ने अधिकार जमा लिया है।

पूँजीवाद—पूँजीवाद वह आर्थिक प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत उत्पादन, वितरण तथा विनिमय के समस्त साधन अर्थात् सम्पूर्ण आर्थिक-जीवन का स्वाम्य कुछ व्यक्तियो के हाथ में रहता है। उत्पादन के साधन—कृषि, भूमि, खाने, कारख़ाने, मकान, रेल, जहाज़, मोटर इत्यादि हैं। वितरण के साधन—इन समस्त उत्पादन के साधनो द्वारा जो पैदावार-उपज होती है, उसके वितरण तथा विनिमय के साधन मडियाँ, बाजार, बैंक इत्यादि हैं। आधुनिक युग मे इन सब पर पूँजीपतियो का अधिकार है। दूसरा वर्ग उन लोगों का है, जिनका इन साधनो पर कोई अधिकार-आधिपत्य नहीं है। वे मज़दूर, श्रमजीवी तथा सर्वहारा कहलाते हैं। उनके पास केवल श्रम-शक्ति है। बस, वे उसे भी पूँजीपतियों को बेच देते हैं। उस श्रम-शक्ति के बदले में उन्हे कुछ मज़दूरी मिल जाती है। वर्त्तमान समाज मे सर्वहारा वर्ग विशाल बहुमत मे है।

समाजवाद पूँजीवाद का विरोधी है। समाजवाद के अनुसार उत्पादन और वितरण के इन समस्त साधनों पर समस्त समाज—राष्ट्र—का स्वाम्य होना चाहिए, कुछ व्यक्तियों, पूँजीपतियों का, नहीं। वह समस्त उद्योग-धन्धों और कृषि का समाजीकरण चाहता है।

पूँजीवाद के समर्थक यह दलील देते हैं कि ससार मे आज जो उन्नति तथा उत्कर्ष दिखलाई दे रहा है, वह पूँजीवाद के कारण ही संभव हो सका है। पूँजीवाद जनता की भलाई चाहता है, परन्तु साथ ही वह व्यक्तिवाद का समर्थक है।

समाजवादी यह कहते हैं कि पूँजीवाद एक विशेष अवस्था तक ही अपना काम करता है। इसके बाद उसमे अन्तर्द्वंद्व पैदा हो जाता है। एक पूँजीवादी दूसरे पूँजीवादी को नष्ट कर देना चाहता है। बड़े पूँजीवादी छोटो

को अपना शिकार बनाते हैं, और इन बडे पूँजीवादियो के विनाश के लिए संसार के महान् पूँजीपति, अन्तर्राष्ट्रीय गुटो द्वारा, ससार के प्रमुख व्यवसायो पर एकाधिकार कर लेते हैं। आधुनिक पूँजीवाद का जन्म व्यावसायिक उथल-पुथल से हुआ और इसने साम्राज्यवाद, आर्थिक साम्राज्यवाद तथा फासिज्म को जन्म दिया। फासिज़्म के रूप मे पूँजीवाद को राज्य से सहायता मिली।

पूना समझौता—१७ अगस्त १९३२ को ब्रिटिश प्रधान-मंत्री (अब मृत) श्री रैम्ज़े मैकडानल्ड ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' प्रकाशित किया, जिसके अनुसार भावी शासन-विधान (१९३५) द्वारा स्थापित धारा-सभाओ मे भारत के सम्प्रदायो के लिये प्रतिनिधियो की सख्या का अनुपात तथा निर्वाचन-प्रणाली निर्धारित की गई। परिगणित (दलित) जातियो के लिये प्रधान-मंत्री ने विशेष-निर्वाचन प्रणाली की योजना उसमे रखी, जिसके अनुसार दलित जातियो के निर्वाचनो के पृथक् मण्डल रखे गये, परन्तु उनके मतदाताओ को अन्य हिन्दुओ के उम्मीदवारो को मत देने तथा उनके चुनाव मे खडे होने का अधिकार भी दिया गया। महात्मा गांधी ने इस निर्णय के विरुद्ध, जहॉ तक उसका दलित जातियो से सम्बन्ध था, २० सितम्बर १९३२ को यरवदा जेल मे आमरण व्रत रखकर विरोध किया, क्योकि १९०९ के मिन्टो-मार्ले-सुधार मे सिख सम्प्रदाय को विशाल हिन्दू राष्ट्र से पृथक् करने के बाद, इस निर्णय द्वारा, हिन्दू राष्ट्र के अंग, दलित समाज, को उससे पृथक् कर देने की यह कूटनीतिक योजना थी। इससे देश मे बडी बेचैनी तथा नैराश्य छागया। २५ सितम्बर १९३२ को महामना प० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व मे हिन्दू तथा दलित वर्ग के नेताओ का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें दोनो पक्षो मे समझौता होगया।

२६ सितम्बर १९३२ को यह समझौता सरकार ने स्वीकार कर लिया। यह समझौता १० वर्ष के लिए हुआ है और पूना-पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस समझौते की प्रथम धारा के अनुसार प्रान्तीय असेम्बलियो मे दलित जातियो के लिए इस प्रकार स्थान सुरक्षित किये गये : मदरास ३०, बम्बई १५, पंजाब ८, बिहार १५, उडीसा ६, मध्यप्रदेश २०, आसाम ७, बंगाल ३०, संयुक्तप्रान्त २०। कुल सदस्यो की सख्या १५१।

पूर्ण स्वराज्य—भारतीय राष्ट्रीय महासभा ने अपने १९२९ ई० के लाहौर अधिवेशन मे पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा के साथ यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य को स्वीकार न करेगी। वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य नही चाहती। परन्तु देश के उदारदली लोग वैस्टमिन्स्टर कानून (Westminster Statute) के अनुसार प्राप्त औपनिवेशिक पद से ही सन्तुष्ट होजाना चाहते हैं। महात्मा गाधी ने यह निश्चित रूप से घोषणा कर दी है कि वह भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं चाहते।

पूर्वी राष्ट्र-सम्मेलन—२५ अक्टूबर १९४० को नई दिल्ली मे पूर्वीय राष्ट्र सम्मेलन हुआ, जिसमे आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, भारत, दक्षिण रोडेशिया, नयासालैण्ड, जञ्जीबार, ब्रह्मा, लका, मलय, हांगकांग तथा फिलस्तीन राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन लार्ड लिनलिथगो ने किया तथा भारत-सरकार के तत्कालीन क़ानून-सदस्य सर मुहम्मद जफरुल्लाखाँ ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सम्मेलन का उद्देश्य यह था कि पूर्वीय राष्ट्र युद्ध-सामग्री तैयार करने मे परस्पर सहयोग से कार्य करें तथा स्वाश्रयी बन जायँ। पूर्वीय देशों मे युद्ध का ख़तरा है इसीलिए यह सम्मेलन, युद्ध-सामग्री की पैदावार के सम्बन्ध मे, विचार करने के लिए, किया गया था। किसी देश मे एक युद्ध-सामग्री अत्यधिक पैदा न की जाय, और न ऐसा ही किया जाय कि वह किसी दूसरी वस्तु को पैदा करने मे उदासीन रहे। अधिवेशन मे बताया गया कि ४०,००० युद्धोपयोगी उपादान मे से २०,००० वस्तुएँ भारत मे उत्पन्न होती हैं। यह ब्रिटेन के अधीन देशो का सम्मेलन था।

पेताँ, हैनरी फिलिप— फ्रान्सीसी प्रधान सेनापति। १६ जून १९४० को जब फ्रान्स के प्रधान मत्री रिनौ ने त्याग-पत्र दे दिया, तब मार्शल पेताँ प्रधान मत्री बना। १७ जून '४० को फ्रान्स ने जर्मनी से शान्ति-सधि की वार्ता शुरू की और २२ जून को दोनो देशो के बीच विराम-सधि होगई। १० जुलाई '४० को फ्रान्स की राष्ट्रीय परिषद् का अधिवेशन हुआ, जिसमे परिषद् ने प्रजातन्त्र-सरकार के समस्त अधिकार मार्शल पेताँको देदिये। फ्रान्स के लिए नया

 विधान बनाने के लिए भी उससे निवेदन कियागया। इसके अनुसार ११,

१२ और ३० जुलाई '४० को पेतॉ ने शासन-विधान मे ५ सशोधन क़ानून प्रकाशित किये और प्रजातन्त्र-शासन-विधान को बदलकर वह अनधिकृत फ्रान्स का सर्वेसर्वा बन गया। पेतॉ का जन्म १८५६ ई० मे हुआ। वह १८७८ से सेना मे अफ़सर है। १९१४ मे जनरल बना। १९१६ मे वर्दून को बचाया। १९१७ मे सेनापति बनाया गया और १९१८ मे प्रधान सेनानायक (मार्शल)। १९२५-२६ मे इसने मरक्को के विद्रोह का दमन किया। १९२० से '३० तक युद्ध-समिति का उप-प्रधान रहा। १९३१ से राष्ट्ररक्षा समिति का सदस्य है। डूमर्ग-मन्त्रिमण्डल मे १९३४ से युद्ध-मन्त्री रहा। पेतॉ एकदम दक्षिणपन्थी नीति का राजनीतिज्ञ है और १९३६ के फ़ासिस्त षड्यन्त्र मे उसका नाम भी लिया गया था। १९३९ मे, स्पेनी गृहयुद्ध के बाद, पेतॉ जनरल फ़्रांको के यहॉ फ़्रांसीसी दूत बनाकर भेजा गया था। मई १९४० मे मोशिये रिनौ ने उसे अपने मन्त्रिमण्डल मे उप-प्रधान-मन्त्री बनाया, किन्तु वह मोशिये लावल के प्रभाव मे आकर नात्सी-पक्षपाती बन गया और जून १९४० मे उसने फ़ान्स को नात्सियो के अधीन कर दिया। उसकी आयु ८५ वर्ष है।

पेशावर हत्याकाण्ड—

पैंज़र-सेना—यह एक प्रकार की जर्मन-सेना का नाम है। इस सेना में ४८ भारी टैंक, ८४ छोटे टैंक, २५२ हलके टैंक, २५० फौजी मोटर लारियाँ, ६३ तोपें, २७ बम-वर्षक और २५८ मोटर-साइकिल-सवार होते हैं। इस सेना का अपना एक हवाई सैनिक-दल भी होता है। सबसे आगे मोटर साइकिल-सवारों का दल चलता है। इसके पीछे टैंक-विध्वंसक तोपो का दल होता है। सेना के सबसे पीछे इञ्जीनियरो का दल होता है। यह दल समय-समय पर रण-क्षेत्र की दुरुस्ती करता है। जब यह पूरी सेना एक दिशा मे इस प्रकार चलती है तो इसका आगे का भाग नुकीला होजाता है। इससे इसको शत्रु की सेना को वेधकर भीतर प्रवेश करने मे बहुत मदद मिलती है। यह सेना धावा बोलने में बड़ी तीव्र होती है। फ्रान्स की हार का एक कारण पैंज़र-सेना का भीषण आक्रमण भी था।

पैपेन, फ्रान्ज़ वोन—जर्मन राजनीतिज्ञ। विगत विश्वयुद्ध के समय अमरीका मे जर्मनी की ओर से सामरिक-दूत था। अमरीका के हथियारों के कारखानो को उड़ा देने के षड्यन्त्र से सम्बन्धित पाया गया और अमरीका से निकाल दिया गया। उसने अपना एक दल

क़ायम किया और जर्मनी के राष्ट्रपति हिंडेनबर्ग को प्रभावित कर १६३२ में, कुछ दिनो के लिये, जर्मनी का चान्सलर बन गया। १६३३ ई० में यह पद त्याग दिया और हिटलर को नात्सी सरकार बनाने में मदद दी। सन् १६३४ में उसने हिटलर के विरुद्ध विद्रोह करना आरंभ कर दिया। हिटलर ने उसके सहयोगियो को ३० जून १६३४ को मरवा डाला, परन्तु पैपेन को छोड़ दिया। बाद में वह हिटलर का सहयोगी बन गया। आस्ट्रिया में राजदूत बनाकर भेजा गया और अब, पिछले चार साल से, तुर्की में नात्सी-राजदूत है।

पैराशूट—जगी छतरी जिसके ज़रिये उड़ते हुए वायुयान में से सैनिक भूमि पर उतरता है। वर्त्तमान युद्ध में पहली बार जर्मनी ने, शत्रु-देशों में सेनाएँ उतारने के लिए, इस जंगी छतरी का बहुत प्रयोग किया। जर्मन सैनिक पैराशूट से नीचे उतरते समय एक छोटी मशीनगन तथा एक मोटर बाइक लेकर उतरते हैं। जर्मनी सबसे बड़े पैराशूट का प्रयोग कर रहा है। पैराशूट का व्यास ३० फीट होता है। पैराशूट २०० पौंड वजन नीचे उतार सकता है। इसमें १४० पौंड तो सैनिक के शरीर तथा वस्त्रों का वज़न तथा ६० पौंड वज़न उसके अस्त्रों आदि का होता है। कम-से-कम १५० फीट की ऊँचाई से इस छतरी का प्रयोग किया जा सकता है और अधिक-से-अधिक ६ मील की ऊँचाई से। इसके द्वारा सैनिक बहुत मन्द गति से नीचे उतरता है। उतरने की रफ़्तार १६ मील फी घन्टा है। कहा जाता है कि जर्मनी ने जब हालैण्ड पर आक्रमण किया तब एक दिन में ५०० सिपाही पैराशूट से उतारे। इनमें से ४३८ तो मर गये शेष ६२ ही सकुशल भूमि तक पहुँच सके।

पैसफील्ड, लार्ड—पहले इनका नाम सिडनी जेम्स वैब था। यह ब्रिटिश मज़दूर नेता हैं। सन् १८५६ में जन्म हुआ। सन् १८८२ से फेबियन सोसाइटी के नेता हैं। इन्होने मार्क्सवाद के विरुद्ध ब्रिटिश समाज-वाद के 'क्रमिक-प्रगतिवाद' सिद्धान्त का विकास किया, जिसे १६१८ में ब्रिटिश मज़दूर दल ने अपना लिया। इन्होने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी सम-विदुषी सहधर्मिणी ने भी इनके साहित्यिक उद्योग में सहयोग दिया और कई पुस्तकें लिखीं। १६२२ से १६२६ तक, प्रथम मेकडानल्ड-सरकार के , कामन्स सभा के मजदूर-दली सदस्य रहे और इसी सरकार में १६२६ से

'३१ तक उपनिवेशो के मन्त्री। सन् १६२६ मे वह लार्ड बना दिये गये, किन्तु उनकी पत्नी ने 'लेडी' उपाधि धारण करने से इनकार कर दिया।

पोलिश कोरीडर—यह भूमि की एक पतली लम्बी पट्टी है जो पोलैण्ड को बाल्टिक सागर से मिलाती है। यह समुद्र-तट की ओर १० मील चौडी तथा पोलैण्ड की ओर ६० मील चौडी है। सन् १६१६ मे यह प्रदेश पोलैण्ड को दे दिया गया। यह पट्टी पूर्वीय जर्मन-राज्य के बीच मे होकर जाती है तथा जर्मनी को उसका पूर्वीय प्रदेश प्रशा से पृथक् कर देता है।

पोलैण्ड—क्षेत्रफल १,५०,००० वर्गमील, जनसख्या, वर्त्तमान युद्ध से पूर्व, ३,४०,००,०००। रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया ने क्रमशः १७७२, १७६३ तथा १७६५ मे, इस देश को छिन्न-भिन्नकर, अपने-अपने राज्य मे मिला लिया। १२० वर्षो तक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करने के बाद, सन् १६१८ मे, विगत विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप, पोल लोगो को स्वाधीनता मिली। रूस, प्रशा तथा जर्मनी के पोलिश-भाषी प्रदेशो को मिलाकर पोलिश स्वतत्र राज्य बना। १ करोड १० लाख आबादी की अल्पसंख्यक अन्य जातियॉ भी इसमे शामिल कीगई। वर्त्तमान विश्वयुद्ध पोलैण्ड से आरम्भ हुआ। पोलैण्ड के कोरीडर, पोज़नन् प्रान्त तथा पूर्वी साइलीशिया मे जर्मन बहुसंख्या मे थे। जर्मनी की पोलैण्ड के साथ सन्धि थी। उसके अनुसार इन देशो की समस्त प्रजा की राय ली गई, जर्मनो का बहुमत निकला और जर्मनवासी प्रदेश जर्मनी के अधिकार मे रहा। जिन लोगो ने पोलैण्ड के पक्ष मे मत दिया उनका प्रदेश पोलैण्ड को मिल गया। सन् १६२० मे पोलैण्ड ने रूस के जिस क्षेत्र को ले लिया था उसमे यूक्रेनी और श्वेत रूसी आबाद थे। देश की इस प्रकार सीमा बढ़ जाने से पोलैण्ड के पडोसी राष्ट्रो ने आक्षेप शुरू किये, किन्तु पोलैण्ड फ्रान्स के भरोसे पर रहा आया।

इसके बाद पोलैण्ड मे आन्तरिक शान्ति नही रही। सामाजिक और आर्थिक झगडे उठते रहे। सन् १६२६ मे मार्शल पिल्सुड्स्की पोलैण्ड का शासक बन गया। इसके बाद यद्यपि पार्लमेन्ट और शासन-विधान नाममात्र को रहे, किन्तु वस्तुतः देश मे सैनिक अधिनायक-तंत्र का शासन रहा। देश के नेता जेलो मे डाल दिये गये या देश-बाहर कर दिये गये। सन् १६३४ मे पोलैण्ड ने—अगरचे

वह नही चाहता था और जर्मन-विरोधी था—जर्मनी से समझौते की बातचीत शुरू की, और इस प्रकार पोलैण्ड और जर्मनी के बीच १० वर्ष के लिए अनाक्रमण संधि होगई। इसका एक कारण यह भी बताया जाता है कि पिल्सुड्स्की ने दो बार फ्रान्स और ब्रिटेन से, हिटलर के उत्थान के प्रारम्भिक वर्षों में, कहा कि वह जर्मनी के खिलाफ युद्ध छेड़ें और जर्मनी की सैनिक तैयारियों को रोकें। पिल्सुड्स्की के प्रस्ताव का परिणाम न निकलते देख पोलैण्ड ने जर्मनी से यह सन्धि करली। सन् १९३५ में मार्शल पिल्सुड्स्की की मृत्यु होगई। इसकी जगह मार्शल स्मिग्ली-रिज ने ले ली। प्रोफेसर मोसिकी प्रजातन्त्र का प्रधान रहा आया, किन्तु वास्तव मे देश मे राजनीतिक अशान्ति और अनिश्चितता रही। अक्टूबर १९३८ मे हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के प्रथम बँटवारे मे पोलैण्ड को भाग देना स्वीकार कर लिया था, किन्तु १९३९ के वसत मे हिटलर पोलैंड के विरुद्ध पलट पडा और दाज़िग तथा पोलिश कोरीडर के वापस लेने की मॉग पेश की। फ्रान्स तथा ब्रिटेन ने पोलैण्ड की सहायता के लिए वचन दिया। १ सितम्बर १९३९ को जर्मन सेनाओं ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी की यान्त्रिक सेनाओं के मुकाबले पोलैण्ड की बुरी तरह पराजय हुई, और विस्चुला नदी के किनारे जब पोल लोग नई रक्षात्मक योजना कर रहे थे तब, १७ सितम्बर १९३९ को, रूस ने भी पूर्वी पोलैण्ड पर अनेक डिवीजन लेकर पीछे से आक्रमण कर दिया और उसके यूक्रेनी और श्वेत रूसी (बल्कि उससे भी अधिक) भाग पर क़ब्जा कर लिया। १५ दिन के युद्ध के बाद पोलैण्ड का पतन होगया। पोलैण्ड की राजधानी वारसा को चारों ओर से घेर लिया गया था। वहॉ फिर भी पोल बडी वीरता से लड़ते रहे, अन्त मे वे भी पराजित होगये। पोलिश सरकार रूमानिया भाग गई। राष्ट्रपति मोसिकी ने इस्तीफा दे दिया और अपने स्थान पर मो० रेकुजीविज़ को मनोनीत किया, जो पेरिस मे था। इसने फ्रान्स मे नई पोलिश सरकार बनाई और पोल सेना को पुनर्संङ्गठित किया, जो नार्वे और फ्रान्स मे लडी। जून '४० मे फ्रान्स के पतन के बाद यह सेना और पोलिश सरकार ब्रिटेन को चली गई। बरतानिया अपने युद्ध-मन्तव्यो मे घोषणा कर चुका है कि वह पोलैण्ड को पुनः स्वतन्त्र करायेगा। जो पोलिश प्रदेश रूस ने अपने राज्य मे मिलाया

उसमे ४० लाख पोल भी हैं। जो प्रदेश जर्मनी के अधिकार मे है उसमे १ करोड ६० लाख पोल हैं। जर्मनी द्वारा अधिकृत पोलैण्ड मे २० लाख यहूदी भी हैं। ल्यूब्लिन मे जर्मनी ने एक शिविर बनाया है जहाँ सब पोलिश तथा जर्मन यहूदी रखे गये हैं। अधिकृत पोलैण्ड के ३३ हज़ार वर्गमील के ज़िलो को जर्मनी मे मिला लिया गया है और पोल-जनों को वहाँ से निर्वासित कर जर्मनो को आबाद करना शुरू कर दिया है। जर्मन अधिकृत प्रदेश मे डा० फ्रेङ्क की अध्यक्षता में सरकार बना दी गई है जहाँ पोल जनता पर नित नये अत्याचार हो रहे हैं। लन्दन प्रवासी पोलिश सरकार के अनुसार जुलाई' ४१ और जुलाई '४२ के बीच ३,२०,००० पोलो को फाँसी दी जा चुकी है, किन्तु बहादुर पोल क़ाबिज़ जर्मनों से डटकर टक्कर ले रहे हैं और पोलिश सेनाएँ बरतानिया के साथ मिलकर बराबर दुश्मनो से लोहा ले रही हैं।

जून '४१ मे जब जर्मनी ने रूस से भी दग़ा की और उससे भिड गया, तो रूस द्वारा लिए गये पोलैण्ड के भाग पर नात्सियो ने अधिकार कर लिया। लन्दन-प्रवासी पोलिश सरकार ने, जो अब तक सोवियत यूनियन के प्रति अपने को युद्ध-रत समझती थी, सोवियत यूनियन से, ३० जून सन् १६४१ को एक समझौता कर लिया, जिसके आधार पर उस ने रूस से फिर अपने राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए हैं। वह एक दूसरे की हिटलरी

जर्मनी के विरुद्ध सहायता कर रहे हैं, और रूस मे एक पोलिश सेना खडी की गई है। सोवियत सरकार ने भी १६३६ की सोवियत-जर्मन- सन्धि के पोलैंएड-सम्बन्धी भाग को रद कर दिया है।

प्रभाव-क्षेत्र—प्रभाव-क्षेत्र से तात्पर्य ऐसे किसी देश अथवा उसके किसी प्रदेश से है जिस पर किसी अन्य राष्ट्र का राजनीतिक प्रभुत्व तो नहीं होता प्रत्युत् वह अपना प्रभाव रखता है। सन् १६०७ मे फारिस को अंग्रेजों तथा रूसियो ने अपना प्रभाव-क्षेत्र बना लिया। मन्चूको जापान का प्रभाव-क्षेत्र है। बाह्य मगोलिया रूस का प्रभाव-क्षेत्र है। जर्मनी डेन्यूब-प्रदेश को अपना प्रभाव-क्षेत्र मानता है। चीन सयुक्त-राज्य अमरीका तथा ब्रिटेन और रूस का प्रभाव-क्षेत्र है।

प्रशान्त महासागर का युद्ध—(देखिये—'सुदूरपूर्व का युद्ध')।

प्रान्तीय स्वराज्य—भारत के गवर्नरों के ११ प्रान्तों मे, सन् १६३५ के शासन विधान के अन्तर्गत, जो शासन-प्रणाली स्थापित की गई है, वह प्रान्तीय स्वराज्य के नाम से प्रसिद्ध है।

यद्यपि प्रान्तीय शासन पूर्णतया प्रजातान्त्रिक अथवा उत्तरदायी शासन नही है—और स्वराज्य तो वह किसी अर्थ मे भी नहीं है—परन्तु जो अर्द्ध-प्रजातन्त्र-प्रणाली स्थापित होचुकी है उसे पूर्व प्रचलित नौकरशाही से भिन्न करने के लिये ही स्वराज्य (ऑटोनोमी) शब्द का प्रयोग किया जाता है। स्वराज्य का तो अर्थ है अपना शासन।

प्रिवी कौंसिल—आरम्भ मे यह ब्रिटेन के राजा की सलाहकारी-समिति थी। प्रिवी कौंसिल सम्पूर्ण रूप से सलाह देने के अधिकार का प्रयोग नही करती, प्रत्युत् कौंसिल के सदस्यो के चुने हुए समूह समय-समय पर कार्य-सम्पादन करते है। तीन सदस्यों का 'कोरम' हो जाता है। बस, जब तीन सदस्य अधिवेशन मे शामिल होजाते हें, तब यह घोषणा कर दी जाती है कि "राजा ने प्रिवी कौंसिल का अधिवेशन किया है।" इसके बाद आर्डर-इन-कौंसिल, शाही घोषणाएँ, तथा शाही क़ानून पास होजाते हैं। पहले से सरकारी विभाग इनके सम्बन्ध मे सिफारिशे कर देते हें। ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल प्रिवी कौंसिल की एक समिति है। इसलिये मंत्री प्रिवी कौंसिलर होते हैं। प्रिवी-कौंसिलर

(पी० सी०) एक प्रकार की उपाधि है जो, राज्य की सेवा करने के उपलक्ष्य मे, व्यक्तियो को दी जाती है । प्रिवी कौंसिल के सदस्य 'राइट आनरेबुल' कहलाते हैं । प्रिवी कौंसिल की अनेक समितियाँ है, परन्तु वे बहुत ही कम अपने अधिवेशन करती हैं। इसकी एक कमिटी न्याय-समिति है, जो अपना काम करती है। इसके सदस्य वकील, लार्ड और पेशनयाफ़्ता जज होते हैं। यह ब्रिटिश राष्ट्र-समूह मे सर्वोच्च न्यायालय का काम करती है । उपनिवेशो तथा भारत के हाईकोर्टों तथा उच्च अदालतो की अपीले इसी न्याय-समिति के न्यायाधीशो के सामने सुनी जाती हैं। किन्तु कनाडा की अपनी अलग प्रिवी कौंसिल है। वह इसके आश्रित नही।

फ

फज्लुल हक, मियाँ ए० के०—बंगाल-सरकार के प्रधान-मत्री। शिक्षा : बार-एट-ला। सन् १६३०-३२ के गोलमेज-सम्मेलन लन्दन के प्रतिनिधि। बगाल के प्रसिद्ध नेता देशबन्धु चित्तरजनदास के समय मे आप कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे। उसी स्थिति मे कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर बने। किन्तु पीछे आप पर साम्प्रदायिकता का रग शुरू हुआ और मुसलिम लीग मे शामिल होगये। मि० जिन्ना के प्रमुख सहायक रहे। मुस्लिम-लीग की अ० भा० कार्य-समिति के सदस्य बन गये। किन्तु १६४१ के अन्त मे आपके मंत्रिमण्डल मे परिवर्तन हुआ और आप साम्प्रदायिकता के दलदल से ऊपर उठे। फलतः

मुसलिमलीगके काइदे आजम (प्रमुख नेता) मि०जिन्ना से आपका मतभेद हुआ और १६४१ के मध्य मे जिन्ना साहब ने मि० फज़लुलहक़ के विरुद्ध अनुशासन भग की कार्यवाही की और लीग से पृथक् कर दिया। तब से आप राष्ट्रीय विचार-धारा से प्रभावित ह। ८ अगस्त १६४२ के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद भारत-व्यापी दमन का भी आपने विरोध किया है और देश के वर्तमान राजनीतिक सङ्कट के सुलझाव के लिए लालायित हैं। जनवरी १६४३ से कलकत्ते और पूर्वीय बगाल पर जापानियों ने बमवर्षा आरम्भ की है। यह पंक्तियाँ छपने तक आठ हमले हो चुके हैं। आपने कहा है कि बंगाल दृढतापूर्वक शत्रु के प्रहारों को सहन करेगा।

फासिज्म—यह इटली का राजनीतिकवाद है। सन् १६१६ में मुसोलिनी ने इसके आन्दोलन को आरम्भ किया। फासिज्म शब्द का मूल (fascio) (फाश्यो) शब्द है, जिसका प्रयोग पूर्वकाल मे अनेक उग्र संस्थाओं ने किया है। 'फाश्यो' का अर्थ है, गट्ठा या बण्डल (बाँधना)। रोमन-साम्राज्य के राज-चिह्न पर कुल्हाड़ी सहित बँधी हुई लकड़ियाँ बनी रहती थीं, जिन्हें अधिकारी धारण करते थे। वस्तुतः फासिज्म का अर्थ है राष्ट्र को किसी सिद्धान्त मे बाँधना, सङ्गठित करना। इस दल का कायक्रम राष्ट्रीय सत्तावादी, असाम्यवादी तथा प्रजातन्त्र-विरोधी है। फासिज्म संगठित राज्य की स्थापना को अपना लक्ष्य मानता है। फासिज्म का यह दावा है कि वह न तो पूँजीवादी है और न समाजवादी ही। वह व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा तो करता है परन्तु उसे राज्य के नियत्रण मे रखना चाहता है। वर्ग-सघर्ष को अस्वीकार करता है तथा औद्योगिक विवादों को निषिद्ध ठहराता है। मजदूर-सभाएँ तथा मालिकों के संघ सब फासिस्तों के नियत्रण मे हैं।

फ्रांको, फ्रान्सिस्को—स्पेन का सेनाध्यक्ष तथा अधिनायक। १८६२ मे पैदा हुआ। मरक्को मे स्पेन की सेना मे नौकरी की। स्पेनी प्रजातन्त्र के अधीन सेनानी रहा और १६२६ मे कर्नल होगया। सन् १६३५ मे स्पेन का प्रधान सेनाध्यक्ष होगया। केनारी द्वीपों का गवर्नर रहा। मरक्को से, जुलाई १६३६ मे, उसने फौजी-विद्रोह का झण्डा उठाया और १ अक्टूबर १६३६ को फ्रांको ने अपने को राज्य का पूर्ण अधिकारी तथा प्रधान-सेनाध्यक्ष घोषित कर दिया, जिसके

कारण स्पेन में १६३६ ई० तक गृह-युद्ध जारी रहा। इस विद्रोह में उसे इटली तथा जर्मनी से भारी सहायता मिली और प्रजातंत्रवादी स्पेनी सरकार हार गई। मई १६३६ में वह कामिएटर्न-विरोधी-समझौते में शामिल हुआ। २३ अगस्त १६३६ को हुए रूस-जर्मन-समझौते से वह चिन्तित होउठा, क्योंकि उसने अपने देश में हाल ही में उस प्रजातंत्री सरकार को हराया था जिसकी सोवियत रूस ने मदद की थी। इसलिए स्पेन ने, वर्त्तमान युद्ध के आरम्भ होते ही, अपनी तटस्थता घोषित करदी। परन्तु १६४० के जून में जब इटली युद्ध में कूदा तो स्पेनी फैलेजिस्त (फासिस्त) दल के प्रभाव के समक्ष फ्रांको को झुकना पड़ा और उसने स्पेन को अविग्रही, किन्तु धुरी-राष्ट्र-समर्थक, देश घोषित कर दिया। इस दल का नेता सूनर है, जो फ्रांको-सरकार का प्रभावशाली वैदेशिक मन्त्री और उसका दाहिना हाथ रहा हुआ आदमी है। फैलेजिस्त दल का स्पेन में बहुत ज़ोर है, किन्तु फ्रांको अब तक न तो धुरी-राष्ट्रों में ही शामिल हुआ है और न त्रिगुट में ही।

फ्रान्स—१६४० से पूर्व पश्चिमी-योरप का एक प्रजातन्त्र। क्षेत्रफल २,१२,६०० वर्गमील, जनसख्या ४,२०,००,०००। दो धारा सभाएँ थीं—चेम्बर आफ् डिपुटीज़ और सीनेट। चेम्बर का चुनाव सार्वजनिक, चार वर्षों के लिए, होता था। सीनेट म्युनिसिपल कौंसिलों और विशेष मतदात्री संस्थाओं द्वारा चुनी जाती थी। राष्ट्रपति का चुनाव दोनों के सदस्यों द्वारा होता था। मोशियो ए० लेब्रन अन्तिम राष्ट्रपति था। शासन पार्लमेन्टरी था और सरकारें जल्द-जल्द बदला करती थीं। सन् १८७१ से, जब फ्रान्स में जन-तन्त्र

की स्थापना हुई, १६४० तक, जब फ्रान्स जर्मनी से हारा, इन ७० वर्षों में .फ्रान्स मे १०८ सरकारे बनीं। चेम्बर का अन्तिम चुनाव १६३६ में हुआ था, जिसके ६१८ सदस्य (डिपुटी) थे। इनमें सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, रेडिकल, फासिस्त, दक्षिणपन्थी आदि अनेक दल थे। सीनेट के ३१४ सदस्यों मे १५१ रैडिकल थे, और इस दल मे भी छोटे-छोटे दल थे। लेकिन सीनेट का यह सबसे जबरदस्त दल था।

योरपीय महाद्वीप मे फ्रान्स का अपना स्थान था, और विगत विश्वयुद्ध के बाद तो उसे और भी महत्ता प्राप्त होगई थी। पूर्वीय योरप मे उसका प्रभाव बढ चला था और ब्रिटेन उसकी मित्रता का आश्रित था। जर्मनी मे, हिटलर के प्रादुर्भाव के समय, फ्रान्स अपने आन्तरिक झंझटो के कारण सतर्कतापूर्वक कुछ न कर सका। १६३६ में समाजवादी, साम्यवादी और क्रान्तिवादी सदस्यों ने सार्वजनिक-मोर्चा-सरकार समाजवादी-नेता, मों० लियोन ब्लम, के नेतृत्व में क़ायम की। ब्लम ने अपने प्रधान-मन्त्रि-काल में शस्त्रास्त्र-उद्योग का राष्ट्रीयकरण, ४० घंटे का हफ्ता, आदि कई सुधार किए। किन्तु यह दल अधिक दिन अपनी सरकार क़ायम न रख सका। आर्थिक कठिनाइयाँ, स्पेनी-गृहयुद्ध मे प्रजातन्त्रवादियों को यथेष्ट सहायता का न पहुँचाया जा सकना—कई कारण हुए। ब्लम के बाद दलादिये-सरकार बनी। किन्तु दलादिये दक़ियानूसी रहा। उसने ब्लम द्वारा किये गये सामाजिक सुधारों को रद कर दिया। दलादिये के साथी राजनीतिज्ञ—बोनेत, फ़्लेन्दिन और लावल—नात्सी-फ़ासिस्त झुकाव के निकल गये। दलादिये म्युनिख समझौते मे फ्रान्स की ओर से शामिल हुआ और इस प्रकार उसने फ्रान्स के मित्र-राष्ट्र चैकोस्लोवाकिया के साथ विश्वासघात किया। फ्रान्स की राजनीतिक महत्ता, इसके बाद, योरप में गिरती गई। इटली ने फ्रान्स से कोरसिका, नाइस, सेवोइ, ट्यूनिस और जिबूटी माँगने शुरू किये और नात्सी प्रचारक फ्रान्स को पतित और मृतप्राय राष्ट्र कहने लग गये। प्राकृतिक रूप से भी फ्रान्स का ह्रास होने लगा था। पिछले ४० वर्षों मे फ्रान्स की जन्म-संख्या बहुत गिर चुकी थी।

१६३६ के सितम्बर मे, वर्त्तमान विश्वयुद्ध के आरम्भ होने पर, फ्रान्स ने

बरतानिया के साथ-साथ पोलैण्ड की रक्षा के लिये सेना सजाई, किन्तु देश पूरे मन से नहीं उठा। अधिकांश फ्रान्सीसी अपनी पूर्वीय मेजिनो दुर्ग-पंक्ति पर भरोसा किये बैठे रहे। वह यह भूल गये कि बेलजियम की ओर उनके उत्तरी सीमान्त की क़िलेबन्दी सुदृढ नहीं है। लड़ाई का बहाना लेकर दलादिये ने अपने मन के विशेष क़ानूनों द्वारा शासन चालू रखा। कम्युनिस्ट दल का अत्याचारपूर्वक दमन किया गया। सोवियत-जर्मन-समझौते के कारण कम्युनिस्टों ने लड़ाई का विरोध करना शुरू किया। अख़बारों का गला घोंटा गया, फलतः जनता को समाचार नहीं मिलने लगे। फ्रान्सीसी सत्ताधारियों को अपने ही लोगों पर विश्वास नहीं रहा और वह नात्सियों और फ़ासिस्तों में अपनी रक्षा का आभास देखने लग गये। इन्हीं कारणों से युद्ध-प्रयत्नों को बाधा पहुँची और, मई १९४० में, जब नात्सी सेनाओं ने हालैण्ड और बेलजियम में होकर फ्रान्स पर धावा कर दिया तब पता चला कि फ्रान्सीसी सेना के पास पर्याप्त शस्त्रास्त्र भी नहीं थे। फ्रांसीसियों ने शुरू में जमकर मोर्चा लिया, किन्तु जून '४० में वह शत्रु के सम्मुख टिक न सके। जर्मनी के युद्धायुध उच्च कोटि के थे, किन्तु फ्रान्स के पतन में राजनीतिक और नैतिक कारण भी सहायक हुए।

फ्रान्स पर आक्रमण होने से पूर्व ही, मार्च '४० में, दलादिये-सरकार ख़त्म होगई और रिनो-सरकार आई। आक्रमण के समय, मई में, ८५ वर्ष के बूढ़े मार्शल पेतॉ को मन्त्रिमण्डल में शामिल किया गया। १३ जून को, पेरिस का पतन हो जाने पर, फ्रान्स ने त्वरित सहायता के लिए अमरीका से गुहार की, किन्तु व्यर्थ। अमरीका तत्काल ही कुछ न कर सका। इसी समय रिनो ने अपने मित्र-राष्ट्र बरतानिया से कहना शुरू किया कि फ्रान्स शत्रु से पृथक् सन्धि करेगा। क्योंकि पारस्परिक पूर्व समझौता इसमें बाधक था। बरतानिया ने लड़ाई जारी रखने का प्रस्ताव किया और अपने सहयोग का भरोसा दिलाया। फ्रान्स इस पर राज़ी न हुआ। ब्रिटेन ने कहा कि वह फ्रान्स को अपने [illegible] में शामिल कर देने को तैयार है, किन्तु फ्रान्सीसी जहाज़ी बेड़ा शत्रु के हाथ न पड़ने दिया जाय। इसी बीच [illegible] और बरतानिया-विरोधियों ने रिनो-सरकार को उखाड़ दिया और तब पेतों प्रधान-मन्त्री बना। पेतों की सरकार ने २२ जून को जर्मनी से सन्धि करली और इस सरकार ने

जर्मनी के सामने विला शर्त आत्मसमर्पण कर दिया । फ्रान्स का उत्तरी आधा भाग और स्पेनी सीमान्त तक का समस्त समुद्री तट जर्मन-अधिकार में चला गया । समस्त युद्ध-सामग्री जर्मन-इटालियनो की चौकसी मे रख दीगई और उन्हींके आधिपत्य मे खास-खास बन्दरगाहो के लड़ाकू जहाज़ो को निरस्त्र कर देना तय हुआ । यह भी कि जर्मन-विरोधी शरणार्थियो को जर्मनी के सुपुर्द कर दिया जायगा । बरतानिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिये फ्रासीसी समुद्रीतट और बन्दरगाहों के उपयोग की सहमति जर्मनी को दे दी गई । इटली के साथ भी, जिसने १० जून को फ्रास के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की थी, पृथक् सन्धि कीगई । बरतानिया ने पेतॉ के इस विश्वासघात का प्रतिरोध किया और फ्रासीसी वेडे को शत्रु के हाथ पडने से रोकने की कार्यवाही की । फ्रासीसी वेडे मे ८ लड़ाकू जहाज, २० क्रूजर, ६० विध्वंसक और ७७ डुबकनी कश्तियॉ थी । इनमे से २ लडाकू जहाज बरतानवी बन्दरगाहो पर ले आये गये, २ डुबा दिये गये और २ को बरतानवी नाविक और हवाई हमलों द्वारा बुरी तरह तोड-फोड़ डाला गया, १ को सिकन्दरिया मे निरस्त्र कर दिया गया । केवल एक फ्रास के लिए बचा । दूसरे अनेक फ्रांसीसी लडाकू जहाज़ वेकार कर दिये गये, पकड़ लिये गये या निरस्त्र कर दिये गये । इसके बाद पेतॉ-सरकार ने बरतानिया से सम्बन्ध तोड लिया ।

फ्रास के अनधिकृत दक्षिण-पश्चिमी भाग के विशी नगर मे पेतॉ ने अपना सदर मुकाम बनाया । विशी राजनीतिक अथवा सामाजिक दृष्टि से कोई महत्त्वपूर्ण नगर नही है । उसके पास ही प्राकृतिक खनिज द्रव्ययुक्त जल के कुछ चश्मे हैं, जहॉ रुग्ण मनुष्य जल पीने अथवा चश्मो मे नहाने और स्वास्थ्य-लाभ करने जाया करते हैं । अन्तिम फ्रासीसी पार्लमेंट की अन्तिम बैठक विशी मे हुई और अपनी सम्मति से उसने अपने अस्तित्व की इतिश्री कर दी । ९३२ डिपुटी और सीनेटरो मे से ६४९ उपस्थित थे, जिनमे से ५६९ मतो से प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि पेतॉ की सरकार फ्रास का नया विधान तैयार करे । इस विधान का मूलाधार पिछले प्रजातन्त्र के "स्वाधीनता, समानता और सहचारिता" के स्थान पर "परिश्रम, परिवार और पितृभूमि" माना । । प्रजातन्त्र के राष्ट्रपति ने त्यागपत्र दे दिया और पेतॉ ने "राज्य का

सर्वाधिकारी" पद ग्रहण किया। पेतॉ का सहकारी लावल बना। अन्य प्रभावशालियो मे बौदो, जनरल वेगॉ और बोनेत मुख्य थे। नया शासक-मण्डल फासिस्त निकला और पेतॉ हिटलर के हाथ की कठपुतली बन गया। निर्वाचित पार्लमेण्ट ख़त्म हुई और मनोनीत तथा नियुक्त सस्थाओ ने उसका स्थान लिया। नात्सी-विरोधी देशभक्तो पर मुक़दमे चलाये गये।

लावल, बौदो के बाद वैदेशिक मन्त्री बना था। १६४० के अन्तिम दिनो मे, पता चला कि, वह हिटलर के हाथ मे खेल रहा है और फ्रान्सीसी बेडे को जर्मनो के हाथ सौप देने और फ्रान्स को बरतानिया से लडा देने की कोशिश मे है। पेतॉ ने इसका विरोध किया और ४ दिसम्बर '४० को, मन्त्रि-मण्डल की बैठक के समय, लावल हिरासत मे ले लिया गया और पेतॉ का उत्तराधिकार, नायबी और वैदेशिक-मन्त्रित्व पद लावल से ले लिये गये। चार दिन बाद जर्मन-हस्तक्षेप द्वारा उसकी रिहाई हुई। उसका स्थान पहले फ़्लेन्दिन और बाद को दार्लां को मिला। ६ फरवरी '४१ को नौ-सेनापति दार्लां एक साथ प्रधान मन्त्री, वैदेशिक मन्त्री और स्वराष्ट्रमन्त्री बना। उसने जर्मनी से सम्बन्ध स्थापित करने की नीति ग्रहण की और विशी सरकार का रुख़ बरतानिया के प्रति अधिकाधिक शत्रुतापूर्ण होता गया। जब विशी-सरकार ने जर्मनो को, बरतानिया के निकट-पूर्व के साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिये, सीरिया मे होकर निकल जाने की सहमति दे दी तो बरतानवी और आज़ाद फ्रान्सीसी फौजे ८ जून '४१ को सीरिया मे दाख़िल हो गईं। विशी-फ्रान्सीसी फौजो और उनके पूर्व सहयोगियो मे ख़ूब युद्ध हुआ, अन्त को १२ जुलाई '४१ के दिन विशी-सेना ने आत्म-समर्पण कर दिया। सोवियत रूस पर जर्मन-आक्रमण के बाद, ३० जून '४१ को, विशी-सरकार ने रूस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और जर्मनो के साथ रूसियो से लडने के लिये एक छोटी-सी वालन्टियर सेना खडी की। १६४१ के अन्तिम दिनो मे जर्मनो विशी से और अधिक सहयोग मॉग रहा था।

अधिकृत फ्रान्स मे नात्सी अधिकारियो के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना १६४१ मे और भी प्रबल हो उठी। उनका निर्दयतापूर्वक दमन किया गया और अक्टूबर '४१ मे सैकडो फ्रान्सीसी देशभक्तो को गोली के घाट उतार

दिया गया। संघर्ष अब भी जारी है। फ्रान्स मे और फ्रान्स के बाहर आज़ादी की भावना और उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न निरन्तर होरहा है।

बरतानवी के बाद फ्रांसीसी औपनिवेशिक-साम्राज्य ही संसार मे सबसे बड़ा था। इसका क्षेत्रफल ४६,२०,००० वर्गमील और जन-संख्या साढे छै करोड। फ्रान्सीसी अफ्रीकी उपनिवेश या शासित देश : अल्जीरिया, ट्यूनिस, मरक्को, फ्रान्सीसी शुमालीलैण्ड, जिबूटी (२८ लाख वर्गमील) और मैडागास्कर। एशिया मे हिन्द-चीन (अब जापानी अधिकार मे) और भारत मे पांडिचेरी।

धुरी राष्ट्रो की प्रगति को रोकने के लिए संयुक्तराष्ट्रो ने गत वर्ष सितम्बर मे मैडागास्कर पर सैनिक-अधिकार कर लिया है। राजनीतिक अधिकार विशी-फ्रांस का ही है और उसीका झंडा है। ट्यूनीशिया पर जनरल चार्ल्स द-गौल और उनकी स्वतन्त्र फ्रांसीसी फौजों का अधिकार है। वहाँ इन दिनो धुरी-सेनाओ और मित्रदल मे युद्ध चालू है, मित्र-राष्ट्र जीत रहे हैं। कई अन्य फ्रान्सीसी शासित देश भी जनरल द-गौल के अधिकार मे जा चुके हैं। लडाई के पूर्व संसार मे बहुत अधिक सोना फ्रांस मे था, किन्तु अब सबसे अधिक अमरीका मे है। (विशेष जानकारी के लिये देखिये—चौटम्स, जनरल द-गौल, दलादिये, दार्लां, पेतॉ, रिनौ, लावल, वेगॉ)
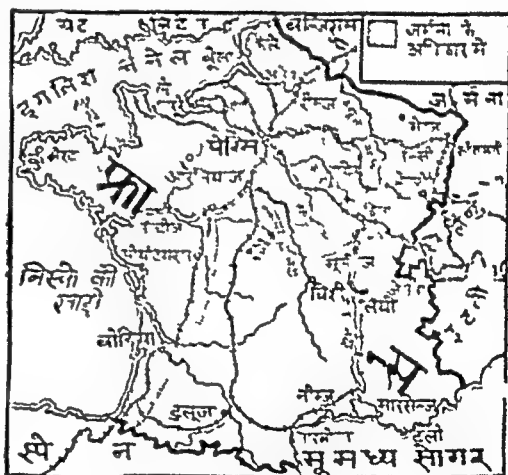
फिनलैण्ड—क्षेत्रफल १,३५,००० वर्गमील, जन-संख्या ३८,००,०००। राजधानी हेलसिंकी। फिनिश और स्वीडिश देश की भाषाएँ हैं। इस देश मे १० फीसदी स्वीडन-वासी भी हैं। सन् ११५४ से १८०६ तक फिनलैण्ड स्वीडन का ही अंग था, इसके बाद वह रूस मे मिला लिया गया। १६१७ ई० की रूसी-क्रांति के बाद फिनलैण्ड ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी, रूसी कम्युनिस्टो ने फिनलैण्ड को पुनः अधिकार मे लेने की कोशिश की,

किन्तु जर्मन सेना की मदद से फिन् जीत गये। फिनलैण्ड सिद्धान्तः साम्य-वाद-विरोधी है, किन्तु यह तटस्थ देश रहा है। इसका शासन प्रजातन्त्रात्मक है। सन् १६३८ के चुनाव मे समाजवादी दल पार्लमेन्ट का सबसे बडा दल था, इसके बाद पुरातनवादी किसान-दल था। वर्तमान सरकार जनवरी १६४१ मे बनी है। राष्ट्रपति मार्शल रेजल है।

अक्टूबर १६३६ मे सोवियत रूस ने फिनलैण्ड से नीचे लिखे मतालिबे किये : फिनलैण्ड के द्वीपो मे, फिनलैण्ड की खाडी मे, रूसी नौ-सेना के अड्डे बनाये जायॅ। फिनलैण्ड प्रदेश के हैगो स्थान पर भी नौ-सेना के अड्डे बनाने का अधिकार दिया जाय। पैटसामो का बन्दरगाह दे दिया जाय। सीमा-सम्बन्धी अन्य कई मॉगे भी थी। जब फिनलैण्ड ने इनमे से कुछ मॉगो को स्वीकार नही किया तो सोवियत रूस की सेना ने, ३० नवम्बर १६३६ को, फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया। ३ मास तक फिनलैण्ड की सेनाएँ मार्शल मैनरहीम के नेतृत्व मे बहादुरी के साथ लडती रही। परन्तु, मार्च १६४० के आरम्भ मे, रूस ने फ़िनलैण्ड की क़िलेबन्दी—मैनरहीम-दुर्ग-पक्ति—पर आक्रमण कर देश मे प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। तब फिनलैण्ड को आत्म-समर्पण करना पडा। यद्यपि फिनलैण्ड की सहायता के लिए राष्ट्रसघ का अधिवेशन आमंत्रित किया गया और उसमे सोवियत रूस को आक्रमक घोषित कर उसके विरुद्ध फिनलैण्ड की मदद के लिये अपील कीगई, तथा ब्रिटेन, फ्रान्स, स्वीडन आदि देशो ने उसकी मदद मे युद्ध-सामग्री भी भेजी, तथापि फिनलैण्ड इस मदद से लाभ न उठा सका। १० मार्च १६४० को ब्रिटेन और फ्रान्स के प्रधान-मत्रियो ने घोषणा की कि यदि फिनिश सरकार मदद के लिये अपील करे तो मित्रराष्ट्रो की एक लाख सेना उसकी सहायता के लिये भेजी जा सकती है। परन्तु स्केन्डीनेविया के देशो ने, जर्मनी के भय से, इस सेना को रास्ता देना मजूर नही किया, इसलिए अपील नही की गई। ११ मार्च १६४० को रूस-फिनलैण्ड मे सधि होगई। इस सधि के अनुसार फिनलैण्ड ने करेलियन थल-डमरू-मध्य का लगभग १००० मील लम्बा प्रदेश, लादोगा झील का पश्चिमी भाग, मैनरहीम की क़िलेबन्दी, विबोर्ग का बन्दरगाह और फिशमैन का प्रायद्वीप रूस को दे दिये तथा हैंगो मे नौ-सेना के अड्डे के लिये पट्टे पर

जमीन दे दी। साथ ही फिनलैण्ड ने रूस के विरुद्ध किसी गुटबन्दी में शामिल न होना स्वीकार किया।

बाद में, उसी साल, जर्मन फौजें फ़िनलैंड में बुला ली गई। बहाना यह किया गया कि जर्मनी अपनी फौजें फिनलैंड में रखना चाहता है। और जब २२ जून १६४१ को नात्सी सेना ने रूस पर धावा बोला तो फिनिश सरकार ने उनको अपने अड्डे इस्तेमाल करने की आज्ञा दे दी और २७ जून को रूस के विरुद्ध, जर्मनी के पक्ष में, फिनलैंड ने युद्ध घोषणा करदी। बरतानिया और अमरीका ने १६४१ के पतझड़ काल में फिनलैंड को, रूस के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने के कारण, चेतावनी दी। किन्तु, तब तक फिनलैंड रूस द्वारा लिये गये अपने भू-भाग को ही वापस नहीं ले चुका था बल्कि रूस की भूमि तक जा पहुँचा था। उसने इस परामर्श को भी नहीं माना कि फिनलैंड अपनी १६३६ वाली सीमाओं पर ही वापस आ जाय। ऐंग्लो-सोवियत सहयोग को दृष्टिगत रखकर ६ दिसम्बर १६४१ को ब्रिटेन ने फिनलैंड के विरुद्ध लड़ाई का ऐलान कर दिया।

फिलस्तीन—क्षेत्रफल १०,४३० वर्गमील, जनसख्या १४,८०,०००। इनमें १०,००,००० अरब तथा ४,८०,००० यहूदी हैं। पहले यह तुर्किस्तान के अधीन प्रदेश था। विगत युद्ध के बाद, सन् १६१८ की सधि में, राष्ट्रसंघ के शासनादेश के अनुकूल, ब्रिटिश सरकार के सरक्षण में, कर दिया गया। सन् १६१७ की बालफोर घोषणा के अनुसार कि "फिलस्तीन में यहूदियों के लिये राष्ट्रीय प्रदेश की स्थापना की जायगी", फिलस्तीन का द्वार प्रवासी यहूदियों के लिये खुल गया। अरबों ने इस नीति का विरोध किया। उन्होंने कहा कि अंगरेजों ने तो १६१५ के मैकमैहन-पत्र-व्यवहार में प्रतिज्ञा की थी कि फिल-

स्तीन को भावी अरब-राज्य मे मिला दिया जायगा । पर यहूदी, एक निश्चित संख्या के अनुसार, प्रतिवर्ष आकर फिलस्तीन मे बसने लगे । सर हरबर्ट (अब लार्ड सेमुअल) नामक यहूदी को फिलस्तीन मे पहला ब्रिटिश हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया । इसके बाद कोई यहूदी इस पद पर नियुक्त नहीं किया गया । ट्रान्सजार्डन-प्रदेश फ़िलस्तीन से पृथक् कर दिया गया और इसे अमीर अब्दुल्ला के अधीन, अँगरेज़ उच्चाधिकारियो की देखरेख मे, अरब राज्य बना दिया गया । इसमे यहूदियो को बसने की मनाई कर दी गई । सन् १९२१ और १९२९ के अरब-विद्रोहों को अँगरेजो ने दबा दिया । पिछले विद्रोह के बाद सन् १९३० मे होप सिम्प्सन तथा पैसफ़ील्ड रिपोर्टों ने यह सिफारश की कि भविष्य मे यहूदियो को इस देश मे प्रवास की आज्ञा न दी जाय, और फिलस्तीन के लिये एक व्यवस्थापिका सभा स्थापित कीजाय, जिसमे स्वतः अरबो का बहुमत हो । यहूदियो ने इसका विरोध किया और योजना स्थगित करदी गई । परन्तु आगामी वर्षो मे जब जर्मनी से यहूदियो को निकाला गया तो पहले से भी अधिक सख्या मे यहूदी फिलस्तीन मे बसने लगे । जहॉ सन् १९२९ मे ५,२४९, सन् १९३१ मे ४,०७५ और सन् १९३३ मे ९,५५३ आये थे, वहॉ सन् १९३४ मे ४२,३५९ और सन् १९३५ मे ६१,८५४ यहूदी आकर एकदम फिलस्तीन मे बस गये । अवैध रूप से जो आ गये थे सो अलग । अरबो मे इससे गहरा आन्दोलन पैदा होगया । जुलाई सन् १९३७ में पील-कमीशन ने, समस्या के निपटारे के लिये, फिलस्तीन के बॅटवारे की सिफ़ारश की । प्रस्ताव किया गया कि समुद्र-तट के उत्तरी ज़िलो मे, जहॉ यहूदियो का आधिक्य है, पूर्ण स्वाधीन यहूदी-राज्य और भीतरी फ़िलस्तीन मे अरबो का स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया जाय । हैफ़ा का बन्दरगाह और यरूशलम ब्रिटिश अधिकार मे रहे और अरबो को समुद्र-तट की जाफ़ा तक एक पट्टी दे दी जाय। यहूदी राज्य मे इस प्रकार बीस लाख यहूदियो की आबादी की सिफ़ारिश की गई । किन्तु इस योजना का यहूदियो तथा अरबो दोनो ने विरोध किया, (यद्यपि कुछ यहूदियो ने इसे पसन्द किया). परन्तु १९३८ मे यह योजना स्थगित करदी गई । फरवरी १९३९ मे लन्दन मे एक फिलस्तीन सम्मेलन आमंत्रित किया गया । परन्तु इस सम्मेलन की सिफ़ारशो को भी दोनो ने अस्वीकार

कर दिया। १७ मई १६३६ को पार्लमेन्ट द्वारा स्वीकृत एक ब्रिटिश श्वेत-पत्र प्रकाशित किया गया कि "ब्रिटिश सरकार यह स्पष्ट रूप मे घोषित करती है कि यह उसकी नीति नही है कि फिलस्तीन एक यहूदी राज्य बन जाय।" मैकमैहन पत्र-व्यवहार के आधार पर अरबो ने दावा किया कि फ़िलस्तीन को अरब-राज्य बना दिया जाय। यह दावा अस्वीकृत हुआ और ब्रिटिश सरकार ने कहा—"फिलस्तीन तो एक ऐसा स्वतत्र राज्य होगा जिसमे यहूदी तथा अरब दोनो ही शामिल होगे और उन्हे शासन-प्रबध मे इस प्रकार भाग लेने का अधिकार होगा जिसमे दोनो के स्वार्थ सुरक्षित रहे।" यह भी कहा गया कि "दस साल के बाद फिलस्तीन को स्वतत्र राज्य बना दिया जायगा और दोनो देशो की व्यापारिक एव सामरिक आवश्यकताओ के अनुकूल ब्रिटेन के साथ उसे सधियाँ करनी होगी। फिलस्तीन मे तिहाई से अधिक यहूदियो को न रहने दिया जायगा। पॉच साल मे ७५,००० यहूदी बाहर भेज दिये जायॅगे।" साथ ही अनेक बन्धन भी प्रस्तावित गये। फरवरी १६४० से फ़िलस्तीन मे यहूदियो को जमीनें बेची जानी बन्द कर दी गई हैं, किन्तु कई हिस्सों मे वह अब भी भूमि खरीद सकते हैं।

राष्ट्रसघ के शासनादेश कमीशन ने ब्रिटिश श्वेत-पत्र को अस्वीकार कर दिया है। साथ ही यहूदियो और अरबो ने भी। पर युद्ध के शुरू होजाने से यह समस्या ज्यो की-त्यों रह गई है। युद्धकाल मे, यहूदी-अरब-सघर्ष शान्त है और दोनो ब्रिटेन की मदद कर रहे हं।

सन् १६१८ मे फिलस्तीन में यहूदियो की सख्या १०,००० थी, अब ४,८०,००० है। देश के उद्योग और कृषि मे यहूदियो की ३ करोड़ पौड की पूॅजी लगी हुई है। उनकी वहॉ २३० कृषिकारो की आबादियॉ हैं। डेढ लाख की आबादी के तल-अबीब शहर को उन्होने बसाया है और अनेक कारखाने खोल दिये हैं। आधुनिक ढग से सुधारी हुई इबरानी भाषा को उन्होने अपना लिया है, पूर्ण शिक्षाक्रम स्थापित कर दिया है, जिसमे एक विश्व-विद्यालय भी है। राजनीतिक रूप से इनमे चार दल हैं।

अरबों मे भी फिलस्तीन-अरब या मुफ़्ती, स्वाधीनता, अरब युवक, नरम दली राष्ट्रीय-रक्षा—चार दल हैं। मुफ़्ती-दल इनमे शक्तिशाली है। अरबोकी

आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति बहुत मद गति से हो रही है।

ब्रिटिश स्वार्थों की रक्षा की दृष्टि से, भूमध्यसागर के समीप होने के कारण, सामरिक दृष्टि-कोण से, इस देश का बडा महत्व है। फिलस्तीन स्वेज़ के पार्श्व मे है। यह साम्राज्य के मार्ग पर नियन्त्रण रखता है, विशेषकर भारत और सुदूरपूर्व के। हैफा बन्दरगाह पर इराक़ी तेल का नल समाप्त होता है। यहाँ ब्रिटिश हवाई सेना और नौ-सेना के अड्डे भी हैं। हज़रत मूसा और हज़रत ईसा फिलस्तीन मे पैदा हुए थे। इसलाम की भी विकास-भूमि वह रहा है, इसलिए अरब, मुसलमान, यहूदी और ईसाई सभीका इससे अपनपा है।

फिलीपाइन्स द्वीप-समूह—मलय के द्वीपपुज मे १००० से अधिक छोटे-बडे द्वीपो का यह समूह स्थित है। इनका क्षेत्रफल १,१४,००० वर्गमील और आबादी लगभग १,४०,००,००० है। इसमे अधिकाश मलय चीनी रक्त के हैं। इस सख्या मे ७५,००० शुद्ध चीनी और २०,००० जापानी हैं। मनीला इसकी राजधानी है। इनमे ६१७ द्वीप तो इतने छोटे है जिनका क्षेत्रफल एक वर्गमील से भी कम है। इनमे ११ महत्वपूर्ण टापू है। लुजोन और मिन्डनाओ ख़ास टापू है। लुजोन का क्षेत्रफल ४०,८१४ वर्गमील और मिन्डनाओ का ३६,९०६ वर्गमील है। इस द्वीपसमूह को १८९८ ई० मे सयुक्त राष्ट्र अमरीका ने स्पेन से जीता। यह वन्यप्रदेश है, जो अपनी सुन्दर छटा के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पटसन, रुई, लकडी, रबर, चावल, नारियल, ताड तथा गन्ना खास पैदावारे है। फिलिपनो लोग स्वाधीनता के लिये बराबर लडते आ रहे हैं। १८९४-९७ मे स्पेन के ख़िलाफ और १८९९-१९०१ मे अमरीका के ख़िलाफ विद्रोह कर चुके हैं। १९१६ और १९३५ मे अमरीका द्वारा इनको कुछ शासन-सुधार मिल भी चुके हैं। और अब कई वर्ष पूर्व अमरीका ने इस देश को ४ जुलाई १९४६ मे पूर्ण स्वाधीनता देने की घोषणा कर दी थी। लेकिन भावी विधान मे फिलीपाइन्स को आगामी १५ वर्षों तक अमरीका से पारस्परिक लाभकारी व्यापारिक सम्बन्ध रखने की भी बात थी।

७ दिसम्बर १९४१ को जापान ने इस द्वीप-पुज पर आक्रमण कर अपना अधिकार कर लिया और अब फिलिपनो सेनासहित मित्रराष्ट्रो की सेनाएँ इन द्वीपो को वापस लेने के लिये जापान से घनघोर युद्ध कर रही हैं, और वह

गोना, पापुआ आदि कई द्वीप-समूह को वापस ले चुकी हैं। सुदूर-पूर्व में इस द्वीप-पुंज का सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। यहाँ के क़बीले अलग-अलग भाषायें बोलते हैं। किन्तु अंगरेजी सरकारी भाषा और स्पेनी सबसे अधिक बोली-लिखी जानेवाली भाषा है। अधिवासी प्रायः रोमन कैथ-लिक ईसाई हैं। मुसलमान क़बीले भी हैं, जो शासन-नीति से असन्तुष्ट हैं और जिनकी संख्या ४ लाख है। ३० फीसदी जनता शिक्षित है। रुई, कपड़ा, पटसन और इमारती लकड़ी का व्यापार पहले से जापानी-व्यापारियों के हाथ में था।

फैडरल यूनियन—यह विश्व-संघ स्थापित करने का एक प्रस्ताव है, जिसकी चर्चा स्ट्रैट नामक एक लेखक ने की है। इसके अनुसार पहले बरतानिया, अमरीका, फ्रान्स, बेलजियम, नीदरलैन्ड्स, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, फिनलैंड, स्विट्ज़रलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफरीका, न्यूज़ीलैण्ड और आयर-लैंड संसार के इन १५ प्रजातंत्र राष्ट्रों का एक संघ बनाया जायगा और अन्त में संसार के सब राष्ट्र उसमें शामिल किये जायेंगे। लन्दन में १९३९ के मध्य में एक संस्था इस उद्देश को लेकर स्थापित हुई थी। बाद में करी नामक लेखक ने यह भी लिखा कि लड़ाई के बाद, जर्मनी में प्रजातंत्र की पुनर्स्थापना होने पर, उसे भी संघ में शामिल कर लिया जाय। इन पन्द्रह देशों की भौगोलिक स्थिति और स्वार्थों में बहुत साम्य है। यह भी तजवीज है कि संघ का विधान संयुक्त-राज्य अमरीका के संघ-विधान के आधार पर हो।

फेबियन सोसाइटी—ब्रिटिश 'समाजवादी' विचारकों की संस्था। सन् १८८३ में स्थापना हुई। इसके प्रमुख प्रारम्भिक नेता सिडनी वैब और जार्ज

बरनार्ड शॉ हैं। बीट्रिस पाटर और श्रीमती वब बाद में आये। इन विचारकों ने गैर-मार्क्सवादी विकासवादी जनसत्तात्मक समाजवाद को प्रगति दी। इन्होंने आदर्शवाद को अधिक महत्व दिया। भौतिकवाद पर ज़ोर नहीं दिया, जैसा कि मार्क्सवाद मे दिया गया है। पूँजीवाद के यह विरोधी हैं, परन्तु वर्ग-संघर्ष मे इनका विश्वास नहीं है। आर्थिक-क्षेत्र मे वे मार्क्स के बजाय रिकार्डो और बेन्थम नरम अर्थवादियों के अनुयायी हैं। फेबियन अन्वेषण विभाग द्वारा समाजवाद पर काफ़ी साहित्य प्रकाशित हुआ है। सन् १९१८ मे इस विभाग का नाम "मज़दूर अन्वेषण विभाग" रख दिया गया और इसका फेबियनों से कोई संबंध न रहा। यह विभाग साम्यवादी प्रभाव मे है। सन् १९३१ मे नवीन फेबियन अन्षेषण ब्यूरो खोला गया। सन् १९३१ मे इसका फेबियन सोसायटी से संबंध स्थापित होगया। ब्रिटेन के राजनीतिक इतिहास मे फेबियन सोसाइटी का महत्वपूर्ण स्थान है: आज़ाद मज़दूर दल, मज़दूर दल तथा अन्य राजनीतिक संस्थाएँ इसीके द्वारा वहाँ बनीं।

व

वङ्ग-भङ्ग—जुलाई १९०५ में भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने ब्रिटिश सरकार की ओर से यह घोषणा की कि बंगाल प्रांत पश्चिमी बंगाल और पूर्वी बंगाल तथा आसाम दो प्रांतों मे विभाजित किया जायगा। बंगाल की समस्त जनता और लोक-नेता इस विभाजन के विरुद्ध थे। सरकार का यह पक्ष था कि शासन-सुविधाओं के विचार से ही दो प्रांतो का निर्माण किया जा रहा है। परन्तु, वास्तव मे, बंगाल मे बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का ह्रास करने के लिये बंगाल को दो प्रान्तों मे विभक्त किया जा रहा था जिससे हिंदू-मुस्लिम प्रांत बन जायँ और साम्प्रदायिक समस्या गम्भीर हो जाय। इसी वर्ष मुसलमानों का (मुस्लिम लीग का) एक प्रतिनिधि-मण्डल, आगाख़ाँ के

नेतृत्व मे, शिमला मे वायसराय से मिला और उसने मुसलमानों के लिये विशेष अधिकारो की मॉग पेश की।

बगाल मे जनता ने सगठित रूप से इस योजना के विरुद्ध घोर आदोलन किया : विशाल सार्वजनिक सभाओं, प्रदर्शनों, जुलूसों तथा हड़तालों का आयोजन किया गया। विद्यार्थियो ने स्कूलो तथा कालेजो का त्याग कर आदोलन मे भाग लिया। यह आदोलन बगाल तक ही सीमित न रहकर देश के अन्य भागो मे भी फैला। इस आदोलन तथा विरोध के बावजूद अक्टूबर १६०५ मे यह योजना कार्यान्वित कर दी गई। सरकार ने राष्ट्रीय आदोलन का जितना ही अधिक दमन किया, उतना ही वह अधिक शक्तिशाली होता गया। स्वदेशी और बहिष्कार भावना का जन्म भी इसी समय हुआ। राष्ट्रीय विद्यालयो की बगाल मे स्थापना की गई और स्वदेशी वस्तुओ के प्रचार और विदेशी के बायकाट के लिये प्रयत्न किया गया। ७ अगस्त १६०५ को भारत मे सबसे प्रथम विदेशी वस्तु बहिष्कार का सगठन किया गया और बहिष्कार दिवस मनाया गया।

१२ दिसम्बर १६११ को देहली मे दरबार हुआ। इसमे बादशाह पचम जार्ज ने घोषणा करके भारत की राजधानी कलकत्ता से देहली बना दी। साथ ही बगाल को एक प्रेसीडेसी बना दिया गया। बिहार, छोटा-नागपुर और उडीसा को एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन कर दिया गया तथा आसाम को चीफ कमिश्नर का प्रात बना दिया गया। इस प्रकार बग-भग रद कर दिया गया और भारतीय राष्ट्रीय-जागरण का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

बलकान राष्ट्र-समूह—बलकान राष्ट्र-समूह मे यूगोस्लाविया, रूमानिया, बलग़ारिया, यूनान, अलबानिया तथा योरपीय-तुर्की शामिल हैं। बलकान राष्ट्रो का योरप की राजनीति मे विशेष स्थान रहा है, और यह विगत विश्व-युद्ध के पूर्व 'योरप मे मुर्ग़ो के लडने का अखाड़ा' तथा 'योरप का तूफानी कहलाता रहा है। सन् १६१२-१३ के प्रथम और द्वितीय बलकान-

युद्ध और, अन्ततोगत्वा, पिछले महायुद्ध के कारण भी इनको विशेषता प्राप्त है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे बलकान-राष्ट्र-समूह बराबर एक ख़तरे का स्थान रहा है। बलकान राज्यो और पूर्वकालीन रूसी तथा जर्मन-आस्ट्रियन-साम्राज्यो मे काफी संघर्ष रहा है। उत्तर मे आस्ट्रिया-हंगेरी-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होजाने से उनकी महत्ता बढ़ गई, परन्तु जबसे आस्ट्रिया तथा चैकोस्लोवाकिया का हिटलर ने अपहरण किया, तब से इनके लिये ख़तरा पैदा होगया। बलकान राज्यो का महत्त्व उनकी कृषि, खनिज-उद्योगो तथा युद्धोपयोगी मोर्चे की विशेषता के कारण है। वे एशिया के स्थल-मार्ग पर स्थित हैं और उनमे होकर पूर्वीय भूमध्य-सागर पर आधिपत्य रखा जा सकता है। जर्मनी इन राज्यो पर—पहले अपने मित्र आस्ट्रिया द्वारा और अब स्वय—नियत्रण करने के लिये सदैव लालायित रहा है। वह अपनी महत्त्वाकांक्षापूर्ण बर्लिन-बग़दाद-लाइन की योजना द्वारा मोसल के तेल के कुओ तक और आगे भारत तक जाने के सुखस्वप्न देख चुका है। सन् १९१४ तक रूस जर्मनी की इस आकांक्षा-पूर्ति मे बाधक रहा। सन् १९१८ से '३९ तक बलकान राज्यो मे रूस का कोई प्रभाव नही रहा। परन्तु १९३९-४० मे, पश्चिम की ओर बढने से, रूस का फिर बलकान मे प्रभाव बढने लगा है। वर्त्तमान विश्वयुद्ध के प्रारम्भिक काल मे जर्मन, अतालवी, रूसी और बरतानवी प्रभाव बलकान-राष्ट्रो मे आपस मे टकराते रहे। बलकान के आधे वैदेशिक व्यापार पर जर्मनी ने, इस युद्ध से पूर्व ही, नियत्रण प्राप्त कर लिया था और राजनीतिक प्रभाव भी। रूसी प्रभाव का आधार था बलग़ारिया और यूगोस्लाविया मे 'पानस्लाववाद' की पुनरावृत्ति। किन्तु जर्मनी ने अक्टूबर '४० मे रूमानिया और '४१ मे बलगारिया पर, बिना किसी विरोध के, क़ब्ज़ा कर लिया। इटली ने अक्टूबर '४० मे यूनान पर हमला कर दिया। अप्रैल '४१ मे जर्मनी ने यूगोस्लाविया और यूनान दोनों पर हमला करके, कुछ दिनो के युद्ध के बाद, उन पर क़ब्ज़ा कर लिया। रूस-जर्मन-संबंध, इस कारण, पहली बार बिगडे और अन्त मे जून '४१ मे रूस पर जर्मनी ने हमला ही कर दिया। पिछले बीस सालों मे इन राष्ट्रों का उद्योगीकरण हुआ है, फिर भी ८० फ़ीसदी जनता खेती और पशुपालन पर आश्रित है। जनता

ग़रीब, पिछड़ी हुई और प्रायः अपढ है। किसान क़र्ज़ से लदे हुए हैं। किसान-जनता के जाग्रत होने ही से इन देशो का उद्धार किसी दिन भले हो। ऐसी ही कठिनाइयो के कारण बलकानी देशो मे शाही या सैनिक अधिनायकवाद तो, लडाई से बहुत पहले ही, क़ायम हो चुका है।

बलकान-समझौता—६ फर्वरी १६३४ को यूनान, तुर्किस्तान, यूगोस्लाविया और रूमानिया मे यह समझौता हुआ कि वे सब मिलकर, बलकानी सीमाओ की रक्षा के लिये, पारस्परिक निश्चित आश्वासन देते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि हस्ताक्षर न करनेवाले अन्य बलकानी राज्य के साथ स्वतंत्र रीति से कोई कार्यवाही न करेगे। (बलग़ारिया तथा अलबानिया ने इस समझौते पर हस्ताक्षर नही किये। अलबानिया तब स्वतन्त्र था।) एक गुप्त सन्धि भी हुई, जिसके अनुसार निश्चय किया गया कि यदि किसी ग़ैर-बलकानी राष्ट्र ने उपर्युक्त चार मे से किसी राज्य पर भी आक्रमण किया, और, यदि किसी बलकानी राज्य ने उसमे सहयोग दिया, तो, चारो बलकानी राज्य मिलकर उसका मुकाबला करेगे। एक और गुप्त सधि द्वारा यह भी निश्चय हुआ कि यदि बलग़ारिया ने बलकानी राज्यो पर आक्रमण करने मे किसी बाहरी राष्ट्र को मदद दी तो उसके विरुद्ध क्या-क्या काररवाइयाँ कीजायँगी। बलकानी राज्यो की एक स्थायी कोंसिल, एक आर्थिक-परिषद् और एक सैक्रेटरियट है। फरवरी १६४० मे बेलग्रेड के एक सम्मेलन में बलकानी-समझौते की अवधि सात साल के लिये और बढाई गई, और इस बात पर जोर दिया गया कि वर्त्तमान योरपीय युद्ध मे चारो राज्य तटस्थ रहे।

जुलाई १६४० मे रूमानिया ने बलकान-समझौते को ठुकराकर जर्मनी के गुट मे शामिल होने का निश्चय किया। मार्च १६४१ में यूगोस्लाविया ने भी त्रिराष्ट्र-सधि-पत्र (जर्मनी-इटली-जापान) पर हस्ताक्षर कर दिये और इसी वर्ष, जर्मनी द्वारा अधिकृत होजाने से, बलकानी-राष्ट्रो का यह समझौता व्यर्थ होगया।

बलगारिया—बलकानी राष्ट्रों मे से एक, क्षेत्रफल ४,००,००० वर्गमील, आबादी ६३,००,०००, राजधानी सूफिया, शासक राजा बोरिस तृतीय। १६१२ के तुर्की के विरुद्ध लडे गये प्रथम बलकान-युद्ध मे सफल होने के बाद, १६१३

के दूसरे बलकान-युद्ध में, बलग़ारिया को पराजित देशों की लूट मे से कुछ भी न मिला। उसके पहले साथी देश सर्बिया, यूनान और रूमानिया उसके विरुद्ध होगये। विगत विश्व-युद्ध में बलग़ारिया ने, १६१५ में, जर्मनी का पक्ष लिया। १६१८ में, कुछ सफलता के बाद, उसका पराभव होगया। १६१६ की न्यूएली की सधि में उसे मक़दूनिया प्रदेश का कुछ भाग यूनान और यूगोस्लाविया को दे देना पड़ा, क्षतिपूर्ति भी करनी पडी और निरस्त्र होना पडा। राजा फर्डिनेन्ड प्रथम, अपने पुत्र बोरिस के हक़ मे गद्दी छोडकर, जर्मनी जाकर रहने लगा। स्तम्बुलिस्की के नेतृत्व में क्रान्तिकारी किसान-दल ने सगठन कर सत्ता अपने हाथ मे ले ली। चार अन्य दलो सहित, ६ जून १६२३ को, सेना ने विद्रोह कर उसका वध कर डाला। इसके बाद बलग़ारिया मे घोर अशान्ति रही : मार-काट, हत्या, दङ्गा, बमबाज़ी। सन् १६२५ का सूफ़िया के गिरजे का मशहूर बम-काण्ड इन्ही दिनो हुआ। सन् १६२६ मे प्रजा-सत्तावादी-दल के शासन-काल मे देश मे कुछ शान्ति होगई। परन्तु १६३१ मे अशान्ति फिर फूट निकली। १६३३ मे दक्षिण-पन्थी सरकार बनी। अन्त मे, १६३५ मे, राजा बोरिस ख़ुद अधिनायक बन गया। अन्य बलकान-राष्ट्र—रूमानिया, यूगोस्लाविया, तुर्किस्तान तथा यूनान—मित्रतापूर्वक रहते हैं। बलग़ारिया को इन सबके विरुद्ध शिकायतें हैं। वह यूनान तथा यूगोस्लाविया से मक़दूनिया को वापस लेना चाहता है।

३१ अगस्त १६४० को दक्षिण दब्रूजा-प्रदेश बलग़ारिया को वापस मिल गया। प्रारम्भ मे सोवियत रूस के हस्तक्षेप तथा प्रभाव के कारण बलगारिया तटस्थ रहा। इटली-यूनान युद्ध मे मुसोलिनी के गौरव का जो विनाश हुआ, उसकी पुनर्स्थापना के लिये हिटलर ने कहा कि जर्मनी यूनान पर हमला करेगा। जर्मनी बलग़ारिया पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता था, परन्तु रूस बाधा डालता रहा। सन् १६४१ में बलग़ारिया जर्मनी के प्रभाव मे आगया, वह त्रिदल-सन्धि मे शामिल होगया। उसने नात्सी सेना को देश मे घुस आने दिया। यही से जर्मनो ने यूगोस्लाविया और यूनान पर हमला कर दिया। बदले मे उसको इन दोनो देशो के वह भूभाग मिल गये, जिनके लिये यह दावा कर रहा था। ५ मार्च १६४१ को बरतानिया ने बलग़ारिया

से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। बलगारिया की जनता रूस से सहानुभूति रखती है, किन्तु वहाँ की सरकार जर्मनी के साथ है।

बर्लिन-बग़दाद-राज्यरेखा—पिछली लडाई के पूर्व से ही जर्मनी बलकान-राष्ट्र-समूह और तुर्की मे होकर बग़दादस्थित मोसल के तेल के कुओ तक अपना साम्राज्य स्थापित कर देने के सुख-स्वप्न देख रहा है। वर्तमान युद्ध मे भी वह इस काल्पनिक राज्यरेखा को नहीं भूला है। यह मनोरेखा एक रेलवे लाइन का रूप धारण करनेवाली थी। तुर्की और बग़दाद के बीच, इस लाइन का अन्तिम भाग, जुलाई '४० मे, बनकर चुका है।

ब्रह्मा (बर्मा)—अप्रैल १९४२ मे जापान द्वारा अपहरित होने से पूर्व ब्रह्मा ब्रिटिश राष्ट्र-समूह का एक अंग था और सन् १९३५ से पूर्व भारत का एक प्रान्त। सन् १९३५ के नवीन बर्मा शासन-विधान द्वारा उसे भारत से पृथक् कर दिया गया। भारत मे इस पृथक्करण का, राजनीतिक और आर्थिक आधार पर, विरोध किया गया। ब्रह्मा का क्षेत्रफल २,६२,००० वर्गमील और जन-संख्या १,५०,००,००० है : इनमे नब्बे लाख ठेठ बर्मी; चौदह लाख कारेन और दस-दस लाख शान तथा भारतीय, आदि हैं। ब्रह्मी पूर्ण सभ्य हिन्द-मंगोली जाति के हैं और उनकी भाषा चीन-तिब्बती समूह की है। बर्मा दो भागो मे विभाजित है : मुख्य बर्मा और शान-रियासतें। ब्रिटिश गवर्नर जडकाले मे रंगून मे और गर्मियो मे मेमियो मे रहा करता था।

भारत से पृथक् करते समय ब्रिटिश सरकार ने, १९३५ के भारत-सरकार क़ानून के आधार पर, बर्मा मे क्रमिक राजनीतिक विकास और उसे स्वशासन

के योग्य बनाने की घोषणा की थी। तात्कालिक बर्मा-सरकार-क़ानून १९३५ के अनुसार ब्रह्मा में व्यवस्थापक-मण्डल बना दिया गया था, जिसकी सीनेट के ३६ सदस्यों में से आधों को ब्रिटिश गवर्नर नियुक्त करता था तथा शेष प्रतिनिधि-सभा द्वारा चुने जाते थे। प्रतिनिधि-सभा में १३२ सदस्य थे, जिनका चुनाव होता था। शासन-प्रणाली भारतीय प्रान्तों के अनुकूल थी। ब्रह्मा का राष्ट्रीय नेता डा० बा मौ वहाँ का सर्वप्रथम प्रधान मन्त्री बना। ब्रह्मा-चीन-पथ बनाये जाने के संबंध में मतभेद होजाने के कारण डा० मौ ने त्याग-पत्र दे दिया। वह कदाचित् जापानी प्रभाव में था और नहीं चाहता था कि यह सड़क बने। उसका कहना था कि इस सड़क के ज़रिये ब्रह्मा में चीनियों के प्रवास का मार्ग खुल जायगा। १९४० में उसे, बर्मा-रक्षा-क़ानून के अनुसार, एक साल क़ैद की सजा दी गई। बर्मा के गवर्नर ने घोषित किया कि बर्मा को स्वराज्य देने के विषय पर लड़ाई के बाद बातचीत कीजायगी। ऊ सा बर्मा का प्रधान मन्त्री बना। अक्टूबर '४१ में वह, लड़ाई के उपरान्त ब्रह्मा को तत्काल औपनिवेशिक पद दिये जाने का, वचन प्राप्त करने के लिये लन्दन गया, किन्तु चर्चिल की सरकार ने उसकी एक न सुनी। लन्दन से लौटते समय ऊ सा को बीच में ही पकड़कर क़ैद कर लिया गया।

शान रियासतें ३४ हैं। इनके राजा, ब्रिटिश अफ़सरों की सलाह से, अपना शासन चलाते थे। जापानी आक्रमण के समय कुछ बर्मी फ़ौज शत्रु से मिल गई। बर्मा के पतन के बाद बर्मा-सरकार भारत आगई और शिमला में उसके दफ़्तर क़ायम हैं। सम्मिलित राष्ट्रों (अमरीका, ब्रिटेन और चीन) ने पिछले अगस्त '४२ से ब्रह्मा को वापस
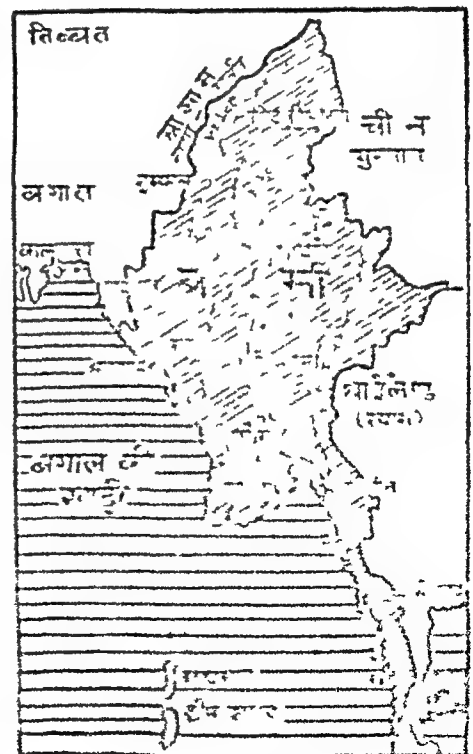
लेने के लिए हमले शुरू कर दिये हैं और वह सफलता प्राप्त कर रहे हैं। जापानी साम्राज्यवाद ने, शायद उसके जवाब मे, भारत पर हमले करने आरम्भ कर दिये हैं।

ब्रह्मा बड़ा सम्पन्न देश है। इस देश मे लकडी के बड़े जंगल हैं। तेल, टीन, कच्चा लोहा तथा जवाहरात भी निकलते हैं।

ब्रह्मा-चीन-मार्ग—सन् १६३६-३८ में यह सड़क बनकर तैयार हुई। ब्रह्मा मे उत्तर रेलवे लाइन लाशियो मे समाप्त होजाती है। यहाँ से चीन की वर्त्तमान राजधानी, चुगकिंग्, तक १४०० मील लम्बी, यह सड़क जापानियो द्वारा, चीन को युद्ध-सामग्री और रसद भेजने-भिजाने के समुद्री मार्ग बन्द कर देने पर, बनाई गई थी। हज़ारो चीनी कुलियों ने, अपने जीवन तक का बलिदान देकर, इसे पूरा किया था। ७०० मील तक यह सडक पर्वत-मालाओ मे होकर जाती है, जिनमे सबसे ऊँचा पहाड़ ८,५०० फीट ऊँचा है। जुलाई '४० मे बरतानवी सरकार ने जापान के मतालबे और आस्ट्रेलियन सरकार की प्रार्थना पर, तीन महीनो के लिये, इस सडक को बन्द कर दिया था। आस्ट्रेलियन सरकार जापानी धमकियो से भयभीत होउठी थी। इसलिये ब्रिटिश सरकार ने इस समझौते पर, कि इन तीन मास में जापान चीन से समझौता करले, सड़क द्वारा चीन को सामान जाना रोक दिया। किन्तु जापान ने अपने ब्रिटिश-विरोधी रवैये को नहीं बदला, अतः तीन महीने बाद, १८ अक्टूबर '४० को, सडक फिर खोल दीगई। सडक के जापान के हाथ मे चले जाने से चीन की कठिनाइयाँ बढ गई है, किन्तु सयुक्त राष्ट्र हवाई रास्ते से चीन को बराबर लडाई का सब सामान भेज रहे हैं, और, आशा है, बर्मा के साथ ही यह सड़क फिर शीघ्र ही अपने हाथ मे आजायगी। २० मील प्रति घण्टे से अधिक तेज कोई मोटर इस सडक पर नही जा सकती। बस तथा लारी एक सप्ताह का समय ले लेती हैं। इस सड़क पर प्रतिदिन १०० से अधिक लारियाँ तथा २०० टन युद्ध-सामग्री ब्रह्मा से चीन को जाती थी। चीन से यह लारियाँ कच्चा रेशम, टीन आदि लाती थीं। मई से अक्टूबर तक, वर्षा ऋतु मे, पहाडो के गिर जाने से मार्ग ख़राब होजाता था, इसलिये सिर्फ आठ-दस लारियाँ प्रतिदिन जाती थो। इसके बनाने मे

पूरे तीन साल लगे। २०० इंजीनियर तथा १,६०,००० मज़दूरों ने काम किया। इसके बनाने मे १ करोड ६० लाख डालर व्यय हुए।

चीनी सरकार को सयुक्त-राष्ट्र अमरीका, भारत, ब्रह्मा तथा ब्रिटेन से मदद न मिले—इस विचार से जापान ने, फ्रान्स के पतन के बाद, हिन्द-चीन की सरकार से हेपहांग्-हैनोई-कुमनिंग्-रेलवे मार्ग को बन्द करने के लिये आग्रह किया और विशी-सरकार ने, २० जून १६४० को, उसे बंद कर दिया। चीन के समुद्र-तट पर जापान का अधिकार होगया था। यह मार्ग फ्रान्स ने बन्द करा दिया। तब चीन के लिये ब्रह्मा-चीन-मार्ग ही रह गया था।

बार्डिया—लीबिया (अफ्रीका) मे, जो इटली के अधीन था, एक बन्दरगाह। इसकी क़िलेबन्दी को अँगरेज़ो ने तोड दिया और ७ जनवरी १६४१ को इस पर अपना अधिकार जमा लिया।

वालफोर घोषणा—२ नवम्बर १६१७ को ब्रिटेन के तात्कालिक वैदेशिक मंत्री मि० जे० ए० वालफोर द्वारा, ब्रिटिश यहूदी संघ के अध्यक्ष, लार्ड राथ्सचाइल्ड, को लिखा गया पत्र, जिसमे मि० वालफोर ने लिखा—"ब्रिटिश सरकार यह चाहती है कि फिलस्तीन मे यहूदी जनता के लिये एक राष्ट्रीय उपनिवेश स्थापित किया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह भरसक प्रयत्न करेगी। यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि कोई ऐसा कार्य नही किया जायगा जिससे फिलस्तीन-अधिवासी दूसरी जनता के नागरिक तथा धार्मिक अधिकारो मे हस्तक्षेप हो अथवा दूसरे देशो मे यहूदियो की जो स्थिति है, उस पर कोई असर पडे।" इसी पत्र के आधार पर यहूदी अपना आन्दोलन फिलस्तीन मे कर रहे हैं।

बाल्टिक राष्ट्र-समूह—लिथुआनिया, लैटविया एस्टोनिया और फिनलैण्ड बाल्टिक राष्ट्र कहलाते हैं। सन् १६१८ से पूर्व यह रूस के प्रान्त थे। तब से यह राज्य सोवियत रूस और पश्चिमी योरप के बीच स्वतन्त्र राष्ट्र बने रहे। स्वभावतः ही रूस इन देशों पर अपना पुनराधिकार प्राप्त करके बाल्टिक सागर पर अपना प्रभुत्व चाहता था। अक्टूबर १६३६ मे रूस ने, इस युद्ध मे, अवसर से लाभ उठा लिया। दिसम्बर १६३६ में फिनलैंड पर उसने आक्रमण किया और मार्च १६४० में उसने बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर

लिया। १९४० के जून-जुलाई मे लिथुआनिया, एस्टोनिया और लैटविया में रूस ने पूर्ण आधिपत्य करके अपनी नौ-सेना के अड्डे बना लिये तथा क़िलेबन्दी क़ायम करदी। तीनों देशो मे सोवियत (जनता की पचायती)-शासन-प्रणाली क़ायम करके रूसी पचायती राज मे इनको मिला लिया। बाल्टिक राष्ट्रो मे रूस का प्रभुत्व है। जर्मन प्रभाव को रूस ने यहाँ से उखाड फेंका, साथ ही यहाँ बसी हुई अल्पसंख्यक जर्मन जाति को जर्मनी भेज दिया।

ब्राज़ील—(ब्राजील का) सयुक्त राज्य। दक्षिण अमरीका का सबसे बडा प्रजातंत्र। क्षेत्रफल ३२,८५,००० वर्गमील, जनसख्या ४,५०,००,०००; राजधानी रियो द-जनीरो, राष्ट्रभाषा पुर्तगाली। सन् १८८९ से इस देश का विधान संयुक्त-राज्य अमरीका जैसा रहा, किन्तु १९३० मे राष्ट्रपति वरगस ने सत्ता अपने हाथ मे लेली और एक क़ानून बनाकर दो धारासभाएँ स्थापित करदी। १९३७ मे सैनिक-विद्रोह के बल पर वरगस यहाँ का अधि-नायक बन गया। वह जर्मनी और इटली का मित्र था, किन्तु १९३८ में नात्सीवाद तथा फासिज्म के विरुद्ध होगया और देश के फासिस्त दल का दमन किया। अब ब्राजील सयुक्त-राज्य अमरीका का मित्र देश है।

ब्राजील देश की गणना ससार के सबसे बडे धनी देशो मे है। किन्तु अपेक्षाकृत वह अविकसित है। वहाँ कहवा (काफी) सबसे अधिक मात्रा मे पैदा होता है। इसकी अधिक पैदावार तथा सस्ते मूल्य के कारण कई बार यहाँ उथल-पुथल होचुकी है। क़हवा यहाँ की राजनीतिक समस्या बना हुआ है। साथ ही ब्राजीली सयुक्त-राज्य के अन्तर्गत बीस राज्यो की भी समस्या है। यह रियासते, केन्द्रीय सरकार के अधीन न रहकर, स्था-निक स्वायत्त के लिए, सदैव आ-न्दोलन करती रहती हैं। लाखो टन क़हवा प्रतिवर्ष इसलिए समुद्र मे बहाकर नष्ट कर दिया जाता है कि उसका मूल्य महँगा होजाय।

सबसे अधिक क़हवा यहाँ से संयुक्त-राज्य अमरीका (लगभग ५० प्रतिशत), ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी को भेजा जाता रहा है।

बिड़ला, सेठ घनश्यामदास—भारत के सुप्रसिद्ध व्यापारी। जन्म सन् १८६१। बिड़ला ब्रदर्स, लि०, के मैनेजिंग् डायरेक्टर, सन् १६३० मे केन्द्रिय असेम्बली के सदस्य। इम्पीरियल प्रिफरेन्स के विरोध मे सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया। सन् १६३५ मे इडियन चेम्बर आफ् कामर्स, कलकत्ता, के सभापति। सन् १६२६ मे फेडरेशन आफ् इडियन चेम्बर्स आफ कामर्स के सभापति। इडियन फिस्कल कमीशन के सदस्य। सन् १६२७ में अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर सम्मेलन, जिनेवा, मे भारतीय प्रतिनिधि। सन् १६३० मे द्वितीय गोलमेज परिषद् के सदस्य। सन् १६३२-३८ मे अखिल-भारतवर्षीय हरिजनसेवक सघ के प्रधान। आपने सार्वजनिक हितो के कार्यो के लिए अनेक सस्थाओ को लाखो का दान दिया है।
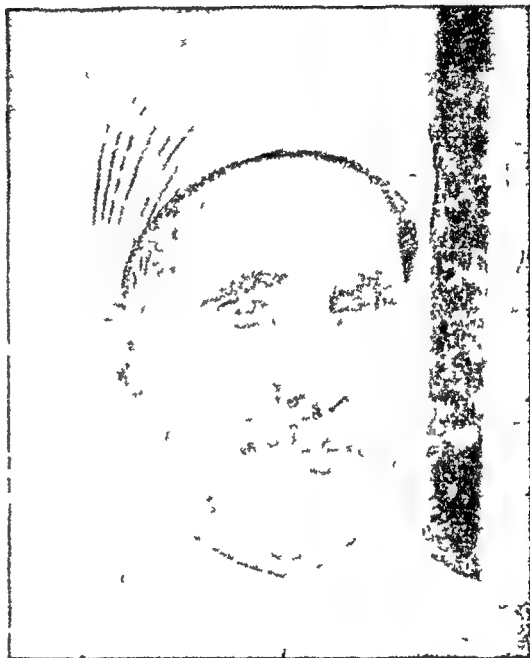
ब्रिटिश नौ-सेना—सन् १६३६ के मध्य मे ब्रिटिश नाविक-सेना की शक्ति इस प्रकार थी—१५ युद्ध-पोत, ६२ क्रूज़र, ७ हवाई जहाज़ ले जानेवाले जहाज़, १६८ विध्वन्सक, ५४ पनडुब्बियाँ।

६ युद्ध-पोत, २२ क्रूज़र, ६ हवाई जहाज़ ढोनेवाले जहाज़, ४० विध्वन्सक, १८ पनडुब्बियाँ बन रही थी।

युद्ध के पहले ६ महीनो मे १ युद्धपोत, १ हवाई जहाज़ ले जानेवाला जलयान, ६ विध्वन्सक, ४ पनडुब्बियाँ नष्ट हुईं तथा २ युद्धपोत और १ क्रूजर टूट-फूट गये। किन्तु उसके बाद यह सब अधिक संख्या मे तेज़ी से बन रहे

हैं, और अब इनकी सख्या, युद्ध की पूर्वकालीन सख्या से, बहुत अधिक है। १९४० के पतझड मे सयुक्त-राष्ट्र अमरीका से ५० विध्वन्सक ब्रिटिश जल-सेना को मिले।

युद्ध से पूर्व नौ-सेना मे १,३३,००० सैनिक थे। इनके अतिरिक्त ७०,००० सुरक्षित नौ-सैनिक थे। उपर्युक्त अकों मे आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड और कनाडा की युद्ध-पूर्व संख्या भी शामिल हैं।

ब्रिटिश नौ-सेना ससार में सबमे शक्तिशाली थी। सयुक्त-राष्ट्र अमरीका का नम्बर प्रथम मान लिया गया है, किन्तु, वास्तव मे, लडाई से पूर्व, वजन मे अमरीकी नौ-सेना के युद्ध-पोत आदि कुछ कम थे। अब तो अमरीका मित्र राष्ट्रो के लिये बहुत बडी मात्रा मे युद्ध-सामग्री तेजी से बना रहा है, जिनमे नौ सेना की सामग्री भी है। ब्रिटेन लन्दन नौ-सेना-सन्धि का एक सदस्य है।

ब्रिटिश यूनियन—सर ओसवाल्ड मोसले का फासिस्त आन्दोलन।

ब्रिटिश साम्राज्य—(ब्रिटिश ऐम्पायर, किन्तु 'ब्रिटिश कामनवैल्थ' जिसे अब अधिकतर कहा जाता है) क्षेत्रफल १,३२,९०,००० वर्गमील अथवा समस्त भूमण्डल का पॉचवॉ भाग। जन-सख्या ४८,७०,००,००० अर्थात् मानव-जाति का पचमाश। ब्रिटिश-साम्राज्य अथवा ब्रिटिश राष्ट्र-समूह (कामन-वैल्थ) मे, भूमण्डल के विभिन्न भूभागो मे, निम्नलिखित देश हैं.—

योरप—ग्रेटब्रिटेन और उत्तरी आयर्लैण्ड, आयर, जिब्राल्टर, माल्टा।

एशिया—अदन, पैरिम और बन्दरगाह, बाहरीन द्वीप-समूह, बोर्नियो (जापान द्वारा, अप्रैल '४२ मे विजित), ब्रूनी और सारावाक, ब्रह्मा (अप्रैल '४२ मे जापान द्वारा विजित, किन्तु जिसे वापस लेने के लिये, अगस्त '४२ से सयुक्त-राष्ट्र प्राणपन से चेष्टा कर रहे है), लङ्का, साइप्रस, हाग्कांग् (जापान द्वारा विजित), भारत, स्ट्रेट्स सेट्लमेण्ट (जापान के विश्वास-घात का शिकार), मलय स्टेट्स (सघशासित और असघ-शासित दोनो, सुदूरपूर्व के युद्ध मे जापानी-साम्राज्य-लिप्सा के शिकार), *फिलस्तीन।

अफ्रीका—केन्या उपनिवेश और बन्दरगाह, यूगाण्डा, जॅजीबार (पैम्बा के भाग सहित); मारीशस, न्यासालैण्ड, सेन्ट हैलीना और असेन्शन; सेच-, शुमालीलैण्ड; बसूतोलैण्ड, बेचुआनालैण्ड; दक्षिण रोडेशिया, उत्तरी

रोडेशिया, स्वाज़ीलैण्ड; दक्षिण अफ्रीकी यूनियन; नाइजीरिया, गैम्बिया; गोल्ड-कोस्ट, सीरालयोन; सूदान, *टंगान्यिका, *दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका, *कैमरून, *टोगोलैण्ड।

अमरीका—बरमूडास, कनाडा की डोमिनियन, फाकलैण्ड द्वीपसमूह, दक्षिण जार्जिया, बरतानवी गायना, बरतानवी होन्डूरास; न्यूफाउण्डलैण्ड; लेब्राडर; बहामस ; बारबाडस, जमैका; लीवार्ड द्वीपसमूह, ट्रिनीडाड, टुबागो, विण्डवार्ड द्वीपसमूह।

महासागरीय—आस्ट्रेलिया की कामनवैल्थ, पापुआ (जिसे जनवरी १६४३ मे जापान से वापस जीता जा चुका है), न्यूजीलैण्ड, फीजी, प्रशान्त महासागर के द्वीपसमूह, *न्यूगिनी, *पश्चिमी समोआ, *नौरू। इनमे

(१) स्वाधीन उपनिवेश—कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिण अफरीका, आयर (आयरिश स्वतंत्र राज्य), न्यूफाउन्डलैण्ड जिसका औपनिवेशिक पद १६३३ से स्थगित कर दिया गया है।

(२) उपनिवेश अथवा अधीन साम्राज्य, जिसमे शाही नौ-आबादियाँ (उपनिवेश), संरक्षित राज्य तथा * चिन्हाङ्कित विगत विश्वयुद्ध के बाद, वार्सेई की सन्धि के अनुसार, शासनादेश द्वारा शासित देश (Mandated Territories) शामिल हैं।

ब्रिटिश राष्ट्र-समूह एक विचित्र राजनीतिक रचना है। राजनीतिक अर्थ मे न वह राष्ट्र है और न सघ ही। उसका न कोई लिखित शासन-विधान है, न उसकी कोई पार्लमेन्ट है और न अपनी सरकार ही। न उसकी रक्षा करने-वाली केन्द्रिय सेना और न प्रबन्धक-शक्ति ही। वास्तव मे यह इतिहास और विकास की रचना है जो अपने आप बढी, योजना बनाकर उसका निर्माण नही किया गया, और जिसके सदस्यो के पारस्परिक सम्बन्ध अभी विकास की अवस्था मे हैं। स्वाधीन उपनिवेशो का विधान बरतानवी सरकार के द्वारा बना, लेकिन वास्तव मे कालक्रम द्वारा वह स्वाधीन बन गये। १६२६ तक वैस्टमिस्टर पार्लमेंट समस्त साम्राज्य की सर्वोच्च धारासभा मानी जाती रही; वही अधिकार दे सकती और उन्हे वापस ले सकती थी। पिछले महायुद्ध मे उपनिवेशो ने साम्राज्य को पूरी मदद दी और उपनिवेशो ने साम्राज्यान्तर्गत

समानता-स्वाधीनता की मॉग पेश की। सन् १९२६ मे साम्राज्य-परिषद् मे उपनिवेशो की व्याख्या निम्न प्रकार स्वीकार कीगई:—

"उपनिवेश ब्रिटिश-साम्राज्य मे स्वाधीन राज्य हैं, जो पद में समान हैं और किसी प्रकार भी किसीके अधीन नही हैं; वे अपने बाह्य तथा आन्तरिक शासन-प्रबध मे स्वतत्र हैं तथा ब्रिटिश राजसत्ता के प्रति भक्ति के एक साधारण बन्धन मे बँधे हुए हैं।" उपनिवेश ब्रिटिश पार्लमेन्ट की सर्वोपरि महत्ता को खत्म करने की मॉग करते रहे। फलतः वैस्टमिन्स्टर विधान बना। सन् १९३१ की साम्राज्य-परिषद् ने इस विधान को बनाया, जिसके अनुसार उपनिवेशो की पार्लमेन्टो को यह अधिकार मिल गया कि उन पर लागू होनेवाले ब्रिटिश पार्लमेन्ट के किसी भी क़ानून को वे रद या उसमे संशोधन कर सकती हैं। साथ ही बिना उपनिवेश की सहमति के वैस्टमिन्स्टर-पार्लमेन्ट द्वारा स्वीकृत किया गया कोई कानून उस पर लागू न होगा। उपनिवेशों पर लागू हो सकने की सम्भावना को दूर करने के लिये एतत्सम्बन्धी एक पुराना क़ानून भी हटा लिया गया। इस समय राजनीतिक दृष्टि से उपनिवेश स्वाधीन तथा प्रभु राज्य हैं। उनकी अपनी पार्लमेन्ट तथा सरकारे हैं। अलबत्ता ब्रिटेन का राजा, उपनिवेश के सम्बन्ध मे, उसके मन्त्री की सलाह से काम करता है और उपनिवेश का भी राजा कहलाता है। प्रत्येक उपनिवेशको शान्ति तथा युद्ध के सम्बन्ध मे निर्णय करने का अधिकार है। इस समय समस्त उपनिवेशो ने ब्रिटेन के साथ जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी है, केवल आयर तटस्थ है। प्रत्येक उपनिवेश मे, आयर को छोड़कर, राजा का एक प्रतिनिधि रहता है, जो गवर्नर-जनरल कहलाता है। उसके सुपुर्द कुछ शाही काम रहता है। प्रत्येक उपनिवेश की ओर से लन्दन मे एक हाई कमिश्नर रहता है और ब्रिटिश सरकार भी प्रत्येक उपनिवेश मे एक हाई कमिश्नर रखती है।

ब्रिटिश मत्रि-मण्डल का एक सदस्य उपनिवेशो का मत्री भी होता है। समस्त साम्राज्य के प्रश्नो पर विचार करने के लिए एक साम्राज्य-परिषद् भी है, जिसकी बैठक कभी-कभी होती है। सन् १९०७ से इसमे भारत के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं, यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे महान् देश—उसके मुकुटमणि—भारत का, साम्राज्यान्तर्गत अभी अपना कोई पद नही है।

कनाडा
न्युफाउन्ड लैण्ड
ब्रिटिश द्वीस.
जिब्राल्टर
साइप्रस
माल्टा
पैलेस्टाइन
ट्रा. जोर्डन
बारमूडा
बहामा द्वीस
जमैका
पश्चिमी द्वीप-स.
ब्रिटिश हान्डुराज
ट्रीनी डाड
बि. गाइना
गैम्बिया
गोल्ड कोस्ट
नाइजेरिया
सुडान
अदन
से.लियों
असेन्सन
से.हेलेन
बि. सोमाली लैण्ड
कैन्या
टंगानीका
निआसालैण्ड
रोडेशिया
मारीशस
दक्षिणी अफ्रीका यूनियन
हिन्दुस्तान
बर्मा
हांग कांग
लंका
मलाया
बोर्नियो
युगिनी
सालोमन द्वी.स.
टोंगा
फिजी द्वीप
आस्ट्रेलिया
न्युजीलैण्ड
टैज्मानिया
पिटक्रेयर्न द्वी.स.
फाकलैण्ड द्वी.स.
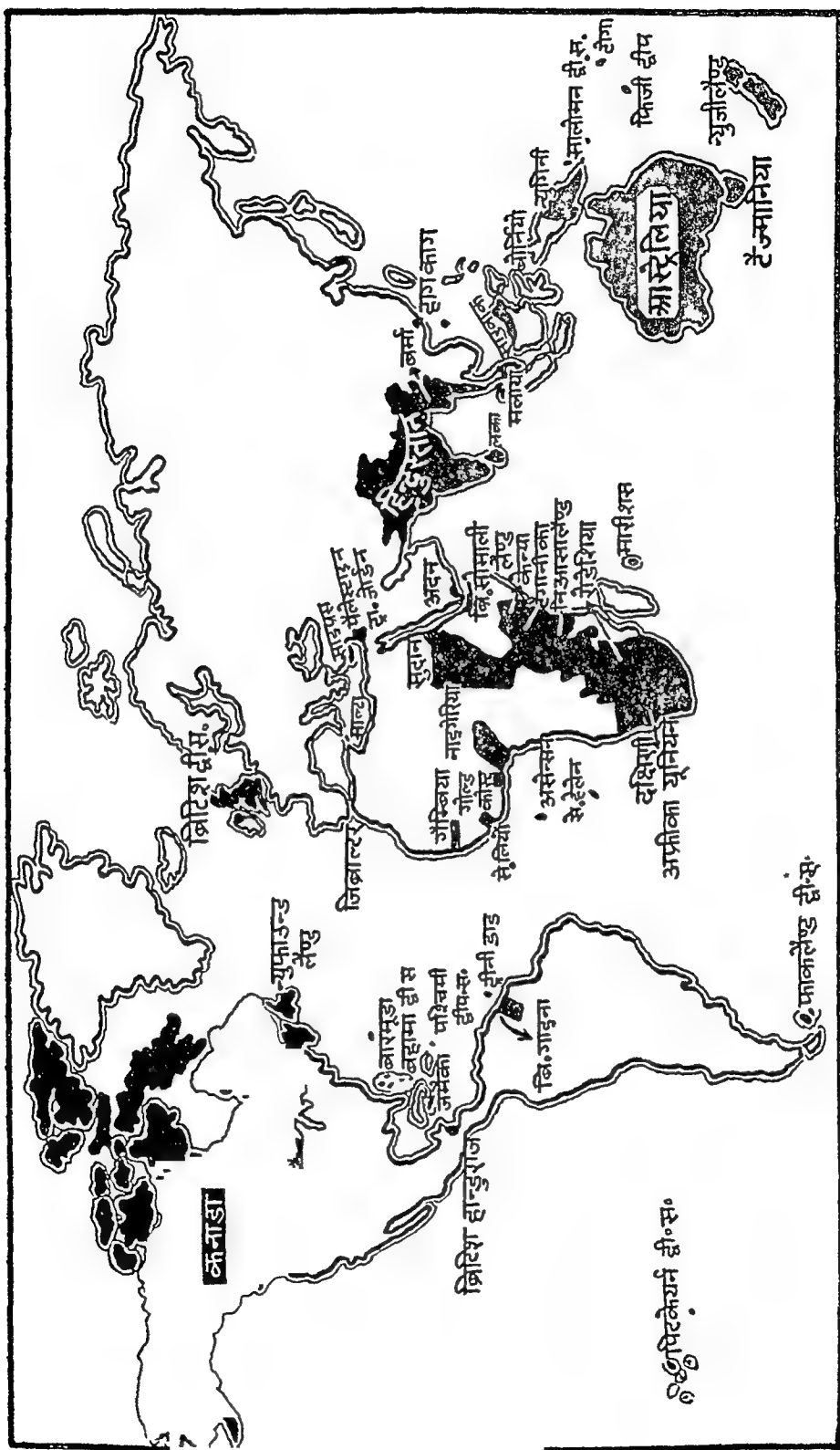
ब्रिटिश-सेना—वर्त्तमान महायुद्ध आरम्भ होने से पूर्व ब्रिटिश-सेना के तीन अग थे:—

(१) स्थायी सेना—इसमे सैनिक सात वर्ष के लिये भर्ती किये जाते हैं, किन्तु आगामी ५ वर्ष तक, रक्षित सैन्य की भाँति, आवश्यकता पडने पर, इसके सैनिकों को बुलाया जा सकता है। इसमें १,६४,००० सैनिक रहते थे। जिनमे ५७,००० सैनिक भारत मे थे और उनका व्यय भारत-सरकार को देना पडता था।

(२) देश-रक्षिणी सेना—यह नागरिको की सेना है। इसमें चार वर्षों तक शिक्षण की व्यवस्था है। इस सेना के सैनिकों के व्यावसायिक अथवा नागरिक धन्धो मे कोई बाधा नही पडती थी, सायकाल की क़वायद मे केवल सप्ताह मे एक बार अथवा सालाना शिविर मे शामिल होना पडता था। अप्रैल १९३९ मे यह सेना दूनी कर दी गई और उसकी सख्या ४,४०,००० होगई। इस सेना मे एक स्त्री-सेना की शाखा भी है, जो असैनिक सहायक कार्य करती है।

(३) अनिवार्य नागरिक सेना। २६ मई १९३९ के मिलिटरी ट्रेनिग् ऐक्ट (सैनिक-शिक्षण कानून) के अनुसार प्रत्येक २० वर्ष के या इससे अधिक आयु के स्वस्थ पुरुष को इसमे ६ महीने के लिये भरती होना अनिवार्य है।

युद्ध आरम्भ होजाने पर यह समस्त सेनाएँ मिलाकर एक कर दी गई। १८ से ४१ वर्ष के लोगों को सेना मे भरती होना अनिवार्य कर दिया गया। १९४१ के पतझड तक २० और ३६ वर्ष के बीच की आयु वाले लगभग ६० लाख आदमी इसमे भरती हुए और २० लाख सशस्त्र सैनिक तैयार होगये। १९४१ के दिसम्बर मे अनिवार्य भरती की उम्र पुरुषो के लिये ५० और स्त्रियो के लिये ३० वर्ष कर दीगई। जून १९४० मे नागरिक स्वयसेवको का मुल्की गारद जर्मन छतरी-सैनिको से लडने के लिये बना। इसके सदस्य अपना कारबार करते हुए फालतू समय मे सैनिक कार्य करते हैं। आवश्यकता के अवसर पर पूरे समय के लिये बुला लिये जाते हैं। इनकी सेवाओं को अनिवार्य भी बनाया जा सकता है। इन सेनाओ के अतिरिक्त समुद्र पार की भारतीय तथा अनेक उपनिवेशो की सेनाएँ अलग हैं।

ब्लम,लियोन—फ्रान्सीसी समाजवादी नेता। सम्पन्न परिवार मे,१८७२ मे जन्म। दर्शन तथा कानून में उपाधियाँ प्राप्त की। वकील बन गये; समालोचना और पुस्तक-लेखन द्वारा साहित्य-सेवा भी की। सन् १६३६ तक वह इस बात के विरुद्ध रहे कि समाजवादी-दल फ्रांस के राज-शासन मे पद-ग्रहण करे। वह सयुक्त-मोर्चा स्थापित करना चाहते थे। ४ जून १६३६ को वह फ्रान्स के पहले समाजवादी प्रधान-मत्री नियुक्त किये गये। २० जून १६३७ को उन्होने पद त्याग दिया। चौटेम्स की सरकार मे वह उप-प्रधान-मंत्री बनाये गये। १३ मार्च १६३८ को वह फिर प्रधान-मत्री नियुक्त किये गये। इसी मास में जर्मनी ने आस्ट्रिया को अपने राज्य मे मिलाया। इनकी सरकार कमज़ोर थी इसलिये, २६ दिन बाद, त्याग-पत्र देदिया। इनके बाद दलादिये प्रधान-मंत्री बनाया गया। आजकल ब्लम विशी सरकार के राजबन्दी हैं।
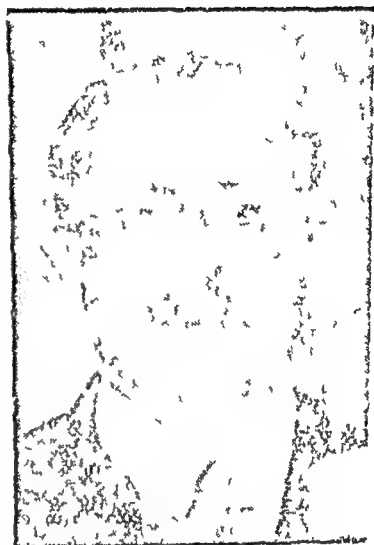
ब्लिज़्क्रीग्—जर्मन-शब्द, भावार्थ विद्युत्-वेग से विरोधी को आक्रमण द्वारा नष्ट कर देना। हिटलरी जर्मनी मे यह भावना बहुत प्रबल हुई। आर्थिक दुर्बलता के कारण, अधिक दिन तक युद्ध न चला सकने की, आक्रान्त राष्ट्र की असमर्थता से लाभ उठाना। १६३६ से १६४१ तक योरपीय रणक्षेत्रों पर जर्मनो ने इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया। किन्तु १६४० के पतझड-काल मे ब्रिटेन पर शुरू हुए हवाई हमलो और रूसी रणक्षेत्र के आक्रमणो मे जर्मनो का यह प्रयोग सर्वथा असफल रहा है।

बुखारेस्त की संधि—७ मई १६१८ को यह संधि जर्मनी, आस्ट्रिया,तुर्की, बलगारिया तथा दूसरी ओर रूमानिया मे हुई। इस सन्धि मे केन्द्रीय राष्ट्रों, जर्मनी आदि, ने रूमानिया से बहुत कडी शर्तें लिखा ली।। जब जर्मनी वारसेई-सन्धि की सख्ती की शिकायत करता था, उस समय उसे इस सन्धि की सख्ती का स्मरण कराया जाता था। सन् १६१८ मे पश्चिमी राष्ट्रों, ब्रिटेन, फ्रान्स आदिके मतालबे पर, वारसेई की संधि के समय, यह संधि रद कर दीगई।

बुर्जुआ—फरान्सीसी भाषा का शब्द, अर्थ नागरिक समुदाय। मार्क्सवादी सोशलिस्ट, खेतिहर समुदाय को छोड़कर, अन्य समुदायों के लिये, इस शब्द का प्रयोग करते हैं। अन्य समुदायों में पूँजीपति, सूदख़ोर, कारख़ानेदार, सौदागर, ज़मीदार और इन्हीं के समान मोटी आमदनी, शिक्षा, सामाजिक स्थिति आदि रखनेवाले पेशेवर—वकील, डाक्टर, प्रोफ़ेसर, तिजारत-पेशा लोग—अर्थात् जो लोक-संग्रह अथवा सामाजिक-विकास के लिये स्वयं श्रम नहीं करते और मजदूरों और साधनहीन श्रमजीवी समुदाय की कमाई पर पलते-पनपते हैं। बुर्जुआ के विपरीत सर्वहारा हैं जिसके पास कोई ज़मीन-जायदाद, रुपया-पैसा नहीं है, और जो अपने गाढ़े पसीने की कमाई से अपना और अपने आश्रितों का पेट भरता है।

बुर्जुआ समुदाय के भी दो अंग हैं : अधिक सम्पन्न, जिनमें कारख़ानेदार और धनिक लोग हैं, दूसरे छुटभय्ये, जिनमें कारीगर और दूकानदार आदि हैं, जिनका जीवन-माप एक मजदूर से अच्छा नहीं होता। मशीनों और कारखानों की बढ़ोतरी के साथ, तमाम उद्योगवादी देशों में, बुर्ज़ुआ समुदाय की बन आई और वह पुरातन शासक सामन्तशाही और उसकी लुप्तप्राय आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर सर्वेसर्वा बन बैठा। बुर्जुआई के विकास के साथ समाज में, आवश्यक रूप से, सामन्तशाही-दासता के विरुद्ध उदार विचारों का प्रसार हुआ। मार्क्सवाद के अनुसार इस बुर्जुआ सम्प्रदाय का भी समाज से लोप होगा और उसका स्थान समाजवादी मज़दूर वर्ग को मिलेगा। किन्तु बुर्ज़ुआ सम्प्रदाय, अपने इस सम्भवनीय उत्तराधिकारी से कशमकश करते हुए, अपनी तथाकथित उदार विचारधारा को छोड़ बैठता और अपने अधिकार को अक्षुण्ण रखने के लिये अधिनायक-प्रणाली का पोषक बन बैठता है। ऐसी परिस्थिति में छोटे बुर्जुआ समुदाय के विचार बदलने लगते हैं और वह मज़दूर सम्प्रदाय का हामी होजाता है, बड़े बुर्ज़ुआ, एक मुट्ठी भर सशक्त पूँजीवादी की शकल में, रह जाते हैं और वह राष्ट्र के साधनों का नियन्त्रण करने लगते हैं।

बुदेनी, मार्शल—आप सोवियत रूस के राष्ट्र रक्षा-विभाग के सहकारी अधिकारी (Deputy People's Commissar for Defence)

हैं। इस उच्च पद पर रहकर आप देश-रक्षा के लिये किस अनथक यत्न, बुद्धिमत्ता और साहस से साथ नात्सी सेनाओं का मुकाबला कर रहे हैं, इसका प्रमाण पिछले चार महीनों से नात्सी-सेनाओं की रूस मे बराबर होने वाली हार है। मार्शल तिमोशेंको के आप सहयोगी हैं। तिमोशेंको रक्षा-विभाग के मत्री (Commissar) हैं।

ब्रूनिग्, डा० हीनरिच—जर्मन प्रजातंत्र का पूर्व चान्सलर। सन् १९३१ मे जब राइख़ताग के चुनावों मे नात्सीदल की विजय होगई तब ब्रूनिंग् ने अधिनायक-तंत्र की स्थापना की। उसने नात्सियों को अपनाने का प्रयास किया, किन्तु वह विफल रहा। सन् १९३२ मे राष्ट्रपति हिंडनबर्ग ने उसे निकाल दिया। नात्सी-विरोधी होते हुए भी, कहा जाता है कि, ब्रूनिंग् ने प्रजासत्ता को दबाकर नात्सीवाद के लिये मार्ग प्रशस्त किया। हिटलर के एक वर्ष के शासन के बाद वह अमरीका चला गया और वहाँ हरवर्ड विश्वविद्यालय मे व्याख्यान दिये।

वेनेश, ऐडवर्ड—पीएच० डी०। चैकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति थे। जन्म २५ मई १८८४। पैरिस मे शिक्षा पाई। सन् १९०९ मे प्रेग के एक व्यापारिक कालिज में अध्यापक हुए। सन् १९१४ मे युद्ध छिड़ने के बाद के गुप्त आस्ट्रिया-विरोधी आन्दोलन मे शामिल होगये। सन् १९१५ मे गुप्त रूप से स्विट्ज़रलैंड गये। मसारिक के दाहिने हाथ बन गये। चैकोस्लोवाक राष्ट्रीय परिषद् के प्रधान-मंत्री बने। बाद मे जब यह परिषद्, चैकोस्लोवाकिया की सरकार की भाँति, स्वीकार करली गई, तब वेनेश १९१८ में वैदेशिक-मंत्री बने और सन् १९३५ तक, सभी सरकारों के अधीन, इसी पद पर रहे। मसारिक की मृत्यु के बाद, १८ दिसम्बर सन् '३५ को, वह राष्ट्रपति चुने गये। वह सदैव प्रजातंत्र के समर्थक रहे। २२ अक्टूबर १९३८ को वह चैकोस्लोवाकिया त्याग कर अमरीका गये और शिकागो विश्वविद्यालय में व्याख्यान दिये। जुलाई

१६३६ से वह ब्रिटेन मे चैक-स्वातन्त्र्य-समिति के प्रधान हैं।

वेलजियम—क्षेत्रफल ११,७७५ वर्गमील; जनसंख्या ८३,००,०००। योरप का सबसे घना बसा हुआ देश। पिछले विश्वयुद्ध से १६३६ तक वेलजियम ने फ्रान्स के साथ सहयोग रखा, किन्तु बाद मे, वर्त्तमान महायुद्ध के आरम्भ तक, वह तटस्थ देश बनकर रहा। पर, .फ्रान्स के किनारे पर स्थित होने के कारण, सन् १६१४ के बाद, १० मई १६४० को जर्मनी ने उस पर हमला कर दिया। तत्कालीन मित्रराष्ट्र (ब्रिटेन और फ्रान्स) ने तत्काल मदद भेजी, किन्तु जर्मन फौजे सीदन के नज़दीक से घुस पड़ी और वेलजियन तथा मित्र-सेनाओं को फ्लैन्डर्स को हट जाना पड़ा। जर्मन सेनाएँ आगे बढ़कर अर्रास से चैनल तक फैल गईं और पूर्वोक्त दोनों सेनाएँ, इस प्रकार, एक ओर को कट गईं। और जबकि मित्र तथा वेलजियन सेनाएँ एक नया मोर्चा कायम करने की तजवीज मे थीं कि वेलजियम के राजा, तृतीय लियोपोल्ड, ने जर्मनो के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया : ४ लाख वेलजियन फौज ने हथियार डाल दिये, और मित्र-सेनाएँ जल्दी से शेष देश को छोड़कर चली आईं। कैथलिक-लिबरल-सोशलिस्ट गंगा-जमुनी दल की वेलजियन-सरकार ने राजा के आत्मसमर्पण से असहमति प्रकट की। सरकार फ्रान्स को चली गई और मित्र-राष्ट्रों के पक्ष मे लड़ाई जारी रखना तय किया। जब .फ्रान्स का भी पतन होगया, तब भी वेलजियम ने सिद्धान्ततः जर्मनी से लड़ाई जारी रखी। बहुत से वेलजियन सिपाही ब्रिटेन में लड़ाई को जारी रखे हुए हैं और वेलजियम का अफरीकी उपनिवेश, कांगो, अब भी युद्धरत है। प्रधान-मन्त्री मोशिये पीयरलोत लन्दन से इस युद्ध को चला रहे हैं। राजा से बरतानिया-प्रवासी वेलजियन-सरकार के सम्बन्ध अच्छे होचले हैं।

देश मे दो भाषाएँ प्रचलित हैं—फ्लेमिश तथा फ्रान्सीसी। अफरीकी कांगो का क्षेत्रफल ६,२७,००० वर्गमील तथा जनसंख्या १,००,००,००० है। कांगो
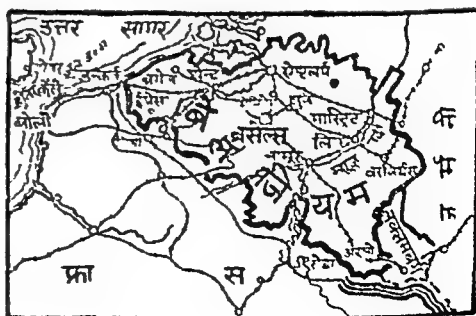
अत्यन्त समृद्धिशाली देश है। तॉबा, सोना, हीरा और रेडियम यहॉ की मुख्य उपज है। राष्ट्र-संघ के शासनादेश के अधीन बेलजियम, पिछले जर्मन-पूर्वीय-अफ्रीका के एक भाग, रुआन्दा उरन्दी, पर भी शासन करता है।

बैसरेबिया—काला सागर क्षेत्र मे एक प्रान्त ; क्षेत्रफल १७,१५० वर्ग-मील ; जनसंख्या २८,६७,००० , जिसमे ३,१५,००० यूक्रेनी; १६,०६,००० रूमानी, ३,५३,००० रूसी और शेष मे यहूदी, जर्मन, बलग़ारी, तातार आदि अल्पसख्यक जातियॉ हैं। १३६७ ई० से १८१२ तक बैसरेबिया मोल्दाविया का एक भाग रहा, जिस पर तुर्की का आधिपत्य था । १८१२ के रूस-तुर्की-युद्ध मे रूस के हाथ आगया । १८५६ मे मोल्दाविया को दे दिया गया। १६१७ की रूसी क्रान्ति के बाद मोल्दाविया मे प्रजातंत्र क़ायम होगया। बीच के काल मे यहॉ राजनीतिक उथल-पुथल रही और वर्तमान विश्वयुद्ध से लाभ उठाकर, जुलाई १६४० मे, सोवियत रूस ने इसके समीप के क्षेत्र को रूमानिया से लेकर, मोल्दावी सोवियत मे मिला दिया। जब जर्मनी और रूमा-निया ने रूस से युद्ध छेडा तब, जुलाई १६४१ मे, रूमानियनो ने बैसरेबिया और उसके साथ सोवियत मोल्दावी इलाक़े पर भी क़ब्ज़ा कर लिया।

ब्रैस्तलितास्क की सन्धि—३ मार्च १६१८ को एक ओर जर्मनी, आस्ट्रिया, बलग़ारिया और तुर्की, दूसरी ओर रूस के बीच हुई संधि। रूस मे तब कम्युनिस्ट क्रान्ति का झमेला था, इसलिये वह किसीभी प्रकार शान्ति चाहताथा। जर्मनी ने इस स्थिति से मनमाना लाभ उठाया। रूस को रूसी-पोलैण्ड, लिथुआनिया, लैटविया, एस्टोनिया और बाल्टिक सागर के अन्य द्वीपो पर से अपना प्रभुत्व त्यागकर जर्मनी तथा आस्ट्रिया का इन देशो पर प्रभुत्व स्वीकार करना पडा। साथ ही उसे फिनलैण्ड, जार्जिया तथा यूक्रेन की (जहॉ जर्मनी ने कठपुतली सरकार बना रखी थी) स्वाधीनता भी स्वीकार करनी पड़ी। रूस ने ६ अरब मार्क्स का सोना भी क्षतिपूर्ति मे देना स्वीकार किया। इस प्रकार उसे ३४ प्रतिशत जनसख्या, ५४ प्रतिशत उद्योगधन्धो और ६० प्रतिशत अपनी कोयले की खदानों से हाथ धोना पडा। कालासागर और ख़ासकर बाल्टिक सागर से उसका सम्बन्ध टूट गया।

जर्मनी को वरसाई की सन्धि से शिकायत है, किन्तु इस सन्धि की शर्तों

की क्रूरता ने उसका मुँह बन्द कर दिया था। पिछले युद्ध के बाद, ११ नवम्बर १६१८ की, अस्थायी सन्धि मे यह सन्धि भी दुहराई गई और वरसाई की सन्धि मे पश्चिमी राष्ट्रो ने इस सन्धि का अन्त ही कर दिया।

बोरबन— फ्रास का पूर्व राज-परिवार या वश। १८७१ मे, जब फ्रास मे प्रजातत्र की स्थापना हुई तब, इस वश का निष्कासन कर दिया गया। इस वश के लोगो को, प्रजातन्त्र-विधान के अनुसार, १८८६ से, फ्रास में आने की आज्ञा नहीं है। किन्तु पेतॉ की विशी-सरकार ने, १६४१ मे, इस बन्दिश को उठा लिया है। उन्नीसवीं शताब्दि मे शुद्ध बोरबन वश का नाश होगया, तब बोरबन-ओरलियन्स शाखा को फ्रास के राजसत्तावादी अपनाने लगे।

बोल्शेविज्म—कम्युनिज्म का पर्यायवाची शब्द। १६०३ मे जब रूसी समाजवादी प्रजातत्र-दल (सोशल-डिमोक्रेटिक पार्टी) मे क्रान्ति अथवा सुधारवाद की नीति के प्रश्न पर मतभेद हुआ तब, दल की काग्रेस मे, लेनिन के नेतृत्व मे, क्रान्तिवादियो की विजय हुई। 'बहुमत' शब्द को रूसी भाषा में 'बोल्शिन्स्तवो' कहा जाता है। अतः क्रान्तिवादियो (रेडिकल्स) को 'बोल्शेविकी' अर्थात् बहुमत के सदस्य कहा जाने लगा। नरमदली सुधारवादी सोशलिस्ट 'मैन्शेविकी' कहलाये। रूसी भाषा मे "मैन्शिन्स्तवो" अल्पमत के अर्थ मे आता है। पाश्चात्य देशो मे बोल्शेविक शब्द प्रायः खिल्ली उडाने के अर्थ मे व्यवहृत होता है, किन्तु सोवियत रूस मे यह एक आदरसूचक उपाधि मानी जाती है, और आज भी रूस का कम्युनिस्ट दल अपने को बोल्शेविक सोवियत सघ कहता है।

बोलिविया—दक्षिण अमरीका का एक प्रजातत्र, ४,२०,००० वर्गमील लम्बा-चौडा, आबादी ३२,००,०००, जिसमे ५० प्रतिशत इडियन, २८ प्रति० वर्णसकर और शेष गोरी जातियॉ हैं। धनी देश, किन्तु अविकसित। मुख्य व्यवसाय खनिज-उद्योग। चॉदी, सुरमे की डली तथा टीन बहुत निकलते हैं, टीन तो ससार की पैदावार का १५ प्रतिशत। समुद्र तक आवागमन का क्षेत्र प्राप्त करने के लिये बोलिविया और पैरागुए मे जुलाई १६३२ से जून १६३५ तक युद्ध होता रहा। सयुक्त-राज्य अमरीका तथा पॉच दक्षिण अमरीकी प्रजातत्रो ने समझौता कराया। इस देश मे कहने को समाजवादी किन्तु वास्तव मे

फासिस्ती फौजी अधिनायक तत्र क़ायम है। जुलाई १९४१ मे यहाँ नात्सी-षड्यंत्र का भण्डाफोड हो-चुका है। दिसम्बर '४१ मे जब अमरीकी संयुक्त-राष्ट्र ने जापान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की तो बोलिविया भी उसमे शामिल होगया, और अप्रैल १९४३ मे उसने धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करदी।
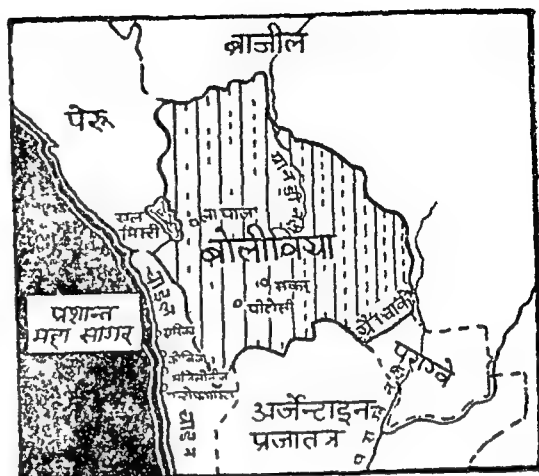
बोहेमिया—चैकोस्लोवाकिया का प्रमुख प्रान्त। इसकी राजधानी प्रेग भी इसी प्रदेश मे है। यह मध्य योरप मे स्थित है, इस कारण योरप की राजनीति की यह धुरी रहा है। बिस्मार्क ने कहा था—"बोहेमिया का स्वामी ही योरप का स्वामी है।" मार्च १९३९ मे, चैकोस्लोवाकिया पर अधिकार जमाने के बाद, जर्मनी ने इस प्रांत को अपने राज्य मे मिला लिया।

भ

भारत—बरतानवी राष्ट्र-समूह का सदस्य-देश—नही एक 'साम्राज्य'—ब्रिटिश-साम्राज्य का मुकुट-मणि। किन्तु ब्रिटिश कामनवैल्थ मे, लगभग दो सौ साल के बरतानवी-शासन के बाद भी, जिसका स्वतन्त्र कोई स्थान नही, राष्ट्रीय अस्तित्व नही। संसार को जिसने मानवता के आदिम-युग मे ज्ञान-ज्योति दी, सभ्यता का ज्ञान-दान दिया। मानव-संस्कृति का जो आदि-गुरु रहा, किन्तु इस दो-सौ साल मे पाश्चात्य सभ्यता ने जिसकी सांस्कृतिक प्राणधारा का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी दृष्टियो से, भीषण शोषण कर डाला है। एशिया के दक्षिण मे स्थित। क्षेत्रफल १८,०८,६८० वर्गमील; जनसंख्या

३७,५०,००,०००। ब्रिटेन का राजा भारत का सम्राट् कहलाता है। भारत ब्रिटिश-शासित और देशी राज्य दो प्रमुख भागों मे बँटा हुआ है।

सन् १६०५ के वङ्ग-भङ्ग के बाद उठे हुए आन्दोलन के फलस्वरूप १६०६ मे मिन्टो-मार्ले-सुधार भारत को ब्रिटिश-शासन की पहली, राजनीतिक सुधारो की, नाम-मात्र की देन थी। उपरान्त सन् १६१७ मे स्वर्गीया श्रीमती ऐनी-बेसेन्ट और लोकमान्य तिलक के होम-रूल आन्दोलन के प्रतिफल में, २० अगस्त सन् १६१७ को तत्कालीन भारत-मन्त्री मि० मान्टेग्यू ने ब्रिटिश पार्लमेन्ट मे घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की नीति का अन्तिम लक्ष्य "ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है।" उपरान्त मान्टेग्यू साहब स्वय भी भारत पधारे और तत्कालीन नेताओं से उन्होंने भेट की। इसके बाद, सन् १६१६ मे, भारतीय-शासन-विधान बना, जिसके अनुसार प्रातों मे नई धारासभाएँ स्थापित कीगईं, मर्यादित मताधिकार दिया गया, साथ ही प्रान्तों में द्वैध-शासन-प्रणाली (Diarchy) की स्थापना कीगई। इसके अनुसार प्रान्तीय सरकार को दो भागों में बाँट दिया गया। शासन-विभागो को 'हस्तान्तरित' (Transferred subjects) और 'सुरक्षित' (Reserved subjects) नाम दिये गये। हस्तान्तरित विषयों में शिक्षा, उद्योग, कृषि तथा स्वायत्त-शासन आदि रखे गये। सुरक्षित मे पुलिस, माल-गुज़ारी, अर्थ-विभाग, आदि। सुरक्षित विभाग गवर्नर की एक कौंसिल के अधीन रखे गये, जिसमें २ से ३ तक सदस्य नियुक्त किये गये। हस्तान्तरित विषयों को प्रान्तीय धारासभा के निर्वाचित सदस्यों के प्रतिनिधियों को सौंपा गया। यह प्रतिनिधि गवर्नर की कौंसिल के अधिवेशनों में शामिल नहीं होते थे। सन् १६१८ मे राष्ट्रीय महासभा ने, इस विधान के प्रकाशित होने के अवसर पर, इसे अपर्याप्त, असन्तोषजनक और अनुपयोगी बताया।

एक ओर शासन-विधान बनकर तैयार हुआ, दूसरी ओर सन् १६१६ के आरम्भ में ही सरकार ने रौलट कानून बनाने की तैयारी करदी। महात्मा गाधी ने इसके विरोध मे सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ने की घोषणा की। पंजाब मे फौजी शासन जारी हुआ और अनेक अत्याचार हुए। इसके साथ ही, गत महायुद्ध के बाद, वरसाई की सन्धि में तुर्की के साथ हुए अन्याय से भारतीय मुसलमान

बहुत क्षुब्ध थे। फलतः गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन और ख़िलाफ़त आन्दोलन साथ-साथ चले। कांग्रेस की कायापलट हुई, माडरेटो के हाथ से वह, देशोद्धार के लिए चिन्तित और राष्ट्रोन्नति के लिये उद्यत, राष्ट्रवादियो के हाथ मे आई और, महात्मा गांधी के नेतृत्व मे, कांग्रेस ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिये आन्दोलन शुरू किया। आन्दोलन ठडा भी न होपाया था कि देश मे हिन्दू-मुसलिम-विग्रह की बाढ़-सी आगई। यह आश्चर्य की बात है कि राजनीतिक आन्दोलनो के बाद ही यह दगे अधिकतर हुए। किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन, किसी-न-किसी रूप मे, बराबर जारी रहा। हिन्सात्मक आन्दोलन ने भी इस बीच ज़ोर पकडा।

१९२८ मे ब्रिटिश सरकार ने एक शाही कमीशन, सर जान साइमन के नेतृत्व मे, भारतीय समस्या की जॉच के उद्देश्य से, यहॉ भेजा। काग्रेस ने इस कमीशन का देशव्यापी बहिष्कार किया और इसकी सिफ़ारशी रिपोर्ट को ठुकरा दिया। यद्यपि इस कमीशन का लक्ष्य भारतीय शासन-सुधारो के सबंध मे जॉच और सिफ़ारशे करना था, किन्तु इसमे एक भी भारतीय सदस्य नियुक्त नही किया गया : सातो सदस्य विलायत से भेजे गये। कांग्रेस ने अपनी राष्ट्रीय मॉग को उपस्थित करने के लिये पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक कमिटी नियुक्त की। इस कमिटी की रिपोर्ट की सिफ़ारशे 'राष्ट्रीय मॉग' के नाम से मशहूर हैं। इस नेहरू रिपोर्ट मे भारत का तत्कालीन लक्ष्य औपनिवेशिक शासन-पद स्वीकार कर लिया गया था। पुराने नेता महात्मा गांधी, प० मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, आदि औपनिवेशिक स्वराज्य से सन्तुष्ट थे। एक दूसरा दल प० जवाहरलाल नेहरू तथा बाबू सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष मे था। वह ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद चाहता था। नेहरू-रिपोर्ट की सरकार द्वारा स्वीकृति के लिये अन्तिम तिथि ३१ दिसम्बर १९२९ रखी गई। सरकार ने रिपोर्ट को स्वीकार नही किया। अतः कांग्रेस ने अपने लाहौर-अधिवेशन मे उसी वर्ष पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया।

सन् १९३० मे सविनय-अवज्ञा अथवा नमक-सत्याग्रह-आन्दोलन गांधीजी ने छेडा, जो बडी तीव्र गति से चला। हज़ारो देशवासी स्त्री, पुरुष, बालक

जेल गये तथा अनेक लाठियो और गोलियो से मारे गये । तत्कालीन वाइसराय, लार्ड इरविन अब लार्ड हैलीफैक्स, जब दमन से हार गये, तब उन्होने १६३१ मे काग्रेस से समझौता किया, जो गाधी-इर्विन समझौते के नाम से प्रसिद्ध है । फलतः गाधीजी ने गोलमेज सभा मे शामिल होना स्वीकार किया । गोलमेज़ की दूसरी बैठक सन् १६३२ मे भी लन्दन मे हुई, किन्तु गाधीजी पहली बैठक से ही निराश लौटे थे । हिन्दू-मुसलिम प्रश्न खडा कर दिया गया और कोई विशेष प्रतिफल इस सम्मेलन का नहीं निकला और देश की राष्ट्रीय मॉग के प्रतिकूल नया शासन-विधान भारत पर लादा गया ।

१६३५ मे यही भारतीय शासन-विधान लागू हुआ । इसमे भारत को केन्द्र मे उत्तरदायी शासन देने की व्यवस्था नही कीगई । प्रान्तो में भी नियन्त्रित तथा मर्यादित उत्तरदायी शासन की स्थापना करने की योजना शामिल कीगई । इस शासन-विधान मे ४७८ धाराएँ और १६ परिशिष्ट हैं । यह जितना ही बडा है, उतना ही अधिक अनुत्तरदायी भी । इस विधान की रूप-रेखा इस प्रकार है:—

(१) केन्द्रिय सरकार—भारत मे गवर्नर-जनरल ब्रिटिश राजा का प्रतिनिधि है और वास्तव मे भारत का एकमात्र शासक । १८ अप्रैल १६३६ से लार्ड लिनलिथगो वाइसराय और गवर्नर-जनरल के पद पर हैं । (यहॉ यह स्मरण रखना चाहिए कि पार्लमेन्टरी सयुक्त कमिटी, जिसने गवर्नमेंट आफ इडिया बिल पर अपनी रिपोर्ट दी थी, के अध्यक्ष भी लार्ड लिननिथगो ही थे।) गवर्नर-जनरल की सामान्य अवधि पॉच वर्ष नियत है । किन्तु ब्रिटेनका राजा इसमे वृद्धि भी कर सकता है । गवर्नर-जनरल की सहायता के लिये एक कार्यकारिणी कौंसिल है, जिसमे सामान्यतः तीन देशी, तीन अँगरेज़, ६ सदस्य रहते थे, किन्तु अब बढते-बढते १५ होगये हैं। इनकी नियुक्ति राजा द्वारा होती है । प्रत्येक सदस्य भारत-सरकार के एक या अधिक विभागों का अध्यक्ष होता है । भारत का प्रधान सेनाध्यक्ष भी इस कौसिल का सदस्य होता है । गवर्नर-जनरल इसका अध्यक्ष रहता है । पर-राष्ट्र विभाग गवर्नर-जनरल के अधीन रहता है ।

भारतीय व्यवस्थापक मण्डल मे दो सभाएँ हैं—लैजिस्लेटिव असेम्बली

और कौंसिल ऑफ् स्टेट। असेम्बली मे, जिसकी स्थापना १६२१ मे हुई थी, १४१ सदस्य हैं, जिनमे १०५ निर्वाचित और शेष मनोनीत है। कौंसिल ऑफ् स्टेट् मे ५८ सदस्य हैं, जिनमे ३२ चुनाव द्वारा होते है। दोनो के मताधिकार मे बडी भिन्नता है। असेम्बली का कार्य-काल तीन वर्ष है। (परन्तु सन् १६३४ के बाद से अभी तक इसका चुनाव ही नही हुआ है, वाइसराय द्वारा इसका कार्यकाल बढ़ाया जाता रहा है।) कौंसिल आफ् स्टेट् का चुनाव पॉच साल के लिये होता है। वाइसराय इसकी अवधि भी घटा-बढ़ा सकता है। वाइसराय की कौंसिल भारतीय धारासभा के प्रति उत्तरदायी नही है। सुपठित और सम्पन्न समुदाय ही असेम्बली के चुनाव मे मत दे सकता है, और भारत जैसे सुविशाल देश मे केवल ५ फीसदी के लगभग असेम्बली के मतदाता हैं। गवर्नर-जनरल, सम्राट् की सहमति से, असेम्बली की इच्छा के प्रतिकूल, ब्रिटिश भारत के हित के नाम पर, क़ानून बना सकता और असेम्बली द्वारा स्वीकृत मसविदे या प्रस्ताव को, अपने विशेषाधिकार (power of veto) द्वारा, रद कर सकता है।

(२) *प्रान्तीय शासन*—ब्रिटिश भारत मे, सन् १६३५ के विधान के अनुसार, ११ गवर्नरो के प्रान्त हैं : मदरास, बम्बई, बगाल, पजाब, सयुक्त-प्रांत, मध्य-प्रांत, बिहार, उडीसा, सिध, सीमाप्रांत तथा आसाम। प्रत्येक गवर्नर के प्रान्त मे निर्वाचित प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा या प्रान्तीय असेम्बली है। सिर्फ बगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्त-प्रान्त, बिहार तथा मध्य-प्रान्त मे द्वितीय धारासभा या प्रान्तीय कौंसिल भी हैं। प्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेम्बली का कार्य-काल ५ वर्ष है। प्रान्तीय कौंसिले स्थायी हैं। इनमे से प्रत्येक एक-तिहाई सदस्यों का तीन वर्ष बाद, दूसरे एक-तिहाई का ६ साल बाद, तीसरे एक तिहाई का नौ-साल बाद चुनाव होता है। कौंसिलो मे मनोनीत सदस्य भी होते हैं। प्रान्तीय असेम्बली के मतदाताओ की संख्या जन-संख्या का १२ प्रतिशत है, यानी भारत की कुल जनसंख्या मे से केवल ३½ करोड को मताधिकार प्राप्त है।

प्रान्तों का शासन-संचालन गवर्नरो के हाथ मे है। अपनी सहायता के लिये उन्हे मन्त्रि-मण्डल बनाने का अधिकार है। प्रत्येक प्रान्तीय धारासभा के बहुमत-दल के नेता को आमंत्रित कर गवर्नर उसके परामर्श से मन्त्रियो

की नियुक्ति करता है। मन्त्रियों के कार्यों मे सहायता देने के लिये पार्लमेन्टरी सेक्रेटरी नियुक्त किये जाते हैं। मन्त्रियों तथा सेक्रेटरियो की संख्या निर्धारित नही है। मन्त्रि-मण्डल प्रान्तीय धारासभा के प्रति उत्तरदायी होता है। 'विशेष उत्तरदायित्व' तथा विशेषाधिकार के मामलो को छोड़कर गवर्नर मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करता है। परन्तु उपर्युक्त विशेष उत्तरदायित्व के सम्बन्ध मे उसे वाइसराय के आदेशानुसार कार्य करना पड़ता है। वह, वाइसराय के द्वारा, भारत मन्त्री के प्रति इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये, जिम्मेदार है। धारासभा द्वारा स्वीकृत मसविदो को स्वीकार करने अथवा न करने का अधिकार भी गवर्नर को है, या वह मसविदे (बिल) को विचारार्थ वाइसराय को भेज सकता है। यदि गवर्नर की सम्मति मे प्रान्त मे अशान्ति की आशका है, तो वह विशेष क़ानून बना सकता है। वह विधान को भी स्थगित कर अपने सलाहकार नियुक्त कर सकता और प्रान्त का शासन कर सकता है। मन्त्रियो को वह बरख़ास्त भी कर सकता है।

(३) *देशी राज्य*—पृथक् लेख देखिए।

(४) *संघ-शासन*—१९३५ के भारतीय-शासन-विधान मे सघ-शासन की व्यवस्था की गई है। इसमे ब्रिटिश प्रान्तों तथा देशी रियासतों को मिला कर सघ-राज्य बनाने की योजना है। इस योजना के अनुसार वाइसराय का एक मन्त्रि-मण्डल होता और यह मन्त्रि-मण्डल सघीय धारासभा के प्रति उत्तर-दायी होता। इसमे भी वाइसराय को, मन्त्रि-मण्डल के निर्णय के विपरीत, कार्य करने का पूर्ण अधिकार होता। यह सघ-प्रणाली अभी तक कार्यान्वित नहीं की जासकी है। भारतीय राष्ट्रीय महासभा इसके विरुद्ध है। मुसलिम लीग को भी यह सघ-शासन स्वीकार नही था। उसके विरोध के कारण काग्रेस से भिन्न है। उसके मतानुसार संघीय धारासभा मे हिन्दू बहुमत होगा, जिसे वह स्वीकार नही करती। तीसरे, सभी देशी राज्यो के शासक भी इसमे शामिल होने को तैयार नही हैं, क्योंकि उन्हे अपनी रियासतो मे शासन की एक निश्चत व्यवस्था करनी पड़ती। वाइसराय देशी नरेशो को सघ मे शामिल होने के लिये उत्साहित कर ही रहा था कि १ सितम्बर १९३९ को महायुद्ध शुरू होगया और वाइसराय ने इस योजना के सबध मे होनेवाले प्रारम्भिक

कार्य को स्थगित करदिया। इस प्रकार संघ-विधान (फेडरेशन) का गर्भपात होगया।

(५) *वैधानिक संकट*—सितम्बर १९३९ मे जब ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की तो भारत के गवर्नर-जनरल ने, भारतीय असेम्बली या देश के नेताओ की अनुमति लिये बिना, यहाँ भी यह घोषणा करदी कि इस युद्ध मे भारत ब्रिटेन के साथ लडाई मे शामिल है। गाधीजी, थोडे दिन बाद ही, वाइसराय से मिले। उन्होने नात्सीवाद की पराजय तथा ब्रिटेन और फ्रान्स की विजय की कामना 'हरिजन' मे लिखकर प्रकट की। इसके बाद वर्धा से कांग्रेस कार्यसमिति ने एक सप्ताह बाद एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमे ब्रिटिश सरकार से उसके युद्ध तथा शान्ति के उद्देश्य पूछे तथा यह आग्रह किया कि भारत को स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जाय। परन्तु सरकार ने कांग्रेस की इस मॉग को स्वीकार नही किया।

अतः जिन आठ प्रान्तो मे कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डल शासन-सचालन कर रहे थे, उन्हें पद-त्याग का आदेश दिया गया। इस प्रकार नवम्बर १९३९ मे भारत मे वैधानिक सकट पैदा होगया। नवम्बर १९३९ से ८ प्रान्तों मे गवर्नर ने शासन-विधान को स्थगित कर दिया। प्रान्तीय धारासभाएँ स्थगित कर दीगई तथा स्वय गवर्नर आई० सी० एस० सलाहकारों की मदद से शासन-कार्य चलाने लगे। (पीछे सन् १९४० मे आसाम तथा उडीसा मे प्रतिक्रिया-वादियों द्वारा मंत्रि-मण्डल कायम होगए।)

ब्रिटिश वाइसराय ने सरकार की ओर से ८ अगस्त १९४० को यह घोषणा की कि युद्ध की समाप्ति के बाद भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जायगा तथा भारतीय एक परिषद् का सगठन कर उसमें भारत के भावी शासन-विधान की रूपरेखा तैयार कर सकेंगे।

घोषणा निस्सार सिद्ध हुई। गान्धीजी ने युद्ध के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करने के लिये भाषण-स्वातन्त्र्य की मॉग की, जैसी कि ब्रिटेन मे, युद्ध के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने की, वहाँ के नागरिकों को प्राप्त है। इस सम्बन्ध मे भी उनका प्रयास जब विफल हुआ, तो उन्होंने १९४० के अक्टूबर मे युद्ध-विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ दिया, किन्तु उसका प्रयोग बहुत सीमित रखा। अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थिति के सम्बन्ध मे इस बीच महात्माजी ने

अनेक बयान निकाले । एक बयान में उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया कि यह सत्याग्रह-आन्दोलन अँगरेजों, मुसलमानो अथवा किसी दलके भी विपरीत नहीं कियाजा रहा है । यह तो भारतीय जनता को स्वतन्त्र बता कर उसे ज़बरदस्ती लड़ाई मे शामिल करने के व्यवहार के विरुद्ध एक प्रबल नैतिक प्रतिरोध है। उन्होंने इसी वक्तव्य मे यह भी कहा कि भारत को स्वतन्त्र करने के मार्ग में अधिकारियो द्वारा भारतीय मतैक्य का बहाना लेने का मार्ग गलत और काल्पनिक है । सत्याग्रह में २५,००० व्यक्ति जेल गये और वह चौदह महीने जारी रहा।

अप्रैल १९४१ मे बम्बई में, सर तेज बहादुर सप्रू के नेतृत्व में, निर्दल सम्मेलन हुआ । सर तेज ने अपने भाषण मे कहा कि, "जनमत की अवहेलना जैसी वर्तमान भारत-सरकार ने की है वैसी किसी अन्य भारतीय सरकार ने नहीं की थी ।" सम्मेलन ने, ब्रिटिश कामनवैल्थ के देशों की भाति ही भारतीय जनता को, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पूर्ण अधिकार की माँग की । लड़ाई के बाद, एक निश्चित अवधि के भीतर, भारत को बरतानिया और उसके उपनिवेशो जैसे अधिकार दिये जाने की स्पष्ट घोषणा किये जाने का भी मतालबा किया गया । सर तेज इन प्रस्तावो को लेजाकर वाइसराय से भी मिले। कुछ दिन बाद भारत-मन्त्री ने कामन-सभा में बोलते हुए जवाब दे दिया कि भारत की समस्या को भारत की जनता ही, आपस में समझौता करके, सुलझा सकती है ।

इसी महीने मे मदरास के लीग के जलसे मे, सभापति पद से बोलते हुए, मि० जिन्ना ने कहा—"मैं इस मच से बलपूर्वक कह देना चाहता हूँ कि भारत मे ब्रिटिश सरकार की निकम्मी, कमजोर और अनिश्चित नीति योरप की उसकी वर्तमान नीति से भी अधिक विनाशकारी सिद्ध होने को है । इन लोगों को क्यों नही सूझता कि घटनाये कैसी तेज़ी से घट रही हैं और नकशे कितनी जल्द-जल्द बदल रहे हैं ?"

मई मे मि० जिन्ना ने एक गश्ती पत्र निकाल कर कहा कि हम लड़ाई और भारत-रक्षा के आयोजन मे सहयोग देने को तैयार हैं बशर्ते कि केन्द्रिय और प्रान्तीय सरकारो मे लीग के प्रतिनिधियो को सच्चा और सारपूर्ण भाग दिया जाय।

भारत के माडरेटो के अतिरिक्त ब्रिटेन मे भी भारत की समस्या के सम्बन्ध

में जोरों की चर्चा चल पडी थी। पार्लमेन्ट के दोनों हाउसों मे भारत-सम्बन्धी सरकारी नीति की निन्दा कीगई। तब जुलाई १९४१ मे एक श्वेत-पत्र प्रकाशित हुआ, जिसमे कहा गया कि युद्ध-काल मे समस्त भारत के सहयोग के लिये एक केन्द्रिय युद्ध-सलाहकारी बोर्ड बनाया जायगा और वाइसराय की कार्य-कारिणी कौंसिल मे हिन्दुस्तानी सदस्य बढा दिये जायेंगे। कांग्रेस ने सरकार के इन प्रस्तावो को स्वीकार नहीं किया। मुसलिम लीग भी इनसे सन्तुष्ट नहीं हुई। वह वाइसराय की कौसिल मे अपना बहुमत मॉगती थी। पॉच सदस्य वाइसराय की कार्यकारिणी मे इस अवसर पर बढा दिये गये।

मि० जिन्ना ने इस पर कहा कि, "यह तो कोरा दिखावा है। इसके द्वारा तो सरकार के अधिकार और शक्ति मे वास्तविक भाग नही मिला।" निर्दल सम्मेलन के नेता डा० जयकर ने कहा कि, "एक भी असली विभाग तो योरपियन के हाथ से भारतीय के हाथ मे नहीं आया। मि० एमरी अब भी पुरानी ब्रिटिश नीति, अविश्वास और सन्देह, को ग्रहण किये जारहे हैं।" फरवरी १९४२ मे फिर निर्दल सम्मेलन की बैठक हुई। डा० जयकर ने इसमे बलपूर्वक कहा कि, "बिना जनता को साथ लिये सरकार इतने बडे युद्ध को कदापि नही चला सकती। हम भारत मे मलय की स्थिति को नहीं देखना चाहते। हटो, और हमे अपनी रक्षा का काम सॅभालने दो।" इससे अगले महीने सर तेज तथा अन्य निर्दल नेताओं ने फरवरी के सम्मेलन के प्रस्तावो के आधार पर मि० चर्चिल से अपील की।

अगस्त १९४१ की अटलांटिक योजना भी अपने साथ कुछ नहीं लाई। कांग्रेस तो इस पर मौन रही, किन्तु लिबरल नेता प० हृदयनाथ कुंजरू ने इस पर कहा कि, "इस प्रकार की योजनाएँ और समझौते भारत के लिये तो क्रूर हास्य जैसे हैं। अटलांटिक योजना पर भारत के हस्ताक्षर हैं इसलिये कि राष्ट्रों को अपने भविष्य मे आशा और विश्वास उत्पन्न हो, किन्तु भारत को वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती, जिसका वचन वह दूसरे देशों को देता है। क्या इससे बढ़कर भी कोई विरोधाभास हो सकता है?"

दिसम्बर '४१ में सरकार ने कुछ उदारता दिखाई। सत्याग्रह के कैदियों को छोड़ दिया गया, परन्तु अन्य राजनीतिक कैदी नहीं छोड़े गये। इसी साल में

७ दिसम्बर को जापान ने प्रशान्त महासागर मे हमला कर दिया और सुदूरपूर्व मे युद्ध छिड़ गया। ३१ दिसम्बर की बारदोली की कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक मे सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। महात्मा गाधी भी इसी बैठक मे देश के नेतृत्व-भार से मुक्त कर दिये गये।

फरवरी '४२ मे मार्शल च्याग् काई-शेक भारत आये और उन्होंने अपनी विदाई के वक्तव्य मे प्रबल आशापूर्ण अपील की कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्र घोषित कर देगी।

मार्च '४२ मे सर स्टेफर्ड क्रिप्स अपने प्रस्ताव लेकर भारत आये। इस प्रयास का भी, क्रिप्स-योजना मे वास्तविक अधिकार न मिलने के अभाव के कारण, कोई सुफल नहीं निकला।

१ मई १९४२ को प्रयाग के अ०-भा० काग्रेस कमिटी के अधिवेशन में राजनीतिक स्थिति पर एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव में क्रिप्स-योजना की आलोचना तथा भारत के, युद्ध में सहयोग देने के सबध मे, अपना मत प्रकाशित करने के बाद स्पष्ट शब्दो मे यह घोषणा की कि—कमिटी इससे इनकार करती है कि भारत को किसी बाहरी राष्ट्र के हस्तक्षेप अथवा उसके द्वारा आक्रमण से स्वाधीनता मिल जायगी। यदि भारत पर आक्रमण हुआ तो उसका प्रतिरोध किया जायगा। यह प्रतिरोध केवल अहिंसात्मक असहयोग का ही रूप धारण कर सकता है। इसी बैठक में श्री जगतनारायण लाल का प्रस्ताव भी कमिटी ने स्वीकार किया जिसके अनुसार काग्रेस भारत की अखण्डता के लिये प्रतिज्ञाबद्ध है। इस बैठक मे श्री राजगोपालाचारी ने इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया कि काग्रेस को मुसलिम लीग की पाकिस्तान की मॉग को स्वीकार कर लेना चाहिए, किन्तु यह स्वीकृत न होसका। इसके बाद राजाजी ने काग्रेस कार्य-समिति, मदरास प्रान्तीय काग्रेस समिति तथा अ०-भा० काग्रेस समिति की सदस्यता से त्यागपत्र देदिया।

इसके बाद १४ जुलाई १९४२ को वर्धा मे कांग्रेस कार्यकारिणी कमिटी का अधिवेशन हुआ। क्रिप्स-योजना की विफलता के बाद से ही गाधीजी ने 'हरिजन' मे 'भारत छोड़ो' (Quit India) आन्दोलन की चर्चा शुरू करदी

थी। इस अधिवेशन मे 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव में काग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से यह अपील की कि वह भारत से अपनी शासन-सत्ता को हटाले। इसका यह तात्पर्य नही कि भारत से अँगरेज मात्र वापस चले जायँ। और न इसका यह मतलब है कि भारत मे जो गोरी सेनाएँ हैं, वे वापस अपने देश को चली जायँ, प्रत्युत इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि भारत को स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जाय और भारत मे भारतीय जनता का प्रतिनिधि शासन स्थापित हो। इस प्रस्ताव मे यह भी कहा गया कि यदि सरकार ने इस अपील पर ध्यान नही दिया, तो काग्रेस अपने राजनीतिक स्वत्वो तथा स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए, सन् १६२० से अब तक संचित अहिंसा-शक्ति का उपयोग करेगी। यह व्यापक संघर्ष महात्मा गांधी के नेतृत्व मे होगा। इस प्रस्ताव की अन्तिम स्वीकृति के लिए ७ अगस्त १६४२ को अ०-भा० काग्रेस कमिटी का अधिवेशन बुलाने के लिए भी आदेश किया गया।

उपर्युक्त निश्चयानुसार, ७ अगस्त १६४२ को, बंबई मे कमिटी का अधिवेशन, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के सभापतित्व में, हुआ। ८ अगस्त की बैठक में यह प्रस्ताव, संशोधित तथा कार्य-समिति द्वारा परिवर्द्धित रूप मे, काग्रेस कमिटी द्वारा स्वीकार किया गया।

इस अधिवेशन की समाप्ति पर गांधीजी वाइसराय को पत्र लिखनेवाले थे और वह चाहते थे कि वाइसराय से मिलकर वर्तमान संकट के अन्त करने के उपाय सोचे जायँ। इसी प्रकार वह अमरीकी राष्ट्रपति रूज़वैल्ट, सोवियत रूस के ब्रिटेन-स्थित राजदूत, तथा जनरलिस्सिमो च्यांग् काई-शेक को पत्र भेजनेवाले थे, जिससे कि संयुक्त-राष्ट्रों को भी भारतीय वस्तु स्थिति का ज्ञान होजाय। परन्तु ता० ६ अगस्त १६४२ के प्रातःकाल ही महात्मा गांधी तथा अन्य सभी प्रमुख कांग्रेस-नेताओं को बंबई मे गिरफ़्तार कर लिया गया।

उसी दिन से भारत के समस्त प्रान्तों मे नगरों, क़स्बो एवं ग्रामों में काग्रेस कार्य-कर्त्ताओं और नेताओं को गिरफ़्तार करना शुरू कर दिया गया। काग्रेस कमिटियों तथा खादी भंडारों तक को ग़ैर-क़ानूनी संस्थाएँ घोषित कर दिया गया। देश भर में दमन का दावानल बड़े भयंकर रूप में प्रज्वलित होने लगा। उसकी लपटों से कोई भी देशभक्त अछूता न बच सका।

इस देश-व्यापी घोर दमन से जनता में रोष पैदा होगया और पंजाब और सीमाप्रान्त को छोड़कर शेष सभी प्रान्तों में जनता ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह करना शुरू कर दिया। रेल की पटरियाँ उखाड़ी गई। टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार काट डाले गये। डाकखाने तथा पुलिस की चौकियाँ और थाने जला दिये गये अथवा लूट लिये गये। पुलिस तथा फौज के अफसरों की हत्यायें की गई। डिपुटी मजिस्ट्रेटों तथा पुलिस कप्तानों आदि पर भी आक्रमण किए गए। सरकारी आफिसों में आग लगाई गई। रेलवे स्टेशनों में आग लगा दीगई। मदरास, बंबई, बिहार और संयुक्त-प्रदेश के पूर्वी भागों में इस विद्रोह ने भयंकर रूप धारण कर लिया। मदरास और बिहार प्रान्त के कई स्थानों पर १००० या इससे भी अधिक सशस्त्र भीड़ ने भयंकर उपद्रव किए।

सरकार ने भी इन उपद्रवों के दमन के लिये प्रान्तीय सरकारों को पूरे अधिकार देदिये और भारत में आर्डिनेंस-राज और पुलिस-राज का जैसा भयानक दौरदौरा इन दिनों देखने में आया, वैसा ब्रिटिश शासन-काल में शायद ही कभी देखने में आया हो। २४ सितम्बर १९४२ को इस सम्बन्ध में वाइसराय की शासन-परिषद् के कानून-सदस्य माननीय सर सुलतान अहमद ने भारतीय केन्द्रिय असेम्बली के समक्ष अपने भाषण में बतलाया कि:—

२५० रेलवे स्टेशनों को नष्ट किया गया अथवा उन्हें हानि पहुँचाई गई। ५५० डाकखानों पर हमले किए गए, ५० डाकखाने बिलकुल जला दिये गए और २०० को भारी नुकसान पहुँचाया गया। ३५०० से भी अधिक तार काटने की घटनाएँ हुई। ७० थाने और पुलिस चौकियों और ८५ सरकारी इमारतों पर हमले किए गए। ३१ पुलिस के लोग मार डाले गए और घायलों की संख्या इससे कई गुनी है। १८ फौज के अफसर मारे गये या घायल किए गए। ६० स्थानों पर फौज ने गोली चलाई। ६५८ जनता के व्यक्ति मारे गए। १००० जनता के लोग घायल हुए। सर सुलतान अहमद ने अपने भाषण में कहा कि कुछ हताहत व्यक्तियों को उपद्रवकारी उठाकर लेगए। इसलिए हताहतों की कुल संख्या २००० के लगभग होगी।

२२ सितम्बर को कौंसिल आफ् स्टेट् के समक्ष माननीय सर मुहम्मद उस-मान (डाक तथा हवाई विभाग के सदस्य) ने अपने भाषण में इन उपद्रवों

से जो हानि हुई, उसका व्यौरा इस प्रकार बताया:—

२५८ रेलवे स्टेशनो को नष्ट किया गया। ४० रेलगाड़ियो को पटरियॉ उखाड़कर गिराया गया। ५५० डाकख़ानो पर हमले किए गए। ३,५०० तार काटने की दुर्घटनाएँ हुई। एक लाख रुपये के डाक टिकट तथा नक़द रुपये डाकखानो से लूट लिए गए और असख्य लैटर-बक्स जला दिये गए। ७० थानो पर हमले किए गए। १४० सरकारी इमारतो पर हमले किए गए; उन्हे जला दिया गया अथवा नष्ट कर दिया गया। रेलवे, डाक तथा तार-विभाग को कुल नुक़सान एक करोड़ रुपये का हुआ है। नागपुर ज़िले मे कुल नुक़सान सवा लाख का हुआ है। मध्य-प्रान्त के एक दूसरे स्थान मे एक सरकारी ख़ज़ाने मे से ३½ लाख रुपये लूट लिए गए, जिसमे १ लाख का पता लग गया है। सयुक्त-प्रान्त में एक निजी दवाख़ाने को नष्ट कर दिया, जिससे १०,०००) की हानि हुई। दिल्ली मे सरकारी इमारतो को जो हानि पहुँची है उसका अनुमान ८,८६,६०१) कूता गया है।

इन उपद्रवो के दमन के लिये क्या-क्या उपाय और साधन प्रयोग में लाये गए, उन्हे सर मुहम्मद उसमान ने इस प्रकार बताया:—

(१) कांग्रेस-समितियों को ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया गया और महत्वपूर्ण कार्यकर्त्ताओ को गिरफ़्तार कर लिया गया। (२) भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत कारवाइयॉ कीगई। (३) नये-नये आर्डिनेंस प्रयोग मे लाये गए, जैसे अधिक दण्ड-व्यवस्था आर्डिनेंस (Penalties Enhancement Ordinance); विशेष फौजदारी अदालत आर्डिनेंस (Special Criminal Court Ordinance) और सामूहिक अर्थ-दण्ड-आर्डिनेंस (Collective Fines Ordinance) आदि। (४) "देश के हित की दृष्टि से" समाचारो के प्रकाशन पर प्रतिबध लगाये गए। (५) उपद्रवो के दमन के लिये पुलिस का पूरा उपयोग किया गया। उपद्रवकारियो पर गोलियॉ चलाई गई, जिनसे ३६० व्यक्ति मरे और १०६० घायल हुए। ३२ पुलिसवाले हताहत हुए। (६) ६० स्थानो पर ब्रिटिश तथा भारतीय फौजो ने उपद्रवो का दमन किया। कितने ही अवसरो पर गोलियॉ चलाई गई, जिनसे ३३१ व्यक्ति मरे और १५६ घायल हुए। फौज के ११ व्यक्ति मरे,

७ घायल हुए। (७) हवाई सेना का भी दमन मे प्रयोग किया गया। भीड पर बम बरसाये गये। गॉवो, क़स्बो और नगरो पर कितना जुर्माना किया गया, इसकी कोई सूचना सरकारी तौर पर प्रकाशित नही हुई है। जुर्माने की अदायगी से मुसलमानो और सरकारी मुलाजिमो को मुस्तसना कर दिया गया।

भारत-सरकार के गृह-सदस्य सर रेजीनाल्ड मैक्सवैल के केन्द्रिय असेम्बली मे, १२ फरवरी १६४३ को दिये गए वक्तव्य के अनुसार, ३१ दिसम्बर १६४२ तक भारत मे ५३८ बार गोलियॉ चलाई गई। पुलिस और फौज की गोलियो से ६४० व्यक्ति मारे गए और १६३० व्यक्ति घायल हुए। ६०,२२६ व्यक्ति इन उपद्रवो मे गिरफ्तार किए गए। सन् १६४२ के अन्त तक २६,००० व्यक्तियो को दण्ड दिया जा चुका था। भारत-रक्षा-विधान की धारा २६ और १२६ के अधीन १८,००० व्यक्तियो को नज़रबन्द किया गया।

भारत-सरकार ने गृह-विभाग की ओर से मार्च '४३ मे, जबकि गॉधीजी ने २१ दिन का उपवास रखा था, "१६४२-४३ के उपद्रवो के लिये कांग्रेस का दायित्व" (Congress Responsibility for Disturbanecs of 1942-43) नामक एक पुस्तक प्रकाशित कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि महात्मा गॉधी और कांग्रेस इन उपद्रवों के लिये उत्तरदायी हैं। परन्तु महात्मा गाधी ने, जैसा कि उनके और वाइसराय लार्ड लिनलिथगो के वीच हुए पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है, इन उपद्रवों के लिये कांग्रेस को नही सरकार को दायी ठहराया है।

इस प्रकार भारत के राजनीतिक सङ्कट की समस्या बिना सुलझी पडी है। अप्रैल १६४३ मे प्रेसिडेन्ट रूजवैल्ट के विशेष प्रतिनिधि, मि० विलियम फिलिप्स, को भी महात्मा गाधी से जेल मे भेट करने की अनुमति नहीं दीगई। कामन्स मे, प्रश्नोत्तर के समय, ६ अप्रैल १६४३ को भारत-मन्त्री के एक उत्तर से, जो उन्होने एक मजदूर सदस्य को दिया था, ज्ञात हुआ कि प० जवाहरलाल नेहरू को भारत से बाहर नही भेजा गया है और उनसे ब्रिटिश पार्लमेंट का कोई सदस्य पत्र-व्यवहार नहीं कर सकता। [इसके सम्बन्ध की अन्य घटनाओं की जानकारी के लिए पुस्तक के अन्त मे, परिशिष्ट के अन्तर्गत, गाधी-लिनलिथगो-पत्र-व्यवहार, गाधीजी का इक्कीस दिन का व्रत, सर्वदल-नेता-सम्मेलन आदि देखिये]

भारत-मंत्री—ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल का एक सदस्य भारत-मंत्री कहलाता है। भारत का शासन-प्रबन्ध इसीके नियंत्रण में रहता है। भारत के शासन के लिये यह ब्रिटिश पार्लमेन्ट के प्रति उत्तरदायी है। भारत का गवर्नर-जनरल लन्दन मे रहनेवाले भारत-मंत्री के आदेशानुसार यहाँ का शासन-सूत्र चलाता है। आजकल मि० ऐमरी भारत-मन्त्री हैं। भारत-मन्त्री के कार्य में सहायता के लिये एक उसकी सलाहकारी समिति होती है। इसमें भारतीय सदस्य भी होते हैं। इस कमिटी मे ६ सदस्य तक नियुक्त किये जाते हैं। उनसे सलाह लेना अथवा उनकी सलाह के अनुकूल कार्य करना भारत-मत्री की इच्छा पर निर्भर है। प्रत्येक सलाहकार को ७,३५० पौड वार्षिक वेतन मिलता है। यदि सलाहकार भारत का स्थायी अधिवासी होता है तो उसे ६०० पौड सालाना अधिक भत्ता मिलता है।

भारत-रक्षा-कानून—१ सितम्बर १९३९ को, योरप मे युद्ध छिड जाने के कारण, भारत मे भी वाइसराय ने युद्ध-घोषणा करदी और ५ सितम्बर १९३९ को गवर्नर-जनरल ने, भारतीय-शासन-विधान की धारा ७२ के अन्तर्गत, भारत-रक्षा-आर्डिनेंस जारी किया। यह आर्डिनेंस युद्ध-कालीन स्थिति मे ब्रिटिश भारत की सार्वजनिक तथा उसकी हित-रक्षा और कुछ विशेष अपराधो के अपराधियो के मुक़द्दमो के विषय मे जारी किया गया। इसमे कुल १८ धाराएँ हैं। इस आर्डिनेंस के अन्तर्गत भारत-सरकार ने भारत-रक्षा-नियम बनाये हैं। इस मे १३२ नियम हैं। वर्त्तमान समय मे अधिकांश राजनीतिक अपराधियो की जेल-व्यवस्था और उनके मुक़द्दमे तथा नज़रबन्दी, एव बहुत से साधारण मामले भी, इन्ही नियमो के अनुसार होरहे हैं। नियम ३८, ३९, ४० तथा ४१ के अन्तर्गत राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं को दण्ड दिया जा रहा है और धारा १२६ और १२९ के अन्तर्गत नज़रबन्द। केन्द्रिय व्यवस्थापक-सभा ने इन नियमो तथा आर्डिनेंस को बाद मे क़ानून का रूप दे दिया है। सन् १९४२ और १९४३ मे इसीके अन्तर्गत अनेक शासन-व्यवस्थाये की गई हैं।

भारत-सेवक समिति (सर्वेन्टस्-ऑफ् इंडिया सोसाइटी)—सन् १९०५ मे स्वर्गीय देशभक्त श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इस संस्था की स्थापना की थी। समिति का उद्देश ऐसे देश-सेवक उत्पन्न करना है, जो देश-सेवा मे

अपना जीवन अर्पण कर दे। यह सस्था सर्व वैध तथा शान्तिमय उपायो द्वारा भारत की हित-वृद्धि के प्रयत्न को अपना लक्ष्य मानती है। समिति का प्रधान कार्यालय पूना मे है। बम्बई, मदरास, प्रयाग और नागपुर मे इसकी शाखाएँ तथा कालीकट, मॅगलोर, लखनऊ, लाहौर और कटक मे इसकी उप-शाखाएँ हैं। इसके प्रत्येक सदस्य को, प्रवेश के अनन्तर, अध्ययन-अभ्यास के लिये तीन वर्ष तक पूना मे और दो साल तक अन्य स्थानो मे अस्थायी रूप से रहना पड़ता है। प्रत्येक सदस्य को प्रतिज्ञा करनी पडती है कि देश ही का स्थान उसके हृदय मे सदैव प्रथम रहेगा। वह सम्प्रदाय अथवा अन्य निम्न विचार का त्यागकर भारतवासी मात्र की सेवा बधुभाव से करेगा।

स्वर्गीय श्री गोखले इस सस्था के प्रथम प्रधान हुए। उपरान्त महामाननीय श्रीनिवास शास्त्री और उनके बाद श्री गोपालराव के० देवधर अध्यक्ष चुने गये। आजकल माननोय प० हृदयनाथ कुँजरू इसके अध्यक्ष हैं। पडित कुँजरू इस सस्था की एक ऐसी देन हैं, जिस पर देश समुचित रूप से गर्व कर सकता है। सहकारी-समितियों के आन्दोलन, दुर्भिक्ष और प्रकोप-पीड़ितों की सहायता, मज़दूर-सगठन (आंशिक), ग्राम-सुधार (आंशिक), साक्षरता-प्रसार, दलित जातियों का उत्थान, आदि कार्यों में इसके सदस्य भाग लेते हैं। इस संस्था के ३० सदस्य हैं। इसके सदस्यों को ग्रेजुएट होना आवश्यक है, और उन्हे ७५) मासिक वृत्ति मिलती है। इस सस्था के नियन्त्रण मे 'हितवाद' (अँगरेज़ी), 'ज्ञान-प्रकाश' (मराठी) तथा 'सर्वेंट आफ़् इंडिया' पत्र प्रकाशित होते हैं, जो सस्था के उद्देश्यों के प्रचार मे बड़ा योग देते हैं। समिति के सदस्य राजनीति से अलग-थलग रहते हैं। समिति की राजनीति आरम्भ-काल से ही नरम-दली रही है।

भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस—भारत मे सबसे पहले श्री नारायण मेघजी लोखण्डे ने बम्बई मे सन् १८६० में मजदूर-सघ की स्थापना की। उन्होंने 'दीनबन्धु' नामक एक समाचार-पत्र भी निकाला। अनेक वर्षों तक सघों मे मज़दूर सदस्यों की सख्या मे वृद्धि नहीं हुई। सन् १६१० में दूसरा मज़दूर सघ क़ायम हुआ। सन् १८८१ मे पहला भारतीय कारख़ाना-क़ानून बना था। सन् १८६१ मे इसमे सशोधन किया गया। सन् १६११ मे, कारख़ाना-मज़दूर कमी-

शन की सिफारशो के आधार पर, इस क़ानून मे संशोधन किया गया।

भारत मे मज़दूर-आन्दोलन का सुगठित रूप सन् १६१८ से आरम्भ होता है। साल भर के अन्दर देश भर मे विभिन्न व्यवसायो मे मज़दूर-सघों की स्थापना हुई। दिसम्बर १६१६ मे, बम्बई मे, कारख़ानो के मज़दूरो का एक सम्मेलन हुआ जिसमे ७१ कारख़ानो के मज़दूर प्रतिनिधि उपस्थित थे। उन्होने एक आवेदन-पत्र बनाया जिसमे दैनिक घण्टो मे कमी तथा मज़दूरी मे बढ़ती की माँगें रखी गई। मिल-मालिको ने इस ओर कुछ ध्यान न दिया। इस कारण सन् १६१६ मे मज़दूरो ने सबसे पहली बार हड़तालें की। तब से आज पर्यन्त कोई ऐसा वर्ष नही गया जिसमे पुतलीघरो, कारख़ानो, रेलवे या खानो के मज़दूरो ने हड़ताल न की हो।

३१ अक्टूबर १६२० को, बम्बई मे, अखिल भारतवर्षीय ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्थापना, लाला लाजपतराय के सभापतित्व मे, कीगई। इस आन्दोलन ने राष्ट्रीय रूप धारण किया तथा देश के राजनीतिक नेताओं तथा साम्यवादी कार्यकर्त्ताओ ने इस आन्दोलन मे अधिकाधिक दिलचस्पी तथा भाग लेना आरम्भ कर दिया।

सन् १६११ के कारख़ाना-क़ानून के मुख्य अंश इस प्रकार हैं—(१) कारख़ाने की परिभाषा मे वे भी औद्योगिक कारख़ाने रखे गये जो फ़सल पर चलाये जाते हैं। (२) बालको और स्त्रियो के दैनिक घण्टों मे कमी करके घण्टे निश्चित कर दिये गये और उन्हे रात्रि मे बुनाई के कारख़ानो मे काम करने की मनाई कर दी गई। (३) मज़दूरो के स्वास्थ्य तथा कारख़ानों की जॉच के लिये नियम बनाये गये। (४) प्रौढ़ मजदूरो के दैनिक घण्टे (बुनाई के कारख़ानों मे) अधिक से अधिक १२ कर दिये गये।

सन् १६२२ मे इस क़ानून मे और सशोधन किये गये—(१) १ सप्ताह ६० घन्टो का रखा गया। (२) मज़दूर बालको की उम्र ६ से बढ़ाकर १२ वर्ष कर दी गई। (३) छोटे कारख़ानो पर भी यह क़ानून लागू किया गया।

सन् १६२३, १६२६ तथा १६३१ मे भी इस क़ानून मे आइन्दा सशोधन किये गये। सन् १६२३ मे मज़दूर-क्षतिपूर्ति-क़ानून पास किया गया, जिसके अनुसार मज़दूरों को कारख़ाने मे कार्य करते समय दुर्घटना से चोट लगने या

मृत्यु होजाने पर कारखाने के मालिक के लिये यह अनिवार्य कर दिया गया कि वह मुआवजा दे। सन् १९२६ में भारत सरकार ने ट्रेड यूनियन ऐक्ट पास किया, जिसके अनुसार मजदूर सघ बनाये जाने का अधिकार स्वीकार किया गया। सन् १९२७ से साम्यवादी कर्मियो ने मज़दूर-सघों में प्रवेश कर, उन्हे पाश्चात्य देशों की मज़दूर-सस्थाओ की भाँति, सगठित करना आरम्भ किया। इस प्रकार कामरेड डाँगे, का० निम्बकर, का० झाबवाला, का० ब्रैडले आदि के नेतृत्व में जब मजदूर दल अधिक सगठित हुआ और व्यापक हड़तालों का सगठन होने लगा तो, भारत सरकार ने, इस बढते हुए आदोलन का दमन करने के लिये, मज़दूर-विवाद-क़ानून (Trade Disputes Act) तथा सार्वजनिक रक्षा-क़ानून (Public Safety Bill) बनाये। पहले क़ानून के द्वारा हडतालों की रोक तथा कारखानों में ताला डाल देने के संबधमे नियम बनाये गये। दूसरे क़ानून द्वारा साम्यवादी मज़दूर नेताओं पर राजद्रोह आदि के अभियोग लगाकर उन्हें निर्वासित आदि करने की व्यवस्था कीगई। सार्वजनिक रक्षा क़ानून के अन्तर्गत देश भर में साम्यवादियों का दमन किया गया तथा १९२८-१९३० मे मेरठ-षड्यंत्र-केस नाम से देश के प्रमुख साम्यवादी कार्यकर्ताओं के विरुद्ध, जिनमे ब्रैडले, स्प्राट और हचिन्सन नामक तीन अँगरेज कम्युनिस्ट भी थे, मुक़द्दमा चलाया गया।

नवम्बर १९२९ मे, प० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में, अ०-भा० ट्रेड यूनियन काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस सम्मेलन मे नरम दल के नेताओं का प्रभुत्व उठ गया। नरम दल के मज़दूर नेताओं ने श्री एन० एम० जोशी, एम० एल० ए०, के सभापतित्व मे 'इडियन ट्रेड्स यूनियन फेडरेशन' की स्थापना की। 'नेशनल फेडरेशन आफ् लेबर' नामक एक तीसरी सस्था भी पहले से मौजूद थी। अप्रैल १९३३ मे पिछली दोनों सस्थाएँ मिल गईं और इसका नाम "नेशनल ट्रेड्स यूनियन फेडरेशन" होगया।

सन् १९३५ मे नेशनल ट्रेड्स यूनियन फेडरेशन मे ६२ मज़दूर-संघ (यूनियनें) और ८३,००० मज़दूर शामिल थे। अ०-भा० ट्रेड यूनियन काग्रेस मे ९८ सघ तथा ४६,००० सदस्य थे। १७ अप्रैल १९३८ को नागपुर मे दोनों की संयुक्त बैठक हुई, जिसमे दोनों सस्थाये एक होगईं।

सन् १६३६ के प्रान्तीय चुनावो मे मुसलिम लीग ने ज़ोरदार आन्दोलन किया, जिसमें उसको कांग्रेस की प्रकट सहानुभूति तथा नैतिक सहयोग प्राप्त था। प्रान्तीय असेम्बलियो मे लीग के सदस्यो की सख्या औसतन् निम्नलिखित थी:—

प्रान्त	मुसलिम लीग	अन्य मुसलिम जगहें	कांग्रेस
मदरास	११	१७	१५६
बम्बई	२०	६	८८
बंगाल	४०	७७	५०
सयुक्त-प्रान्त	२७	३७	१३४
पंजाब	१	८३	१८
बिहार	०	३६	६८
मध्यप्रान्त	०	१४	७१
आसाम	६	२५	३५
सीमाप्रान्त	०	३६	१६
उडीसा	०	४	३६
सिंध	०	३६	७
योग	१०८	३७७	७१५

मुसलिम लीग का मुसलिम-बहुमत के प्रान्तों—बगाल, पजाब, सीमा-प्रान्त और सिंध—मे कोई प्रभाव नहीं है। बगाल मे सिर्फ ४० सदस्य लीग के चुने जासके जब कि ७७ सदस्य 'कृषक प्रजा' तथा अन्य मुसलिम दलों के चुने गये। पजाब मे सिर्फ एक लीगी उम्मीदवार कामयाब हुआ। सीमाप्रान्त, सिध, उडीसा, मध्यप्रान्त तथा बिहार मे एक भी लीगी सदस्य नही चुना जा सका। इस प्रकार किसी प्रान्त मे लीग की सरकार न बन सकी। मि० मुहम्मद अली जिन्ना को इससे निराश होना स्वाभाविक था, क्योकि वह अपने पक्ष-पातियों के समक्ष अपनी शक्ति का क्रियात्मक उदाहरण कुछ भी नहीं रख सके। बाद मे उन्होने काग्रेस का विरोध करके अपनी शक्ति बढाने का यत्न आरम्भ किया तथा यह मिथ्या प्रचार किया गया कि काग्रेस-सरकारों के अन्तर्गत मुसलमानो के हित ख़तरे मे हैं और अन्त मे सन् १६४० के, लाहौर-अधिवेशन मे तो, ने भारतीय राजनीतिक-मच पर अपना अख़ीरी ताश—पाकिस्तान—भी

फेंक दिया है। यद्यपि कांग्रेस का अनुसरण कर लीग ने भी अपना प्रकाश्य उद्देश भारत की मुकम्मल आज़ादी बना लिया है, किन्तु वह राष्ट्रीय-स्वातन्त्र्य की विघातक विभाजन-नीति पर आरूढ़ है।

जिस मुसलिम लीग का राजनीतिक सन्तुलन मे देश मे कोई प्रभाव नहीं रहा, जिसके उद्देश और नेता के करोडो मुसलमान विरोधी हैं, आज उस लीग के मतालवे का बरतानिया और अमरीका मे बडा प्रचार किया जारहा है और उसे एक प्रबल शक्ति बताया जा रहा है, तथा भारतीय प्रगति-विरोधी शक्तियॉ लीग का आश्रय लेकर, अपने निराधार और स्वार्थपूर्ण प्रचार के बल पर, उससे क्षणिक, किन्तु भरपूर, लाभ उठा रही हैं।

भारतीय राष्ट्रीय उदार संघ—कांग्रेस मे सन् १९०७ से ही, उद्देशों के सम्बन्ध मे, दो विचार-धारायें उत्पन्न होचुकी थीं, जिन्हें नरम तथा गरम दल कहा जाने लगा था। सन् १९१७ तक कांग्रेस मे, यदि तत्कालीन भावना-शब्दों में कहा जाय तो, वस्तुतः क्रियाशील देशभक्तो का कोई विशेष स्थान नहीं था। कांग्रेस निष्क्रियतावादी नरम दलवालों की सस्था थी और उन्हींके हाथ में उसकी बागडोर थी। सन् १९१८ मे जब, भारतीय शासन-सुधारो के संबंध में, मांटेग्यू-चेम्सफर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई, तब कांग्रेस में इस प्रश्न पर विवाद उठ खड़ा हुआ कि इन सुधारों को अस्वीकार किया जाय या स्वीकार। नरम दल के कांग्रेस-जन इन सुधारों को कार्यान्वित करने के पक्ष मे थे। अगस्त १९१८ में बम्बई मे कांग्रेस का विशेप अधिवेशन हुआ और सुधारो को असन्तोप-जनक, अनुपयुक्त और अपर्याप्त बताया गया। नरम दल के लोग इस अधिवेशन में शामिल नहीं हुए। उन्होंने बम्बई में अखिल-भारतीय नरम दल सम्मेलन अलग किया। बाबू (बादके सर) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इसके सभापति बने। इस सम्मेलन मे यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस से पृथक् रहकर नरम दल अपना कार्य करे। दिसम्बर १९१८ में कलकत्ता में इस दल का फिर सम्मेलन हुआ। इसमें इसका नाम 'आल-इंडिया लिबरल फेडरेशन' रखा गया। बाद में नाम बदलकर भारतीय राष्ट्रीय उदार संघ (Indian National Liberal Federation) कर दिया गया।

इस दल का मुख्य उद्देश्य केवल 'वैध' साधनों के द्वारा वैधानिक आन्दो-

लन करना है। यह असहयोग, सत्याग्रह तथा 'सीधे कार्य' के विरुद्ध है। इसका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना है। यह दल सरकार की नीति, शासन-प्रबंध तथा वैधानिक समस्याओं पर सरकार की नीति की आलोचना करता है, असन्तोष प्रकट करता है तथा निंदा भी करता है। परन्तु निष्क्रियता और परमुखापेक्षिता ही इसकी राजनीति की रीढ़ है।

यह संस्था उच्च वर्ग के अर्द्ध-सरकारी तथा सरकार के कृपापात्रों और 'राजभक्तों' की सस्था है। इसमें देश के बडे-बडे पूँजीपति, बैंकर, मिल-मालिक शामिल हैं। जनता से इसका कोई सम्पर्क नहीं, और न जनता मे इस सस्था का कोई प्रभाव ही है। प्रति वर्ष दिसम्बर में देश के किसी बडे नगर मे इसके सालाना अधिवेशन होते हैं। वर्त्तमान मे प्रान्तीय धारासभाओं मे इस दल का कोई प्रभाव नहीं रहा। इस दल मे सर तेजबहादुर सप्रू, स्वर्गीय सर सी०वाई०चिन्तामणि और आनरेबल प० हृदयनाथ कुँज़रू आदि सरीखे विद्वान् और देशप्रेमी व्यक्ति भी हैं और रहे हैं, जिनपर कोई भी देश गर्व कर सकता है। सर चिर्राउरि यज्ञेश्वर चिन्तामणि ने तो, १६१६ के विधान के अनुसार बनी प्रान्तीय धारा-सभा मे, सदस्य की भाँति और उसके उपरान्त मिनिस्टर की हैसियत से, देश की प्रशन्सनीय सेवायें कीं, और 'लीडर' के सम्पादक की स्थिति मे तो उनकी देश-सेवायें अनुपाततः बहुमूल्य हुई हैं। उनकी अतुलनीय प्रतिभा और सम्पादन-निपुणता तथा मानसिक सदाशयता पर आज भी और आगामी स्वतन्त्र भारत समुचित रूप से गर्व करता रहेगा।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा—यह भारत की सबसे महान्, प्रभावशाली तथा शक्तिशाली राष्ट्रीय-संस्था है। सन् १८८५ में, ऐलन ओक्टेवियन ह्यूम नामक एक पेन्शनर सिविलियन ने, भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना मे प्रमुख भाग लिया। दिसम्बर १८८५ मे इसकी स्थापना बम्बई मे की गई। प्रारम्भ मे इसका उद्देश्य, ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया मे, भारतीयों के लिये क्रमशः अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करना था। पुलिस, सेना तथा सरकार के उच्च विभागो मे उच्च पदो पर भारतीयो की नियुक्तियो के लिये आन्दोलन करना ही इसका मुख्य उद्देश था। सन् १६०७ मे, सूरत-

क़ांग्रेस के अवसर पर, कांग्रेस में दो विचार-धारायें होगईं। क्रियात्मक राजनीतिक-दल के नेता लोकमान्य तिलक थे तथा निष्क्रिय परावलम्बी दल के नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आदि। सन् १६१६ मे इन दोनो दलो मे मेल होगया और कांग्रेस मे एक प्रकार से क्रियाशील राजनीतिक दल का प्राधान्य होगया। लोकमान्य के बाद श्रीमती ऐनी बीसेण्ट ने देश को क्रियाशीलता का पाठ पढ़ाया। उन्होने १६१६ में होमरूल लीग स्थापित की और प्रायः दो वर्ष तक भारतोद्धार के लिये बलिदानपूर्वक प्रयत्नशील रही, जिसके लिये राष्ट्र उनका आभारी रहेगा। सन् १६१८ मे जब कांग्रेस ने प्रस्तावित मांटेग्यू-चेम्सफ़र्ड-सुधारो पर असन्तोष प्रकट किया, तब नरम दल के नेताओ ने अपनी अलग संस्था स्थापित की। सन् १६१६ मे महात्मा गांधी कांग्रेस के सामीप्य मे आये, जब रौलट क़ानून के विरुद्ध उन्होने देशव्यापी सत्याग्रह छेड़ा। १६२० मे स्पष्ट रूप से कांग्रेस की बागडोर गान्धीजी के हाथ में आगई। तब से तीन बार सत्याग्रह आन्दोलन किया जा चुका है: पहले सन् १६२०-२१ मे असहयोग-आन्दोलन चला, जिसकी समाप्ति पर, देश मे साम्प्रदायिक कलह के बढ़ जाने से, गान्धीजी कांग्रेस के व्यावहारिक क्षेत्र से पृथक् होकर, साबरमती सत्याग्रहाश्रम मे रहकर, खादी-प्रचार, अछूतोद्धार, हिन्दू-मुसलिम ऐक्य आदि रचनात्मक कार्यक्रम का संचालन करने लगे। परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दो विचारधारायें, इस अवसर पर, कांग्रेस मे होगई थी। सन् १६२२ मे, परिवर्तनवादियो मे अग्रगण्य स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजनदास, ने कांग्रेस के समक्ष एक नई विचार-धारा रखी और, धारा-सभाओ मे घुसकर भीतर से असहयोग करने अथवा, देश की इच्छा के विरुद्ध चलाये जानेवाले, शासन मे अडगा लगाने की नीति कांग्रेस द्वारा १६२३ मे स्वीकार करली गई। स्वराज-दल बना, चुनाव लडे गये और देश को उनमे सफलता मिली, किन्तु अडगा-नीति असफल रही। १६२६ मे, चुनाव के अवसर पर, मालवीयजी और लाला लाजपतराय ने 'स्वतन्त्र कांग्रेस दल' बनाया और उन्होने अपने चुनाव अलग लडे। लेकिन कुछ अवसरवादियों के भले के सिवा इन दोनो बुजुर्गों को अपने प्रयास में कामयाबी नही मिली।

देश आन्दोलन की स्थिति में रहा। १९२८ में साइमन जॉंच-कमीशन आया, जिसका कांग्रेस द्वारा बहिष्कार किया गया। फिर भी उसकी रिपोर्ट तैयार हुई और साथ ही नेहरू कमिटी की रिपोर्ट भी। सरकार ने नेहरू रिपोर्ट की सिफारशों को नहीं माना। फलतः, रिपोर्ट पेश करते समय ब्रिटिश सरकार को दीगई पूर्व सूचना के अनुसार, सन् ३० में नमक-सत्याग्रह शुरू कर दिया गया। सन् १९३१ मे चुनाव फिर आये। कांग्रेस ने इनमें क्रियात्मक सहयोग नहीं दिया। किन्तु प्रतिक्रियावादियो को धारासभाओं मे घुसने से रोकने के लिये, व्यक्तिगत रूप से, कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओ ने, जगह जगह से, अछूत और निम्न कोटि के कहे जानेवाले देशवासियों को उम्मेद्वार खड़ा किया और चुनावों मे यथेष्ट सफलता प्राप्त की। मेहतर तक आनरेबल मेम्बर बन गये। सन् ३१ मे भद्र अवज्ञा आन्दोलन चला और गान्धी-इरविन समझौते के रूप मे वह व्यवहारतः समाप्त नहीं हुआ, क्योंकि सरकार का दमनकारी रुख नहीं बदला था। सन् १९३४ मे कांग्रेस ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। इसके बाद जब नया शासन-विधान बनाने की तैयारी की जारही थी तब कांग्रेसी नेताओं को प्रलोभन उत्पन्न हुआ, अथवा मोर्चे से निराश लौटे हुए एक सेनानी ने दूसरे मोर्चे को आजमाने की बात फिर सोची। तय किया गया कि नवीन असेम्बलियो मे प्रवेश कर अड़गा नीति का अवलम्बन किया जाय। सन् १९२६ की भॉति गान्धीजी उदारतापूर्वक इस दल के समक्ष फिर झुके। सत्याग्रह के स्थगित होजाने से अब कांग्रेस के समक्ष कोई क्रान्तिकारी कार्यक्रम नही रहा था। इसलिये महात्मा गान्धी तो वर्धा को अपना केन्द्र बनाकर ग्राम-सुधार तथा ग्रामोद्योग आन्दोलन के सचालन मे लग गये और दूसरी ओर विधानवादी मनोवृत्ति के कांग्रेसी, जिनका कांग्रेस मे विशाल बहुमत होगया था, सन् १९३४ के केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव की तैयारी मे लग पडे।

डा० विधानचन्द्र राय, डा० असारी, श्री भूलाभाई देसाई, प० गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री सत्यमूर्ति विधानवादी-दल के प्रमुख नेता थे। कांग्रेस-पार्लमेंटरी बोर्ड बनाया गया और केन्द्रीय चुनाव मे सफलता प्राप्त करने के लिये ज़ोरदार आन्दोलन हुआ। कांग्रेस-दल के ४४ सदस्य केन्द्रीय असेम्बली में चुने गये। यह केन्द्रीय असेम्बली का सबसे बड़ा दल था। कांग्रेस मे कुछ व्यक्ति

ऐसे भी थे जिन्हे न विधानवाद पसद था और न गांधीजी का ग्राम-सुधार तथा ग्रामोद्योग कार्यक्रम हो। अतः उन्होने समाजवादी विचारधारा को अपनाया। वे मज़दूरों तथा किसानो का संगठन करने मे लग पडे तथा समाजवादी दल सगठित हुआ। इस दल के अग्रगण्य आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री जयप्रकाशनारायण तथा श्री सम्पूर्णानन्द आदि थे।

महत्मा गांधी ने यद्यपि अपना ग्रामोद्योग सघ जारी रखा तथा खादी-प्रचार आदि रचनात्मक कार्यक्रम पर ज़ोर दिया, परन्तु उन्होने विधानवादियों को आशीर्वाद दिया। किन्तु विधानवादियो को केन्द्रीय असेम्बली से फिर भी निराश लौटना पडा। सन् १६३६ के चुनाव मे कांग्रेसी उम्मीदवारो की ८ प्रान्तो मे, भारी बहुमत से, प्रान्तीय असेम्बली के चुनावो मे, जीत हुई, और मार्च १६३७ मे, गांधीजी के प्रभाव से, यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि पद-ग्रहण किया जाय। तीन मास तक गवर्नरो के विशेषाधिकारो के प्रश्न के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध मे कांग्रेस और सरकार के बीच झझट चलता रहा। एक प्रकार का वैधानिक सकट उत्पन्न होगया। गवर्नरो ने अस्थायी मन्त्रि-मण्डल बना लिये, परन्तु असेम्बली के अधिवेशन तीन मास तक आमन्त्रित न किये जासके। अन्त मे गवर्नरो को स्पष्ट आश्वासन देना पडा और तब कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बने।

सन् १६३६–'३७ मे लखनऊ तथा फैज़पुर-कांग्रेस के सभापति पं० जवाहर-लाल नेहरू थे। सन् १६३८ मे श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापति चुने गये। सन् १६३६ में श्री बोस के चुनाव पर बडा विवाद खडा होगया। महात्मा गाधी, जो कांग्रेस के एकमात्र सचालक हैं, नही चाहते थे कि इस बार पुनः श्री बोस सभापति चुने जायँ।

सब गाधीवादी नेताओ तथा उनके अनुयायियो ने डा० पट्टाभि सीता-रामय्या को, सुभाष बाबू के विरुद्ध, खडा किया। परन्तु खुल्लमखुल्ला गांधीजी की ओर से यह घोषणा नही की गई कि डा० सीतारामय्या को उन्होने खडा किया है। ऐसा वह कर भी नही सकते थे। अन्त मे श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापति चुने गये। इससे यह सिद्ध होगया कि कांग्रेस मे वाम-पत्ती-दल का प्राधान्य होगया था। जनता गांधीजी की नीति से सन्तुष्ट नही थी। चुनाव

के परिणाम के प्रकाशित होजाने के बाद महात्मा गाधी ने अपने एक वक्तव्य मे डा० सीतारामैया की पराजय को अपनी पराजय बतलाया। कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों से गाधीजी ने त्याग-पत्र दिला दिये और यह काग्रेस का आन्तरिक सकट तथा गाधीवादी नेताओ का श्री बोस के साथ असहयोग उस समय तक बराबर जारी रहा जब तक कि, मई १६३६ में, उन्होंने राष्ट्रपति के पद से त्याग-पत्र नही देदिया। सुभाष बाबू ने काग्रेस से अलग होकर 'फारवर्ड ब्लाक' बनाया। चुनाव-सम्बन्धी एक वक्तव्य के कारण सुभाष बाबू के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही कीगई और वह काग्रेस से पृथक् कर दिये गये। इसके बाद शेष समय के लिये बाबू राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति चुने गये। सन् १६४० के अधिवेशन (रामगढ) के लिये मौलाना अबुल कलाम आज़ाद राष्ट्रपति निर्वाचित हुए, जो अब तक हैं।

कांग्रेस का सालाना अधिवेशन प्रति वर्ष नियत स्थान पर होता रहा है और सन् १६३७ से किसी ग्राम मे होने लगा है। इसमे १ लाख से ३ लाख तक काग्रेस-जन तथा जनता भाग लेती है। एक सप्ताह तक बड़ा समारोह रहता है। सन् '४० के बाद, विशेष परिस्थितियो के कारण, काग्रेस का अधिवेशन नहीं हुआ है। (विशेष जानकारी के लिये पढ़िये—'भारत')

भारतीय व्यापारी-मण्डल संघ (फेडरेशन ऑफ् इंडियन चेम्बर्स आफ् कामर्स)—बम्बई के प्रतिष्ठित व्यापारी सर फजलभाई करीमभाई ने, सन् १६१३ मे, इडियन कामर्स काग्रेस नामक सस्था स्थापन करने का आयोजन किया, जिसका उद्देश्य भारतीय व्यापार के हितो की रक्षा करना था। सन् १६१५ मे इस काग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई मे हुआ, जिसके स्वागताध्यक्ष सर दीनशाह वाचा थे, और सर फजलभाई करीमभाई अध्यक्ष। उक्त काग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा एसोशियेटेड चेम्बर आफ् कामर्स की स्थापना के लिये एक प्रान्तीय कमिटी नियुक्त की। सदस्य बनाने तथा रजिस्ट्री कराने का कार्य इस समिति को सौपा गया। किन्तु इसका कार्य अनेक वर्षों तक शिथिल रहा। सन् १६२६ मे, विनिमय-दर के महत्वपूर्ण प्रश्न के उपस्थित हो जाने के कारण, व्यापारी-समाज फिर जाग्रत होगया और सन् १६२६ मे ली तथा १६२७ में कलकत्ता की व्यापारिक काग्रेसो मे व्यापक व्यापारी-

मण्डल की स्थापना की तजवीज़ कीगई। फलतः १ जनवरी १६२७ को फेडरेशन आफ् इंडियन चेम्बर्स आफ् कामर्स की स्थापना कीगई। आयात तथा निर्यात व्यापार की उन्नति करना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है।

इस अखिल भारतवर्षीय व्यापारी-सघ के दो प्रकार के सदस्य हैं: (१) प्रान्तीय चेम्बर्स आफ् कामर्स, तथा (२) व्यापारी समितियाँ। इस संस्था के सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ तथा परिषदो में प्रतिनिधि के रूप में भाग लेते हैं। यह भारत के व्यापारियो की सर्वोच्च प्रतिनिधि-सस्था है।

भारतीय सेना—भारत की सेना का वर्गीकरण इस प्रकार है:—(१) ब्रिटिश सेना, (२) भारतीय सेना, (३) सहायक सेना, (४) भारतीय देश-रक्षिणी (टैरीटोरियल) सेना, (५) भारतीय रियासतो की सेना। वर्त्तमान युद्ध के आरम्भ से पूर्व भारत के सेना-विभाग का संचालन इडिया आफ़िस का युद्ध-मत्री (मिलिटरी सेक्रेटरी) करता है। भारत में एक प्रधान सेनाध्यक्ष होता है। वह समस्त सेनाओ का सचालन करता है। यहाँ सेना तीन प्रकार की है:—थल-सेना, जल-सेना तथा हवाई-सेना। सन् १६३७ में सेना के अधिकारी तथा सैनिक इस प्रकार थे—(१) भारतीय थल-सेना:—ब्रिटिश अफ़सर (किंग्स कमीशन) ६,५७०; भारतीय अफसर (भारतीय कमीशन) १६१; ब्रिटिश सैनिक ५५,१८७; भारतीय अफ़सर (वाइसराय कमीशन) ४,२२५; भारतीय सैनिक १,३६,०७४; क्लर्क आदि १०,०११; नौकर ३२,८३६ तथा भारतीय सुरक्षित सैनिक ४१,८८७। (२) हवाई-सेना:—ब्रिटिश अफसर २६०; चालक १,८८७; देशी अफ़सर और सैनिक ६४५; सामान्य नौकर ५३०। (३) जल-सेना:—मुख्य अफ़सर ३, अन्य अफ़सर १५, सी ट्रान्सपोर्ट स्टाफ ३, सिविल गज़टेड अफसर ४, कप्तान ८, कमांडर १८, लेफ़्टिनेन्ट कमाण्डर ५०, इंजीनियर कप्तान १३, इं० लेफ़्टिनेट कमाण्डर ३७, नाविक १७, अन्य २७, जहाज़ १६।

युद्ध के आरम्भ होने के बाद से भारत मे थल-सेना, जल-सेना तथा नभ-सेना, तीनो के विस्तार मे भारी प्रयत्न किया गया और किया जा रहा है। कमीशन-याफ़्ता भारतीय अफ़सर अब सेना मे अधिक सख्या मे लिये जा रहे हैं। लाखो भारतीय सैनिक इस समय समुद्र पार, बरतानवी साम्राज्य के अन्य भागो में, लड़ रहे हैं।

सन् १६४१-४२ के बजट में, भारतीय सेना के व्यय के लिये, कुल मिलाकर, ८४ करोड़ १३ लाख रुपये मज़ूर किये गये थे। युद्ध-सामग्री तथा अस्त्र-शस्त्र-निर्माण के लिये भी कारखाने खोले जा रहे हैं। सन् १६४१ से भारत में हवाई जहाज भी तैयार होने लगे हैं।

भारतीय हिन्दू महासभा—अप्रैल १६१५ मे हिन्दू महासभा की स्थापना हुई। प्रारम्भ मे इसका उद्देश हिन्दू-समाज की सामाजिक उन्नति करना था, किन्तु इस दिशा में महासभा कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सकी। बहुत कम इसका प्रचार था। किन्तु असहयोग के बाद जब देश में साम्प्रदायिक समस्या उग्र हो उठी, तो हिन्दू महासभा मे भी जान पडी और सामाजिक क्षेत्र को छोडकर महासभा धीरे-धीरे राजनीतिक अखाडे मे उतर आई। सन् १६२६ में, प्रान्तीय कौंसिलो के चुनावो मे, महासभा की ओर से तो नही किन्तु 'स्वतन्त्र काग्रेस दल' के नाम पर, उम्मीदवार खडे किये गये। तब से ही महासभा मुसलिम लीग की प्रतिस्पर्द्धा में एक राजनीतिक तुर्की-ब-तुर्की सस्था के रूप मे परिणत होगई है, यद्यपि है मुसलिम लीग की भाँति यह एक साम्प्रदायिक सस्था ही।

महामना प० मदनमोहन मालवीय बहुत वर्षों तक इसके संरक्षक रहे। इसके बाद लाला लाजपतराय तथा भाई परमानन्द ने इस सस्था को पुनर्संगठित कर इसे नवजीवन प्रदान किया। हिन्दू महासभा का लक्ष्य भारत में पूर्ण-स्वराज की स्थापना है। महासभा ने १६२८ मे साइमन कमीशन का बहिष्कार किया। साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली का इसने सदैव घोर विरोध किया है। राजनीति मे इसका दृष्टिकोण सदैव राष्ट्रीय रहा है और हिन्दू-जाति, हिन्दू-सस्कृति, हिन्दू-सभ्यता तथा हिन्दू-राष्ट्र के गौरव और उत्थान की रक्षा और भारत के लिये सब उचित उपायों द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना महासभा का लक्ष्य है। यद्यपि दिसम्बर '४२ के अधिवेशन मे महासभा घोषणा कर चुकी है कि यदि ब्रिटिश सरकार ने तत्काल देश को उसका अधिकार नही सौंपा तो वह अप्रैल '४३ के बाद 'सीधी कार्यवाही' का प्रयोग करेगी।

जब से वीर विनायक दामोदर सावरकर हिन्दू महासभा के अध्यक्ष चुने

गये हैं, तब से हिन्दू महासभा के आन्दोलन मे एक नवीन चेतना, जीवन और जागृति आगई है। हिन्दू महासभा हिन्दुओ को एक राष्ट्र मानती है तथा मुसलमानो को अल्प-सख्यक जाति। वह अल्प-सख्यको के धर्म, सस्कृति, भाषा आदि की सुरक्षा के लिये आवश्यक सरक्षण की पोषक और मुसलमानो की विद्वेषात्मक पाकिस्तान योजना का घोर विरोध करती है।

भारतीय हिन्दू लीग—पाकिस्तान की योजना का ज़ोरदार विरोध करने के उद्देश्य से, सन् १९४० मे, लखनऊ मे श्री (अब आनरेबल्) एम० एस० अणे के सभापतित्त्व मे, अ० भा० हिन्दू लीग की स्थापना कीगई। प्रत्येक प्रात मे इसकी शाखाएँ बताई जाती हैं। मि० अणे सन् १९४१ मे सरकार मे चले गये और अब यह संस्था नाममात्र की रहगई है।

भूमध्यसागर—यह योरप के दक्षिण तथा अफ्रीका के मध्य मे है। इस के उत्तरी तट पर स्पेन, फ्रांस, इटली, अलबानिया, यूनान, तुर्की आदि देश हैं। इसके दक्षिणी तट पर मिस्र, लीबिया, ट्यूनिशिया, अलजीरिया तथा मरक्को हैं। इसका पश्चिमी द्वार जिब्राल्टर तथा पूर्वी मार्ग स्वेज़नहर है। भूमध्य सागर पर आधिपत्य जमाने के लिये युद्ध के आरम्भिक-काल से ही इस सागर के तट पर धुरी और मित्र-राष्ट्रों मे युद्ध हो रहा है।

भूलाभाई जे० देसाई—बम्बई के विख्यात वकील और केन्द्रीय असेम्बली-कांग्रेस-दल के नेता; जन्म १८७७ ई०; कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य रहे; गुजरात कालिज अहमदाबाद मे दो साल (१९१७-१९१९) तक प्रोफेसर थे। होम रूल लीग आन्दोलन मे भाग लिया। सन् १९२६ में बम्बई सरकार के एडवोकेट-जनरल हुए। सन् १९२८ मे बारदोली के किसानो की ओर से ब्रुमफील्ड कमिटी के समक्ष वकालत की। गांधी-इरविन समझौते के बाद पुनः बारदोली जाँच-कमिटी के सामने पेश हुए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन-काल मे, सन् १९३० मे, स्वदेशी सभा संगठित की। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में १ साल की क़ैद तथा १०,०००) जुर्माने की सजा मिली। अनेक बार जेल भुगता गया। कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्ड की स्थापना में विशेष प्रयत्न किया और उस के मंत्री तथा प्रान्तीय अध्यक्ष रहे। सन् १९३४ से केन्द्रीय धारासभा के सदस्य हैं। सितम्बर १९४० में जब युद्ध-कर तथा युद्ध-बजट पर असेम्बली में

विचार किया गया तो काग्रेस-दल ने, एक वर्ष की अनुपस्थिति के बाद, श्री देसाई के नेतृत्व में, अधिवेशन में भाग लिया। धारासभा में आपने काग्रेस की युद्ध-सबधी नीति का स्पष्टीकरण किया। बजट असेम्बली द्वारा अस्वीकृत हुआ और वायसराय को अपने विशेषाधिकार से उसे स्वीकार करना पड़ा। आपका भाषण युक्तिपूर्ण और वकीलाना होता है। युद्ध-विरोधी सत्याग्रह १६४० मे भी मि० देसाई ने भाग लिया। ८ अगस्त '४२ की रात को काग्रेस कार्यकारिणी की बैठक मे 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। आप कार्य-समिति के सदस्य थे, किन्तु बहुत पहले स्तीफा भेज चुके थे। कदाचित् इसी कारण आपको क़ैद नही किया गया है, और आजकल आपही काग्रेस के प्रमुख व्यक्ति हैं, जो जेल के बाहर हैं।

म

मकदूनिया—(मैसीडोनिया)। बलकान प्रायद्वीप के मध्य मे स्थित। इसका सामरिक महत्व अत्यधिक है। कहावत है कि "वरडर घाटी का अधिपति बलकान-राष्ट्र-समूह का स्वामी है।" मकदूनिया जातीय, भाषा-सम्बन्धी या राजनीतिक इकाई कभी नही रहा। पहले इस पर तुर्किस्तान का शासन था। बलगारिया, सर्बिया तथा यूनान भी, इसे हस्तगत करने के लिये, लड़ते रहे हैं। मक़दूनिया के पर्वतो मे इन चारों राष्ट्रों की सेनाएँ शताब्दी तक लड़ती रही हैं। इस कारण यहाँ की जनता मे इन चारो का सम्मिश्रण है।

भाषा तथा बोलियो में भी भिन्नता है : एक गॉव कुछ बोलता है, दूसरा कुछ। जिन देशो को इसमे गिना जाता है, उनको मिलाकर जनसंख्या २० से ४० लाख तक है। द्वितीय बलकान-युद्ध (१६१३) के बाद मक़दूनिया को सर्बिया तथा यूनान ने आपस में बॉट लिया। सन् १६०० ई० मे मक़दूनिया मे तुर्क-शासन को उखाड फेंकने के लिये एक गुप्त संस्था बनी। इसके सदस्य 'कोमिताजी' कहलाते थे। १६१२ के तुर्क-बलकान-युद्ध मे कोमिताजियो ने बलकान-राष्ट्रो का साथ दिया। किन्तु पीछे यह लोग सर्बियनो और यूनानियो से असन्तुष्ट होगये। पिछले युद्ध के बाद तक यह स्थिति रही और बलग़ारिया अस्त्र-शस्त्रादि तथा इटली रुपए-पैसे से इनकी मदद करते रहे। कोमिताजी सर्बियन गॉवो पर हमला करते, विरोधियो को मारते और राजस्व वसूल करते थे। इन्होने समानान्तर सरकार क़ायम करली थी। विरोधियो को अपनी अदालतो से मौत की सज़ा देते थे। पीछे इस दल मे भी विवाद उठ खडा हुआ और, १६३४ में, बलग़ारिया की उथल-पुथल के समय, यह दल छिन्न-भिन्न होगया।

अप्रैल १६४१, मे जब जर्मनी ने यूगोस्लाविया और यूनान पर चढाई की तो उन्होने यूगोस्लावी-मक़दूनिया और यूनानी-मक़दूनिया को भी अधिकृत कर लिया।

मंगोलिया (भीतरी भाग)—क्षेत्रफल लगभग ४,००,००० वर्गमील, जनसख्या २,५०,०००; चीन की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित; ख़ासकर ख़ानाबदोश मंगोलियनो से बसा हुआ; अनेक राजाओ द्वारा शासित; नाम-मात्र के लिये चीन का प्रान्त, किन्तु सन् १६३२ से जापान के प्रभाव मे, जहाँ जापान, मंचूको की भॉति, कठपुतली-सरकार क़ायम करना चाहता है। सामरिक-दृष्टि से महत्त्वपूर्ण देश।

मंगोलिया (बाहरी)—सरकारी नाम मंगोलियन प्रजातंत्र; क्षेत्र० १५,००,००० वर्ग०; जन० ५,५०,०००; राजधानी उलान बतोर। १६११ ई० तक यह देश चीन के अधीन था, बाद को स्वाधीन होगया। लामा महन्तो की सरकार थी और 'हुतुकतू' या प्रधान लामा यहाँ शासन करता था। सन् १६२४ में, सोवियत रूस की सहायता से, मंगोलिया के प्रजा-दल ने क्रान्ति

की और प्रजातंत्र की स्थापना। तब से बाहरी मगोलिया, एक प्रकार से, सोवियत रूस के आश्रित है। चीन बराबर इसका दावा करता है। सन् १९२४ की रूस-चीना-सन्धि मे नाममात्र को इसे मान भी लिया गया है। बाहरी मगोलिया की सोवियत रूस के साथ सन्धि है और मचूको से इस देश पर किये गये जापानी-हमलों का इन दोनो देशो ने मुक़ाबला किया है। यहाँ एक छोटी पर आधुनिक ढंग की सेना है। शासन-प्रणाली सोवियत ढाँचे की है। बड़ी 'हुरुलदान' यानी मगोलिया की रूसी ढंग की काग्रेस छोटी 'हुरुलदान' या कार्य-कारिणी समिति का चुनाव करती है, और यह समिति सरकार को चुनती है। मंगोलियन चीनियो से विभिन्न हैं और तुर्की से मिलती-जुलती भाषा बोलते हैं। साइबेरिया की सीमा पर स्थित होने के कारण यह देश, रूस के लिये, विशेष सामरिक महत्त्व का है। आबादी अधिकाश ख़ानाबदोश और पशु-पालन पर जीवित रहनेवाली है, इसलिये समाजवादी - कार्यक्रम का प्रश्न ही नहीं उठता।
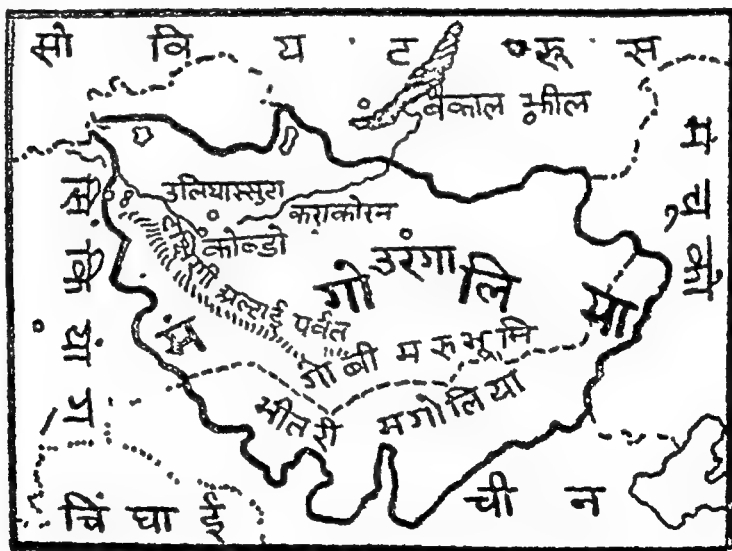
मंचूको—चीन का पूर्वकालिक मचूरिया प्रान्त; क्षेत्र० ४,६०,००० वर्ग०; जनसख्या ३,००,००,०००। जापान का सन् १९०५ से ही इस प्रान्त पर दाँत था, जबकि, पीकिन-सन्धि के अनुसार, उसे वहाँ विशेषाधिकार मिल चुके थे। १९१५ ई० मे हुई सन्धि के अनुसार जापान को विशेष रिआयती अधिकार मचूको में और मिले। इस प्रदेश पर रूस भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता

था। उसने इस प्रान्त में पूर्वी-चीना-रेलवे बनाई थी जो व्लाडीवोस्टक तक जाती है। १८ सितम्बर १६३१ को, क़ब्ज़ा करने के लिये, जापान ने अपनी सेनाएँ मंचूरिया में भेजदीं। चीनी लडे, किन्तु हार गये। १८ फरवरी १६३२ को चीनी सेनाएँ इस प्रान्त से निकाल दीगईं। मंचूरिया तथा जेहोल प्रान्तो को मिलाकर 'मंचूको' नाम से स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया गया। मंचू-वंश का अन्तिम चीना सम्राट्, पू यी, जो १६११ में, बाल्यावस्था मे ही, राज-सिहासन से उतार दिया गया था, तथा जापान मे जिसका पालन-पोषण हुआ था, मंचूको का राष्ट्रपति बना दिया गया। १ मार्च १६३४ को, कांग् तेह नाम रखकर, उसने सम्राट् पद धारण किया। यह राज्य नाम मात्र को स्वतंत्र है। इस पर जापान का पूर्ण नियत्रण है। जापानी सेना रहती है और हर सरकारी सीग़े में जापानी सलाहकार तैनात हैं। देश की कृषि और खनिज उद्योगो को जापानी बढ़ा रहे हैं। अनेक जापानी धन्धे वहाँ क़ायम होगये है। किन्तु प्रवासी जापानियो को वहाँ का जलवायु अनुकूल नहीं है। रूस ने चीनी रेलवे लाइन, मार्च १६३५ में, १ करोड पौंड मे जापान को बेचदी। मंचूको-सरकार को न तो चीन ने स्वीकार किया है और न जर्मनी, इटली, स्पेन तथा त्रिगुट के हिमायती छोटे देशो के सिवा अन्य देशो ने। सोवियत रूस, अप्रैल १६४१ मे जापान के साथ की हुई निरपेक्षता-सन्धि के आधार पर, मंचूको की अखण्डता को स्वीकार कर चुका है। दिसम्बर १६४१ मे मंचूको, बरतानिया और अमरीका के विरुद्ध जापान के साथ युद्ध मे शामिल होचुका है।

मज़दूर दल—बरतानवी 'समाजवादी' दल; द्वितीय साम्यवादी अन्त-

राष्ट्रीय-सघ का सदस्य । सन् १६३५ के पार्लमेन्ट के चुनाव मे कुल २,२०,००,००० मतो मे से ८३,२५,००० प्राप्त किये तथा ६१५ कामन्स सभा के सदस्यों मे से १६८ सदस्य चुने गये। इस दल मे मजदूर-सघो (ट्रेड यूनियनो), समाजवादी तथा सहकारी सघो और स्थानिक राजनीतिक सस्थाओ का प्रतिनिधित्व है। कार्य-कारिणी मे मज़दूर-संघो के सदस्यो का बहुमत है। इस दल का कार्य-क्रम फेबियन, नरम (माडरेट), विकासवादी तथा प्रजातन्त्रात्मक है। इसका उद्देश है उद्योग-धन्धों और यातायात का राष्ट्रीयकरण, सुगठित अर्थ-व्यवस्था और सर्वहितकारी आधार पर वर्ग-भेद का उन्मूलन। इन उद्देशों की सिद्धि का आधार क्रान्ति नहीं बल्कि क्रमिक विकास, सामाजिक क़ानून और राष्ट्र के आर्थिक-जीवन पर राज्य का धीरे-धीरे नियन्त्रण माना गया है। यह मार्क्सवाद तथा क्रान्ति से बहुत दूर है। यह दल ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह (साम्राज्य) को बरक़रार रखने का समर्थक है, परन्तु भारत को स्वराज दिये जाने तथा अन्य देशो को, जिन पर बरतानिया का आधिपत्य है, क्रमिक स्वराज्य दिये जाने के पक्ष मे है। इसके "तात्कालिक" कार्य-क्रम मे यह कार्य शामिल है : राजस्व, भूमि, यातायात, कोयला, बिजली पर राष्ट्रीय नियन्त्रण, आयात-व्यापार पर नियन्त्रण, कम घण्टों के सप्ताह, मकानों की व्यवस्था, सामाजिक क़ानूनों का निर्माण तथा बेकारो की सहायता। दल ने उग्र शान्तिवाद और युद्ध-विरोधी अपने पहले उद्देशो को, नात्सी खतरे की आशंका से, बहुत पहले ही, छोड़ दिया है और वह बरतानिया की वैदेशिक-नीति मे नात्सी-विरोध को सबल बनाने का प्रचार भी पहले से ही कर रहा है। मजदूर-सरकार दो बार ब्रिटेन मे शासन कर चुकी है : सन् १६२४ मे और १६२६—३१ मे। किन्तु दोनो बार, अल्पमत मे रहने के कारण, राष्ट्रीयकरण के अपने उद्देश के लिये वह कुछ न कर सकी। दल के तात्कालिक नेता, मृत जेम्स रैम्ज़े मैक्डानल्ड, दोनो बार प्रधान-मन्त्री बने। शासन-सत्ता में बने रहने से उन्हे मोह होगया। १६३१ की नेशनल गवर्नमेन्ट मे, जो वस्तुतः दक़ियानूसियो की सरकार थी, उन्होने बने रहना ही तय किया—और प्रधान-मन्त्री की हैसियत से। इस पर दल ने उन्हें निकाल दिया। तब उन्होने छोटा-सा राष्ट्रीय मज़दूर दल कायम किया। सन् १६३१ से मज़दूर दल के सदस्य सरकार मे पद-ग्रहण के विरोधी

हैं; यहाँ तक कि वर्त्तमान युद्ध आरम्भ होजाने पर चेम्बरलेन की सरकार मे शामिल होने से भी उन्होने इनकार कर दिया, अगर्चे युद्ध-प्रयत्नो में सरकार से पूर्ण सहयोग करते रहे। चेम्बरलेनी सरकार के हटने के बाद, जून १६४० मे, जब चर्चिल की सर्व-दल-सरकार बनी, तब युद्ध-मन्त्रिमण्डल के ६ स्थानो मे से दो मज़दूर-दली सदस्यो (एटली और ग्रीनवुड) को मिले तथा दल के कई सदस्य मन्त्री बनाये गये। दल के प्रमुख नेता मेजर सी० आर० एटली (लार्ड प्रिवी सील) हैं; दल के नेता हैं आर्थर ग्रीनवुड (मिनिस्टर); दल के उप नेता हरबर्ट मारीसन (स्वदेश मन्त्री), ह्यू डाल्टन (सामरिक मितव्ययिता-मन्त्री), लार्ड स्नैल, लार्ड पैसफ़ील्ड, पी० नाइल-बेकर, ऐलिन विल्किन्सन, जे० एस० मिडिल्टन, सर वाल्टर सिट्राइन (मज़दूर-संघ के प्रधान मन्त्री), जे० आर० क्लाइन्स, अरनैस्ट बीविन (मिनिस्टर मज़दूर विभाग)।

मत्सुओका—१६४० तक जापान का वैदेशिक मन्त्री, जिसकी आकांक्षा और प्रयत्न से ही जापान और जर्मनी, इटली का गँठजोडा हुआ। मत्सुओका अत्यन्त महत्वाकांक्षी है और वह जापान का हिटलर बनने की फिराक़ में रहा है। यद्यपि इस समय वह जापान का वैदेशिक मन्त्री नही है, किन्तु जापान आज उसीकी योजना को कार्यान्वित कर रहा है। एम० मत्सुओका, अपने बचपन मे ही, अमरीका चला गया था। वही के एक विश्वविद्यालय मे उसने शिक्षा पाई, अँगरेज़ी का वह विद्वान् है।

मालवीय, महामना पंडित मदनमोहन—देश के अवसर-प्राप्त राष्ट्रीय नेता। जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई०। म्योर सेंट्रल कालिज, प्रयाग, मे शिक्षा प्राप्त की। सन् १८८४ से १८८७ तक गवर्नमेण्ट हाई स्कूल मे अध्यापक रहे। कालाकाँकर के हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' तथा प्रयाग के साप्ताहिक 'इंडियन ओपिनियन' का संपादन किया। सन् १८६१ मे क़ानून की परीक्षा पास की। सन् १६०२–१२ तक संयुक्त-प्रदेश की प्रान्तीय धारासभा के सदस्य रहे। कांग्रेस की दूसरी बैठक से ही आप उसमे सम्मिलित रहे। सन् १६०६ और १६१८ मे उसके अध्यक्ष हुए। सन् १६३२-१६३३ मे भी वे इस महान पद पर चुने गये, किन्तु अधिवेशन से पहले ही गिरफ़तार कर लिये गये। १६१०–१६ तक इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल (अब केन्द्रीय असे-

म्बली) के सदस्य रहे। सन् १६१६ में रौलट मसविदे के विरोध मे त्याग-पत्र दे दिया। सन् १६१६-१६ तक भारतीय औद्योगिक कमीशन के सदस्य रहे। इसमे आपने, मत-विरोध के कारण, अलग अपनी रिपोर्ट लिखी। सन् १६१६ मे काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय की स्थापना की और प्रारम्भ से ही वह उसके वाइस-चासलर रहे। सन् १६२२-२३ मे हिन्दू महासभा के प्रधान चुने गये। सन् १६२४ से केन्द्रिय व्यवस्थापक सभा के सदस्य और वहाॅ विरोधी दल के नेता रहे। तटकर (टैरिफ)-बिल के विरोध मे त्याग-पत्र दे दिया। सन् १६३३ के सितम्बर मे, जब महात्मा गाधी ने यरवदा-जेल मे अछूत कहे जाने-वाले वर्ग को उसके विशाल वर्ग से काटनेवाली योजना के सम्बन्ध मे, साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध, आमरण व्रत रखा तब तुरन्त ही मालवीयजी बम्बई गये और वहाँ हिन्दू नेताओं का सम्मेलन किया, जिसके अध्यक्ष मालवीयजी ही थे। फलतः समझौता होगया। आप काग्रेस को मा के समान आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे हैं। किन्तु अपने विचारो के प्रकट करने में वे कभी नही चूके। पूर्वकाल मे जब काग्रेस नरमदलवालों की संस्था थी, उस समय, पूर्णरूप से नरमदल से अलग न रह सके। गाधीजी के उदय के समय भी आपका काग्रेस से मतभेद हुआ, जिसके कारण आप असहयोग-आन्दोलन से अलग ही नही रहे बल्कि उसका विरोध किया। किन्तु सन् '३०-३३ मे पूर्ण रूप से देश का नेतृत्व किया और जेल-यात्रा की। तदुपरान्त भी ऐसे अवसर आते रहे जब आप काग्रेस की, विशेषकर उसकी मुसलमानो के प्रति, नीति से असहमत रहे। आपका हिन्दू-भाव सदैव ही जाग्रत रहा है। आपके जीवन का शिक्षा-प्रसार-सम्बन्धी रचनात्मक कार्य, हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में, चिर-स्थायी है। यह संस्था महान् है, और भविष्य मे भी उससे अनेक आशाएॅ हैं, किन्तु मालवीयजी के लिये वह जिस प्रकार गले का हार बनी, उससे उनका कार्य क्षेत्र समस्त देश के सुविशाल क्षेत्र से सिमट कर बहुत कुछ काशी विश्वविद्यालय तक सीमित हुआ। सम्भवतः इसीलिये यह कभी-कभी सुनाई पड़ता है कि यदि उन्होने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना न की होती तो आज, शरीर से जीर्ण होते हुए भी, न केवल मालवीयजी बल्कि उनके कारण भारतीय राष्ट्र -भी अधिक महान् होता। महामना मे वह प्रेरक शक्ति है।

फिर भी मालवीयजी महान् हैं, देश के लिये उनकी अर्द्धशताब्दी से अधिक काल तक निरन्तर की हुई सेवाएँ महान् हैं। उनका तपोमय जीवन महान् है। देश के प्रारम्भिक राजनीतिक-विकास के युग मे मालवीयजी एक प्रेरणा रहे हैं। उनकी जिह्वा पर सरस्वती विराजती है, और उनके भाषण मे सरस रसधारा प्रवाहित होउठती है। हज़ारो उसमे परिप्लावत और पुनीत हुए है। देश के जीवित नेताओ मे मालवीयजी महाराज ही इस समय सबसे पुरातन है।
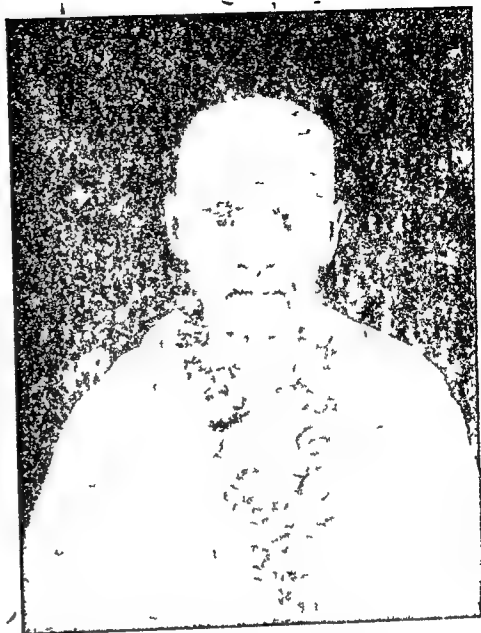
मध्य युग—योरप के इतिहास मे, आठवी शताब्दी के बाद से १४वीं शताब्दी तक का समय, मध्ययुग कहलाता है।

मध्य योरप—मध्य योरप में पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया-हंगरी तथा बलग़ारिया आदि देश शामिल हैं।

मनरो-सिद्धान्त—संयुक्त-राज्य अमरीका का एक राजनीतिक सिद्धान्त है, जिसके अनुसार वह अमरीकी महाद्वीप के किसी भी मामले मे योरप के हस्तक्षेप को स्वीकार नही करता। इस सिद्धान्त के जन्मदाता संयुक्त-राज्य अमरीका के राष्ट्रपति मनरो हैं, जिन्होने, २ दिसम्बर १८२३ को, अपने एक भाषण मे कहा—"अमरीका के महाद्वीपो मे, जिन्होने अब स्वाधीन तथा स्वतंत्र स्थिति प्राप्त करली है, भविष्य मे किसी भी योरपीय राष्ट्र को अपने उपनिवेश बनाने का अधिकार न होगा। × × × इन महाद्वीपो मे जो आन्दोलन चल रहे हैं उनसे हमारा घनिष्ट संबंध है। उन (योरपीय) राष्ट्रो की शासन-पद्धति अमरीका की शासन-प्रणाली से भिन्न है। × × × उनके द्वारा अमरीका मे अपनी प्रणाली के स्थापित करने के प्रयत्न को हमे अमरीका की शान्ति तथा सुरक्षा के लिये ख़तरा समझना चाहिये।"

दक्षिण-(लातीनी) अमरीका के राज्यों मे यह सिद्धान्त लोकप्रिय नहीं है। वे इसे सयुक्त-राज्य अमरीका का प्राधान्य स्थापित करने का एक साधन समझते हैं। वास्तव मे मनरो सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय विधान नहीं है, प्रत्युत् संयुक्त-राज्य अमरीका की राष्ट्रीय-नीति का अश है।

मनोवैज्ञानिक युद्ध-प्रणाली—इस प्रणाली मे ईसपात के बने शस्त्रास्त्रो से नही लडना पडता। यह युद्ध-प्रणाली कूटनीतिपूर्ण मनोवैज्ञानिक साधनो के प्रयोग पर निर्भर करती है। जो देश इस प्रणाली का आश्रय लेता है, वह संसार मे, विशेषकर अपने अधीन देशों और अपने मित्रराष्ट्रो मे, अपने पक्ष मे तथा शत्रु के विरुद्ध, लोकमत बनाने का प्रचण्ड प्रयत्न करता है। इस प्रणाली का मुख्य कार्य ससार के लोकमत के सामने शत्रु को हेय सिद्ध करना तथा ससार को यह विश्वास करा देना है कि अपनी रक्षा के लिये वह राष्ट्र जो उद्योग कर रहा है वह एकदम पवित्र और मानव-हितकामना से प्रेरित है। वह शत्रुदेश की प्रजा को भी, उसकी सरकार के विरुद्ध, उत्तेजित करता है, और वह उसको यह बतलाता है कि ससार मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित होनी चाहिये और हमारा पक्ष सर्वथा अनुमोदनीय है। यह युद्ध-प्रणाली तटस्थ राष्ट्रो के सामने भी यही बात प्रस्तुत करती है कि शत्रु-राष्ट्र अन्याय कर रहे हैं और हमारा देश न्याय के पक्ष मे है। इस प्रणाली की सफलता के लिये विज्ञापन, समाचार-पत्र, रेडियो तथा गुप्तचर दल का ख़ूब प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक युद्ध-प्रणाली का आश्रय लेनेवाला देश, अपने प्रचार के समय, शेष संसार को बिलकुल मूर्ख समझ बैठता है।

मरक्को—(की) सल्तनत, क्षेत्र० लगभग २,१३,००० वर्ग०, जन० ७२,००,००० है, अफ्रीका के उत्तर-पश्चिमी कोण मे स्थित। योरप के अनेक साम्राज्यवादी देशो मे, इस प्रदेश के लिये, बहुत दिनो तक, बडी प्रतिस्पर्द्धा रही। सन् १६०४ मे ब्रिटेन ने मरक्को को फ्रान्स का प्रभाव-क्षेत्र स्वीकार कर लिया और बदले मे फ्रान्स ने मिस्र को बरतानिया का प्रभाव-क्षेत्र मान लिया। जर्मनी मे इससे रोष फैला और १६०५ मे कैसर मरक्को के टेंजियर बन्दरगाह की दिखावटी सैर करने, किन्तु वास्तव मे मरक्को पर जर्मन-दावे की पुष्टि के लिये,

गया। इस देश में पाया जानेवाला कई प्रकार का कच्चा लोहा जर्मनी के लोहे के कारख़ानो के लिये दरकार था। साम्राज्यवादियो द्वारा मरक्को की तक्काबोटी किये जाने का यह पहला अवसर था। ७ अप्रैल १६०६ को, मरक्को की बॉट-चोट के लिये, "मुक्त द्वार" नीति साम्राज्यवादियो ने तय की और १६११ मे फ्रान्स ने मरक्को के फैज़ प्रान्त मे क़ब्ज़ा करने के लिये सेना भेज दी। जर्मनी क्यो पीछे रहता, उसने भी अगादिर बन्दर पर एक हथियारबन्द जहाज़ रवाना कर दिया। मरक्को की नोच-खसोट का दूसरा युग आरम्भ हुआ। तत्कालीन बरतानवी वज़ीरे-आज़म लायड जार्ज ने कहा कि बरतानिया जर्मनी की इस हरकत को बरदाश्त नही कर सकता। लडाई होते-होते बची। फ्रान्स-जर्मनी मे समझौता होगया। मरक्को पर फ्रान्स का अधिकार क़बूल कर लिया गया, बदले में जर्मनी को फ्रान्सीसी कांगो मे रिआयतें मिल गईं।

सन् १६१२ से मरक्को तीन भागो में बॅटा हुआ है, एक स्पेनी-क्षेत्र तथा दूसरा फ्रान्सीसी-क्षेत्र। टेंजियर का तीसरा तटस्थ क्षेत्र १६२३ मे बना है और अन्तर्राष्ट्रीय-व्यवस्था के अधीन है। यह तीनो क्षेत्र, नाममात्र को, सुल्तान के प्रभुत्व में हैं। वर्त्तमान सुल्तान, शरीफी राज-वंश का, सिद्दीक़ मुहम्मद, है। परन्तु फ्रान्सीसी-क्षेत्र मे फ़ान्सीसी रेज़ीडेंट-जनरल ही वास्तविक शासक है। समस्त सरकारी आदेश उसीके द्वारा जारी किये जाते हैं। सारे देश मे फ़ान्सीसी सेनाएँ हैं। रेज़ीडेंट फ्रान्स के वैदेशिक मंत्री के प्रति उत्तरदायी है। स्पेनी-क्षेत्र का शासन सुल्तान द्वारा नियुक्त ख़लीफा के हाथ मे है, परन्तु इसकी नामज़दगी स्पेनी सरकार करती है। इस क्षेत्र का असली शासक स्पेन का रेज़ीडेंट है। फ्रान्सीसी-मरक्को का क्षेत्र० २ लाख वर्ग० और स्पेनी-मरक्को का १३ हज़ार वर्गमील है। स्पेनी-क्षेत्र मे भी लडाकू रीफ क़बीले की कुछ आबादी है। रीफ १६२४ से '२७ तक, अपने देश की आज़ादी के लिये, अब्दुलकरीम के नेतृत्व में, फ्रान्सीसी और हस्पानियो (स्पेनियो) से लड चुके हैं। फ़ान्सीसी संगीनो और गोलियो के बल पर वह क्रान्ति दबा दी गई थी और रीफों का नेता, अब्दुलकरीम, अब तक एक फ़ान्सीसी टापू में क़ैद है। सन् १६३६में जनरल फ्रांको ने स्पेनके गृह-युद्ध की तैयारी इसी क्षेत्रमें की थी। मरक्को की सेना ने उसके साथ भाग लिया। सामरिक दृष्टि से यह बडा महत्व-

पूर्ण प्रदेश है। यह भूमध्य-सागरके तट पर है। जिब्राल्टरके ठीक सामने मरक्को का क़िले-बन्द क्यूटा बन्दरगाह है। 'मराक़श' मरक्को का असली नाम है।

टेंजियर क्षेत्र केवल २२५ वर्गमील लम्बा-चौडा है और आबादी ६०,०००। इस क्षेत्र का प्रबन्ध १८ दिसम्बर १९२३ के बरतानिया, फ्रांस और स्पेन के एक समझौते के अनुसार होता था। १९२८ मे इटली भी इस समझौते में आ मिला। एक अन्तर्राष्ट्रीय कमिटी के हाथ में इसका प्रबन्ध था। यहाँ से सेनायें हटाली गईं थीं तथा इसे तटस्थ देश क़रार दे दिया गया था। १९४० के जून मे स्पेन ने इस पर क़ब्जा कर लिया। बरतानिया और स्पेन मे समझौता होगया कि वह इस पर क़िलेबन्दी नही करेंगे। मरक्को का अधिकाश भाग मरुस्थल है, किन्तु यहाँ कई प्रकार का कच्चा लोहा पाया जाता है। फ्रांस के पतन के बाद से अफरीका मे नात्सियों और फासिस्तो ने लडाई छेड रखी है और मरक्को का भाग्य अभी अनिश्चित है। मरक्को-वासी 'बर्बर' जाति के हैं और अरबी की भाँति की भाषा बोलते हैं। अखिल-अरब-वाद और अखिल-इस्लामवाद का प्रभाव भी उन पर है।

मलान, डाक्टर डी० एफ्०, एम० ए०, डी० डी०—दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रीय-दल का नेता। १८७४ मे पैदा हुआ। १९२४ से '३३ तक यूनियन-सरकार मे स्वराष्ट्र, स्वास्थ्य और शिक्षा-मन्त्री रहा। इसका राष्ट्रीय दल दक्षिण अफ्रीका मे ब्रिटेन से असम्बन्धित स्वतंत्र राज चाहता है। पार्लमेन्ट मे

मलान के दल मे २८ सदस्य हैं। वह वर्त्तमान युद्ध मे अफ्रीका के भाग लेने के विरुद्ध है। जनरल हर्टज़ोग से नवम्बर १९४० मे उसका सम्बन्ध टूट गया।

मसारिक, टामस गैरिग्—चैक राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक; जन्म सन् १८५०, मृत्यु १९३७ ई०; चैकोस्लोवाकी-प्रजातन्त्र का संस्थापक तथा प्रथम राष्ट्रपति। इसका बाप कोचवान था। सन् १८७२ मे वीयना विश्वविद्यालय से पीएच० डी० बना और १८७८ ई० मे वहीं के एक कालेज मे अध्यापक होगया। एक अमरीकी स्त्री से विवाह किया और, सन् १८८२ में, प्रेग के चैक विश्वविद्यालय मे, दर्शन-शास्त्र का प्रोफेसर होगया। सन् १८९१ में उसने प्रगतिशील चैक-दल की स्थापना की, और सन् १८९१ में, वीयना पार्लमेंट का सदस्य चुना गया। चैक-प्रान्त के तत्कालीन अधिपति आस्ट्रियन-साम्राज्य के संघीकरण का आन्दोलन और आस्ट्रिया की जर्मन-पोषक और स्लाव-विरोधी वैदेशिक नीति का उसने विरोध किया।

सन् १९१४ मे जब प्रथम विश्व-युद्ध आरम्भ हुआ, तो मसारिक ने, आस्ट्रियन-साम्राज्य के सम्पूर्ण विनाश के लिये, कार्यक्रम बनाया। १९१५ में, आस्ट्रिया के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये, चैक-प्रजा के सगठन के लिये वह विदेश गया। इसके बाद वह लन्दन के किंग्स कालिज मे स्लाव-अन्वेषण का प्रोफेसर नियुक्त किया गया, जहाँ उसने "लघु राष्ट्रों की समस्या" विषय पर व्याख्यान दिये। १९१६ मे वह फ्रान्स गया, जहाँ उसने फ्रान्सीसी सरकार को यह समझाया कि आस्ट्रियन-साम्राज्य का छिन्न-भिन्न होजाना ज़रूरी है। चैक-शक्तियों का सगठन करने, मार्च-क्रान्ति के बाद सन् १९१७ में, वह रूस गया। मार्च १९१८ मे मसारिक अमरीका गया और राष्ट्रपति विल्सन से मिला। राष्ट्रपति विल्सन पहले इस विचार के थे कि आस्ट्रियन-साम्राज्य तो कायम रहे, किन्तु उसमे सघ-शासन स्थापित हो। अपनी मुलाकात में मसारिक ने इस बात पर जोर दिया कि संधि के समय आस्ट्रिया का साम्राज्य कायम न रहे। इसके परिणामस्वरूप, मसारिक के नेतृत्व मे पैरिस में आन्दोलन करने वाली चैकोस्लोवाक राष्ट्रीय कौंसिल मित्र-राष्ट्रों द्वारा चैकोस्लोवाक-सरकार स्वीकार की गई। १८ अक्टूबर १९१८ को वाशिंगटन में टामस मसारिक ने चैकोस्लोवाकिया की स्वाधीनता की घोषणा करदी। चैकोस्लोवाकी-प्रजातन्त्र [illegible]

प्रथम राष्ट्रपति बनकर वह स्वदेश लौटा। सन् १६२०, '२८ तथा '३४ मे, क्रमशः तीन बार, वह राष्ट्रपति चुना गया। १४ दिसम्बर १६३५ को, स्वास्थ्य ख़राब होजाने के कारण राष्ट्रपति के पद से त्यागपत्र देदिया। १४ सितम्बर १६३७ को ८७ वर्ष की आयु मे उसका देहान्त होगया। चैकोस्लोवाकी अब तक, दन्तकथाओ के रूप मे, उसके गुण गाते हैं। उसका पुत्र, इआन मसारिक, आजकल लन्दन-प्रवासी चैकोस्लोवाक-सरकार मे परराष्ट्र-मन्त्री है।

दार्शनिक के रूप मे टामस मसारिक बुद्धिवादी और मानवतावादी था। वह व्यावहारिक आचार का समर्थक था, किन्तु जर्मन आदर्शवादी दर्शन तथा मार्क्सवाद का आलोचक था। वह प्रजातत्र का पोषक और अपने देश का, पाश्चात्य देशों के आधार पर, पुनर्जागरण चाहता था।

मसारिक के यह वाक्य कैसे मार्के के हैं:—"प्रजातन्त्र आधारित है वाद-विवाद पर। राष्ट्र केवल उन आदर्शों के आश्रय पर जीवित रहते हैं, जिनके द्वारा उनके अस्तित्व का विकास हुआ—वह आदर्श ईसा के (प्रेममूलक) आदर्श हैं, (अत्याचारी) सीजर के नही। वितण्डावाद वस्तुतः कोई योजना नही है। इतिहास हमे सिखाता है कि सभी राष्ट्र अपनी हठधर्मी के कारण नष्ट हुए—फिर वह हठधर्मी जातिगत हो, राजनीतिक हो, धार्मिक हो अथवा वर्गगत। राष्ट्र की (आत्म) रक्षा के लिए क्रान्ति बिलकुल वैध साधन है। किंतु अन्य सब साधनो के समाप्त होजाने पर ही क्रान्ति की आवश्यकता उत्पन्न होती है। मानवता अपने प्रत्येक रूप मे शान्तिवाद नही है।"

महादेव हरिभाई देसाई—लगभग ५१ वर्ष पूर्व सूरत जिले के एक गॉव मे जन्म हुआ। बम्बई से बी० ए० पास किया और वही प्रान्तीय सरकार के सेक्रेटरियट मे अनुवादक नियुक्त होगये। यही काम करते समय क़ानून की परीक्षा उत्तीर्ण की और अहमदाबाद मे वकालत शुरू की। इस पेशे से

शीघ्र ही अरुचि होगई और प्रान्तीय सहयोग-विभाग मे इन्स्पेक्टर होगये। १६१६ मे महात्मा गांधी की निगाहो में चढ़ गये। वह उन्हे साबरमती आश्रम लेआये। महादेव देसाई महात्मा गांधी के प्राइवेट सेक्रेटरी बने। १६१६ में 'यंग इडिया' और गुजराती 'नवजीवन' के सम्पादन मे महात्माजी के सहकारी बने, जबकि गांधीजी ने 'यंगइंडिया' को श्री जमुनादास द्वारकादास से ले लिया था। १६२० में महात्माजी ने प्रयाग के 'इन्डिपेन्डेन्ट' का सम्पादन करने के लिये देसाईजी को भेजा। १६३१ में, गांधीजी के सेक्रेटरी की हैसियत से, राउन्ड टेबुल कान्फ़रेन्स के अवसर पर, विलायत गये। सन् १६३२ के गांधीजी के आमरण-व्रत के समय, यरवदा जेल में, उनके साथ बन्दी थे। गांधीजी की नीति को हृदयंगम कर लेने के कारण ही उन्होने महादेव देसाई को 'हरिजन' का सम्पादक बना दिया था, और इस पत्र मे तथा अन्यत्र वह 'एम० डी०' नाम से ख़ूब लिखा करते थे। गुजराती और अँगरेज़ी शैली पर उनका समान रूप से अधिकार था। गान्धीजी जैसे विश्व-विख्यात महापुरुष के दैनिक पत्र-व्यवहार को वही सॅभाल पाते थे। गान्धीजी के निकट सामीप्य मे रहने का उन्हे अद्वितीय, अलभ्य अवसर प्राप्त हुआ। महादेव भाई की मृत्यु मे अपने युग का तुलसीदास चला गया और राष्ट्र की इस साहित्यिक क्षति की पूर्ति अब असम्भव है।

'भारत छोडो' प्रस्ताव के बाद ६ अगस्त १६४२ को महादेव भाई भी, गान्धीजी आदि नेताओ सहित, पकडे गये और बम्बई सरकार कीविज्ञप्ति से पता चला कि, ६ दिन बाद, १५ अगस्त '४२ के प्रातःकाल, नजरबन्दी के अज्ञात स्थान में, हृद्‌गति रुक जाने से, उनका देहान्त होगया। वहीं उनका दाह हुआ।

महादेव भाई ने पच्चीस वर्षों तक, गांधीजी के सहायक और उनके परम विश्वासपात्र रहकर राष्ट्र की बहुमूल्य सेवा की। उनका जीवन देश की स्वाधीनता के लिये लडनेवाले एक सैनिक की भॉति आरम्भ हुआ और उसीकी भॉति समाप्त भी। अपने देश और देवता पर वह बलिदान होगये।

महेन्द्रप्रतापसिंह, राजा—भारत के निर्वासित देशभक्त। जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल ५, सम्वत् १६४३ वि०। पिता का नाम राजा घनश्यामसिंह। जन्म स्थान मुरसान (ज़िला अलीगढ़)। राजा हरनारायण सिंह के दत्तक

पुत्र। ६ वर्ष की आयु मे ही पिता का देहान्त होगया। रियासत कोर्ट आफ् वार्ड्स के संरक्षण मे होगई। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। १६०३ में सपत्नीक योरप यात्रा की। सन् १६०६ मे औद्योगिक शिक्षा के प्रचारार्थ, जिसमे राजा साहब की विशेष रुचि थी, वृन्दावन में प्रेम महाविद्यालय की स्थापना की। २०,०००) सालाना की आमदनी की जमींदारी तथा निजी राजभवन विद्यालय को दान मे दे दिये। गुरुकुल वृन्दावन को, अक्टूबर १६११ मे, १५,०००) मूल्य की भूमि दी। इसी भूमि पर गुरुकुल विश्वविद्यालय का भवन बनाया गया है। हिन्दी साप्ताहिक 'प्रेम' की स्थापना की तथा उसका सपादन किया। सन् १६१२ में दूसरी बार योरप गये तथा सन् १६१४ मे तीसरी बार। साथ मे गुरुकुल कॉंगडी के प्रथम स्नातक, महात्मा मुन्शीराम (स्व० स्वामी श्रद्धानन्द) के बडे पुत्र हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाकर लेगये। उसी समय से वह स्विट्ज़रलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स, तुर्किस्तान, सोवियत रूस, अफगानिस्तान, जापान आदि मे भ्रमण कर भारतीय स्वाधीनता के पक्ष में लोकमत बनाते और विश्वबन्धुत्व का प्रचार करते रहे हैं।

राजा साहब मानवतावाद के प्रबल समर्थक हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर, सन् १६१२ मे, सबसे पूर्व, अछूत कहे जानेवाले सम्प्रदाय को इस प्रेम-पुजारी ने व्यावहारिक रूप मे अपनाया। विश्व-बन्धुत्व तथा अन्तर्राष्ट्रीयता के वह पोषक और राष्ट्रीय स्वाधीनता के सच्चे उपासक हैं। उन्हे स्वदेश वापस आने की आज्ञा नहीं है। केन्द्रीय असेम्बली मे इस प्रतिबध के हटाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु सफलता नही मिली। पिछले तीन वर्षों से उनके सम्बन्ध मे कोई समाचार नहीं सुना गया।

मार्क्सवाद—कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तानुसार समाजवादी विचारधारा। मार्क्स का, यहूदी वश मे, जर्मनी मे, सन् १८१८ मे, जन्म हुआ और सन् १८८३ मे, लन्दन मे, मृत्यु। मार्क्सवाद भौतिकतावादी समाज-शास्त्र है। वह जर्मन दार्शनिक, हीगल, और अँगरेज अर्थशास्त्री, रिकार्डो, के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आश्रित है। उसकी दृष्टि मे मानव की समस्त आध्यात्मिक, मानसिक और सासारिक उन्नति तथा उसके विकास का मूलाधार आर्थिक है।

अर्थ ही जीवन में प्रधान है, समाज की रीढ़ है। मार्क्स न ईश्वर मे विश्वास करता था और न वह आत्मा की सत्ता को ही मानता था। मार्क्स का यह वाक्य प्रसिद्ध है कि—"सारे मानव-समाज का विगत तथा आधुनिक इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।" १७वीं से १६वीं शताब्दी तक पूँजीवादियों ने सामन्तशाही का नाश किया। पूँजीवाद ने स्वतत्र होकर ससार मे आश्चर्यजनक गति से पैदावार मे वृद्धि की। परन्तु पूँजीवाद की कोख मे उसका नाश करनेवाला जन्म ले चुका था। वह है सर्वहारा वर्ग। इस वर्ग द्वारा ही पूँजीवाद का पतन संभव हो सकेगा। मज़दूर की पैदावार ही मूल्य है, और किसी वस्तु का यथार्थ मूल्य उस समय के बराबर है जो उसकी पैदावार मे लगता है। परन्तु पूँजीवादी मज़दूर को पूरे समय का वेतन नही देता। वह उसे कम देता है और जो बचता है वह 'अतिरिक्त अर्थ' होता है। मज़दूरों को कम वेतन स्वीकार करना पडता है अन्यथा उनकी जगह दूसरे वेकार मज़दूर, इतने ही वेतन पर, काम करने के लिये तैयार रहते हैं। व्यावसायिक प्रगति तथा मनुष्यों की जगह मशीनो के प्रयोग के कारण मज़दूरो का इस ओर आकर्षण होता है। इस प्रकार वेतन (मज़दूरी) तथा औद्योगिक पैदावार मे सामजस्य स्थापित नहीं होपाता और क्रय-शक्ति तथा पैदावार मे,इस असामजस्यके कारण ही, आर्थिक संकट पैदा होजाते हैं। इस प्रकार पूँजीपति मालामाल होजाते हैं। बडे पूँजीपति छोटे पूँजीपतियोंका शोषण करते हैं। जितने बडे पूँजीपति होते हैं, उतने ही उनके कारख़ानों मे नई तथा थोडे समय मे, कम मज़दूरो की सहायता से अधिक माल तैयार करनेवाली, मशीनें काम करती हैं। इससे मज़दूरों में वेकारी और बाज़ार में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ती है तथा मज़दूरो को वेतन कम मिलता है। अन्त मे आर्थिक संकट पैदा होजाता है। औद्योगिक उत्कर्ष के बावजूद मज़दूर का जीवन, दिन पर दिन, शोषण का शिकार बनता जाता है। पूँजीवाद की यह विशेषता है कि वह एक ओर धन-संचय करता है, तो दूसरी ओर विशाल जनसमुदाय में ग़रीबी, बेकारी तथा दारिद्र्य का पोषण करता है। एक ऐसी अवस्था पैदा होजाती है कि ये मुट्ठी भर पूँजीपति विशाल जनता को भरपेट अन्न देने की व्यवस्था भी नहीं कर पाते। इसी अवस्था से क्रान्ति का जन्म होता है। सर्वहारा—मज़दूरवर्ग—मशीनों के

पूँजीवादियो के नियत्रण से लेकर, उसे समाज के हित के लिये, सामान्य या सार्वजनिक सम्पत्ति बना देता है। अब वे इस प्रकार से आर्थिक-जीवन का नियत्रण करते हैं कि माल पूँजी अधिक बढाने के उद्देश्य से नहीं पैदा किया जाता बल्कि जितनी पैदावार की आवश्यकता है, उसीके अनुसार, जनता के सुख तथा हित के लिये, पैदा किया जाता है।

विगत ६० वर्षों मे मार्क्सवादी विचारधारा का ससार की राजनीति तथा अर्थनीति पर प्रभाव पडा है। उसके विरोधियो ने भी उसके कुछ अश को किसी-न-किसी रूप मे स्वीकार किया हैं। ससार में केवल रूस ही ऐसा देश है जिसमे साम्यवादी शासन है। वह मार्क्सवाद का पक्का अनुगामी है।

मार्गन एण्ड कम्पनी, जे० पी०—यह अमरीका की बैंक है, जिसका वहाँ की राजनीति पर ज़बरदस्त प्रभाव है, और वहाँ यह एक सत्ता मानी जाती है। सन् १८६० मे इसकी स्थापना जे० पी० मार्गन द्वारा न्यूयार्क मे की गई। सन् १६१३ मे उसका देहान्त होगया। उसके बाद उसका पुत्र तथा १० हिस्सेदार कम्पनी के स्वामी होगये। सन् १६१४–१८ के विश्वयुद्ध मे यह बैंक मित्रराष्ट्रो की माल ख़रीदनेवाली एजेंसी बन गई। इसने तीन अरब डालर का माल खरीदा। इसमे इसने मोटा मुनाफा कमाया और ससार में एक नम्बर की बैंक होगई। इसका सयुक्त-राज्य अमरीका के राजस्व पर भी गहरा प्रभाव है। सन् १६१६–१६२६ मे इस बैंक ने अन्य करोडो डालर व्यवसाय मे लगाने के अतिरिक्त ६ अरब डालर ऋण दिया। सन् १६२६ के आर्थिक-सकट का इस बैंक पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा अमरीका मे आर्थिक-सकट के निवारण के लिये 'न्यू डील'-योजना के अंतर्गत जो कार्य किये गये तथा बैंक के सबंध मे जो क़ानून बनाये गये, उनसे इसकी स्थिति पहली जैसी नही रही।

मांटेग्यू-चेम्सफर्ड-सुधार—अगस्त १६१७ मे, तत्कालीन भारत-मत्री मि० मान्टेग्यू की घोषणा के बाद, भारत को राजनीतिक-विकास की यह दूसरी देन मिली। इस योजना की विशेषता यह है कि प्रान्तो मे शासन-प्रबन्ध को दो भागो मे विभाजित कर दिया गया था : हस्तान्तरित तथा सुरक्षित। समस्त प्रान्तीय शासन-सूत्र इन्ही दो विभागो के अन्तर्गत थे। हस्तान्तर विषय : [illegible]दा।, उद्योग, व्यापार, स्थानीय स्वायत्त-शासन, स्वास्थ्य, अस्पताल आदि

का शासन-प्रबन्ध भारतीय मंत्रियों को सौंप दिया गया था और उन्हें प्रान्तीय धारासभा के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया था। सुरक्षित विषय : पुलिस, न्यायालय, मालगुज़ारी, अर्थ-विभाग आदि गवर्नर की कौंसिल को सौंप दिये गये थे। इनके प्रबन्ध के लिये कौंसिल, वाइसराय द्वारा, भारत मंत्री के प्रति, उत्तरदायी थी। इस प्रणाली को द्वैध-शासन-प्रणाली कहा जाता है।

मार्शल-लॉ (फौजी शासन)—जब किसी देश के किसी प्रदेश या प्रान्त में उपद्रवों या अशान्ति के कारण, 'सिविल' कर्मचारी शान्ति और व्यवस्था क़ायम रखने में असमर्थ रहते हैं, तब देश का प्रमुख शासक उस प्रदेश को फौजी-शासन के सुपुर्द कर देता है। फौज के अफसर उस प्रदेश पर शासन करते हैं और उनका शासन फौजी-कानून के अनुसार होता है। मार्शल ला स्वशासित देश मे भी जारी किया जा सकता है, किन्तु साम्राज्यवादियों और फासिस्तों द्वारा अधिकृत देशों में ही इसका [illegible] होता है, क्योंकि देश की स्वाधीनता के प्रत्येक उद्योग को साम्राज्यवादी शासक 'अशान्ति' और 'अव्यवस्था' नाम से पुकारते हैं।

मास्को के मुकदमे—सन् १९३६ और १९३७ में प्रमुख रूसी साम्यवादियों पर चलाये गये मुकदमे। अगस्त १९३६ में कुछ विरोधी साम्यवादियों [illegible] पर दोषारोप किया गया कि उन्होंने स्तालिन के विरुद्ध [illegible] किया है। इनके नेता ज़िनोवीफ़ (जो साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संघ का [illegible]) और केमनीफ़ थे। सरकारी वकील ने अदालत में कहा कि [illegible] के साथ मिल कर, जर्मन-नात्सियों से स्तालिन के विरुद्ध [illegible] प्राप्त करने और बदले में जर्मनों को यूक्रेन दे देने के लिये, [illegible] रहा था। [illegible] सुबूत में कोई शहादत पेश नहीं [illegible] अपना अपराध स्वीकार कर लिया और [illegible] जनवरी १९३७ में ट्राट्स्कीवादियों और [illegible] (जो लेनिन के बाद [illegible]) साम्यवादी दल का [illegible] [illegible]

संघ की लाल सेना के मार्शल तुखाचेवस्की तथा सात जनरलों पर तीसरा ऐसा ही मामला चला कि वे जर्मन-सेनानायकों से मिलकर रूस तथा स्तालिन के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे। इनका मुक़द्दमा बन्द अदालत में, गोपनीय ढंग से, हुआ। सरकारी बयान के मुताबिक़ इन्होंने भी अपना अपराध स्वीकार किया और इन सबको गोली मार दीगई। ऐसा विचार किया जाता है कि यह मुक़द्दमे साम्यवादी दल की शुद्धि के लिये चलाये गये थे, जिनके अनुसार अन्य अनेक विरोधी कम्युनिस्टों को भी मौत की सज़ायें दीगईं।

मिण्टो-मार्ले-सुधार—१८३२ के नाम-मात्र के सुधारों के बाद, सन् १९०९ में, भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड मिण्टो तथा भारत-मन्त्री लार्ड मार्ले ने भारतीय शासन-सुधार की एक योजना बनाई, जिसके अनुसार भारत के प्रत्येक प्रान्त में धारासभाएँ स्थापित की गईं तथा उनमें थोड़े-से चुने हुए प्रतिनिधियों के लिये भी स्थान रखा गया। कुछ स्थानीय स्वायत्त भी थोड़ा बढ़ा दिया गया। सबसे प्रथम पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली का इसी योजना में स्थान दिया गया, और इसीके अनुसार सिखों को, हिन्दुओं से अलग सम्प्रदाय मानकर, उन्हें पृथक् निर्वाचनाधिकार दिया गया।

मिस्र—अफ्रीका स्थित 'स्वतंत्र' राज्य, क्षेत्रफल ३,४८,००० वर्ग०; जन० १,६०,००,०००, भाषा अरबी, राजधानी काहिरा, बादशाह फ़ारूक़ अव्वल (राजवंश अलबानी तुर्क, मुहम्मदअली शाखा), जिसका जन्म ११ फरवरी सन् १९२० को हुआ। १८४१ से १९१६ तक मिस्र, तुर्की के अधीन, अर्द्ध-स्वतन्त्र देश रहा। तुर्की की ओर से एक ख़ान्दानी ख़दीव (वाइसराय) इस पर हुकूमत किया करता था। सन् १८८२ में अँगरेजों ने इस देश पर आधिपत्य कर लिया। १८ दिसम्बर १९१४ को यह ब्रिटिश सरक्षित राज्य घोषित कर दिया गया और जर्मन-हिमायती ख़दीव अब्बास हिलमी को हटा दिया गया और उसके स्थान पर, सुलतान की उपाधि धारण कर, हुसैन कमाल ख़दीव बना। कमाल १९१७ में मर गया, तब उसका भाई फ़ुआद ख़दीव बनाया गया और १९२२ में इसे मिस्र का बादशाह घोषित कर दिया गया। मिस्र में, इसके बाद, देश की पूर्ण स्वाधीनता के लिये, ज़बरदस्त राष्ट्रीय न्दोलन शुरू होगया। २६ अगस्त १९३६ को मिस्र-ब्रिटेन-संधि द्वारा

मिस्र की स्वाधीनता स्वीकार कर लीगई। इस संधि के अनुसार अँगरेज़ो ने अपनी सेनाएँ मिस्र से हटालीं; परन्तु उन्हे यह अधिकार मिल गया कि वह स्वेज नहर पर १०,००० फौज तथा ४००० हवाई जहाज़ रख सकते हैं, सिकन्दरिया और सईद बन्दर को अपनी नौ-सेना का अड्डा बना सकते हैं और युद्ध या युद्ध के खतरे के समय मिस्र मे होकर वे अपनी सेनाएँ ले जा सकते हैं। सन्धि के अनुसार बरतानिया ने मिस्र की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। १९३६ मे बादशाह फुआद मर गया और फारूक़ अव्वल बादशाह बना। द्वादशवर्षीय योजना के अन्तर्गत,. मिस्र मे विदेशियो को मिले हुए, विशेषाधिकारों का ख़ात्मा किया जाना भी तय किया गया।

शासन मे बादशाह का बहुत प्रभाव है। सरकार की नीति, पुरातनवादी मुसलिमों के विश्वास को ठेस पहुँचाये बग़ैर, मिस्र में शनैः-शनैः आधुनिकता का प्रसार करने की है। शान्ति के समय मिस्र १३००० सैनिक रख सकता है—आधुनिक कील-कॉटे से लैस। जब तक मिस्री सेना द्वारा स्वेज़ मे होने-वाली जहाज़रानी की स्वतन्त्रता और सुरक्षा का बरतानिया को विश्वास न होजाय तब तक स्वेज़ को हिफाज़त के लिये बरतानी फौज वहाँ रहेगी।

मिस्र मे इत्तहादी (शाही), उदार-विधानवादी (सम्पत्तिशालियों का) योरपियन-विरोधी-राष्ट्रीय, सअादी (वफ़्द की शाखा) दल भी हैं, किन्तु मिस्र के वर्त्तमान वज़ीरे आज़म, नहास पाशा, का वफ़्द दल सबसे शक्ति-शाली है। नहास मिस्र के सर्वमान्य नेता हैं। वह मिस्र के राजनीतिक-पिता, सआद जग़लुल पाशा, के दाहिने हाथ, १९१९ ई० से, रहे हैं, जबकि १९२२ में, राष्ट्रीय-आन्दोलन के समय, इन दोनों लोकनायकों को एक साथ देश-निकाले की सजा ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा दीगई थी। १९२७ में, ज़ग़लुल की मृत्यु के बाद से, नहास देश के नेता हैं। नहास के नेतृत्व में १९३५ तक बरतानिया और मिस्र मे संघर्ष चलता रहा। मिस्र मे जॉच कमीशन भेजा गया, जिसका बहिष्कार हुआ। गोलमेज सभा का भी वफ़्द दल ने बहिष्कार किया। संघर्ष चल ही रहा था कि १९३५ मे इटली ने मुल्क हबश (अबीसीनिया) पर हमला कर दिया और १९३५-१९३६ के शरत्काल में मिस्र के पास पश्चिमी सहरा (रेगिस्तान) के नजदीक युद्ध पहुँच जाने से इटली

और बरतानिया में युद्ध छिड़ जाने की आशङ्का होउठी। उस समय बरतानिया के राजनीतिज्ञों ने मिस्र को संतुष्ट करना ही उचित समझा और १९३६ में, पूर्वोक्त परस्पर संधि करली। गत वर्ष जर्मन जनरल रोमल जब लीबिया से बढ़ता-बढ़ता मिस्र के समीप तक आ गया था, तब क़ाहिरा आदि पर धुरी वायुयानों ने बमवर्षा की थी। स्वेज बरतानिया के पूर्व-देशीय साम्राज्य की धमनी है, उसकी रक्षा के लिये युद्ध-काल में मिस्र को संतुष्ट रखना आवश्यक है।

मिस्र में निरक्षरता बहुत है, साधारण जनता ९० फ़ी० निरक्षर है। १९२३ के मिस्री शासन-विधान के अनुसार यहाँ दो धारा-सभाएँ हैं: मजलिसुश्शय्यूक़ (बड़ी) जिसके १५० सदस्यों का, ५ साल के लिये, सार्वजनिक चुनाव होता है। दूसरी मजलिसुल्नवाब (छोटी), जिसके १०० सदस्यों में से ६० को बादशाह नामज़द करता है, ४० का चुनाव होता है, सरकार मजलिसुश्शय्यूक़ के प्रति ज़िम्मेदार है।
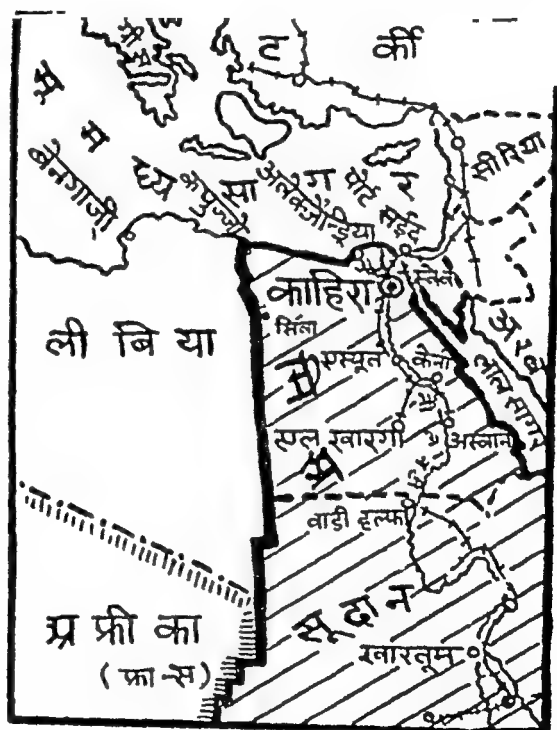
मुकर्जी, डा० श्यामाप्रसाद—आप अ० भा० हिन्दू महासभा के कार्यकर्त्ता-प्रधान हैं। हिन्दू महासभा के नेताओं में आपका महत्वपूर्ण स्थान है। विगत नवम्बर १९४१ में बंगाल-सरकार के प्रधान मंत्री मियाँ फ़ज़लुलहक़ ने आपको अपने मंत्रि-मण्डल में अर्थ-सचिव के पद पर नियुक्त किया। इससे पूर्व आप कलकत्ता यूनिवर्सिटी के वायस-चांसलर के पद पर भी कई वर्षों तक रह चुके हैं। आप प्रसिद्ध शिक्षा-विज्ञ तथा विद्वान् हैं। अगस्त १९४२ में

'भारत छोडो' प्रस्ताव के बाद देश मे हुई अशान्ति के समय सरकार द्वारा किये गये दमन के विरोध मे डा० मुकर्जी ने प्रान्तीय गवर्नर के नाम एक मार्मिक पत्र लिखा (जो सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया) और मत्रि-मण्डल से इस्तीफा दे दिया। भारत की वर्तमान समस्या के निपटारे के प्रयत्न करनेवालो मे आपका स्थान मुख्य है।

मुक्त अर्थनीति—अर्थशास्त्रियो के एक दल का यह सिद्धान्त है कि आर्थिक-संकटो के निवारण के लिये एक नवीन मुद्रा-प्रणाली स्थापित कीजाय। इसका आधारभूत सिद्धान्त यह है कि ऐसी व्यवस्था की जाय कि मुद्रा का मूल्य स्वतः हर मास कम होता रहे और उसके स्थान पर नवीन मुद्रा का प्रचलन होता रहे। इससे मुद्रा-संचालन का प्रचलन बडी तीव्र गति से होगा, लोग मुद्रा का मूल्य घटने के कारण, उसका वेग से प्रचलन करेगे। जब स्थायी रूप से मुद्रा का प्रचलन होगा तो बेकारी न रहेगी; आर्थिक संकट भी उत्पन्न न होगा।

मुक्त बन्दरगाह—किसी देश के बन्दरगाह को, उस देश द्वारा, दूसरे देश को प्रयोग करने का अधिकार देदेना। अन्य देश अपना माल उस बन्दरगाह से भेज सके तथा उस बन्दरगाह पर मॅगा सके। उसे न कोई आयात-निर्यात कर देना पडे और न इस प्रयोग के लिये उसपर किसी प्रकार का दायित्व या बंधन लगाया जाय।

मुक्त व्यापार—मुक्त व्यापार से यह प्रयोजन है कि सब देश स्वतंत्र रूप से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करे और कम-से-कम तट-कर (टैरिफ़) आयात-निर्यात पर उनको देना पडे।

मुद्रा-विनिमय—प्रत्येक देश मे भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित हैं :

जैसे भारत मे रुपया, अमरीका में डालर, इँगलैंड में पौंट तथा शिलिंग, जर्मनी मे मार्क, जापान में येन, रूस मे रूबल। परस्पर देशों मे व्यापार होता है और किसी वस्तु के मूल्य के भुगतान के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक देश के मुद्रा की दर नियत कर दीजाय। देश की सामाजिक-राजनीतिक अवस्था का मुद्रा की दर पर भी प्रभाव पड़ता रहता है।

मुंजे, डाक्टर बालकृष्ण शिवराम—हिन्दू महासभा को पुनर्सङ्गठित करनेवाले और महासभा के प्रथम दल के नेता। नागपुर के प्रसिद्ध चिकित्सक। असहयोग आन्दोलन, सन् १६२० मे, भाग लिया और जेल-यात्रा की। बाद को हिन्दू महासभा में शामिल हुए। सन् १६३१ की दूसरी गालमेज-परिषद् मे प्रतिनिधि होकर गए। आपकी सैनिक शिक्षा मे विशेष रुचि है। इसीलिए आपने नासिक मे भोंसले मिलिटरी कालेज की स्थापना कराई है। हिन्दू महासभा के सभापति भी रह चुके हैं। देश-हितकारी कार्यों मे पूर्व से ही भाग ले रहे हैं। १६१६ के फौजी-शासन के बाद पीडित पंजाब की सहायतार्थ स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी के साथ आप भी अमृतसर गये थे। आजकल हिन्दू महासभा के प्रधान मन्त्री हैं।
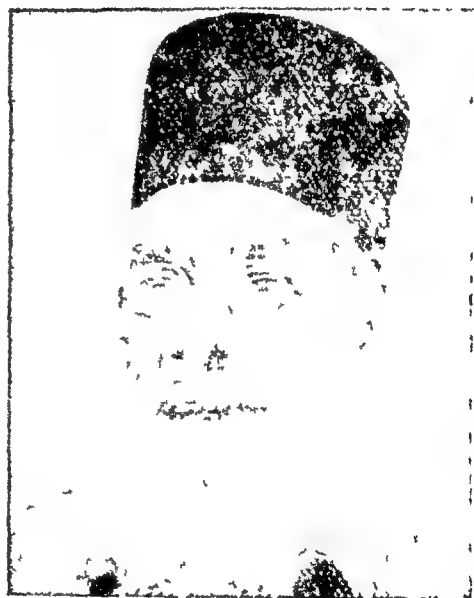
मुंशी, कन्हैयालाल माणिकलाल—जन्म सन् १८८७ ई०। बडौदा और बम्बई मे शिक्षा प्राप्त की। बम्बई हाईकोर्ट मे वकालत शुरू की। सन् १६१५ मे मि० जमुनादास-द्वारकादास के साथ 'यंग इंडिया' का संपादन किया। सन् १६१७-१६ मे होमरूल लीग बम्बई के मन्त्री रहे। बम्बई विश्वविद्यालय की सीनेट तथा सिंडीकेट के सदस्य हैं। सन् १६३० के सत्याग्रह-आन्दोलन के समय से राष्ट्रीय क्षेत्र मे हैं, और अपनी धर्मपत्नी, श्रीमती लीलावती, के साथ

जेल-यात्रा भी की है। अ०-भा० कांग्रेस कमिटी के पुराने सदस्य रहे हैं। आप गुजराती के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, लेखक, पत्रकार और उच्च कोटि के उपन्यास-कार हैं। गुजराती साहित्य-कोष का सम्पादन भी आपने किया है। सन् १६३७-१६३६ तक बम्बई की कांग्रेसी प्रान्तीय सरकार के स्वराष्ट्र-मंत्री (Home Minister) रहे। युद्ध के प्रश्न पर काग्रेस मत्रि-मण्डल के साथ आपने भी त्यागपत्र दे दिया। सन् १६४१ मे काग्रेस की साम्प्रदायिक-निर्णय-सम्बन्धी नीति पर गाधीजी से आपका मतभेद होगया और आपने कांग्रेस को त्याग कर 'पाकिस्तान' के निराकरण मे 'अखण्ड हिन्दुस्तान' आन्दोलन की नीव डाली। 'सोशल वैलफेयर' नामक साप्ताहिक आपने निकाला है, जिसके द्वारा आप अपने विचारो का प्रतिपादन कर रहे है।
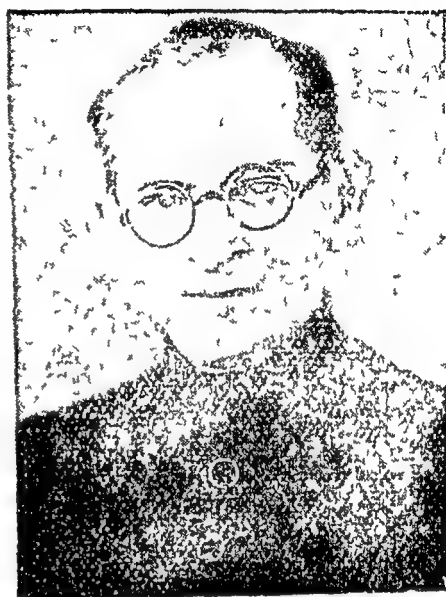
मुफ्ती आज़म—(यरूशलम का), इसलाम का धर्माचार्य, अरब का राष्ट्रीय नेता, नाम हज अमीन एफन्दी अल् हुसैनी, अवस्था ४५ वर्ष, क़ाहिरा, यरूशलम और क़ुस्तुन्तुनिया मे तालीम पाई, अपने भाई के बाद, सन् १६२१ मे, यरूशलम का मुफ़्ती बना, सन् १६२२ मे सुप्रीम मुसलिम कौसिल का अध्यक्ष हुआ, १६३१ ई० मे यरूशलम मे मुसलिम कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। विगत विश्वयुद्ध मे मुफ़्ती ने, तुर्कों के ख़िलाफ़, बरतानिया का पक्ष लिया किन्तु, फ़िलस्तीन मे यहूदियो को बसाने के प्रश्न पर, वह ब्रिटेन के विरुद्ध हो गया। आज बीस वर्षो से वह, फिलस्तीन मे यहूदी उपनिवेश बसाये जाने के प्रतिरोध मे, बरतानिया के विरुद्ध, अरबो मे आन्दोलन कर रहा है। उसे १० साल क़ैद की सज़ा दी गई थी, परन्तु बाद मे रिहा कर दिया गया। उसका फिलस्तीन-अरब दल, जो मुफ़्ती दल भी कहलाता है, फिलस्तीन मे सबसे बडा दल है। सन् १६३७ मे मुफ़्ती अरब की उच्च संस्था का अध्यक्ष बना। दूसरे अरब नेताओ के साथ मुफ़्ती पर फिलस्तीन मे प्रवेश-निषेध लगाया

गया, तब वह शाम (सीरिया) मे जाकर रहने लगा। शाम से भी वह अरब-आन्दोलन का सचालन करता रहा। फरवरी १९३७ में मुफ़्ती ने, लन्दन के फिलस्तीन-सम्मेलन मे, अरब-सभ्य-मण्डल भेजा था। अप्रैल '४१ मे, रशीद अली के नेतृत्व मे इराक़ में उठे अँगरेज-विरोधी विद्रोह में भी मुफ़्ती ने भाग लिया। विद्रोह के दबा दिये जाने पर मुफ़्ती ईरान को चला गया, और जब इराक़ पर अँगरेजों ने क़ब्जा कर लिया तो मुफ़्ती इटली जा पहुँचा। दिसम्बर १९४१ मे वह जर्मनी मे था, जहाँ उसने हिटलर से भेट की थी।

मुसोलिनी, बैनितो—इटली का अधिनायक; फासिज्म का सस्थापक; २९ जुलाई सन् १८८३ को पैदा हुआ, इसका बाप लुहार था; थोड़ा-सा इसने पढा-लिखा; बडा होने पर मुसोलिनी समाजवादी बन गया। सन् १९०२ मे इटली से भाग गया और स्विट्जरलैण्ड जाकर रहने लगा। इटली वापस आया। समाजवादी दल मे उग्र कार्यक्रम का प्रचार किया। १९१२ मे दल के मुख-पत्र 'अवन्ती' का सचालक नियुक्त किया गया। १९१४ मे जब पिछला विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ तो मुसोलिनी राष्ट्रवादी बन गया और इटली के युद्ध मे सम्मिलित होने का प्रचार करने लगा। समाजवादी दल ने, इस कारण, उसे अपने मे से निकाल बाहर किया। नवम्बर १९१४ मे उसने 'पोपोलो द'इतालिया' नामक अपना पत्र निकाला; लड़ाई मे हस्तक्षेप करने के अनुयायी दल का नेता बनगया; मई १९१५ मे, इटली के लडाई मे शामिल होने पर, मुसोलिनी इटालियन सेना मे भरती होकर साधारण सैनिक बना; कारपोरल के पद पर पहुँचा, फरवरी १९१७ मे युद्ध मे बुरी तरह घायल हुआ और अच्छा होजाने पर लौटा तथा समाचार-पत्र के सचालन मे लग पड़ा। लडाई के बाद, वर्साई मे जब सधि हुई तो, इटली को विजय की लूट मे सन्तोषजनक भाग न मिला और देश मे वाम-पक्षी क्रान्तिवाद अधिक बढा तब, २३ मार्च १९१९ को, मुसोलिनी ने 'मिलान' नगर मे, फ़ासिस्त दल की स्थापना की, जिसमे उस सयय सिर्फ ४० सदस्य भरती हुए। इस दल का कार्यक्रम राष्ट्रीय और साम्यवाद-विरोधी रखा गया। १९१९ के चुनाव मे उसके दल के उम्मीदवारो को सिर्फ ४,००० मत मिले, किन्तु बाद मे यह आन्दोलन तेजी से बढ़ा। सन् १९२१ मे उसने लिबरल दल के नेता से समझौता किया।

फलस्वरूप पार्लमेंट के चेम्बर मे उसके ३८ सदस्य पहुँच गये, किन्तु मन्त्रि-मण्डल मे यह लोग शरीक नही हुए। इन्ही दिनो इस आन्दोलन का नाम फासिज़्म पड़ गया। सन् १६२२ मे इटली की स्थिति अशान्तिमय होउठी थी। क्रान्तिवादी-समाजवादियो की सत्ता प्रबल थी, कारख़ानो पर भी उनका ही नियंत्रण था और सरकार कमज़ोर होरही थी। तब ४०,००० फासिस्तो ने, २८ अक्तूबर १६२२ को, नेपल्स की फासिस्त-दल-कांग्रेस के बाद, राजधानी की ओर क़दम बढ़ाया। मुसोलिनी उनका नेता (Duce) था। राजधानी मे इन्होने शासन सत्ता अपने हाथ मे लेने की माँग पेश की। प्रधान मन्त्री फाक्ता की कमज़ोर सरकार दब गई और बादशाह ने मुसोलिनी को प्रधान मंत्री नियुक्त कर दिया। मुसोलिनी ने सरकार बनाई और फासिस्तो के साथ-साथ कुछ दक्षिणपथी लिबरल तथा कैथलिक पादरी भी शामिल किये। समाजवादियो ने इसका प्रतिरोध किया, किन्तु फ़ासिस्तो ने इस विरोध को भंग कर दिया। सन् १६२३ में मुसोलिनी ने चुनाव-सम्बन्धी हुक्म निकाला कि जिस दल को मत-सख्या का एक-चौथाई प्राप्त होगा वही पार्लमेंट मे दो-तिहाई प्रतिनिधित्व का अधिकारी बन सकेगा। अप्रेल १६२४ के चुनाव मे, इस कारण, फासिस्त दल को बहु-संख्यक मत मिले। १० जून १६२४ को समाजवादी नेता, मतिओती, का उग्र फासिस्तो ने वध कर डाला। इस हत्याकाण्ड से इटली मे राजनीतिक सघर्ष उठ खड़ा हुआ। पार्लमेंट का विरोधी दल और समाजवादी, साम्यवादी, लिबरल तथा पादरी सदस्य विरोध मे चेम्बर से उठकर बाहर चले आये और उन्होंने सरकार का बहिष्कार कर दिया।

सन् १६२५ मे मुसोलिनी ने बलपूर्वक सरकार को हथिया लिया और वह इटली का अधिनायक बन बैठा। १६२६ मे विरोधी दलों का उसने दमन किया, उनके पार्लमेन्टरी अधिकार रद कर दिये और उनके नेताओं पर अत्याचार किये। बहुतेरे उनमें से विदेश को भाग गये।

इसके बाद मुसोलिनी ने फासिस्त ढग पर इटली का सगठन आरम्भ किया। राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार, देश का पुनर्शस्त्रीकरण और अनेक आर्थिक विकास उसने किये। १६३३ में, जर्मनी में राष्ट्रीय-समाजवादी दल के अभ्युदय के बाद भी, इटली की वैदेशिक नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

जर्मन राष्ट्रीय-समाजवादी दल फासिज्म की ही नक़ल थी और यह दल, अपने अस्तित्व के प्रारम्भिक काल से ही, इटली के फासिस्त दल से मैत्री-सम्बन्ध रखे हुए था। लेकिन, सन् १६३४ मे, मुसोलिनी ने, पश्चिमी राष्ट्रों—ब्रिटेन और फ्रान्स—से मिल कर, 'स्ट्रेसा का मोर्चा' क़ायम किया। उसने नात्सियों के जातीयतावाद का विरोध किया और कहा कि सामी-विद्वेष (Anti Semitism) इटालियन जनता की प्रकृति के विरुद्ध है। जब जुलाई मे नात्सियों ने आस्ट्रिया को हस्तगत करने का प्रयास किया तब मुसोलिनी ने, हिटलर के विरुद्ध, आस्ट्रिया की सीमा पर लामबन्दी की।

लेकिन सन् १६३५ मे, उसने मुल्क हब्श (अबीसीनिया) को जीतने की नीति ग्रहण की और उस पर आक्रमण कर दिया। इटली के विरुद्ध, इस युद्ध मे, राष्ट्रसघ ने दण्डाज्ञाये लगाईं तो, पर पूरे बल से नहीं। यह उसे अबीसीनिया की विजय से न रोक सकीं- अपितु पश्चिमी राष्ट्रों का वह विरोधी हो गया और, इसी कारण, मुसोलिनी हिटलर से मिलकर धुरी-नीति-निर्माण की ओर प्रेरित हुआ। स्पेन के गृह-युद्ध (१६३६-३६) मे हिटलर तथा मुसोलिनी की मित्रता और भी प्रगाढ होगई। मार्च १६३८ मे हिटलर द्वारा आस्ट्रिया को जर्मन राइख मे मिलाये जाने पर मुसोलिनी मौन रहा। मई मे हिटलर को रोम मे बुलाकर उसने उसका शानदार स्वागत-सत्कार किया और अगस्त मे ख़ुद बर्लिन गया। हिटलर को प्रसन्न करने के लिये, अपने विचारों के प्रतिकूल, उसने इटली मे यहूदी-विरोधी कानून बनाये। म्युनिख-समझौते के समय, सितम्बर १६३८ मे, चैकोस्लोवाकी-समस्या के अवसर पर, उसने कूटनीतिज्ञतापूर्वक हिटलर का समर्थन किया और म्युनिख मे समझौते पर अपने हस्ताक्षर किये। मार्च १६३६ मे उसने अलबानिया पर अपना अधिकार जमा लिया। इसके बाद उसने फ्रान्स से जिबूटी तथा ट्यूनिस वापस करने की मॉग की। उसने यह भी मॉग पेश की कि स्वेज नहर के प्रबन्ध मे इटली का योग रहे। मई १६३६ मे उसने जर्मनी के साथ सैनिक सधि की।

जब वर्तमान युद्ध आरम्भ हुआ तो इटली आरम्भ मे "अविग्रही" देश बनकर हिटलर को बल देता रहा। किन्तु जब फ्रान्स मे बहुत कॉटे की लडाई चल रही थी, तब, १० जून १६४० को, उसने मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध-

घोषणा करदी। उसे यह विश्वास था कि जर्मनी अवश्य विजयी होगा और वह लूट मे से हिस्सा लेना चाहता था, परन्तु, इसके बाद, पासा पलटता गया। अक्टूबर १९४० में मुसोलिनी ने यूनान पर हमला किया, किन्तु इस युद्ध मे यूनानियों ने उसके दाँत खट्टे कर दिये। इटालियनों की पराजय ही नही हुई, अपितु उन्हे अपने अपहृत देश, अलबानिया, से भी हाथ धोने पडे। जून १९४० मे मुसोलिनी का इटली, सोवियत रूस के विरुद्ध युद्ध मे, जर्मनी के साथ, शामिल हुआ और दिसम्बर १९४१ में सयुक्त-राष्ट्र अमरीका के विरुद्ध।

इतिहास मे, बहुत दिन बाद, सबसे प्रथम मुसोलिनी ससार के समक्ष "हौआ" बनकर प्रकट हुआ, जिसके वीभत्स रूप के सामने ससार के महान् बरतानवी साम्राज्य के प्रधान-मन्त्री मृत चेम्बरलेन को भी ढीला पड जाना पडा, और उनकी ढील ने ही मुसोलिनी को इतना बल प्रदान किया। पर अधिनायक मुसोलिनी की कला अब भग हो चुकी है। पुरातन रोमन-साम्राज्य के उसके सुख-स्वप्न हवा मे उड चुके हैं। उसका अफ्रीकी साम्राज्य (अबीसीनिया के अमानुषिक अपहरण के बाद इटली के बूढे बादशाह, विक्टर इमान्युल, को 'सम्राट्' घोषित कर उसने बडा गर्व किया था) अब धूल मे मिल चुका है। भारतीय सेनाओं की बहादुरी और बरतानवी सेना-नायकों की रण-चातुरी ने अबीसीनिया को फिर से स्वतन्त्र कर दिया है। इटली के अफ्रीकी-साम्राज्य के दूसरे अग भी भग होरहे हैं। हिटलर और उसकी महत्त्वाकाक्षा-पूर्ति मे भी मुसोलिनी और उसका इटली कुछ लाभप्रद सिद्ध नही हुए। बल्कि सचाई तो यह है कि मुसोलिनी हिटलर के लिये एक लोथ के समान है, जिसे हिटलर अपनी पीठ पर लादे-लादे व्यर्थ ही घूमता है।

मुसोलिनी इटली का प्रधान-मन्त्री तो है ही—जिस पद को वह सरकार का मुख्याधिकारी कहता है। इसके अलावा वह इटली का स्वदेश-मन्त्री, युद्ध-मंत्री (थल, जल, नभ सब सेना का) तथा इटालियन पूर्वीय-अफरीका का भी मन्त्री है। दोना राचीली उसकी पत्नी है, और इन दोनों से वितोरियो और ब्रूनो नामक दो पुत्र और एडा नामक एक पुत्री है। एडा १९३९ में भारत भी आई थी और महात्मा गान्धी से उसने भेंट की थी। काउन्ट सियानो एडा का पति है।

मुसोलिनी ने समस्त राष्ट्र को अपने 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' मत की दीक्षा दी है। यही उसका फासिस्त दल है। इटली मे फासिस्त दल ही अकेला राजनीतिक दल है। उसके प्रत्येक सदस्य को मुसोलिनी की हर प्रकार से आज्ञा माननी पड़ती है। फासिस्त काली कुर्त्ती पहनते हैं तथा हाथ ऊँचा उठाकर, रोमन प्रकार से, परस्पर नमस्कार करते हैं। उनकी विचारधारा तथा सगठन सैनिक है। उनके विधान मे लिखा है कि फ़ासिस्त दल नागरिकों की एक सैन्य है जो मुसोलिनी की आज्ञा पर राष्ट्र-सेवा के लिये तत्पर रहती है। इसका महदुद्देश्य स सा में अतालवी (इटालियन) राष्ट्र की महत्ता स्थापित करना है। फासिज्म हिंसा को मानता है, नागरिक स्वाधीनता को अस्वीकार करता है और सम्पूर्ण-सत्तावादी है। युवकों के संगठन और उनकी शिक्षा पर भी उसका नियत्रण है। ६ से १२ वर्ष की आयुवाले बच्चो के सङ्गठन का नाम 'बलिल्ला' है; १२ से १८ की उम्रवालो की सस्था 'अवंगार्दिया' कहलाती है। इन संस्थाओ के सदस्यों की अपनी वर्दियाँ हैं और इनके सदस्यों को फौजी तालीम लेनी पडती है। १८ वर्ष के जवान युवको को फासिस्त दल मे भर्ती किया जाता है। सन् १९२७ मे इस दल के दस लाख सदस्य थे। फासिस्त दल साम्राज्यवादी और राष्ट्रवादी है। वह पुरातन रोमन साम्राज्य की परम्परा को पुनर्जीवित करने का इच्छुक है और राष्ट्र को सिपाहियाना बनाकर अनुशासन और व्यवस्था तथा श्रमशीलता की शिक्षा देता है। इस दल की सर्वोच्च सस्था फासिस्त ग्राड कौंसिल है, जिसकी नियुक्ति मुसोलिनी करता है। इस कौंसिल को मुसोलिनी का उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार है। फासिस्त दल का रोमन कैथलिक ईसाई-सम्प्रदाय से अच्छा सबध है। सन् १९३८ तक मुसोलिनी यहूदियो का विरोधी नही था। वह दल मे शामिल थे और उच्च पदो पर थे। परन्तु नात्सी प्रभाव मे आकर वह यहूदियो का विरोधी होगया।

मुसोलिनी के अतिरिक्त दल के कुछ नेता और हैं जिनमे काउन्ट कियानो और काउन्ट ग्रान्दी मुख्य हैं। (विशेष जानकारी के लिये देखिये—'फासिज्म'।)

मुहम्मद अली जिन्ना—भारतीय मुसलिम लीग के अध्यक्ष। कराची मे, सन् १८७६ ई० मे, पैदा हुए। कराची तथा इगलैण्ड मे शिक्षा पाई। बैरिस्टर होकर आये। १८९७ में बम्बई हाईकोर्ट मे वकालत शुरू की। पेशे मे शीघ्र ही चमक निकले। सन् १९०६ मे दादाभाई नौरोजी के प्राइवेट सैक्रेटरी बने और भारतीय राजनीतिक जागरण के दादा से राजनीति का ककहरा पढ़ा। सन् १९१० में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल (अब केन्द्रीय असेम्बली) के सदस्य चुने गये और १९१९ तक चुन जाते रहे, जबकि रौलट बिल के विरोध मे सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया। इस पद पर रहकर आपने देश की प्रशंसनीय सेवा की। इ० ले० कौंसिल मे आप सरकारी पक्ष की धज्जियाँ उडा देते थे और लोग आपके यह भाषण सुनने-पढ़ने को लालायित रहा करते थे। सन् १९१९ तक आप कांग्रेसी नेता रहे और उसके अधिवेशनों मे बराबर क्रियात्मक भाग लेते रहे। मुसलिम लीग मे भी आप भाग लेते थे, किन्तु तब आपकी गणना प्रगतिशील मुसलिम नेताओ मे थी: राष्ट्रीय मतैक्य और सामूहिक राजनीतिक विकास के आप पक्के हामी थे। सन् १९२० मे मुसलिम लीग के अधिवेशन के सभापति बने। १९२३-२५ मे शासन-सुधार जॉच कमिटी के सदस्य रहे। सेडहर्स्ट कमिटी (१९२६-२७) के भी सदस्य रहे। गोलमेज़ सम्मेलन मे भी शरीक हुए। केन्द्रिय असेम्बली मे मुसलिम स्वतंत्र दल के नेता रहे। मुसलिम लीग के विपरीत, १९२८ मे, आपने साइमन कमीशन का बहिष्कार और उसकी जॉच का विरोध किया था। सन् १९३४ से आपने मुसलिम लीग को पुनर्संठित करना शुरू किया और तब से आज तक उसके क़ाइदे आज़म हैं। आपके गुणो मे महत्वाकांक्षा भी एक है। जिन्ना साहब आज भारत के भाग्य-विधाताओ मे हैं, बरतानिया और अम-

रीका तक आपके नाम की धूम है। हिन्दू महासभा की तरह मुसलिम लीग यद्यपि एक साम्प्रदायिक संस्था है, किन्तु आपने कांग्रेस के अनुकरण में, उसका संगठन बिलकुल कांग्रेस के आधार पर कर डाला है: कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव स्वीकार किया, लीग ने भी किया। कांग्रेस ने युद्ध में सहयोग देने से इनकार किया, लीग ने भी किया। फिर भी आपकी असहयोगवादी लीग को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में आजकल बहुत महत्व प्राप्त हुआ है।

म्युनिख-समझौता—यह समझौता, जर्मनी के मुख्य नगर म्युनिख़ में, जर्मनी, ग्रेटब्रिटेन, फ्रान्स तथा इटली के बीच, २६ सितम्बर १६३८ को, हुआ, जिसके अनुसार चैकोस्लोवाकिया के सूडेटन-जर्मन-जिले जर्मनी को दे दिये गये। हिटलर ने इस इलाक़े की वापसी का मतालबा अगस्त में किया था और चैकोस्लोवाकिया पर हमला करने की तैयारी करली थी। बरतानी वज़ीरेआज़म चेम्बरलेन हवाई मार्ग द्वारा उड़ कर हिटलर के सदर मुक़ाम पहुँचे और हिटलर से मिले और लड़ाई रोकने की उससे अनुनय की। फलत. बरतानिया और फ्रान्स की सिफारश पर चैकोस्लोवाकिया अपने उन जिलों को छोड़ने को राजी होगया जिनकी आबादी आधी से अधिक जर्मन थी। चेम्बरलेन साहब दुबारा उड़कर हिटलर से मिले, किन्तु हिटलर ने अब की बार अपने मतालबे को बढा दिया। उसने पहले से भी अधिक इलाक़ा वापस मॉगा और दूसरे एक इलाक़े में जनमत लिये जाने का मतालबा किया। मि० चेम्बरलेन हवाई यान से वापस लौट आये और पश्चिमी राष्ट्रों—फ्रांस और ब्रिटेन—ने चैकोस्लोवाकिया को सलाह दी कि वह फौजी तैयारी करे। फ्रान्स और बरता-निया ने भी लामबन्दी शुरू कर दी और लड़ाई अनिवार्य दिखाई दी। तब हिटलर ने, मुसोलिनी के परामर्श से, म्युनिख़ में दूसरा सम्मेलन होने की तजवीज़ पेश की। २८ सितम्बर को चेम्बरलेन, दलादिये, मुसोलिनी और हिटलर म्युनिख़ में इकट्ठे हुए। हिटलर की मॉगों में, इस सम्मेलन में, कुछ यों-ही-सी रद्दोबदल कीगई, किन्तु इस अवसर पर पश्चिमी राष्ट्रों ने उन्हें स्वीकार कर लिया। जिन इलाक़ों को हिटलर चाहता था, वह बिना जनमत लिये हुए ही, हिटलर को दे दिये जाने स्वीकार कर लिये गये। इस समझौते के अनुसार, १ अक्टूबर १६३८ को, जर्मन-सेना ने चैकोस्लोवाकिया में प्रवेश किया। समझौतेमे यह भी निश्चय

हुआ था कि चैकोस्लोवाकिया की नई सीमाओ की उक्त चारो राष्ट्र रक्षा करेंगे। चेम्बरलेन तथा हिटलरने एक संयुक्त-घोषणा पर हस्ताक्षर किये, जिसमे यह लिखा गया कि जर्मनी तथा ब्रिटेन में युद्ध न होगा। बरतानिया और फ्रान्स मे इस समझौते का स्वागत किया गया। लोगो ने कहा कि, चलो लडाई की बला टली। किन्तु ससार भर मे इस प्रयास की आलोचना पहले ही शुरू होचुकी थी, और इस समझौते को तो आत्मसमर्पण कहा जा रहा था। कुछ भी हो, जर्मनी को सन्तुष्ट करने की ब्रिटेन की नीति का यह अन्तिम रूप था। मार्च १९३९ में हिटलर ने, म्युनिख़-समझौते का उल्लघन कर, समस्त चैकोस्लोवाकिया पर अपना अधिकार जमा लिया। इससे ब्रिटेन तथा फ्रान्स की आँखे खुल गई और सन्तुष्टीकरण नीति के स्थान पर इन दोनो देशो ने प्रतिरोध की तैयारी की।

मैक्सिको (का) संयुक्त-राज्य—उत्तरी अमरीका का प्रजातन्त्री सघ-राज्य; क्षेत्र० ७,८०,००० वर्ग०; जन० १,६५,००,०००: राष्ट्रभाषा स्पेनी। जन-सख्या मे २५,००,००० गोरे, ४५,००,००० इडियन और ९५,००,००० वर्णसंकर है। मैक्सिकन सघ-राज्य मे २८ राज्य है। काग्रेस (पार्लमेंट) में दो धारा-सभाये है। राष्ट्रपति,६ वर्ष के लिये, सीधा जनता द्वारा,चुना जाता है। कृषि, खनिजोद्योग तथा तेल के व्यवसाय प्रमुख हैं। १८७६ से बराबर राष्ट्रपति रहे आनेवाले महान् राष्ट्रपति, दोन पोर्फिरियो दियाज़, के त्यागपत्र दे देने के बाद, सन् १९११, से मैक्सिको स्थायी क्रान्ति की स्थिति मे रहा है। अनेक शासनो के परिवर्तन के बाद, राष्ट्रपति कालिस का उत्तराधिकारी जनरल एल० कार्डेनाज़, ३० नवम्बर १९३९ को, चुना गया। दोनो राष्ट्रीय-क्रान्तिकारी दल के नेता थे। कालिस सयुक्त राष्ट्र अमरीका चला गया। यह दल क्रान्तिकारी, राष्ट्रवादी तथा समाजवादी है। इस पर साम्यवाद का बडा प्रभाव है। राष्ट्रपति कार्डेनाज़ ने अनेक सामाजिक सुधार किये। उसने ६ वर्ष के लिये एक योजना बनाई, जिसके अनुसार रेलवे तथा उद्योग के राष्ट्रीयकरण और ज़मीन के नये बॅटवारे तथा सामान्य आर्थिक-सामाजिक उन्नति और विकास के लिये कार्यक्रम तैयार किया, और तेल के व्यवसाय मे तो बिलकुल क्रान्ति कर दी। मैक्सिको मे तेल का व्यवसाय करनेवाली कम्पनियाँ अँगरेज़ी, डच तथा अमरीकन हैं, जिनमे सबसे बड़ी, रायल डच-शैल समुदाय की, मैक्सीकन ईगल् आयल कम्पनी हैं। सन् १९३७

में तेल-कम्पनियो के मजदूरो ने, सरकारी सहायता से, मज़दूरी मे वृद्धि कराली, किन्तु कम्पनियों ने इसका पालन नहीं किया। १३ मार्च १९३८ को सरकार ने कम्पनियो से तेल के कुएँ ले लिये और उन्हें एक राष्ट्रीय प्रबध-समिति के अधीन कर दिया, जिसमे मज़दूरों के प्रतिनिधि भी थे। फलतः मैक्सिको और दूसरे देशो में राजनीतिक झगड़ा उठ खडा हुआ और मैक्सिको ने बरतानिया से अपना राजनीतिक सबध विच्छेद कर लिया। कम्पनियो से अब भी झगडा चल रहा है। सरकार १० वर्ष में २० करोड़ डालर हरजाने के देना चाहती है, कम्पनियाँ ४० करोड डालर हरजाना कूतती हैं। "बरतानवी और अमरीकी तेल-साम्राज्यवाद से नजात" मैक्सिकनों का नारा है। शकर व्यवसाय तथा रेलवे को भी राज्य के अधीन कर दिया गया है। रेलवे का प्रबन्ध रेलवे मजदूर-सघ के अधीन है। इन सब व्यवसायों मे विदेशियो का रुपया लगा हुआ था। भूमि-विभाजन के लिये यह योजना तैयार की गई है कि २००० एकड से अधिक की जमींदारियों को तोड दिया जाय। ५० लाख एकड भूमि, कार्डेनाज़ के शासन-काल मे, ५ लाख किसानों को दी जा चुकी है, किन्तु अभी ढाई लाख किसान भूमि-हीन हैं। यह पुनर्विभाजित भूमि ग्राम-संघ (एदीजो) के अधिकार मे रहती है, जिसे वह किसानों को उठा देता है। वे उसे पुश्तानपुश्त जोत-बो सकते हैं, उनकी वह मौरूसी हो जाती है। परन्तु यदि कोई किसान दो साल से अधिक समय तक उस पर काश्त न करे, तो वह उससे वापस ले ली जाती है। राष्ट्रपति ने महिलाओं को विशेष मताधिकार दिया है तथा शिक्षा-सबधी सुधार भी किये हैं। जब स्पेन मे गृह-युद्ध हुआ तो प्रजातंत्र-

वादी सरकार की सहायता के लिये मैक्सिको ने अस्त्र-शस्त्र भेजकर उसकी सहायता की। मैक्सिको ने रूसी क्रान्तिकारी ट्रात्स्की को अपने देश मे शरण दी। नवम्बर '४० मे कार्डेनाज़ की अवधि समाप्त होगई, तब उसकी सिफारिश से, अवीला कमाचो, राष्ट्रपति बनाया गया। सयुक्त-राष्ट्र अमरीका से, तेल के झगडे के समय, मैक्सिको के बिगडे हुए सबध अब सुधर चले हैं और मैक्सिको ने अमरीकी गोलार्द्ध की रक्षा के लिये तत्परता दिखाई है। अक्टूबर १९४१ मे बरतानिया से भी सबध फिर जुड गया है। दिसम्बर '४१ मे जब जापान ने अमरीकी अधिकृत देशो पर आक्रमण किया तो मैक्सिको ने उससे नाता तोड़ लिया।

मैजिनो दुर्ग-पंक्ति—यह फ्रान्स की पूर्वी सीमा पर क़िलेबन्दी थी, जो सन् १९२७–३५ मे फ्रान्स के युद्ध-सचिव, मैजिनो (Maginot) की योजनानुसार, उसीके तत्त्वावधान मे, बनी। यह ससार की सबसे मज़बूत तथा विशाल क़िलेबन्दी थी। इस दुर्ग-पक्ति मे भूगर्भ-स्थित (ज़मीदोज़) पचासो कई-मज़िला क़िले थे। ज़मीन के ही भीतर अनेक नगर बसे हुए थे, जिनमे रेलवे, बाज़ार, बिजलीघर, सडक आदि की पूरी व्यवस्था थी। मैजिनो क़िलेबन्दी स्विट्ज़रलैण्ड के सीमान्त से उत्तर मे मलमेदी तक फैली हुई थी। इस दुर्ग-पक्ति को मलमेदी से आगे, बेलजियन सरहद के किनारे-किनारे, समुद्र तक थोडे हलके रूप मे बढाया गया था। मई १९४० मे इसीको तोड-फोड कर नात्सी सेनाऍ फ्रान्स मे घुस पडी। जून १९४० मे नात्सियो ने राइन नदी को पार किया और बडो मैजिनो लाइन का भी सत्यानाश कर डाला। इसका मुख्य-द्वार, पृथ्वी के ऊपर की ओर, कुऑ जैसा था। उस पर तोपे चढी रहती थीं, जिनका बिजली द्वारा अन्दर क़िले मे एक कमरे से सम्बन्ध रहता था, और एक व्यक्ति वहीं भीतर बैठा हुआ बिजली की ताक़त से गोले फेंका करता था। फ्रान्स को अपनी इस क़िलेबन्दी पर भारी गर्व था, और इसीके भरोसे वह लोग निश्चिन्त बैठे रहे और नात्सियों से जान तोडकर न लड सके। बरतानी मोटर-सवार सेना का जनरल फ़ुलर तो इस दुर्ग-पंक्ति को सन् १९२७ में ही "फ्रान्स की क़ब्र का पत्थर" कह चुका था, और उसकी भविष्यवाणी ठीक निकली।

मैटाक्सस, जनरल जोनिस—यूनान का प्रधान-मन्त्री, १८७१ मे जन्मा, बर्लिन मिलिटरी कालेज मे युद्ध-विद्या पढी. जर्मन जीवन-प्रणाली तथा संस्कृति का हामी बनगया। सन् १६१७ मे जब यूनान ने तत्कालीन युद्ध मे मित्र-राष्ट्रो का पक्ष लिया, तो मैटाक्सस ने इसका विरोध किया। उसे निर्वासित कर दिया गया। १६२० मे स्वदेश लौटा। राजतन्त्रवादी बन गया। बादशाह जार्ज द्वितीय को सन् १६३५ मे यूनान वापस आने के लिये सहायता दी। सन् १६३६ मे यूनान का अधिनायक बन बैठा। यद्यपि वह पार्लमेन्टरी प्रजातन्त्र का विरोधी और देश के शासन मे फासिस्त विचारों का पोषक था, किंतु विदेशी फासिस्त शक्तियो का वह विरोधी था। इसीलिये अक्टूबर १६४० मे जब इटली ने यूनान पर हमला किया तो मैटाक्सस ने उससे लोहा लिया और सारे देश को लडाया। ३० जनवरी १६४१ को, युद्ध के बीच, उसकी मृत्यु होगई।

मैन्जीस, राबर्ट गॉर्डन—आस्ट्रेलिया का भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, १८६४ मे पैदा हुआ, बैरिस्टर, पार्लमेन्ट का सदस्य १६२८, उद्योगमन्त्री १६२६; कई अन्य पदोपर रहा, १६३६ मे प्रधान मन्त्री बना, जुलाई १६४१ मे त्यागपत्र देदिया। बादमे फैडन प्रधान-मन्त्री बना। उसने भी बजट के एक प्रश्न पर, अक्टूबर '४१ मे, इस्तीफा देदिया। १६४१ के चुनाव मे देश मे मजदूर-दल का बल बढ गया था, इसलिये, उसके नेता कर्टिन ने सरकार बनाई। मजदूर दल ने अन्य दलो का

साथ युद्ध-समिति मे दिया था । अन्य दल, विरोधी होजाने पर भी, युद्ध-समिति मे कर्टिन के साथी हैं । आस्ट्रेलियन सेनाये निकट और सुदूरपूर्व मे लडी हैं और बरतानी साम्राज्य के अन्य भागो मे लड रही है ।

मैन्शेविक—नरम-दली रूसी समाजवादी जिन्होने, सन् १६०३ मे रूसी समाजवादी दल मे फूट पड जाने के बाद, बोलशेविज्म का विरोध किया, विशेषकर १६१७ की क्रान्ति के समय । यह अल्प-सख्यक दल था । 'मैन्शेविक' का रूसी भाषा मे अर्थ है 'अल्पमत' ।

मैमल प्रदेश—उत्तर-पूर्वी जर्मनी की सीमा पर एक प्रदेश; क्षेत्रफल १,००० वर्ग०; जन० १,५०,०००, जिसमे जर्मनो का प्राधान्य है, शेष लिथुआनियन हैं । लिथुआनिया को बाल्टिक सागर तक रास्ता देने के हेतु मैमल-लैण्ड और मैमल बन्दरगाह, वर्साई की संधि के अनुसार, जर्मनी के अधिकार से लेकर लिथुआनिया को दे दिये गये । यह प्रदेश पहले मित्रराष्ट्रो के राजदूतो की परिषद् के नियंत्रण मे रखा गया । सन् १६२३ मे लिथुआनिया ने इसे अपने राज्य मे मिला लिया । जर्मनी मे राष्ट्रीय समाजवादी आधिपत्य स्थापित होने के बाद मैमल-प्रवासी जर्मनों मे जर्मनी के साथ मिल जाने की भावना वृद्धिङ्गत होउठी । मैमल मे स्वायत्त-शासन स्थापित था । १६३५ मे मैमल-पार्लमेण्ट मे नात्सीवादी जर्मन-दल के सदस्य सबसे अधिक चुने गये । इस प्रकार अपनी उद्देशपूर्त्ति का बाक़ाइदा मार्ग उन्होने निकाल लिया । लिथुआनिया की सरकार ने जर्मनो का दमन आरम्भ किया, किन्तु वह व्यर्थ सिद्ध हुआ । तब उसने मैमल-प्रवासी जर्मनों को बहुतसी रिआयते देदीं ।

दिसम्बर १६३८ के डायट (पार्लमेट) के चुनाव मे जर्मनो को ८७ फ़ीसदी मत प्राप्त हुए । २२ मार्च १६३६ को, चैकोस्लोवाकिया का अपहरण करने के बाद जर्मनी ने, मैमल प्रदेश उसे सौप देने के लिये, लिथुआनिया को युद्ध-चुनौती दी । लिथुआनिया दब गया, मैमल-प्रदेश जर्मनी मे मिला लिया गया और मैमल-बन्दर को स्वतंत्र बनाकर लिथुआनिया के पास रहने दिया गया ।

मोलोतोफ़्, व्याचस्लाव मिखाइलोविच—सोवियत रूस का राजनीतिज्ञ तथा वैदेशिक-मंत्री, सन् १८६० मे पैदा हुआ । राजनीतिक लेखक बन

गया । १६०७ में बोल्शेविक दल में शामिल हुआ । सन् १६०६ में मोलोतोफ् नाम रखा, असली नाम स्क्रियाबिन है । १६२४ में साम्यवादी दल के राजनीतिक विभाग में बुलाया गया । १६३० में पीपल्स कमिसार्स की कौंसिल का अध्यक्ष (प्रधान-मंत्री) बनाया गया । सन् १६३६ में लित्विनोफ् की बरख़ास्तगी के बाद वैदेशिक मंत्री हुआ । अगस्त १६३६ की रूस-जर्मन अनाक्रमण-संधि में इसका प्रमुख भाग था । १० नवम्बर १६४० को मोलोतोफ् हर हिटलर से रूस-जर्मन-सम्बन्धों के विषय में आवश्यक विचार-विनिमय करने बर्लिन गया । उसके साथ बत्तीस विविध विभागों के मंत्री तथा अधिकारी भी गये । इस भेंट में क्या निश्चय किया गया, यह स्पष्ट रूप से सरकारी तौर पर प्रकाशित नहीं किया गया । मई १६४१ में जब स्तालिन पीपल्स कमिसार्स की कौंसिल का अध्यक्ष बना तो मोलोतोफ् उसका उपाध्यक्ष बनाया गया और जून १६४१ में सोवियत-संरक्षण समिति का सदस्य । अजेय रूस में मोलोतोफ् एक शक्ति है । प्रमाण है रूस की इन दिनों होनेवाली जीत पर जीत ।

मोसल—इराक का एक नगर, जन० १,००,०००, तेल के कुओं के लिये प्रसिद्ध । पिछली लड़ाई से पहले यहाँ का तेल-व्यवसाय ड्यूश बैंक के अधीन था, बाद में अँगरेज-अमरीकन-फरासीसी कम्पनी के हाथ में चला गया । अब इराक पेट्रोलियम कम्पनी के अधीन है, जो अँगरेजों-डचों, फरान्सीसियों और अमरीकनों की तेल-कम्पनियों में से एक है । सन् १६३८ में ४३ लाख टन तेल यहाँ निकाला गया । मोसल से फिलस्तीन के हैफा बन्दर तक एक नल जाता है, जहां से लदकर तेल दुनिया को चला जाता है ।

मोसले, सर ओसवाल्ड ई०—ब्रिटिश यूनियन के नेता । ब्रिटिश यूनियन फासिस्त ढंग का ब्रिटिश राजनीतिक आन्दोलन है । १६ नवम्बर १८६६ को पैदा हुआ, विन्चेस्टर और सैन्डहर्स्ट में सैनिक शिक्षा प्राप्त की ; विगत विश्व-

युद्ध मे फ्रास मे लडा; १६१८ मे पार्लमेन्ट का सदस्य चुना गया, १६२४ तक दक़ियानूसी और स्वतंत्र दलो का सदस्य रहा।

सन् १६२४ मे मज़दूर-दल मे शामिल हुआ; १६२६-१६३० मे, मैकडानल्ड-सरकार मे, डची आफ् लेंकेस्टर का चांसलर रहा; १६३१ मे मज़दूर-दल को त्याग दिया। इसके बाद ब्रिटिश यूनियन आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन का आधार शासन में नेतृत्व का सिद्धान्त है। वह पार्लमेंटरी प्रजातत्र-प्रणाली के विरुद्ध है। वह सम्राट् के प्रति राजभक्त तो है, किन्तु पार्लमेट मे एक दल चाहता है। वह विरोधी-दल की आवश्यकता नही समझता। वह लार्ड सभा को मिटाकर उसके स्थान पर कारपोरेशन की राष्ट्रीय परिषद् के प्रतिनिधियो का दूसरा चेम्बर बनाना चाहता है। उसके अनुसार व्यावसायिक मामलो मे भाषण की स्वाधीनता रहेगी। समाचार-पत्रो मे 'ग़लत' समाचार प्रकाशित करने पर दण्ड दिया जायगा। आर्थिक-क्षेत्र मे वह न समाजवाद को पसंद करता है और न पूँजीवाद को। वह विदेशो को ऋण देने का विरोधी है तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे कमी करने के पक्ष मे है, जिससे ब्रिटेन तथा ब्रिटिश साम्राज्य की उन्नति हो। यहूदियो को 'विदेशी' घोषित कर देना चाहता है, तथा जो उनकी समस्या को प्रमुख स्थान देते है या उनका पक्ष लेते हैं, उन्हे ब्रिटेन मे न रहने देने का हामी है। ब्रिटिश यूनियन आन्दोलन की वैदेशिक नीति हिटलर तथा नात्सीवाद की प्रशंसक है। वह चाहती है कि पूर्वीय योरप मे ब्रिटेन हस्तक्षेप न करे। चाहता है कि हिटलर को जर्मनी के पहले उपनिवेश वापस दे दिये जायँ। वह इस युद्ध के विरुद्ध है तथा हिटलर के साथ संधि कर लेने के पक्ष मे है। सर ओसवाल्ड का कथन है कि जर्मनी विश्व-राज्य की स्थापना करके स्वय ससार-विजेता बनना नही चाहता, और न वह ब्रिटेन के विरुद्ध ही है। यह सब यहूदियो का प्रचार है, जिनके हित के लिये और उन्हीकी आर्थिक-सहायता से, यह युद्ध शुरू हुआ है। इस आन्दोलन का सगठन नात्सी (विशेषतः फासिस्त दल) की तरह किया गया है। इसके सदस्य काली कमीज़े पहनते हैं तथा नात्सी-फ़ासिस्त ढग से, ऊँचा हाथ उठाकर, अभिवादन करते और नात्सियों के हार्स्ट वैज़ल क़ौमी गीत का अँगरेज़ी अनुवाद गाते हैं। पार्लमेन्ट मे इस दल का कोई प्रतिनिधि नहीं है। मई १६४०

के अन्त मे सर ओसवाल्ड को, रक्षा क़ानून के मातहत, पकड़ लिया गया तथा उसके बहुत-से अनुयायी भी नजरबन्द कर दिये गये।

य

यहूदी—समस्त ससार मे लगभग डेढ करोड यहूदी हैं, जिनमे तीस लाख पोलैंड मे, ३० लाख रूस में, ८ लाख रूमानिया मे, ४४ लाख सयुक्त-राज्य अमरीका मे, ४,८०,००० फिलस्तीन मे, ३ लाख जर्मनी मे, ३ लाख ग्रेटब्रिटेन में तथा ढाई लाख फ्रान्स में और शेष ससार के अन्य भागों मे हैं। यहूदियों मे, देश-भेद के कारण, दो शाखाएँ होगई हैं : पूर्वीय और पश्चिमी। पोलैण्ड, रूस और रूमानिया के 'पूर्वीय' यहूदियों मे अपनी नस्ल की विशेषता है : वह लोग अपने धर्म—मूसाइयत—का दृढता से पालन करते, ख़ास तरह के कपडे पहनते, और मध्ययुगीन जर्मन तथा इबरानी भाषाओ का मिश्रण, 'यिद्दीश' भाषा, बोलते हैं। यह भाषा इबरानी लिपि मे लिखी जाती है और इसमे बहुत-सा साहित्य है। यह यहूदी अधिकान्श व्यापारी, कारीगर, सराय चलानेवाले, आदि हैं, और रूस मे यह सब किसान-मजदूर हैं।

पुरबियो के विपरीत, दूसरे देशो मे बसे हुए, पछैंये यहूदी, उन-उन देशों के वातावरण मे आत्मसात् होगये हैं। जिस देश मे रहते हैं उसीकी भाषा बोलते हैं और वहीकी सभ्यता का पालन करते हैं। इनका धार्मिक आचार पुरबियों की अपेक्षा अधिक उदार है। इन यहूदियो मे सभी पेशे के लोग हैं : सौदागर, साहूकार, कारखानेदार, डाक्टर, वकील, क्लर्क, अध्यापक, आदि। अलबत्ता अमरीका और पूर्वीय लन्दन के यहूदी मजदूर-पेशा हैं, विशेषतः कपडे के कारीगर। पश्चिमी यहूदियो की जनसख्या गिरती जारही है। पूर्वीय यहूदियों का इधर आकर बसना रुक गया, जन्मसख्या बहुत कम होगई तथा यह लोग ईसाइयो के साथ विवाह-सम्बन्ध करने लग गये। केवल जर्मनी मे

विवाह-सम्बन्ध द्वारा एक-तिहाई यहूदी ईसाइयो मे मिश्रित होचुके हैं। पिछली लडाई के बाद जर्मनी मे, इनकी नस्ल को बरक़रार रखने के लिये, जितनी पैदाइश की ज़रूरत थी, उसका केवल सातवॉ हिस्सा पैदा हुआ। एक पीढी के बाद वहॉ शायद यहूदी नस्ल रहती ही नही, लेकिन इसी बीच हिटलर इनका विरोधी उठ खड़ा हुआ और उसने, अपने जाति-विद्वेष के कारण, जर्मनो के यहूदियो से विवाह-सम्बन्ध पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

यहूदियो ने सभ्यता को महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ईसाइयत और इसलाम का प्रादुर्भाव यहूदी-धर्म (मूसाइयत) से हुआ। विज्ञान, कला, राजनीति, साहित्य, उद्योग आदि क्षेत्रो मे इस नस्ल के महापुरुषो—स्पिनोज़ा, मैन्दलसोन, दिसराइली, हर्ट्ज़, वेसरमन, एहरीलिच, आइन्स्टाइन और फ्राइड ने—बहुमूल्य सेवाये की हैं। जहॉ भी यह लोग रहे वहॉ उद्योग और व्यवसाय को इन्होने बढाया। सभी यहूदी जातीय-बन्धुत्व के बन्धन मे बॅधे हुए हैं। कुशल व्यापारी-व्यवसायी होने से इनमे पूॅजीपतियो की सख्या अधिक है।

यहूदी-विद्वेष—सामी (Semitic)-नस्ल मे से होने के कारण सबसे पहले ज़ारशाही रूस मे यहूदियो पर अत्याचार होने शुरू हुए। उन पर अभियोग लगाया गया कि यहूदी-नेताओ ने एक गुप्त सम्मेलन मे संसार पर शासन करने की एक योजना बनाई है। पर यहूदियो के हिमायतियो का कहना है यह 'ओख़राना' (ज़ारकालीन ख़ुफिया पुलिस) का रचा हुआ जाल था। कुछ भी हो, रूस मे यहूदियो के ख़िलाफ 'पोग्रम' (रूसी भाषा का शब्द = विनाश) शुरू हुआ। इसके अनुसार यहूदी मुहल्लों पर यकायक छापा मारकर कर उनका क़त्ले-आम किया जाता था, उन्हे लूटा-खसोटा जाता था और घरों को आग लगादी जाती थी। १६१७ की बोल्शेविक-क्रान्ति के बाद से सोवियत रूस मे यहूदी, अन्य नागरिको की भॉति, शान्ति और सुख से रह रहे हैं।

किन्तु अब हिटलरशाही जर्मनी इस सामी-विद्वेष का केन्द्र बन गया है। सामी या यहूदी-विद्वेष, १६वी शताब्दी के अर्द्ध-भाग से, 'आर्य' अथवा 'नार्डिक' नस्ल के सिद्धान्त के आविर्भाव के कारण, उत्पन्न हुआ। हिटलर ने जर्मन लेखको के 'आर्य' और 'अनार्य' सिद्धान्त को सर्वथा ग्रहण किया और जर्मनी मे यहूदियो के विरुद्ध क़ानून बनाये, जिनके अनुसार यहूदियो को

उनकी सम्पत्ति और नागरिक अधिकारों से च्युत कर दिया गया। यहूदियों को विधर्मी और हीन विपाक्त रक्त की जाति घोषित कर दिया गया। उन्हें स्वभाव से ही जरायम-पेशा क़रार दे दिया गया और उनका घोर अपमान किया जाने लगा। नूरम्बर्ग कानून के अनुसार जर्मन लड़कियों को यहूदियों से विवाह या प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करना जुर्म क़रार देदिया गया।

पेरिस के जर्मन दूतावास के एक कर्मचारी, हर वाम राथ, को पोलैण्ड के एक यहूदी नौजवान लड़के ने मार डाला, फलत. १० और ११ नवम्बर १९३८ को सारे जर्मनी मे यहूदियो पर खुलकर अत्याचार किये गये। यहूदियों के घरों और दूकानों को नष्ट कर दिया गया, यहूदी अस्पतालों और बालक-विद्यालयो तक को नहीं छोडा गया और उनके पूजास्थलों को आग लगा दीगई।

आइन्स्टाइन (गणित-विज्ञान का विश्वविख्यात आचार्य) तथा फ्राइड (जो मनोवैज्ञानिक उपचार-प्रणाली का आविष्कारक है) को जर्मनी से निर्वासित कर दिया गया। मैंडलसोन तथा आफनबोक्, प्रसिद्ध यहूदी सगीत-कलाविदों, के गायन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। यहूदियो को समस्त व्यवसायों और व्यापारो से वञ्चित कर दिया गया। उन्हें नजरबन्दी-शिविर मे भेज दिया गया। बडे-बडे विद्वान् यहूदियों का सार्वजनिक रूप से अपमान किया गया। ६ लाख यहूदियो मे से आधे यहूदी जर्मनी से निकाल बाहर किये गये, और उनका निष्कासन जारी था कि युद्ध शुरू होगया। जर्मनी से निकाले हुए यहूदी पश्चिमी योरप, फ़िलस्तीन और अमरीका मे जा बसे हैं।

नात्सी यहूदी नस्ल के ईसाइयो के भी ख़िलाफ हैं। प्रत्येक जर्मन नागरिक को अपनी वशावली दिखानी पडती है। जिनके पूर्वजो मे एक भी यहूदी पाया जाता है, उनकी सज्ञा वर्णसकर करार दे दी जाती है, और ऐसी बहुत बड़ी सख्या जर्मनी मे पाई गई है। ऐसे नागरिको पर, उनके दूषित रक्त के कारण, अनेक पाबन्दियाँ लगा दी गई हैं।

इस युद्ध से पूर्व जर्मनी, इटली, हङ्गरी और रूमानिया को छोडकर समस्त देशो मे यहूदियो को समता के नागरिक अधिकार प्राप्त थे। नात्सी-अधिकृत देशो मे भी यहूदी-विद्वेष बढ चला है, और उन्हीके दबाव से, सन् १९४०-४१ मे, मार्शल पेतॉ ने भी अपने विशी-प्रदेश मे, यहूदी-विरोधी क़ानून बनाये हैं।

सयुक्तराज्य अमरीका मे भी कफ्लिन नामक एक राजनीतिज्ञ कैथलिक पादरी ने, पिछले वर्षो से, यहूदी-विरोधी आन्दोलन छेडा है। शिकागो के बडे पादरी ने इसकी निन्दा की है, किन्तु कफ्लिन अपना काम जारी रखे हुए है।

यरूशलमवाद (ज़ियोनिज्म)——इस आन्दोलन का उद्देश्य फिलस्तीन मे यहूदी राज्य की स्थापना करना है। प्रारम्भ मे कुछ रूसी अगुआओ के बाद, सन् १८९५ मे, यह आन्दोलन वीयना के एक पत्रकार, डा० थियोडोर हेरज़ल ने, शुरू किया। सन् १८९७ मे बेसले मे पहली यरूशलमवादी विश्व-काग्रेस हुई, जिसमे फिलस्तीन मे "यहूदियों के लिये राष्ट्रीय उपनिवेश" की स्थापना करने की घोषणा कीगई। हेरज़ल ने तुर्की, ब्रिटेन, जर्मनी आदि राष्ट्रों की सहानुभूति, अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिये, प्राप्त करने की चेष्टा की, किन्तु वह व्यर्थ गई। ब्रिटेन ने इसके लिये फिलस्तीन के बजाय यूगांडा प्रदेश देदेना चाहा, किन्तु १९०५ की यहूदी विश्व-कांग्रेस ने ब्रिटेन की इस भेंट को अस्वीकार कर दिया और फिलस्तीन की प्राप्ति का आग्रह किया। (फिलस्तीन मे यरूशलम के पास एक पहाडी है, जिसका अँगरेज़ी नाम 'ज़ियोन' है। इस पहाडी से यहूदियो का पौराणिक सम्बन्ध है, इसलिये इनका एक बडा दल फिलस्तीन मे बसने पर ही अधिक ज़ोर देता है)। इसके बाद यहूदी कांग्रेस मे दो दल होगये। दूसरे दल का कहना था कि यहूदी राज्य क़ायम करने के लिये हमे कोई भी प्रदेश मिल जाय। किन्तु यह दल समाप्त होगया और डा० हेरज़ल भी १९०४ मे मर गया। (जो लोग फ़िलस्तीन मे बसने का आग्रह करते हैं, 'ज़ियोन' पहाडी के कारण, अँगरेजी मे उन्हे 'ज़ियोनिस्ट' कहा जाता है, जिन्हे हम यहाँ यरूशलमवादी कहकर सम्बोधन कर रहे है।) यरूशलमवादी बराबर अपनी काग्रेस करते रहे और थोडे-बहुत फिलस्तीन मे जाकर बसते भी रहे। जब ब्रिटिश सरकार को पिछले युद्ध मे यहूदियों की सहायता की आवश्यकता पडी तब, सन् १९१७ मे, बालफ़ोर घोषणा कीगई। यहूदियो की इच्छा-पूर्ति को सिद्धान्ततः स्वीकार किया गया, और युद्ध के बाद तो बालफोर घोषणा को राष्ट्र-संघ के शासनादेश का एक अग बना दिया गया, जिसके अधीन बरतानी सरकार को फिलस्तीन पर अधिकार मिल गया। फिर तो 'ज़ियोनिस्ट' धडाधड़ फिलस्तीन मे बसने लगे और उनकी संख्या ४,८०,०००

होगई। यहूदी कांग्रेस के १२॥ लाख सदस्य हैं। डा० वीज़मन इसका अध्यक्ष है।

रूसी क्रान्ति के बाद वहाँ के यहूदी, अपने वर्तमान सामाजिक जीवन से सन्तुष्ट हैं। यरूशलमवादी उनसे असन्तुष्ट हैं और इसे अपनी शक्ति का ह्रास समझते हैं। किन्तु यरूशलमवादियो को अमरीका के यहूदियों से बहुत साहाय्य मिला है और गैर-यरूशलमवादी यहूदियो से भी इन्हे भारी सहानुभूति प्राप्त हुई है। जियोनिस्ट या यरूशलमवादी यहूदियों में, सामाजिक और राजनीतिक विचार-दृष्टि से, कई दल हैं। उग्र जियोनिस्टों का एक दल अलग ही है जो फिलस्तीन में ज़रदान नदी के दोनो किनारों की भूमि पर यहूदी राज्य की स्थापना की घोषणा के लिये आतुर है।

यहूदियो के सभी दल फिलस्तीन के अरबों के विरोध को समझौते और प्रार्थना से ठडा करने के पक्ष मे हैं, और चाहते हैं कि फिलस्तीन में प्रभुत्व तो यहूदियों का रहे और यहूदी राज्य मे अरब लोग एक अल्पसख्यक जाति की भॉति, बने रहे।

यहूदी एजेंसी—इस सस्था की स्थापना राष्ट्रसघ के शासनादेश के अनुसार हुई है। यह सस्था फिलस्तीन मे यहूदियो का राष्ट्रीय उपनिवेश बसाने के सम्बन्ध मे होनेवाले आन्दोलन मे यहूदी पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है। इस सस्था मे यरूशलमवादी तथा ग़ैर-यरूशलमवादी दोनों प्रकार के आधे-आधे सदस्य हैं। डा० चैम वीजमन इसका अध्यक्ष है।

युद्ध-पोत—बहुमूल्य और बडा जगी-जलयान (Battle Ship)। इस पर अनेक बड़ी-बडी तोपे चढी रहती हैं। इसका उपयोग नाविक-युद्ध मे किया जाता है। बहु-व्यय-साध्य होने के कारण बडे-से-बडे राज्य के पास पॉच-छै युद्ध-पोत होते हैं। किसी-किसी के पास आठ-दस तक हैं। नाविक-सेना अमरीका तथा ब्रिटेन की सर्वोत्तम है। दिसम्बर १९४१ मे, प्रशान्त महासागर मे युद्ध छेडते समय, जापान ने ब्रिटेन के ऐसे ही दो सर्वोत्तम युद्ध-पोतो 'प्रिन्स आफ् वेल्स' और 'रिपल्स' को डुबो दिया था।

युद्ध-विरोधी आन्दोलन—महात्मा गांधी ने, अक्टूबर १९४० मे, युद्ध मे सहयोग देने के विरोध मे, भारत मे यह आन्दोलन आरम्भ किया। इस

आन्दोलन के सम्बन्ध मे गांधीजी ने अपने १५ अक्टूबर १९४० के वक्तव्य में लिखा—"मै प्रश्न को फिर दुहराता हूँ। स्पष्ट रूप से यह प्रश्न मर्यादित है—युद्ध के विरुद्ध प्रचार करने का अधिकार या वर्त्तमान युद्ध मे सहयोग के विरुद्ध प्रचार। दोनो ही ठोस अधिकार हैं। उनके प्रयोग से अगरेज़ों की कोई हानि नही होगी। अहिसात्मक काग्रेस ब्रिटेन के लिये कोई बुरी बात नही सोच सकती, और न वह अस्त्र-शस्त्र के द्वारा सहायता ही कर सकती है। क्योंकि वह ख़ुद अपनी आज़ादी भी शस्त्रों के द्वारा नही प्रत्युत् विशुद्ध अहिंसा द्वारा प्राप्त करना चाहती है।" श्री विनोवा भावे को उन्होने अपना सबसे प्रथम सत्याग्रही चुना। इस सत्याग्रह को केवल व्यक्तिगत और सीमित रखा गया था।

यूक्रेन—पहले दक्षिण रूस कहा जानेवाला प्रदेश, जहाँ स्लैव जाति के लोग रहते हैं, जिनकी भाषा भिन्न प्रकार की किन्तु रूसी भाषा से मिलती-जुलती है। ज़ारशाही के ज़माने मे यूक्रेनियो को रूसियों की एक शाखा मान लिया गया और उनकी भाषा रूसी की एक बोली क़रार दीगई। यूक्रेन के मदरसो और सरकारी दफ्तरों मे रूसी भाषा जारी कर दीगई, परिणामतः १९वीं सदी मे यूक्रेनियों मे राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म हुआ। सन् १९१७ की रूसी राज्य-क्रान्ति के बाद जर्मनी तथा आस्ट्रिया की सेनाओ ने यूक्रेन पर अधिकार जमा लिया और ज़ारकालीन जनरल स्कोरोपाद्स्की की अध्यक्षता में एक नाममात्र का प्रजातन्त्र वहाँ स्थापित कर दिया। नवम्बर १९१८ की विराम सधि के बाद जब जर्मन तथा आस्ट्रियन सेनाएँ वापस लौट गई, तब यूक्रेन में गृह-युद्ध होता रहा। अन्त मे १९२० में यूक्रेनी सोवियत प्रजातंत्र की स्थापना कीगई। इसने सोवियत रूस से सैनिक तथा आर्थिक समझौता किया और सन् १९२३ मे यह दोनों राष्ट्र, रूसी सरहद के अन्य सोवियत प्रजातन्त्रों सहित, सोवियत यूनियन मे शामिल होगये। सोवियत संघ के समस्त प्रजातन्त्र राज्यों में, रूस के बाद, यूक्रेन सबसे बड़ा तथा महत्वपूर्ण है। क्षेत्रफल इसका १,७४,००० वर्गमील तथा जनसंख्या, १९३९ के प्रारम्भ में, ३,२०,००,००० थी। इसका सदर मुकाम कीफ है। यूक्रेन सोवियत संघ का स्वतंत्र राष्ट्र है। मदरसों, दफ्तरों और अदालतों में यूक्रेनी भाषा का इस्तेमाल होता है। यूक्रेन के बड़े-बड़े शहरों में कुछ रूसी अल्पसंख्यक जाति के लोग

भी हैं। यद्यपि यूक्रेनियों को स्वशासनाधिकार प्राप्त है, तथापि वहाँ के अधिवासियों मे भीतर-ही-भीतर, अपनी वर्त्तमान स्थिति के प्रति, राष्ट्रीय असन्तोष की भावना है। हिटलर का विचार इससे फायदा उठाकर यूक्रेन को रूस से पृथक् कर जर्मनी के अधीन कर देने का रहा है। यूक्रेन संसार के बहु-अन्न-उत्पादक देशो मे है और रूस का प्रधान औद्योगिक प्रदेश भी। प्रतिवर्ष वहाँ १ करोड ६० लाख टन अन्न पैदा होता है। १६२० के यूक्रेनी-सोवियत और पोलैण्ड के युद्ध के बाद बरतानिया ने पञ्च बनकर 'कर्ज़न रेखा' नाम से, इन दोनों देशों की, कौमी विचार दृष्टि से, जो हदबन्दी की, उसके अनुसार पोलैण्ड के पूर्वी प्रदेश का ६० लाख यूक्रेनी आबादी का इलाक़ा अलग बनगया। पोलैण्ड ने इसे अस्वीकार कर दिया। किन्तु सोवियत-सघ इस प्रदेश को अपने मे मिलाने का दावा करता रहा। अन्तत. सितम्बर १६३६ मे जब जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया, तब रूस ने इस अवसर से लाभ उठाकर पूर्वी पोलैण्ड के इस भाग पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार वर्त्तमान यूक्रेन का क्षेत्रफल बढकर लगभग २ लाख वर्गमील और जनसख्या ४ करोड से अधिक होगई, किन्तु इस सख्या मे अल्पमत पोलिश भी हैं। जुलाई १६४० मे सोवियत सघ ने उत्तरी बुकोविना के यूक्रेनी-अधिवासी जिलों और बैसरेबिया के यूक्रेनी हिस्सो को, ८ लाख यूक्रेनियो सहित, रूमानिया से लेकर अपने मे मिला लिया। यूक्रेनी जाति की कुल सख्या ३ करोड ६० लाख है।

सन् १६४१ मे रूस-जर्मन-युद्ध मे नात्सी यूक्रेन के अधिकाश भाग का अपहरण कर चुकेथे—लगभग पूरे भाग का। बैसरेबिया और बुकोविना को रूमानिया वापस लेचुका है। पोलैण्ड के सम्बन्ध की रूस-सोवियत-सघ-सधि भी १६४१ मे रद की जाचुकी है। किन्तु बहादुर रूसी बोलशेविक अब विजय पर विजय प्राप्त कर रहे है, यूक्रेन मे भी वह जीत रहे हैं, और वह दिन दूर नही है, जब इन नात्सी नर-पिशाचो को वह अपनी पवित्र भूमि से निकाल बाहर करेंगे।

यूगोस्लाविया—क्षेत्र० ६५,००० वर्गमील, जन० १,३६,००,०००, जिसमे ६५ लाख सर्ब, ४० लाख क्रोट, १० लाख स्लोवेनीज, ५॥ लाख हगेरियन, और तीन लाख जर्मन हैं, बक़िया अलबानी, बलग़ारी, मक़दूनी तथा दूसरी अल्पसंख्यक जातियाँ हैं, राजधानी बेलग्रेड। यह नवीन देश कई राज्यो के

प्रदेशों को मिलाकर बनाया गया था। इनमे क्रोट तथा स्लोवेनीज़ सबसे अधिक प्रगतिशील हैं। इसके बोसनिया प्रदेश मे १५ लाख मुसलमान हैं। नाना भाँति के लोगो का यह देश यहाँ की सरकार के लिये एक समस्या रहा है। इनमे क्रोट जाति के लोग यूगोस्लाविया मे स्वतन्त्र सघ-राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। लडाई के बाद इस देश मे निरन्तर अशान्ति रही और नवम्बर १९२८ मे क्रोशियन कृषक दल के नेता को एक सदस्य ने पार्लमेंट की बैठक में गोली से मार दिया। बादशाह अलेक्ज़ेन्डर प्रथम ने पार्लमेन्ट भङ्ग करके अधिनायक शासन-प्रणाली क़ायम करदी। ३ अक्टूबर १९२९ से पूर्व यह "सर्ब, क्रोट तथा स्लोवेनीज़ का राज्य" कहलाता था। इस दिन 'यूगोस्लाविया' नाम रखा गया। इसमे नौ प्रान्त बनाये गये और सब दल तोड दिये गये। ३ सितम्बर १९३१ को नया शासन-विधान जारी किया गया, जिसके अनुसार पार्लमेन्ट की दो धारासभाएँ नियुक्त कीगई। ९ अक्टूबर १९३४ को बादशाह अलेक्ज़ेंडर की फ्रान्स मे हत्या कर दी गई। राजकुमार पीटर द्वितीय के नाबालिग़ होने के कारण बादशाह के चचेरे भाई, प्रिन्स पाल, के नेतृत्व मे एक शासन-परिषद् बनादी गई। १९३५ मे डा० स्तोयादीनोविच प्रधान मन्त्री बना। इसने फ्रास से सम्बन्ध तोड़ना और जर्मनी, इटली की ओर झुकना शुरू किया। १९३८ मे यह जर्मनी गया। अबतक जर्मनी के साथ इसने देश का व्यापारिक-सम्बन्ध बहुत बढा लिया था। लेकिन इसकी नीति से बरतानिया और उसके मित्र असन्तुष्ट थे। प्रिन्स पाल अनेक बार लन्दन भी गया।

वर्तमान युद्ध शुरू होने पर यूगोस्लाविया ने अपनी तटस्थता की घोषणा की। इस पर जर्मन, ब्रिटिश और रूसी प्रभाव इस देश मे, अपने-अपने स्वार्थ के लिये, आपस में टकराते रहे। परिणामस्वरूप जर्मनी को और अधिक आर्थिक सहायता मिल गई। १९४० में रूस और यूगोस्लाविया में फिर अच्छे सम्बन्ध स्थापित होगये और स्तोयादीनोविच, न्याय किये जाने के लिये, ब्रिटेन के सुपुर्द कर दिया गया। फिर भी प्रिन्स पाल की सरकार जर्मनी की ओर अधिकाधिक झुकती गई। यहूदी-विरोधी क़ानून १९४० के अन्त में, नाज़ियों की सन्तुष्टि के लिये, बनाये गये और २५ मार्च १९४१ को यूगोस्लाविया ने त्रिगुट-सन्धि पर

हस्ताक्षर कर दिये। प्रिन्स पाल देश छोड़ कर चला गया और, बालिग होजाने से, पीटर द्वितीय राजा बना। यूगोस्लाविया तटस्थ ही बना रहा, किन्तु ६ अप्रैल १९४१ को जर्मनी और इटली ने यूगोस्लाविया पर हमला कर दिया। १५ दिन के भीतर देश ने हथियार डाल दिये और धुरी राष्ट्रों ने यूगोस्लाविया की तक्काबोटी कर ली : क्रोशिया को "स्वतन्त्र" बनाकर, एक अतालवी सामन्त की अध्यक्षता मे, वहाँ कठपुतली सरकार क़ायम करदी, स्लोवेनिया को इटली, जर्मनी ने बॉट लिया, अधिकाश बोसनिया क्रोशिया मे मिलादी गई, शेष दालमेशिया मे, यूगोस्लावी-मकदूनिया बलग़ारिया के पल्ले पडी और सर्बियन बैनेत को हगरी हज्म कर गया। मोन्टीनिग्रो मे, इटली के अधीन, कठपुतली शासन क़ायम कर दिया गया। सर्बिया जर्मनी के अत्याचारी शासन में चली गई।

बादशाह और उसकी सरकार इंगलैंड को चले गये। जर्मनो के घोर अत्याचार के बावजूद सर्बिया और पश्चिमी यूगोस्लाविया मे छापे-मार युद्ध और कभी-कभी खुल्लम-खुल्ला युद्ध जारी है। सर्वों की डेढ लाख देश-भक्त सेना है। जर्मनों द्वारा बनाई गई देश-द्रोहियो की सरकार का वहाँ कोई प्रभाव नही है।

यूनान—क्षेत्र० १,३०,००० वर्ग०, जन० ६३,००,०००; राजा जार्ज द्वितीय, राजधानी एथेन्स। सन् १९१२-१३ के बलकान-युद्धो मे विजय प्राप्त करने के बाद, प्रभावशाली और प्रबल यूनानी राजनीतिक नेता वेनीज़ैलोस ने यूनान को मित्रराष्ट्रो की ओर मिलाकर जर्मन-पक्षपाती यूनान के तत्कालीन राजा कान्स्टैन्टाइन को पद-च्युत कर दिया। राजा कान्स्टैन्टाइन १९२० मे यूनान वापस लौटा। एशिया माइनर मे यूनानी जन-सख्या के देश को जीतने के लिये उसने तुर्की के विरुद्ध युद्ध छेडा, किन्तु कमाल पाशा ने उसे करारी हारदी। १९२२ मे कान्स्टैन्टाइन ने फिर गद्दी छोडी और १९२३ मे

वह मर गया। तुर्की-यूनान-युद्ध के कारण राजसत्ता की नींव हिल चुकी थी, फलतः एक वर्ष के बाद, उसके पुत्र जार्ज द्वितीय को भी, राज्यासन छोड़ना पड़ा और यूनान में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। इसके बाद प्रजातन्त्र में आन्तरिक कलह तथा उपद्रव होते रहे 'और देश में एकतन्त्र शासन की स्थापना के लिये फिर से आकांक्षा उत्पन्न होगई। सन् १९३२ और '३३ के चुनावों में वेनीज़ैलोस की हार हुई। प्रजातन्त्र क़ायम रहने के लिये उसने कई विद्रोह कराये, किन्तु वे सफल न हुए। राजसत्तावादी कोन्डिलिस के हाथ में सत्ता आगई और उसने एकतन्त्र के पक्ष में जनमत प्राप्त कर लिया। सन् १९३५ में वेनीज़ैलोस को निर्वासित कर दिया गया। पैरिस में, १९३६ में, उसकी मृत्यु होगई। अप्रैल १९३५ में जार्ज द्वितीय पुनः गद्दी पर आ गया। कोन्डिलिस और उसका सहयोगी ज़ाल्देरिस भी मर गये।

अप्रैल १९३६ में जनरल मैटाक्सस को प्रधानमंत्री बनाया गया। ४ अगस्त १९३६ को उसने "कम्युनिस्ट क्रान्ति" के बहाने यूनान में अधिनायक-तन्त्र स्थापित कर दिया। पार्लमेंट भंग कर दी गई, राजनीतिक दलों का दमन किया गया और १९३८ में वह आजन्म प्रधान-मंत्री बना दिया गया। वर्त्तमान युद्ध में यूनान तटस्थ था। लेकिन इटली पिछले युद्ध से ही यूनान पर लोलुप दृष्टि लगाये हुए था। १९४० में उसने यूनान पर हमला किया और हारा। इटली के साथ जर्मनी भी यूनान पर दृष्टि लगाये था, ताकि वह बलकान देशों में होकर दरेदानियाल तक पहुँच सके और पूर्वीय भूमध्यसागर में बरतानी आधिपत्य में हस्तक्षेप कर सके। युद्ध से पूर्व ही यूनान की विदेशी तिजारत तीस फीसदी जर्मनी के हाथ में थी, इस कारण भी वहाँ जर्मनी का प्रभाव था। इसलिए भी जनरल मैटाक्सस जर्मन-पक्षपाती समझा जाता था। लेकिन एथेन्स में, यूनानी बादशाह के नेतृत्व में, एक ब्रिटिश-पोषक दल भी था।

१९ अक्टूबर '४० को इटली ने यूनान को अल्टीमेटम दिया कि यूनान तमाम फौजी, जहाजी और हवाई अड्डे इटली के हवाले करदे। साथ ही अन्य रियायतें भी मांगी गईं। यूनानियों ने अल्टीमेटम को युद्ध-घोषणा समझा और इटलियनों का मुक़ाबला किया, जिन्होंने तत्काल ही आक्रमण भी

कर दिया था। बरतानी हवाई सेना तुरन्त भेजी गई और यूनान ने इटली को अलबानिया की सरहद तक खदेड़ दिया। यूनानी आक्रमक-इटालियनों को बराबर खदेड़ रहे थे कि ६ अप्रैल १६४१ को, बलगारिया और यूगोस्लाविया में होकर, जर्मनी ने भी यूनान पर हमला कर दिया। प्रधानमंत्री कोरिजिस की सरकार ने, जो जनवरी '४१ में मैटाक्सस की आकस्मिक मृत्यु के बाद, प्रधान-मन्त्री बना था, बरतानी सरकार को लिखा कि आप सेना भेजें या न भेजें, हम जर्मनों का डटकर मुक़ाबला करेंगे। तो भी ब्रिटेन ने, पूर्वीय देशों से बची हुई सेना यूनान भेजी, किन्तु जर्मनी के उत्कृष्ट कोटि के टैंकों, वायु-यानों और सिपाहियों की सज्जित सैन्य के समक्ष, कट-कटकर लड़नेवाली यूनानी, बरतानी और उसके साम्राज्य देशों की सेना, केवल तीन सप्ताह के भीतर, जर्मनों द्वारा यूनान के अपहरण को न रोक सकी। प्रधान मन्त्री कोरिजिस ने १८ अप्रैल १६४१ को आत्मघात कर लिया। सरकार क्रीट चली गई। जर्मनों ने, जनरल ज़ोलाकोगलू की प्रधानता में, यूनान में कठपुतली सरकार कायम करदी। मई में जर्मनों ने क्रीट भी ले लिया और यूनानी बादशाह और उसकी सरकार लन्दन को चले गये। जून १६४१ में जर्मनी ने इटली को समस्त यूनान पर अधिकार दे दिया।

यूपेन मलमेडी—क्षेत्र० ३८२ वर्ग०, जन० ६५,०००। सन् १६१६ तक यह छोटा-सा प्रदेश जर्मनी में था, वर्साई-संधि के समय बेलजियम में मिला दिया गया। यहाँ की जनता जर्मन तथा फ्रान्सीसी-भाषी बेलजियन है। जर्मनों को भाषा तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। मई १६४० में जब बेलजियम पर जर्मनी ने हमला किया तब यह प्रदेश जर्मनी ने फिर अधिकार

में ले लिया। हिटलर का कहना था कि यहाँ ८० फीसदी जर्मन आबाद हैं।

यू० एस० एस० आर०—यूनियन ऑफ् सोशलिस्ट सोवियत रिपब्लिक्स का संक्षिप्त रूप, अर्थात् रूस का वर्त्तमान पचायती (सोवियत) संघ समूह या संयुक्त-राष्ट्र, जो १९२३ में बना है।

यू बोट—जर्मन पनडुब्बी यू बोट कहलाती है।

यू सा—ब्रह्मदेश की सरकार के प्रधान-मंत्री थे। सन् १९१९ में, जब ब्रह्मा के प्रथम प्रधान-मंत्री, डा० बा मौ, ने ब्रह्मा-चीन-सड़क के विवाद पर त्यागपत्र दे दिया, तब यू सा ने मन्त्रि-मण्डल बनाया। जब से योरप में युद्ध आरम्भ हुआ, तभी से भारत की भाँति, ब्रह्मदेश में भी, स्वाधीनता की माँग के लिए, ज़ोरदार आन्दोलन होने लगा। विगत अक्टूबर १९४१ में यू सा, अपने देश की स्वाधीनता की माँग बरतानी सरकार के समक्ष रखने के लिये, इँगलैण्ड गए। वहाँ आपका भारतमंत्री मि० एल० एस० एमरी ने शानदार स्वागत किया। आपने ब्रह्मदेश की रक्षा के विषय में ब्रिटिश योजनाओं पर भी पारस्परिक विचार किया। यू सा ब्रिटिश सरकार से इस आशय की प्रतिज्ञा लेने गये थे कि वर्तमान युद्ध की समाप्ति पर ब्रह्मदेश को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायगा। परन्तु ब्रिटिश सरकार की ओर से इस मांग का सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। ५ नवम्बर १९४१ को यू सा इंगलैण्ड से विदा होकर होनोलुलू होते हुए अमरीका गए और वहाँ राष्ट्रपति [illegible] से भी मिले। परन्तु अमरीका ने आपकी मांग का समर्थन नहीं किया। [illegible]

र

रवीन्द्रनाथ ठाकुर—विश्व-कवि, जन्म,कलकत्ता ७ मई सन् १८६१ ई० ; पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और माता श्रीमती शारदादेवी की चौदहवीं सन्तान, नौ वर्ष की आयु मे कलकत्ता नार्मल स्कूल मे पढने भेजे गये; स्कूल मे शारीरिक व्यायाम और मल्लविद्या मे विशेष दिलचस्पी ली; इसी स्कूल मे पढते समय छद-रचना प्रारम्भ की, १२ वर्ष की आयु मे उपनयन-सस्कार हुआ। उपरान्त बोलपुर के शान्ति-निकेतन भेजे गये। यहाँ आपके पिता ने क़रीब ६ एकड भूमि आश्रम बनाने के लिये ख़रीदीथी। यही पर आपने विश्व-भारती की स्थापना की, अपनी प्रथम रचना 'पृथ्वीराज-पराजय' लिखी, जिसकी पाडुलिपि खोगई। अपने पिताके साथ उत्तरी भारत का भ्रमण किया, उसी समय सस्कृत और अँगरेज़ी सीखी। सन् १८७४ में कलकत्ता के सेंट ज़ेवियर स्कूल मे भरती हुए। तभी शेक्सपियर के 'मैकब्रैथ' का बँगला मे भाषान्तर किया। इस समय आप बँगला मासिक पत्रिकाओं मे लेख लिखते थे तथा कई कविताएँ भी लिखी।

जब सत्रह वर्ष के थे तब अपने भाई, सत्येद्रनाथ ठाकुर, आई० सी० एस०, के पास अहमदाबाद गए। सत्येन्द्र ठाकुर सबसे पहले भारतीय इंडियन सिविल सर्वेन्ट थे। अहमदाबाद से रवि बाबू योरप गये और लन्दन के यूनिवर्सिटी कालिज मे भरती होकर अँगरेजी साहित्य का अध्ययन किया। १८८० मे बिना कोई पदवी लिए ही आप भारत वापस आगए। २० वर्ष की आयु मे आपने अपना प्रथम गीति-नाटक वाल्मीकि-प्रतिभा लिखा और उसके अभिनय मे, वाल्मीकि की भूमिका मे, मच पर आये। तभी आपने अपना प्रथम उपन्यास भारती लिखा। श्रीमती मृणालिनी देवी के साथ आपका विवाह हुआ। कलकत्ता मे कांग्रेस के दूसरे वार्षिक अधिवेशन मे भाग लिया और मगलाचरण गान किया।

दूसरी बार आप फिर श्रीसत्येन्द्रनाथ के साथ योरप-यात्रा करने गए। फ्रान्स, इटली और इँगलैण्ड घूमे। वापस आने पर आपने 'साधना' नामक बँगला पत्रिका निकाली। इन्ही दिनों आपने चित्रांगदा नामक नाटक लिखा, जो आपके उत्कृष्ट नाटको मे है।

सन् १६०१ मे रवि बाबू शान्ति-निकेतन मे रहने और वहाँ एक विद्यालय खोलकर बालको को पढाने लगे। इस समय आपको आर्थिक संकट का सामना करना पडा। पुरी का अपना मकान तथा पत्नी के सब आभूषण बेच देने पडे। सन् १६०२ मे आपकी पत्नी का स्वर्गवास होगया। तब से आपने अन्त काल तक एकान्त-जीवन व्यतीत किया।

वङ्गभंग के समय आपका कवि-हृदय काल्पनिक जगत् से परे कर्मक्षेत्र मे अवतरित हुआ और अपनी कविताओ तथा लेखमाला द्वारा आन्दोलन मे योगदान दिया। अनेक सभाओ मे आपने, इस सम्बन्ध मे, भाषण दिए। राष्ट्रीय-कोष के लिए आपने जनता से अपील की और ५०,०००) संग्रह किए। इस समय आपने अपने 'गोरा' उपन्यास तथा गीताञ्जलि की रचना आरम्भ की। सन् १६१२ मे आपके शान्ति-निकेतन ने एक राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था का रूप धारण कर लिया।

इसी वर्ष कविवर ने गीताञ्जलि का अँगरेजी मे अनुवाद आरम्भ किया। सन् १६१३ मे पुनः इँगलैण्ड गये। वहाँ के साहित्यिको तथा कवियों में आपका बडा सम्मान हुआ। 'इंडिया सोसाइटी' ने आपकी गीताञ्जलि को प्रकाशित किया। डब्ल्यू० बी० यीट्स ने उसकी प्रस्तावना लिखी। इस पुस्तक की बडी सराहना हुई। सितम्बर १६१३ मे आप योरप से वापस आये। इसी वर्ष नवम्बर मे आपको एक लाख रुपये से अधिक रकम का नोवेल-पुरस्कार आपकी गीताञ्जलि आदि रचनाओ पर मिला। आपकी रचनाओं की संसार मे धूम मच गई।

सन् १६१४ में गवर्नमेंट हाउस कलकत्ता मे बंगाल के गवर्नर ने विश्व-कवि का सम्मान तथा अभिनन्दन किया। इसी वर्ष महात्मा (तब कर्मवीर) गांधी ने विश्व-भारती शान्ति-निकेतन की यात्रा की। आपकी विश्व प्रशंसित रचनाओं के कारण सरकार ने आपको 'सर' की उपाधि से विभूषित किया

किन्तु सन् १६१६ के जलियाँवाला हत्याकाण्ड के विरोध में आपने उसे त्याग दिया।

विश्वकवि ने अमरीका की यात्रा की और वहाँ येल यूनिवर्सिटी में 'राष्ट्रीयता' विषय पर व्याख्यान दिये। इसमें आपने चीन के प्रति जापान की अमानुषिक नीति और उसके साम्राज्यवाद की तीव्र आलोचना की।

सन् १६२१ तथा १६२२ मे विश्व-कवि ने भारत-भ्रमण करके जनता को स्वाधीनता का सदेश दिया। सन् १६२४ मे आपने चीन और जापान की यात्रा की। सन् १६२५ मे आप इटली गये। वहाँ मुसोलिनी ने आपका स्वागत किया। इस प्रकार उनके जीवन का शेष काल विदेशों में भ्रमण, साहित्य-रचना तथा शान्ति-निकेतन के लिये धन-सग्रह में व्यतीत हुआ। सन् १६३० मे आपने चित्र-कला का अभ्यास किया। सन् १६३० में आपने विलायत के आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में व्याख्यान (Hibbert Lectures) दिये। जर्मनी गए और वहाँ भी व्याख्यान दिए। वहाँ से आप रूस गए और तदनन्तर रूस से अमरीका। सन् १६३१ मे आप भारत वापस आए। सन् १६३२ मे आपने ईरान की यात्रा की। सन् १६३४ से आप शान्ति-निकेतन मे ही रहे। आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी ने आपको डाक्टर (आचार्य) की पदवी (भारत मे) प्रदान की। आप पहले व्यक्ति थे जिनको उनके स्थान पर किसी महान् सस्था के प्रतिनिधियो ने आकर पदवी प्रदान की हो। ७ अगस्त १६४१ को आपका स्वर्गवास होगया।

राइखताग—जर्मन पार्लमेंट।

राइखताग अग्नि-काण्ड—२७ फरवरी १६३३ को राइखताग के भवन मे भयंकर अग्नि-काण्ड हुआ। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जर्मनी मे

राष्ट्रीय-समाजवादी (नात्सी) दल के शक्ति-सम्पन्न होने के उपरान्त ही, साम्यवादियो तथा अन्य विरोधी दलो का दमन करने के लिये, राइख़ताग मे आग लगाने का स्वय नात्सियो ने षड्यंत्र रचा और प्रचारित यह किया कि इस अग्निकांड का षड्यत्र कम्युनिस्टो ने, देश मे विद्रोहाग्नि भडकाने के लिये, किया है। एक डच युवक, जिसकी जेब मे कम्युनिस्ट दल के सदस्य बनाने की बही पाई गई, मौक़े पर पकडा गया। इसके साथ तीन बलग़ारी साम्यवादी भी, राइख़ के कम्युनिस्ट सदस्य, हर टार्गलर सहित, गिरफ्तार किये गये। घटना के कई महीनो बाद लीपज़िग की आला अदालत मे इन पॉचो पर मुक़दमा शुरू किया गया। बलगारी कम्युनिस्ट डिमिट्राफ ने अपनी सफाई मे ऐसी ज़बरदस्त बहस की, जो काफी मशहूर होचुकी है, और जिसके आधार पर अदालत को उसे, उसके दोनो साथियो और हर टार्गलर को भी छोडना पडा। डिमिट्राफ ने सिद्ध कर दिया कि यह साजिश ख़ुद नात्सियो की है। डच युवक को दोषी ठहराया गया और उसे फॉसी की सज़ा देदी गई। इस अग्निकाड मे राइख़ के प्रधान गोरिग् का हाथ बताया जाता है, जिसके घर से पार्लमेन्ट-भवन तक सुरग थी। अग्निकांड के बाद इमारत की मरम्मत नही कीगई है।

राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती—मदरास प्रान्त के काग्रेस के प्रमुख नेता तथा मदरास सरकार के भूतपूर्व प्रधान मत्री। जन्म सन् १६७६। मदरास हाईकोर्ट के नामी वकील रहे। सन् १६१६-२० मे, असहयोग के समय, वकालत छोडदी। आन्दोलन मे भाग लिया और क़ैद हुए। उपरान्त महात्मा गान्धी के कारावास के समय उनके 'यग इडिया' पत्र का सम्पादन किया। फ्री मैसनरी थे किन्तु, १६३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे भाग लेने के कारण, उन्हे फ्रीमैसन सोसायटी ने अलग कर दिया। गान्धीजी और उनकी नीति मे राजाजी की अटल श्रद्धा थी, अतएव स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजनदास के विरुद्ध गया की काग्रेस मे अपरिवर्तनवादी असहयोगियो के आप नेता बने। सन् १६२६ क कौन्सिल-प्रवेश के समय भी आप अपरिवर्तनवादी थे। १६३७ मे आपने मदरास मे कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डल बनाया और कांग्रेस-दल के प्रमुख होने के कारण प्रधान-मत्री नियुक्त किये गये। आपने सबसे पहले अपने प्रान्त मे शराबबन्दी शुरू की। सन् १६३६ मे युद्ध के प्रश्न पर प्रधान-मंत्रित्व से आप-

की सरकार ने भी त्याग-पत्र दे दिया। सन् १६४० मे युद्ध-विरोधी-सत्याग्रह मे गिरफ़्तार किये गये। सन् १६४२ मे पाकिस्तान के प्रश्न पर गान्धीजी से आपका मतभेद होगया और आपने कांग्रेस कार्य-कारिणी समिति से त्यागपत्र दे दिया। इस कारण ६ अगस्त '४२ से देश मे शुरू हुए दमन मे आप नही पकड़े गये। देश मे उत्पन्न हुई विकट स्थिति को सुलझाने के लिये आप प्रयत्नशील हैं। आपकी राजनीतिमत्ता की प्रशसा बरतानिया और अमरीका के प्रमुख पत्र और विचारक भी करते हैं, किन्तु आपका अथक प्रयत्न अपने देश मे इस समय व्यर्थ जा रहा है। गुत्थी को सुलझाने के लिये महात्मा गान्धी से मिलने की आज्ञा, गत नवम्बर मे, आपने वाइसराय से मॉगी, किन्तु वह अस्वीकृत हुई। भारतीय पहेली के निपटारे के लिये आपने मि० जिन्ना से भी व्यर्थ भेंट की।
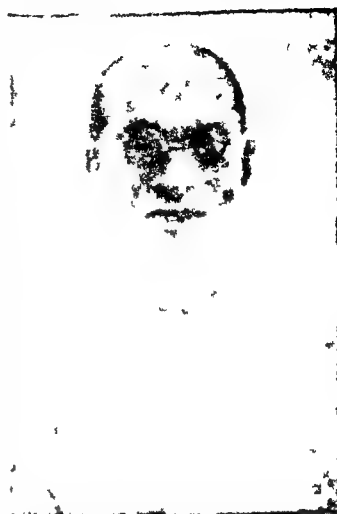
रॉजर-मिशन—अक्टूबर १६४० मे, ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल की ओर से, सर अलेक्जेंडर रॉजर की अध्यक्षता मे, एक सभ्य-मण्डल भारत में पूर्वी राष्ट्र-सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिये, भेजा गया। इस मिशन का सामान्य उद्देश्य भारत को इस योग्य बनाना था कि वह अपनी रक्षा के लिये न केवल आवश्यक वस्तुओ का निर्माण कर सके प्रत्युत् इससे भी अधिक वह साम्राज्य की रक्षा मे अधिक योगदान देसके। वह विशेष रूप से मध्य-पूर्व तथा स्वेज नहर मे सेनाओं के लिये उपयुक्त रसद तथा अन्य युद्ध-सामग्री भेज सके। इस उद्देश्य से इस मिशन के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यो ने बम्बई, मदरास, बगाल, संयुक्त-प्रान्त, बिहार तथा मध्य-प्रदेश आदि प्रान्तो मे युद्ध बनाने वाले कारखानो का निरीक्षण किया और इसका पता लगाया कि भारत के कारखानो मे कितने प्रकार के अस्त्र-शस्त्र किस प्रकार बनाये जाते और बनाये जा सकते हैं, और इस व्यवसाय का सगठन किस प्रकार किया गया है।

राजेन्द्रप्रसाद, डाक्टर—भारतीय नेता, जन्म ३ दिसम्बर १८८४ ई०।

मैट्रिक, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओ मे आप समस्त विद्यार्थि-समुदाय में सर्वोच्च आये। १६०६ मे बी० ए० और '०७ मे एम० ए० पास करने के बाद राजेन्द्र बाबू मुज़फ्फरपुर कालिज मे अँगरेज़ी के अध्यापक हुए और दूसरे वर्ष कलकत्ता सिटी कालिज मे अर्थशास्त्र के अध्यापक। १६१५ मे उन्होने क़ानून की एलएल० एम० परीक्षा सर्वोच्च कोटि मे उत्तीर्ण की। इसके बाद क़ानून के अध्यापक बनाये गये। १६१६ मे, पटना मे हाईकोर्ट की स्थापना होने पर, राजेन्द्र बाबू ने पटना मे वकालत शुरू की जो, आपकी प्रतिभा के कारण, शीघ्र ही चमक निकली। आप जन्मजात देशभक्त और समाजसेवी हैं। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर स्वर्गीय गोखले ने आपको भारत-सेवक समिति मे सम्मिलित होने के लिये बुलाया, किन्तु आपके द्वारा तो देश की और भी अधिक सेवा होनी थी। १६१७ मे जब महात्मा गान्धी, चम्पारन के किसानो के उद्धार के लिये, पहुँचे तो राजेन्द्र बाबू ने महात्माजी का बहुत हाथ बँटाया। १६२१ के असहयोग मे आपने वकालत छोडदी। सबसे प्रथम १६०६ की काग्रेस मे आप सम्मिलित हुए और १६१६ से तो आप उसका एक अग हैं। १६२२ मे कांग्रेस के प्रधान मन्त्री बनाये गये और १६२३ मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष। सन् १६२१, १६३१ और १६३२ के आन्दोलनों मे भाग लिया और अनेक बार जेल गये। १६३० मे, एक मुक़दमे के सिलसिले मे, आपको विलायत जाना पडा। वहाँ से आप योरप की अन्य राजधानियो मे भी गये और उन्होने भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सम्मेलन मे भाग लिया। वहाँ आपका मार्के का भाषण हुआ। आस्ट्रिया मे एक फासिस्त ने आप पर घातक आक्रमण किया, किन्तु ईश्वर ने आपकी रक्षा की। सन् १६३४ मे, भूकम्प-पीडित बिहार की आपने भारी सेवा की। सन् १६३४ मे काग्रेस के बम्बई अधिवेशन के सभापति बनाये गये। आप पहले प्रेसिडेन्ट थे जिन्होने, अपने पद के कारण देश, का दौरा किया। कांग्रेस पार्ल-मेंटरी कमिटी के भी आप सदस्य रहे। मई १६३६ मे सुभाष बाबू के त्यागपत्र दे देने पर राजेन्द्र बाबू शेष काल मे राष्ट्रपति रहे। राजेन्द्र बाबू बिहार के गान्धी हैं। अपने प्रान्त मे उन्होंने राजनीतिक, साहित्यिक, शिक्षा और खादी प्रसार तथा अन्य समाजसेवी क्षेत्रों मे चहुँमुखी विकास किया है। निरन्तर देश-

सेवा में सलग्न रहने के कारण उन्हें दमा होगया है। इसी कारण १९४० के युद्ध-विरोधी सत्याग्रह मे महात्माजी ने उन्हे जेल जाने की अनुमति नहीं दी। 'भारत छोडो' प्रस्ताव के बाद, अगस्त १९४२ मे, आपभी पकड लिये गये हैं।

रावर्ट ले, डाक्टर—नाजी नेता, 'जर्मन-मजदूर-मोर्चे' का अध्यक्ष। यह मोर्चा जर्मनी मे सभी प्रकार के—वैतनिक और दैनिक श्रमजीवी—मज़दूरो की एकमात्र अनिवार्य सस्था है, जो ट्रेड यूनियनो को तोडकर बनाई गई है। यह मोर्चा मजदूरो के हितो का प्रतिनिधित्व नहीं करता। इसका लक्ष्य है मजदूरों का नात्सीकरण और उन्हें वेतन-वृद्धि तथा अन्य अधिकारो की प्राप्ति के लिये हडताल आदि करने से रोकना। फलतः मालिकों और राज-संस्था की हितवृद्धि करना। इस मोर्चे के सदस्यो से चन्दे की ५० करोड मार्क सालाना आमदनी होती है, किन्तु इसके आय-व्यय का कोई लेखा प्रकाशित नहीं किया जाता। सम्भवतः यह धन नात्सी-दल के सचालन और सरकारी कोप मे जाता है।

रॉयल डच-शैल—तेल का व्यवसाय करनेवाली संसार मे सबसे बडी कम्पनी। इसके नियत्रण मे ससार भर के एक-चौथाई तेल की पैदावार का व्यापार इसके द्वारा होता है। इसके अधीन अनेक तेल-कम्पनियाँ हैं जो ईस्ट इडीज़, अमरीका, इराक़, मिस्र, रूमानिया, ट्रिनीडाड, ब्रह्मा, वेनेज्युला मे तेल निकालती हैं।

राष्ट्र-सघ—वर्साई की सधि के अनुसार, १९२० मे, ससार के राष्ट्रो में परस्पर सहकारिता की वृद्धि तथा युद्धावरोध के उद्देश्य से, राष्ट्रसघ की स्थापना की गई थी। इसका मुख्य कार्यालय जिनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड) मे स्थापित किया गया था। तत्कालीन अमरीकन राष्ट्रपति विल्सन के चौदह सिद्धान्तो में से अन्तिम सिद्धान्त यह था कि ससार के राष्ट्रो की स्वाधीनता की रक्षा के लिये

समस्त राष्ट्रो की एक सभा स्थापित कीजाय । किन्तु संयुक्त-राज्य अमरीका की कांग्रेस ने वर्साई की सधि को स्वीकार नहीं किया और न उसने राष्ट्रसंघ की सदस्यता ही स्वीकार की ।

राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत दो सभाये थीं—असेम्बली तथा कौंसिल । प्रत्येक स्वाधीन देश को इसमे अपने सदस्य भेजने का अधिकार था । असेम्बली मे राष्ट्रसघ के सभी सदस्यों के प्रतिनिधि होते थे और प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र की एक वोट थी । ५४ राष्ट्रों के प्रतिनिधि असेम्बली मे थे । कौंसिल एक प्रकार की कार्यकारिणी सभा थी । इसमे १५ सदस्य थे । बरतानिया, फ्रान्स और रूस कौंसिल के स्थायी सदस्य थे, शेष चुने जाते थे । असेम्बली का अधिवेशन प्रतिवर्ष सितम्बर मे जिनेवा मे होता था और कौंसिल के साल मे तीन अधिवेशन होने तय किये गये थे । राष्ट्रसघ का एक स्थायी प्रधान कार्यालय भी जिनेवा मे था, जिसमे ससार के प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र के कर्मचारी तथा अफसर थे । राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ तथा स्थायी विश्व न्यायालय की भी व्यवस्था थी । इसके विधान के अनुसार कोई भी सदस्य राष्ट्र, अन्य राष्ट्र के साथ विषम परिस्थिति उत्पन्न होने पर, बिना संघ के समक्ष अपना मामला पेश किये, युद्ध नहीं छेड सकता था । यदि संघ ६ महीने की भीतर निर्णय न कर पावे तो उसके भी तीन महीने बाद वह राष्ट्र युद्ध-रत हो सकता था।

अमरीका के सम्मिलित न होने, ढीले-ढाले सगठन और स्वयं अपनी शासक-शक्ति के अभाव के कारण सघ का कार्य प्रारम्भ से ही ठीक तौर पर नहीं चल सका। इसके सदस्य राष्ट्रसघ के नाम पर अपने राज्य या साम्राज्य का कुछ भी त्याग करने से पीछे रहे। विगत युद्ध मे पैदा हुई विजित और विजेताओं के बीच की खाई को सघ पाट न सका । १९२५ मे जब जर्मनी राष्ट्रसंघ में सम्मिलित हुआ तो कुछ अच्छे लक्षण दिखाई पडे, किन्तु हिटलर के उदय पर, १९३३ में, वह संघ को छोड गया । जर्मन राष्ट्र-सघ को सदैव मित्र-राष्ट्रों का एक गुट कहते रहे ।

सन् १९३२ मे जापान ने चीन के मचूरिया प्रान्त का अपहरण कर लिया, किन्तु, चीन के अपील करने पर और राष्ट्र-सघ द्वारा जापान को आक्रमक घोषित किये जाने पर भी, उसके विरुद्ध कोई कारवाई नहीं की गई और जापान संघ

को छोड बैठा । १६३४ मे सोवियत रूस के राष्ट्र-सघ मे आजाने पर जर्मनी और जापान के निकल जाने की क्षति-पूर्ति होजाने पर सन्तोष किया गया, किन्तु सन् १६३५ मे इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया। आरम्भ में अबीसीनिया की कोई सहायता नहीं कीगई। अन्त मे जब अबीसीनिया पर इटली का पूरा आधिपत्य क़ायम होगया, तब, इटली के विरुद्ध केवल आर्थिक दण्डाज्ञायें जारी कीगई और बाद मे वह भी रोक दीगई, और इटली भी सघ से पृथक होगया। इससे तो राष्ट्र-सघ की रही-सही प्रतिष्ठा भी भग होगई, राष्ट्रों का उस पर से विश्वास उठ गया और वह पुनः पारस्परिक समझौते और गुटबन्दियों के पुराने सिद्धान्त के अनुयायी बन गये। सन् १६३६ में स्पेन के गृह-युद्ध मे इटली तथा जर्मनी ने विद्रोहियो की मदद की, परन्तु राष्ट्रसघ कुछ भी न कर सका। सन् १६३८ मे आस्ट्रिया तथा चैकोस्लोवाकिया की स्वाधीनता का जर्मनी ने अपहरण किया और राष्ट्रसघ ने चूँ तक न की। इसी प्रकार, सितम्बर १६३६ मे, जर्मनी के पोलैण्ड पर आक्रमण करने पर राष्ट्रसघ मे इस पर विचार तक नहीं किया गया। अलबत्ता सोवियत रूस ने जब पोलैण्ड पर हमला किया तो, ११ दिसम्बर १६३६ को, सघ की असेम्बली की बैठक कीगई, रूस की निन्दा की गई और उसे सघ से पृथक् कर दिया गया।

राष्ट्रसघ का अब अन्त होचुका है। जुलाई १६४० मे उसके कुछ दफ़्तर भी जिनेवा से उठकर न्यूयार्क चले गये हैं। राष्ट्रसघ की नियमावली मे २६ धाराएँ थी।

राष्ट्रसघ-यूनियन—यह ब्रिटेन की एक सस्था है । सन् १६१८ मे लीग आफ् नेशन्स सोसाइटी तथा लीग आफ् फ्री नेशन्स असोसियेशन को सम्मिलित कर इसकी स्थापना हुई। सन् १६३६ मे ग्रेटब्रिटेन मे इसकी २,४०० शाखायें तथा २,००,००० इसके सदस्य थे। इस सस्था का उद्देश्य राष्ट्रसंघ की स्थापना के लिये जनता मे तत्सम्बन्धी शिक्षा तथा सहानुभूति पैदा करना था और इसी के प्रयास से राष्ट्रसघ की स्थापना हुई । सद्भावना, सहयोग, तथा विविध देशो की जनता के साथ सद्व्यवहार द्वारा पारस्परिक सामजस्य पैदा करना तथा राष्ट्रसघ का समर्थन करना भी इसका उद्देश था। वर्त्तमान समय मे इसके दो सयुक्त अध्यक्ष हैं—लार्ड सैसिल तथा डा० गिल्बर्ट मरे। बरतानी साम्राज्य देशो, फ्रान्स, अमरीका तथा अन्य बीस देशो मे भी ऐसी सस्थाये थीं और

इन सबकी एक सामूहिक सस्था 'इन्टरनेशनल फेडरेशन आफ् लीग आफ् नेशन्स सोसाइटीज़' नाम से है।

राष्ट्रीय उदार दल—ब्रिटेन के उदार दल का एक अंग। १९३३ मे लिबरलो ने जब राष्ट्रीय सरकार का परत्याग कर दिया, तब उन्होने उदार-दल से अलग होकर राष्ट्रीय उदार दल बनाया। इस दल का अनुदार दल से सहयोग है और इस दल के सदस्यो की तथा अनुदारो की नीति मे कोई अन्तर नही है। सन् १९३५ के चुनाव मे इस दल को ८,६६,००० मत मले तथा इस दल के ३३ सदस्य कामन्स सभा मे पहुँच गये। इस दल के प्रमुख सदस्य हैं—लार्ड साइमन, लार्ड रन्सीमन, एल० होर-बलीशा तथा लार्ड मान्टरोज़। यह सब सरकारी पक्ष के राजनीतिज्ञ हैं।

राष्ट्रीय मजदूर-दल—यह ब्रिटेन के मज़दूर दल का एक पुछल्ला है। १९३१ में रेम्ज़े मेकडानल्ड ने, मज़दूर-दल की नीति के विपरीत, राष्ट्रीय सरकार बनाई, तब उन्होने एक पृथक् दल इस नाम से स्थापित किया। यह दल अनुदार-दल के सहयोग से काम करता है। इसका नरम मज़दूर-कार्यक्रम है। कॉमन्स-सभा मे इस दल के ८ सदस्य हैं। सन् १९३५ के चुनाव मे इस दल को ३,४०,००० मत प्राप्त हुए। इस दल मे माल्कम मेकडानल्ड, अर्ल द ला वार, हेराल्ड निकल्सन तथा स्टीफिन किंग-हाल शामिल हैं।

राष्ट्रीय मज़दूर-सम्बन्ध वोर्ड—सयुक्त-राज्य अमरीका में मज़दूरो के झगडो का निर्णय करनवाली सर्वोच्च सस्था।

राष्ट्रीय समाजवाद—हिटलर द्वारा संस्थापित तथा सचालित, जर्मनी का राष्ट्रीय आन्दोलन जो नात्सीवाद के नाम से प्रसिद्ध है। जर्मनी मे राष्ट्रीय समाजवाद का आरम्भ १९१२ से हुआ, जबकि कार्ल्सबाद मे जर्मन 'नेशनल सोशलिस्ट लेबर पार्टी' की स्थापना सुडेटन-जर्मनो ने की। वीयना मे इसकी शाखा स्थापित कीगई, पर वह नहीं चली। हिटलर का इस प्राथमिक सस्था से सम्बन्ध था, इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। हिटलर की संस्था या दल की स्थापना, सन् १९१९ मे, बवेरिया के म्युनिख नगर में, ड्रेक्सलर नामक एक जर्मन मज़दूर ने की, जिसका नाम जर्मन लेबर पार्टी रखा गया। प्रारम्भ में यह एक बहुत ही छोटी भोजन-क्लब-जैसी संस्था थी। जब हिटलर

इसमें शामिल हुआ तब इसके सिर्फ ६ सदस्य थे। सातवाँ हिटलर था, जो
इस दल का नेता बन गया। उसने इसका नाम बदलकर 'राष्ट्रीय समाज
वादी जर्मन मजदूर दल' रख दिया और कुछ दिनों तक प्रचार करके इसे
काफी बड़ा बना दिया। संस्थापक ड्रेक्सलर को दल से निकाल दिया गया
म्युनिख, वीयना तथा कार्ल्सबाद के राष्ट्रीय समाजवादी दलों की एक
विराट सभा, २४ फरवरी १९२० को, म्युनिख में हुई, किन्तु तीनों में तत्काल
एकता स्थापित न होसकी। उसी वर्ष एक कार्य-क्रम प्रस्तुत किया गया
जिसमें नीचे लिखे २५ उद्देश थे: –

(१) समस्त जर्मनों को मिलाकर एक महान् जर्मन राष्ट्र बनाया
जाय। (२) वर्साई की संधि रद्द की जाय। (३) अन्न की पैदावार के
लिये भूमि तथा बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये उपनिवेश। (४) जर्मन
रक्तवाले जन ही राष्ट्र के नागरिक हैं, यहूदी नहीं। (५) जो जर्मन-राष्ट्र
के सदस्य नहीं हैं, वे विदेशी हैं। (६) सरकारी पदों की नियुक्ति करते
समय दल का विचार छोड़कर केवल सुयोग्य तथा चरित्रवान् ही नियुक्त किये
जायँ। (७) राज्य को नागरिकों की सुख-सुविधा की व्यवस्था करनी
चाहिये। (८) विदेशियों को जर्मनी से निकाल दिया जाय, गैर-जर्मनों को
जर्मनी में न बसने दिया जाय। (९) स्वत्वों तथा कर्त्तव्यों की दृष्टि से सब
नागरिक समान हैं। (१०) प्रत्येक नागरिक को सार्वजनिक हित की दृष्टि से
काम करना चाहिये। (११) बिना काम किये होनेवाली आमदनी का
उन्मूलन कर दिया जाय। (१२) युद्ध के समय जो मुनाफा लोगों ने
उठाया है, उसे जब्त कर लिया जाय। (१३) कम्पनियों तथा ट्रस्टों का
राष्ट्रीयकरण हो। (१४) थोक-व्यापार का लाभ विभाजित कर दिया जाय।
(१५) वृद्धावस्था में पेन्शन तथा सामाजिक बीमा शुरू हो। (१६) छोटे-छोटे
व्यापारियों की रक्षा की जाय, सरकारी सौगों के गोदाम बन्द किये जायँ।
(१७) राष्ट्रीय काम के लिये भूमि जब्त की जा सके तथा भूमि-ऋण पर
से व्याज बन्द कर दी जाय। (१८) राष्ट्र के विरुद्ध अपराधियों को देश
निकाला दे दिया जाय, सूदखोरों और मुनाफाखोरों को मृत्यु-दण्ड दिया
जाय। (१९) जर्मनी में रोमन-क़ानून की जगह जर्मन-क़ानून का प्रचलन

किया जाय। (२०) शिक्षा का राष्ट्रीयकरण किया जाय और उसे अधिक व्यापक, राष्ट्रीय तथा व्यावहारिक बनाया जाय। (२१) राष्ट्र के स्वास्थ्य को उन्नत किया जाय। (२२) सेना मे भर्ती होना अनिवार्य हो। (२३) जर्मन समाचार-पत्रों को प्रोत्साहन दिया जाय तथा ग़ैर-जर्मन-पत्रो को जर्मन किसी प्रकार की सहायता न दे। (२४) राष्ट्र-रक्षा का विचार रखते हुए सबको धार्मिक स्वाधीनता हो। (२५) राष्ट्र मे एक प्रबल केन्द्रिय सत्ता स्थापित की जाय। इस कार्य-क्रम में समाजवादी तथा राष्ट्रीय दोनो उपकरणो का सम्मिश्रण है। सन् १९३३ मे जब हिटलर जर्मनी का शासक बना तो उसने समाजवादी कार्य-क्रम को त्यागकर राष्ट्रीय कार्य-क्रम को पूरा करने का प्रयत्न किया। यद्यपि पूँजीवाद नही रहा है, तथापि हिटलर के शासन मे व्यक्तिगत-सम्पत्ति ज्यो की त्यो सुरक्षित रही है। सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण नही किया गया और न बडे-बडे पूँजीपतियो या व्यापारियो का नाश किया गया है। अलबत्ता आर्थिक-शासन राज्य के हाथो मे चला गया है, और सरकारी कर्मचारी पैदावार का नियन्त्रण करते हैं। बेकारी-निवारण, शस्त्रीकरण और युद्धोद्योगों मे तीव्रता के साथ प्रगति करने के विचार से ही आर्थिक कार्यक्रम को सरकार ने अपने अधीन किया है, समाजवादी विचार से प्रेरित होकर नही।

जर्मनी मे केवल नात्सीदल ही अकेला राजनीतिक दल है। हिटलर इस दल का नेता है। उसीके हाथ मे समस्त सत्ता है। उपनेताओ की नियुक्ति भी वही करता है। दल की नीति के संचालन मे दल के सदस्यो को कोई अधिकार नही है। वे केवल अनुशासन का पालन करते हैं। दल के तीस लाख सदस्य हैं। दल के अतिरिक्त कुछ अन्य पूरक-सहायक संस्थाएँ भी हैं, जिनका संगठन अनिवार्य है, जैसे जर्मन मज़दूर-मोर्चा (German Labour Front) जिसमे रोज़नदारी और तनख़ाहदार सभी प्रकार के मज़दूरो का सदस्य होना अनिवार्य है। इसी प्रकार हिटलर युवक सस्था मे सब जर्मन युवको का भर्ती होना अनिवार्य है। दल की अपनी पैदल, मोटर सवार और हवाई सेनायें हैं। नूरेम्बर्ग मे दल का सालाना अधिवेशन होता है। दल के संगठन मे करोडो मार्क (जर्मन सिक्का) ख़र्च किये जाते हैं, परंतु उनका हिसाब कभी प्रकाशित नहीं किया गया। दल का आधार मध्यम वर्ग

पर स्थित है । बडे-बडे उद्योग धन्धो और आर्थिक-सकट से इनकी रक्षा का वचन नात्सी लोगों ने दिया था । इनकी रक्षा के लिये जो कुछ किया गया वह यह कि छोटे-छोटे धन्धे बन्द करा दिये गये और उनके मालिकों को मज़दूर बनाकर कारखानों में भेज दिया गया। बडे-बडे उद्योग ज्यों-के-त्यों बरक़रार हैं।

नात्सी दल मे उग्र राष्ट्रीयता तथा जातीयता का खूब प्रचार है। जर्मन अपने को आर्य जाति मानते हैं । दल के प्रत्येक सदस्य को प्रमाणित करना पडता है कि उसके वश मे सन् १८०० से अबतक कोई पूर्वज यहूदी नहीं था। "यहूदियों से उत्पन्न" और ग़ैर-जर्मन बताकर ईसाइयत का भी वहाँ अपमान किया जाता है । उसके स्थान मे पुरातन ट्यूटोनिक देवताओं की पूजा भले ही कोई जर्मन करे । दल का सगठन फौजी ढग से किया गया है, मानवता तथा प्रजातन्त्र का मजाक उड़ाया जाता है और भौतिक बल, रक्तपात और युद्ध की प्रशसा की जाती है। सक्षेपतः दल का कार्यक्रम हिटलर की लिखी हुई ससार-प्रसिद्ध पुस्तक Mein Kampf ('माईन काम्फ'—'मेरा सघर्ष') पुस्तक मे वर्णित कार्यक्रम के आधार पर है। हिटलर के सहयोगी नेताओ मे गोरिंग्, गोबल्स, फ्रिक, रोजनबर्ग, ले, रिबनट्राप, हिमलर और स्ट्रैशर उल्लेखनीय हैं। सन् १९३३ से पूर्व यह सभी गरीबी की दशा मे दिन काटते थे, परन्तु आज वह जर्मनी के भाग्य-विधाता हैं और करोडो की सम्पत्ति के स्वामी।

राहुल सांकृत्यायन—महापडित, त्रिपिटकाचार्य, जन्मभूमि बिहार, अवस्था ४५ वर्ष, साम्यवादी विद्वान् लेखक, नेता तथा बिहारी किसान-आन्दोलन के सचालक, बौद्ध प्रचारक, बाल्यकाल का नाम दामोदर। तिब्बत, लका आदि स्थानों मे अध्यवसायपूर्वक अनेक ग्रन्थो का अन्वेषण किया। ईरान, तिब्बत, रूस आदि की यात्रा की। चीनी, अरबी, फारसी, सस्कृत, तिब्बती, हिन्दी, पाली एव प्राकृत भाषाओं के पंडित। आपने हिन्दी तथा पाली भाषा मे अनेक बौद्ध तथा साम्यवादी ग्रन्थो की रचना की है, जिनमे से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—साम्यवाद ही क्यों, तिब्बत मे सवा वर्ष, विनयपिटक, अभिधर्म कोष, वादन्याय, सोवियत् रूस आदि। रूस मे रहते समय राहुलजी ने वहाँ की एक महिला को अपनी जीवन-सगिनी बनाया था।

एक पुत्र भी दोनो से है। मा बेटा दोनों रूस मे ही है। सन् १९४०-४१ में देशव्यापी दमन के समय आपको भी पकड़कर देवली कैम्प-जेल भेज दिया था, जहाँ समस्त भारत के समाजवादी और साम्यवादी रखे गये थे। सन् १९४२ के शुरू मे जब सरकार और साम्यवादियो के बीच समझौता हुआ, तब सबके साथ आप भी रिहा कर दिये। आप गाधीवाद के विरोधी तथा किसान-नेता थे, और अब अगुआ कम्युनिस्टो मे माने जाते हैं।

रिज़र्व बैंक आफ़् इंडिया—सन् १९३४ मे भारतीय व्यवस्थापिका सभा ने रिज़र्व बैक आफ् इडिया क़ानून स्वीकार किया, जिसके अनुसार १, अप्रैल १९३५ को, भारत मे रिजर्व बैंक की स्थापना कीगई, जिसकी पूँजी ५ करोड़ रुपया है। इस बैंक के महत्वपूर्ण कार्य और अधिकार क़ानून द्वारा निर्धारित हैं, जो इस प्रकार हैः—(१) भारत मे नोट तथा सिक्के जारी करना। (२) भारत सरकार तथा भारत के समस्त बैंको का रिज़र्व बैंक महाजन है। (३) देश की आर्थिक अवस्था की रक्षा करना तथा बैंकिग् और आर्थिक उन्नति के कार्य मे मार्ग-प्रदर्शन करना। (४) रुपये की विनिमय-दर स्थिर करना। (इस समय का दर है १ रुपया = १ शिलिग ६ पैंस)। (५) प्रत्येक बैंक को, जो रिज़र्व बैंक की परिशिष्टि मे दर्ज है, एक निश्चित मात्रा मे इस बैंक मे अमानत जमा रखनी होगी। (६) बैंक की शरह निश्चित करना। (७) यह बैंक एक विशेष कृषि-साख विभाग स्थापित करेगी। (८) यह बैंक आगे चलकर इम्पीरियल बैंक का कुल सरकारी काम करेगी। जहाँ इसकी शाखा न होगी, वहाँ इम्पीरियल बैंक काम करेगी। इस बैंक के बम्बई, कलकत्ता, देहली, मदरास मे कार्यालय हैं। रंगून मे भी कार्यालय था।

इसका प्रबंध डाइरेक्टरो के केन्द्रिय बोर्ड के हाथ मे है, जिसका संगठन इस प्रकार हैः—(१) बोर्ड की सिफारश से सपरिषद् गवर्नर-जनरल बैंक के गवर्नर तथा दो डिपुटी गवर्नरो की नियुक्ति करेगा। (२) सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त चार डाइरेक्टर। (३) हिस्सेदारो द्वारा निर्वाचित आठ डाइरेक्टर। (४) गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त एक सरकारी अफसर। डिपुटी गवर्नरों तथा मनोनीत सरकारी अफ़सरों को मत

देने का अधिकार न होगा। उपर्युक्त पाँच नगरों मे स्थानीय बोर्ड आफ़् डाइरेक्टर्स होंगे।

प्रत्येक स्थानीय बोर्ड के पॉच डाइरेक्टरों को हिस्सेदार चुनेंगे तथा तीन डाइरेक्टरों की नियुक्ति केन्द्रिय बोर्ड द्वारा की जायगी। केन्द्रिय बोर्ड के डाइरेक्टरों का चुनाव स्थानीय बोर्डों के निर्वाचित सदस्य करेंगे।

रिनौ (Reynaud), पॉल—फ्रान्स का भूतपूर्व प्रधान-मंत्री· १५ अक्टूबर १८७८ को पैदा हुआ; शिक्षा प्राप्त करने के बाद पैरिस की अदालत मे वकालत का पेशा किया; पिछली लड़ाई मे लड़ा; रूसी राज-क्रान्ति के समय नौ-सेनापति कोलचक की सेना मे साइबेरिया मे रहा; सन् १६२५ और '२८ मे फ्रान्सीसी पार्लमेंट का सदस्य रहा। फ्लेदिन के दक्षिणपथी नरम-क्रातिवादी दल मे शामिल हुआ और, सन् १६३० के बाद, वह फ्लेदिन और तारद्यू के मन्त्रिमडलों मे कई बार न्याय-विभाग, अर्थ-विभाग, तथा उपनिवेश विभाग का मंत्री रहा। अप्रैल १६३८ से मार्च १६४० तक दलादिये की सरकार मे अर्थमंत्री रहा। फ्रास की आर्थिक स्थिति में, नये-नये कर लगाकर तथा सरकारी सड्क-भवन-निर्माण संबंधी कार्यों मे कमी करके, सुधार किया। वह अधिनायकों को संतुष्ट करने की नीति का सदैव विरोधी रहा। म्युनिख़-समझौते के बाद उसका फ्लेदिन और दलादिये से, इस सबंध मे, तीव्र मतभेद हुआ। मन्त्रि-मडल से अलग होगया और लडाई में जमकर मुक़ाबला करने के लिये ज़ोरों का प्रचार करता रहा। जनता ने उसकी दाद दी। दलादिये-सरकार के त्याग-पत्र देने के बाद, २३ मार्च १६४० को, रिनौ फ्रास का प्रधान-मंत्री बना और जर्मनी के विरुद्ध ज़ोरों का युद्ध-सचालन जारी रखा। किंतु, जून ४० मे, फ्रास की पराजय के

बाद, पेतॉ-दल ने इसकी सरकार को उखाड फेका। पीछे कई तरह की अफवाहें उडी कि रिनौ मार दिया गया, मोटर की टक्कर मे मर गया, यह भी कि पेतॉ-सरकार ने उसे बंदी बना लिया है।

रिबनट्राप, जोशिम वान—नात्सी जर्मनी का परराष्ट्र-सचिव; जन्म सन् १८८६, विगत विश्व-युद्ध (१९१४-१८) मे गुप्तचर का काम किया। युद्ध के बाद शराब बेचने का एजेन्ट होगया। इस सम्बन्ध मे घूमते हुए, 'शेम्पेन'-नामक अगूरी शराब बनानेवाली हेकल फर्म से, कोलन मे, उसका परिचय होगया। फ़र्म के स्वामी की पुत्री से उसने विवाह किया। सन् १९३२ मे वह नात्सी-दल मे शामिल हुआ। जल्दी तरक्की कर गया और, हिटलर के उदय के समय, उसने सरकारी परराष्ट्र-विभाग के मुक़ाबले मे, हिटलर की ओर से, एक दूसरा परराष्ट्र-विभाग क़ायम किया। (सरकारी परराष्ट्र-मन्त्री तब बैरन न्यूरथ था), दल के कार्य-क्रम को कार्यान्वित करने के लिये साहसपूर्वक अग्रसर रहा। लन्दन में राजदूत मुक़र्रर किया गया। बरतानी सरकारी क्षेत्रों मे वह नात्सी प्रकार से अभिवादन और व्यवहार करता रहा। जब जर्मनी का शासन-भार हिटलर के हाथ मे आगया तब, सन् १९३७ मे, वह परराष्ट्र-सचिव बनाया गया।

रूज़वैल्ट, फ्रेंकलिन डिलानो—संयुक्त-राज्य अमरीका के राष्ट्रपति; ३० जनवरी १८८२ को न्यूयार्क में, उच्च-वंश में, जो १६४९ में अमरीका मे आ बसा था, जन्म हुआ। डिलानो इनकी माता का नाम है। अमरीका के पुरातन राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वैल्ट के वंश से आपका दूर का सम्बन्ध है। रूज़वैल्ट १९०४ में हारवर्ड विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट हुए तथा कोलम्बिया के कालिज से १९०७ में क़ानून की सनद हासिल की। सन् १९१० में, प्रजा-

तन्त्रवादी दल की ओर से, न्यूयार्क स्टेट् सीनेट के सदस्य चुने गये। सन् १९१२ मे उन्होंने वुडरो विल्सन की उम्मेदवारी का समर्थन किया और, उनके राष्ट्रपतित्व-काल मे, वह नौ-सेना-विभाग के उपमत्री बनाये गये। सन् १९१८ में उन्हे सैन्य-निरीक्षण के लिये योरप भेजा गया और १९१९ मे अमरीकी फ़ौजो के तोडे जाने का काम सोपा गया। १९२० में उप-राष्ट्रपति के पद के लिये खडे हुये, किन्तु असफल रहे। इसके बाद सन् १९२८ तक वह न्यूयार्क में वकालत करते रहे। इन्हीं दिनो एक व्यवसायी कम्पनी के उपप्रधान भी रहे। सन् १९२१ मे इनकी टॉगो को लक़वा मार गया, किन्तु इनका उत्साह भग नही हुआ और राजनीति मे भाग लेते रहे। सन् १९२८ और १९३० मे दो बार न्यूयार्क के गवर्नर चुने गये। सन् १९३२ मे वह सयुक्त-राज्य अमरीका के राष्ट्रपति चुने गये और ४ मार्च १९३३ को उन्होंने अपना पद ग्रहण किया। नवीन योजना (New Deal) द्वारा आर्थिक तथा सामाजिक सुधार के अनेक काम किये। सन् १९३६ मे वह फिर अमरीका के राष्ट्रपति चुने गये और नवम्बर १९४० मे तीसरी बार भी। इस तीसरे चुनाव में आपके प्रतिद्वन्द्वी प्रजातन्त्रवादी उम्मीदवार, वैण्डल विल्की, के मुक़ाबले आपको ४९,१४,७१८ मत मिले। राष्ट्रपति विल्सन के बाद आपको ही इतने अधिक मत प्राप्त हुए।

राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने अमरीका की सीनेट तथा प्रतिनिधि-सभा में, १० जनवरी १९४१ को, युद्ध-सहायक मसविदा (बिल) प्रस्तुत कराया। इस मसविदे मे पॉच प्रमुख बाते हैं:—

(१) मसविदा राष्ट्रपति को यह अधिकार देता है कि वह किसी भी सरकार तथा देश के लिये, जिसकी रक्षा करना, उसकी सम्मति मे, सयुक्त-राज्य अमरीका की रक्षा के लिये आवश्यक है, अमरीका के कारख़ाने आदि में कोई भी सामान तैयार कराये।

(२) राष्ट्रपति ऐसी किसी सरकार या देश को सेना तथा देश-रक्षा के लिये किसी भी वस्तु को बेच सकेगा और उधार या पट्टे पर दे सकेगा।

(३) राष्ट्रपति देश-रक्षा के लिये किसी भी ऐसी आवश्यक वस्तु की जॉच, परीक्षा तथा निरीक्षण कर सकेगा।

(४) दूसरी धारा के अन्तर्गत भेजी गई किसी भी वस्तु के सम्बन्ध मे वह

उस सरकार को आवश्यक रक्षा-सम्बन्धी सूचना भेज सकेगा।

(५) वह ऐसी किसी सरकार के लिये किसी रक्षा-सम्बन्धी वस्तु के भेजे जाने के लिये आज्ञा दे सकेगा।

इस मसविदे का मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन तथा दूसरे मित्रराष्ट्रों की सहायता करना है। यह बिल अमरीका की कांग्रेस द्वारा स्वीकार किया गया तथा इसके कार्यान्वित करने के लिये १ अरब ७५ करोड डालर स्वीकार किये गये।

रूमानिया—बलक़ान-राष्ट्र-समूह का एक देश; क्षेत्रफल १,१३,००० वर्गमील; जन० १,६५,००,०००, राजधानी बुख़ारेस्त; राजा माइकेल प्रथम। रूमानिया के पुराने राज्य मे ट्रान्सिलवेनिया (हंगरी से), बुकोविना (आस्ट्रिया से) तथा बैसरेबिया (रूस) से, पिछले विश्व-युद्ध के बाद, मिलाये गये। १९२७ मे राजा फर्डिनेन्ड की मृत्यु के बाद, उसका नाबालिग पौत्र, माइकेल, राजा घोषित किया गया और रूमानिया के तत्कालीन प्रभावशाली राजनीतिज्ञ, इओन ब्रातिआनू, ने युवराज कैरोल से, उसके एक यहूदी महिला, मादाम लेपेस्कू, से सम्बन्धित होने के कारण, दस्तबरदारी लिखाली। ब्रातिआनू भी १९२७ ई० में मर गया और प्रजातन्त्री कृषक-दल के नेता मेन्यू के हाथ जब प्रधान मन्त्रिपद आया, तो उसने कैरोल को वापस बुला लिया। कैरोल बादशाह बन बैठा, पर मेन्यू को मुस्तैफी होना पडा। इसके बाद, देश के अनेक राजनीतिक दलों के पारस्परिक संघर्ष के कारण, रूमानिया का राजनीतिक वातावरण बहुत अशांत रहा। इन्हीं दिनों नात्सी-अनुकरण में लौह-रक्षक (आयर्न गार्ड) नामक एक दल उत्पन्न हो चुका था। देश की राजनीति में यह लोग अलग हस्तक्षेप कर रहे थे। राजा कैरोल ने 'नेशनल क्रिश्चियन फ्रन्ट' दल के नेता गोगा को—यद्यपि इनके दल को केवल ९ फीसदी मत चुनाव में मिले

थे—मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित किया। गोगा ने सरकार बनाई, किन्तु पार्लमेन्ट बरखास्त करदी गई, और तब से रूमानिया मे पार्लमेन्ट नहीं बनी है। गोगा ने, नात्सी-अनुकरण मे, यहूदी-विरोधी कानून बनाये। बादशाह ने अपने अधिकार पर ऑच आते देख गोगा को, फरवरी १९३८ मे, बरखास्त कर दिया, खुद अधिनायक बन गया और सब दल तोड़ दिये। यहूदी-विरोधी क़ानूनो को अमल मे तो नहीं लाया गया, किन्तु सामी-विरोधी नीति, रूमानिया मे पुरानी होने के कारण, सरकारी नीति बनी रही। १९३८ के पतझड़-काल मे लौह-रक्षकों ने जोर पकडा। बादशाह ने इस दल के नेताओं की गिरफ्तारी का हुक्म निकाला, और जिस वक्त कि यह लोग भाग रहे थे तो इन्हे गोली मार दी गई। १९३९ के मार्च मे एक नया शासन-विधान बना और मोशिये कालिनेस्कू प्रधान मन्त्री बना, जिसे अक्टूबर '३९ में लौह-रक्षकों ने गोली से उड़ा दिया। १९४० के मार्च मे, जर्मनी के दबाव से, लौह-रक्षक-दल सरकार मे मिला लिया गया और प्रधान मन्त्री तारतारेस्कू की सरकार ने रूमानिया को धुरी राष्ट्रो का साथी घोषित कर दिया। जुलाई १९४० मे, अल्टीमेटम देने के बाद, सोवियत रूस ने बैसरेबिया और उत्तरी बुकोविना पर अधिकार कर लिया, और धुरीराष्ट्रो के प्रभाव से हुए वीयना-समझौते के अनुसार रूमानिया को आधा ट्रान्सिलवेनिया हगरी को दे देना पडा, और सितम्बर १९४० में दक्षिण दब्रूजा बलगारिया के हक़ मे छोड़ देना पडा। रूमानिया का क्षेत्रफल, इस प्रकार, १९१४ के बराबर रह गया। ट्रान्सिलवेनिया के छोड दिये जाने से लौह-रक्षकों ने अशान्ति उत्पन्न करदी। सितम्बर १९४० मे जनरल अन्तोनेस्कू प्रधान मन्त्री बना और उसका नायब बना लौह-रक्षकों का नेता होरिया सीमा। लौह-रक्षक अपने को रूमानी सैन्य कहने लगे और रूमानिया फौजी-राज्य घोषित कर दिया गया। ६ सितम्बर को बादशाह कैरोल को गद्दी से उतार दिया गया और अपनी प्रेयसी के साथ वह विदेश को चला गया। माइकेल राजा बना, किन्तु शासनाधिकार प्रधान मन्त्री अन्तोनेस्कू के हाथ मे दे दिये गये। पुराने राजनीतिक नेता पकड लिये गये और उनमे से बहुतेरे लौह-रक्षको द्वारा जेलखानो मे क़त्ल कर दिये गये।

७ अक्टूबर १९४० को, "रूमानी सेना को तालीम देने" के बहाने जर्मन

सेना ने रूमानिया पर आधिपत्य कर लिया। उपरान्त नरम और गरम लौह-रक्षको में संघर्ष चल पडा और मार्च १६४१ मे लौह-रक्षक दल का अन्त कर दिया गया। होरिया सीमा तथा अन्य लौह-रक्षक नेताओ को लम्बी-लम्बी सजाये दीगईं और देश मे कोई भी राजनीतिक दल या संस्था बनाना निषिद्ध ठहरा दिया गया। अन्तोनेस्कू जर्मनो के हाथ मे कठपुतली बन गया और बरतानिया ने रूमानिया से राजनीतिक-संबंध विच्छेद कर लिया।

तेल, इमारती लकड़ी, गेहूँ और मक्का रूमानिया के निर्यात-व्यापार की जिन्स हैं। जर्मनी इनका सबसे बडा ख़रीदार है। तेल के कारण ही जर्मनी ने रूमानिया पर क़ब्ज़ा किया है। १६३६ मे वहॉ ६० लाख टन तेल निकाला गया, जो जर्मनी के लिये काफी समझा जाता है, किंतु पिछले वर्षों से तेल की निकासी घट रही है। रूमानिया मे तेल का व्यापार करने वाली कम्पनियॉ ब्रिटिश, फ़ान्सीसी और अमरीकी रही है। यहॉ के बरतानी तेल-व्यवसाय को जुलाई १६४० से रूमानी सरकार ने ले लिया है।

जून १६४१ में जब जर्मनी ने रूस पर हमला किया, तो रूमानियनो ने जर्मनी का साथ दिया और बैसरेबिया और बुकोविना को पुनः अधिकृत कर लिया। उन्होंने यूक्रेन के कुछ इलाक़ों पर भी क़ब्ज़ा कर लिया और ओडेसा नगर को ले लिया। ६ दिसम्बर १६४१ को बरतानिया ने रूमानिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करदी और रूमानिया ने, १२ दिसम्बर १६४१ को, संयुक्त-राज्य अमरीका के ख़िलाफ़।
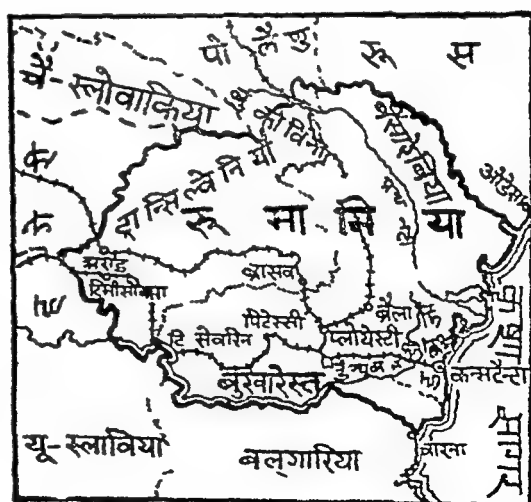
रूस की क्रान्ति—सन् १६१४-१८ के महायुद्ध से पूर्व ही रूस मे ज़ारशाही के पतन के लक्षण स्पष्ट दिखाई पडने लगे थे। न्यायालयों की व्यवस्था पाखण्डी रासपुटिन के अधीन थी। यह धूर्त ज़ार और उसके रनिवास का कुल-गुरु बना हुआ था। रूस की नागरिक तथा फ़ौजी शासन-व्यवस्था अस्तव्यस्त दशा

मे थी। सरकारी कर्मचारियो मे बेईमानी और रिश्वतख़ोरी का बाजार गर्म था। विगत युद्ध के आरम्भ के समय रूस की जनता में स्वदेशाभिमान तथा मातृभूमि के प्रति प्रेम का सागर उमड़ पड़ा। एक विशाल देशरक्षिणी स्वय-सेवक सेना तो बन गई, किन्तु न तो उसके लिए सरकार के पास कार्य-कुशल अफसर थे और न यथेष्ट मात्रा मे शस्त्रास्त्र ही। सितम्बर १६१४ में पूर्वीय प्रशा मे रूसी सेनाओं की उपस्थिति के कारण, जर्मनी में आतंक छा-गया और पेरिस पर हमला करने की उसकी आकाक्षा पर पानी फिर गया। सहस्रों की सख्या मे रूसियो के बलिदान ने उस समय फ्रान्स की रक्षा की। रूसी सेनाओं के पास न तो अच्छे अफसर थे और न पर्याप्त युद्धास्त्र और युद्ध-सामग्री ही, इसलिए सैनिकों मे ज़ारशाही के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न होगई। सन् १६१५ के अन्त में रूस पश्चिमी मित्रराष्ट्रों के लिए चिन्ता का प्रसग बन गया। सन् १६१६ मे वह आत्मरक्षा के लिए ही युद्ध करता रहा। उस समय यह किम्वदन्तियाँ भी सुनी गईं कि रूस जर्मनी के साथ अलग सन्धि करेगा। २६ दिसम्बर १६१६ को रासपुटिन की पीत्रोग्राद मे हत्या कर दी गई। जारशाही को फिर से शक्तिशाली बनाने का एक बार प्रयत्न किया गया। मार्च १६१७ तक घटना-चक्र में तीव्र गति से प्रगति हुई।

पीत्रोग्राद मे अन्न का अभाव होजाने से जनता मे उपद्रव तथा बलवे होने लगे। इन उपद्रवों ने क्रान्तिकारी विद्रोह का रूप धारण कर लिया। रूस की धारा-सभा—ड्यूमा—का दमन किया गया। उदार नेताओं को गिरफ़्तार किया गया। प्रिंस लवोफ् के अधीन एक अस्थायी सरकार बनाई गई और १५ मार्च १६१७ को ज़ार ने राज-सिंहासन का त्याग कर दिया। उस समय ऐसा लगा कि शायद नये जार के अधीन एक नियंत्रित क्रान्ति संभव हो सकेगी। परन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट होगया कि रूस मे जनता का जारशाही से विश्वास उठ गया है, और दोनो मे सामजस्य सभव नही है। रूसी जनता जारशाही से मुक्ति पाने के लिए अत्यन्त विकल थी। मित्र-राष्ट्र रूस की वास्तविकताओ से परिचित न थे। रूसी प्रजातन्त्री सरकार (Russian Republican Government) का प्रमुख करेंस्की था। उसे अपने देश मे [illegible] का सामना करना पड़ा और बाहर मित्रराष्ट्रो की उदासीनता

से निर्वाह। मित्र-राष्ट्र यह चाहते थे कि रूस जर्मनी पर आक्रमण करे। ब्रिटेन से उसे मदद न मिली और रूस को अकेले ही जर्मनी से लडना पडा।

रूस की जनता महायुद्ध से पीडित थी और वह जल्द-से-जल्द उसका अंत करना चाहती थी। पीत्रोग्राद मे एक सस्था का जन्म हो चुका था जो मज़दूरो तथा सैनिको की प्रतिनिधि थी। इसका नाम 'सोवियत' था। इसने स्टाकहोम मे समाजवादियो के एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के आयोजन की माँग की। बर्लिन मे जनता अन्न-कष्ट से दुःखी थी। जर्मनी और आस्ट्रिया युद्ध से त्रस्त थे। इसमे कोई शक नही कि यदि यह सम्मेलन सफल होजाता, तो सन् १९१७ मे प्रजातत्री ढग पर शान्ति स्थापित होजाती और जर्मनी मे क्रान्ति का उदय होजाता। करेस्की ने मित्रराष्ट्रो से कहा कि वह उस सम्मेलन को होजाने दे। किन्तु मित्रराष्ट्रो को यह भय था कि इससे समाजवाद का व्यापक प्रभाव बढ़ जायगा। इसलिए समाजवादियो का यह सम्मेलन न होसका। फिर भी मित्रराष्ट्रो की नैतिक और भौतिक सहायता के अभाव मे रूसी सेनाएँ लडती रही। जुलाई १९१७ मे इनकी सेना ने आक्रमण किया। परन्तु इसके बाद रूसियो की भयानक ढंग से हत्याएँ की गई।

इससे रूसी सेनाओ मे विद्रोह पैदा होगया और, ७ नवम्बर १९१७ को, उन्होने करेस्की की सरकार को उलट दिया तथा सोवियतों ने शासन-सत्ता पर अधिकार जमा लिया। बोलशेविको (साम्यवादियो) का बाहुल्य था। लेनिन इनके नेता थे। लेनिन ने जर्मनी के साथ, २ मार्च १९१८ को, ब्रेस्तलितास्क मे सन्धि करली। इस सन्धि की शर्तों द्वारा रूस को बहुत दबना पडा, किन्तु उथल-पुथल की दशा मे, इस सन्धि पर ही रूसियो ने सन्तोष माना।

रोज़नबर्ग, अलफ्रेड—जर्मन नात्सी दल का प्रमुख सिद्धान्त-निर्माता और विचारक; १८९४ मे पैदा हुआ; पिछले युद्ध मे रूसी सेना मे रहा, युद्ध के बाद जर्मनी वापस आया। नात्सी-आन्दोलन के प्रारम्भिक-काल में हिटलर का सहयोगी बना। उसने "बीसवी शताब्दि की गाथा' (The Myth of the Twentieth Century) नामक पुस्तक लिखी, जिसमे नात्सी सिद्धान्तो का विवेचन है। वह गाथा क्या है, यही कि 'नार्डिक' नस्ल सबसे आला है, राष्ट्रीयता सर्वोपरि सिद्धान्त है, और जर्मनी को समस्त

ससार पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। रोजनवर्ग के अनुसार आधुनिक इतिहास को दोषपूर्ण रूप से दुहराया जा रहा है। १७८६ की फ्रान्सीसी राजक्रान्ति मे वह यह दोष पाता है कि उसके द्वारा नार्डिक कुलीन वशों का ह्रास होकर निम्नकोटि के जन-समाज के हाथ में सत्ता आगई। ऐसे ही जन-समाज ने उदारतावाद को प्रश्रय दिया। यह उदारतावाद मार्क्सवाद के रूप में विकसित हुआ, जिसने रूस मे राजक्रान्ति कराई। वर्तमान जर्मनी को इन विचार-धाराओं का निराकरण करना चाहिये। चैक, पोल, रूसी तथा अन्य स्लाव जातियाँ निम्नकोटि की हैं, उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्त्व नहीं रहना चाहिये, उन सबको जर्मनी के ताबे होना चाहिये। रोज़नवर्ग ईसाइयत का भी विरोध करता है और, उसके स्थान मे, अपने रहस्यवाद की स्थापना चाहता है। उसने नात्सियों को गिरजाघरों का विरोधी बना दिया है। वह एक प्रसिद्ध जर्मन पत्र का प्रधान सम्पादक है। नात्सी दल में उसे सर्व्वोच्च पद प्राप्त है।

ल

लंका—भारत के दक्षिण मे एक द्वीप, जनसख्या ५५ लाख; इस समय ब्रिटिश उपनिवेश, किन्तु जिसे औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त नहीं है। रामायण-काल का प्रसिद्ध राजा रावण इसी देश का शासक था। उसी समय से भारत तथा लका का परस्पर सबध रहा है। परन्तु भारत और लका का आधुनिक सबध एक शताब्दी से है। इस देश को सिहल द्वीप भी कहा जाता है और यहाँ के निवासी सिंहलवासी कहलाते हैं। ईसा से पूर्व बगाल का राजकुमार विजय लंका गया और उसने वहाँ सिंहल वश की बुनियाद डाली। ईसा से २०० वर्ष पूर्व लका मे बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। १८वीं सदी मे अँगरेज़ों ने इस

देश पर अपना अधिकार जमाया । ६ वर्ष तक यह मदरास प्रान्त का एक अंग रहा । सन् १८०२ में यह अँगरेज़ो का उपनिवेश बन गया । इस द्वीप के वर्तमान अधिवासी कई जातियो के रक्त-सम्मिश्रण के परिणाम हैं । इसमे मूर, पुर्तगाली, अँगरेज़, डच, द्रविड़ तथा सिहली रहते है ।

इस द्वीप मे चाय तथा फल आदि बहुत पैदा होते हैं । यहाँ सस्ते मज़दूरो की कमी के कारण मालिको ने भारत के दक्षिणी प्रान्तो से यहाँ मजदूर बुलाये । क़रीब दस लाख भारतीय लंका मे बस गये और मजदूरी करने लगे । इनमे से अधिकांश चाय आदि के बग़ीचो मे मज़दूरी करने लगे और सिर्फ २॥ लाख सरकारी विभागो, बन्दरगाहो, म्यूनिसिपेलिटियो, स्कूलो तथा अस्पतालो मे नौकर होगये । भारतीयो ने अपने कडे परिश्रम से इसे 'पूर्व का स्वर्ग' बना दिया ।

सन् १६२६ और १६३० मे, ससारव्यापी आर्थिक-सकट के समय, सिंहल द्वीप वालो ने प्रवासी भारतीयो के साथ भेदभाव का वर्ताव शुरू कर दिया । वहाँ की सरकार ने भी बहुत-से ऐसे क़ानून बनाये जो प्रवासी भारतीयो के लिये हितघातक सिद्ध हुए । बग़ीचो मे काम करनेवाले भारतीय मज़दूरो को अधिकारो से वंचित कर दिया गया । उपद्रव तथा हडताले हुई । भारतीयो की दूकानो का बहिष्कार किया गया और भारतीय व्यापारियो के साथ अनुचित व्यवहार किया जाने लगा । सिहलवासियो को विशेष रिआयते दी गई । सरकारी विभागो मे काम करनेवाले दस हजार भारतीयों को भारत वापस भेज जाने की सरकार ने आज्ञा दे दी ।

लंका से प्रवासी भारतीयो को निकाले जाने की व्यवस्थापिका सभा मे क़ानून बनाने की तय्यारियाँ कीगई । तव गवर्नर को विवश होकर विरोधी दल को सावधान करना पडा । गवर्नर की इस कार्यवाही के विरोध स्वरूप सर वैरन जयतिलक ने व्यवस्थापिका सभा मे असन्तोपमूचक प्रस्ताव उपस्थित किया । प्रवासी भारतीयों को निकालने-सम्बन्धी 'आवास तथा रजिस्टरी मसविदा' ४ मार्च १६४१ को राज्य परिषद् मे उपस्थित किया गया और दो वाचन के बाद एक स्थायी समिति के सुपुर्द कर दिया गया । समिति के भारतीय सदस्यों ने इसका वहिष्कार कर दिया और योरपियनों ने भी मसविदे

से असन्तोष प्रकट किया। दिल्ली में समझौते की बातचीत चली, किन्तु अधूरी रही। सितम्बर १९४१ मे कोलम्बो मे फिर समझौता सम्मेलन हुआ। एक रिपोर्ट तय्यार हुई और दोनो ओर के प्रतिनिधियो के उस पर हस्ताक्षर हुए। किन्तु प्रवासी भारतीयों को इस "समझौते" पर आपत्ति रही। लंका मे उनका आवास अदालत द्वारा प्रमाणित किया जाना ज्यो-का-त्यों रहा; सरकारी नौकरियां मे उन पर प्रतिबन्ध नहीं हटे, जिन भारतीयों ने लंका में बस जाने का प्रमाण दे दिया हो उन्हे भी भूमि-सुधार क़ानून के लाभो से वंचित रहना, स्थायी निवासी होने का प्रमाणपत्र रखनेवालो के बच्चो की असन्तोष-जनक स्थिति, एक वर्ष से अधिक अनुपस्थित रहने में कठिनाइयाँ, मताधिकार की अनुचित कठोरता तथा भविष्य मे लंका जाकर बसने के सम्बन्ध मे लगायी गई लज्जाप्रद शर्तें, आदि। नवम्बर १९४१ मे भारतीय व्यवस्थापिका सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया, उससे लंका के भारतीयों को कुछ आश्वासन मिला। १ फरवरी १९४१ से बगीचो मे काम करनेवाले स्त्री-पुरुष-बच्चों की मज़दूरी कुछ बढ गई है, किन्तु दूसरी ओर मालिको ने लड़ाई का भत्ता बन्द कर दिया है। प्रसूति के समय स्त्री-मजदूरनियो को १॥ महीने की, कुछ निश्चित भत्ते सहित, छुट्टी की सुविधा कीगई है, मज़दूर संघों को यद्यपि स्वीकार किया गया है, किन्तु उन्हें पनपने नहीं दिया जाता।

भारतीयों की स्थिति मे कोई सन्तोषजनक परिवर्तन नही हुआ है। अप्रैल १९४२ मे जापान ने लंका पर भी हमले किये थे, जिनका करारा उत्तर दिया गया था। भारत सरकार लंका को चावल भेजकर सहायता कर रही है। अगस्त '४२ मे सर बैरन जयतिलक, इस सम्बन्ध मे, भारत आये थे। भारत सरकार की ओर से लंका मे एक ऐजेन्ट नियत है।

सन् १६३६ मे कांग्रेस ने पं० जवाहरलाल नेहरू को लंका मे समझौता कराने भेजा था, किन्तु इसका कोई सुफल नही निकला। इस समय लंका मे ६॥ लाख भारतीय मज़दूर हैं, तथा तीस हज़ार सिंहली हैं। मज़दूरों को वहाँ सिर्फ ।=)॥ रोज़ मज़दूरी मिलती है।

लक्जमबर्ग (की ग्रान्ड डची)—क्षेत्र० ६६६ वर्ग०; जन० ३,००,०००; जर्मनी, बेलजियम और फ्रान्स के मध्य मे एक छोटा-सा तटस्थ देश। १८६६ में यह जर्मन-राज्य से अलग कर दिया गया; १८६७ मे, लंदन-सन्धि के अनुसार, इसे तटस्थ बना दिया गया, और १६१४ मे फिर जर्मनो ने इस पर अधिकार कर लिया। सन् १६१८ मे, वर्साई की सन्धि के अनुसार, यह पुनः स्वाधीन बना दिया गया। यह देश सामरिक-विचार-दृष्टि से और लोहे के व्यवसाय के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण है। ४० लाख टन कच्चा लोहा तथा २० लाख टन ईसपात प्रति वर्ष यहाँ तैयार किया जाता है। २० फ़ीसदी जनता फ्रान्सीसी शेष ८० फ़ी० जर्मन भाषा बोलती है। १० मई १६४० को, हालैंड और बेलजियम के साथ, जर्मनी ने इस देश पर आक्रमण किया और यहाँ अपनी एक सरकार क़ायम करदी। देश की मालिक डचैज़ ने, जो अमरीका मे है और सरकार ने, जो कनाडा मे है, घोषणा की कि वह कभी जर्मन कठपुतली सरकार को स्वीकार न करेंगे।

लखनऊ-समझौता—सन् १६१५ के बम्बई-कांग्रेस-अधिवेशन मे एक प्रस्ताव द्वारा अ० भा० कांग्रेस को आदेश दिया गया कि अ० भा० मुसलिम लीग के साथ मिलकर समझौते का प्रयत्न करे। इस सम्मेलन के फल-स्वरूप एक योजना भारत के भावी शासन-विधान के संबंध मे बनाई गई, जो कांग्रेस लीग-योजना के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १६१६ में, लखनऊ-कांग्रेस ने, इस योजना को स्वीकार किया। इस योजना द्वारा प्रान्तीय धारा-सभाओं में मुसलमान सदस्यों के लिये पृथक् प्रतिनिधित्व को स्थान दिया गया और प्रत्येक प्रान्त में मुसलमान प्रतिनिधियों का अनुपात निम्न प्रकार निर्धारित किया गया:—

पंजाब ५० फीसदी; संयुक्त-प्रान्त ३० फ़ी०; बंगाल ४० फी०; बिहार-उड़ीसा २६ फ़ी०; मध्यप्रान्त १५ फ़ी०; मदरास १५ फी०; बम्बई ३३ फ़ी०।

केन्द्रिय धारासभा में, इसके अनुसार, मुसलिम प्रतिनिधित्व निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियो का तिहाई निर्धारित किया गया। मान्टेग्यू-चेम्सफर्ड शासन-योजना मे इसी अनुपात से मुसलमानो को पृथक् प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई।

सन् १६३२ मे रेमजे मैकडान्ल्ड ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' मे पृथक् प्रतिनिधित्व मुसलमानो के लिये सुरक्षित रखा, किन्तु अनुपात मे परिवर्तन कर दिया।

लन्दन-नौ-सन्धि—२५ मार्च १६३६ को, लन्दन मे ग्रेट-ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य अमरीका तथा फ्रान्स के बीच हुई सन्धि। इसका उद्देश्य नौ-सेना के शस्त्रीकरण मे कमी करना था। इटली ने पीछे इसमे शामिल होना स्वीकार कर लिया, किन्तु जापान ने शामिल होना मज़ूर नहीं किया। इस सन्धि मे निश्चय किया गया कि वजन और तय्यारी के लिहाज़ से ३५,००० टन से अधिक भारी जगी जहाज न बनाये जायँ और बनाते समय हस्ताक्षर-कर्ता राष्ट्र एक दूसरे को सूचित करदें।

यह संधि ३१ दिसम्बर १६४१ तक के लिये वैध मानी गई थी, किन्तु बीच मे यह धारा जोड़ दीगई कि यदि संसार के अन्य राष्ट्र नौसेना मे वृद्धि करें, जिससे सन्धिकर्त्ता राष्ट्रो को ख़तरा हो तो, इस सधि की शर्तें पहले भी भग हो सकेंगी। जब जापान ने अपनी जहाजी तय्यारी बताने से इनकार किया, और पता चला कि उसने ४०,००० टन के जहाज बनाने शुरू कर दिये हैं तब, २६ जून १६३८ को, इस सधि पर हस्ताक्षर करनेवालों ने ३५,००० टन से ४५,००० टन के जहाज़ बनाये जाने की घोषणा करदी।

लाजपतराय, पंजाब-केसरी लाला—जन्म २८ जनवरी सन् १८६५; सन् १८८० मे मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की, सन् १८८२ में एफ० ए० की तथा मुख्तारी की परीक्षा, सन् १८८३ मे, अपनी जन्मभूमि, जगरॉव मे, मुख़्तारी शुरू की; जगरॉव से रोहतक आगये। यहाँ आपने प्लीडरशिप पास की और सन् १८८६ मे हिसार आकर वकालत शुरू की। १८६२ ई० मे, इसी सिलसिले मे, लाहौर चले गये। यहीं से लालाजी का सार्वजनिक जीवन आरम्भ होता है। स्वर्गीय गुरुदत्त विद्यार्थी से, आप अपने विद्यार्थि-जीवन से ही, प्रभावित थे। लालाजी ने आर्य-समाज मे अग्रगण्य भाग लिया। पंजाब

शिक्षा-सघ की स्थापना की और कई हाई स्कूल खोले। डी० ए०-वी० हाईस्कूल (अब कालिज) की भारी सहायता की। सन् १८६६ तथा सन् १८६६ के उत्तरी भारत और राजपूताना के दुर्भिक्षो मे उन्होने अकाल-पीडित जनता की ऐसी सेवा की, जिसकी सराहना सरकार ने भी की। १८८८ मे पहली बार काग्रेस मे शामिल हुए और हिन्दुस्तानी मे भाषण दिया। १६०५ के बंग-भङ्ग से उत्पन्न जाग्रति उत्तर मे पजाब तक फैल गई थी। लालाजी इस समय आन्दोलन के नेता थे, सरदार अजीतसिह और श्री रामचन्द्र मनचन्दा आपके सहकारी थे। सन् १६०६ मे वह कांग्रेस के सभ्य-मण्डल के सदस्य बनाकर इगलैण्ड भेजे गए। वहॉ से आप अमरीका गये। अमरीका से वापस आने पर उन्हे, १६०७ मे, गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हे निर्वासन का दण्ड मिला और मण्डाले के क़िले मे रखा गया। कुछ महीनो के बाद उन्हे रिहा कर दिया गया। सन् १६०६ मे लालाजी ने पजाब हिन्दू महासभा की स्थापना की। १६११ के कांग्रेसी डेपुटेशन मे भी आप विलायत भेजे गये। सन् १६१२ मे अपने पिता की स्मृति में जगरॉव मे राधाकृष्ण हाईस्कूल की स्थापना की। सन् १६१२-१३ में, स्वर्गीय गोखले की अपील पर, दक्षिणी अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो की सहायतार्थ पंजाब से आपने २५,०००) भेजे। बाद को लालाजी पुनः स्वतः इंगलेण्ड गये और वहॉ भारत के सम्बन्ध में जनमत निर्माण किया। सन् १६१४ मे, भारत लौटने के लिये जब आपको पासपोर्ट न मिला तो अमरीका चले गये। आपने अमरीका मे 'यंग इंडिया,' 'पोलिटिकल फ़्यूचर आफ़ इंडिया,' 'आर्यसमाज,' 'सयुक्तराष्ट्र अमरीका' आदि कई उच्च कोटि की ॲगरेज़ी पुस्तकें लिखी। मार्च १६२० मे भारत लौटे। आते ही आपने लाहौर से 'वन्देमातरम्' नामक उच्च कोटि का उर्दू-दैनिक निकाला और तिलक राजनीति विद्यालय की स्थापना की। पीछे लोक-सेवक समिति की नींव डाली और उसका संचालन किया। यह संस्था स्थायी देशसेवक उत्पन्न करती है। यक्ष्मारोगियों के लिये एक अस्पताल भी आपने क़ायम किया। सन् १६२० मे कलकत्ता मे कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के सभापति चुने गये। तब लालाजी असहयोग के विरोधी थे, किन्तु नागपुर में उसके स्वीकार होते ही आप आन्दोलन में योग देने लगे। असहयोग

आन्दोलन मे भाग लिया और १८ मास की क़ैद तथा ५००) जुर्माने की सजा मिली। १६ अगस्त १६२२ को रिहा हुए। हिन्दू महासभा-आन्दोलन मे भाग लिया। सन् १६२५ मे हिन्दू महासभा के कलकत्ता अधिवेशन के आप सभापति चुने गए। सन् १६२४ मे स्वराज्य-दल मे शामिल हुए। प० मोतीलालजी के साथ मतभेद होजाने पर पीछे आप उससे पृथक् होगए। आपने मालवीयजी के साथ स्वतंत्र काग्रेस-दल का सगठन किया और केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य चुने गये। पीछे प० मोतीलाल नेहरू से उनका मेल होगया, और नेहरू कमिटी की रिपोर्ट की तय्यारी में भी लालाजी का सहयोग रहा। ३० अक्टूबर १६२८ को लाहौर मे साइमन कमीशन का आगमन हुआ। नगर मे १४४ धारा लगा दी गई। काग्रेस की ओर से, कमीशन के बहिष्कार के लिये, लालाजी के नेतृत्त्व में, प्रदर्शन तथा जुलूस का आयोजन किया गया। पुलिस ने जुलूस पर लाठी-वर्षा की। इसी समय, सबसे आगे होने के कारण, लालाजी की छाती पर एक अँगरेज पुलीसमेन की लाठियो की चोटें पड़ीं। शारीरिक और मानसिक दोनो रूप से लालाजी इन चोटो से आहत हुए। इन्हीके कारण, १७ नवम्बर १६२८ को, उनका स्वर्गवास होगया। मरने से कुछ पूर्व आपने कहा था कि "मुझ पर पड़ी हुई प्रत्येक चोट भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य-वाद के ताबूत (अर्थी) की कील साबित होगी।"

स्वर्गीय लालाजी ने देश की महती और सर्वतोमुखी सेवाएँ कीं; देश उन्हे अधिकाश राज-नीतिज्ञ के रूप मे जानता है, किन्तु साहित्य, शिक्षा, समाज-सुधार, अछूतोद्धार आदि क्षेत्रों मे भी उनकी सेवाये अमर रहेगी।
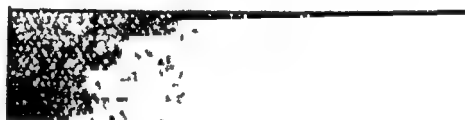
अनेक पुस्तकें ऍंगरेज़ी-उर्दू में उन्होंने लिखी हैं। आप जैसे ओजस्वी लेखक थे वैसे ही प्रभावशाली वक्ता भी। भारत-निर्माताओं में उनका प्रमुख स्थान है।

लायड जार्ज, राइट आनरेबल् डेविड—ब्रिटिश राजनीतिज्ञ तथा भूत-पूर्व प्रधान-मन्त्री, १७ जनवरी सन् १८६३ को जन्म हुआ, १८८४ में सोलिसिटर बने ; १८९० में पार्लमेंट के सदस्य चुने गये और तब से वह बराबर उसी जगह पर सदस्य हैं। १९०५-१९०८ तक व्यापार-बोर्ड के प्रधान, १९०८-१९१५ तक अर्थमंत्री; १९१५ में अस्त्र-शस्त्र-विभाग के मन्त्री और युद्ध-मंत्री रहे और १९१६ में प्रधान-मन्त्री हुए। १९२२ तक बराबर प्रधान मन्त्री रहे। विगत युद्ध में ब्रिटेन की विजय का बहुत अधिक श्रेय इन्हींको है। आप कहा करते थे, 'जर्मनी छोटी-मोटी लड़ाइयाँ जीतता है, मैं महायुद्ध विजेता हूँ।' आयर्लेन्ड के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समय, पहले इन्होंने खूब दमन किया, पीछे समझौता करना पड़ा। १९२२ में, राष्ट्रीय सरकार और लिबरल दल के पतन के समय, इनका भी पतन होगया। १९३१ में लायड जार्ज ने लिबरल दल का परित्याग करके स्वतन्त्र लिबरल दल खड़ा किया, किंतु सन् १९३५ में वह फिर लिबरल-दल में मिल गए। १९३७-'३८ में सरकार की सन्तोषीकरण-नीति की इन्होंने निन्दा की। १९३९ में वह कहने लगे कि लड़ाई जीतने के लिये इंगलैंड की कृषि की उन्नति करनी चाहिये। वहाँ के अन्य राजनीतिज्ञों ने इसे सफल युद्ध-प्रयत्न की आलोचना समझा। १९४० में उन्होंने चेम्बरलेन-सरकार के अपर्याप्त युद्ध-प्रयत्न की आलोचना की।

लार्ड-सभा—ब्रिटिश पार्लमेन्ट की दूसरी धारासभा, हाउस् ऑफ् लार्ड्स। इसमें कुल सदस्य ७४० हैं। पर किसी भी अधिवेशन में ५० से अधिक सदस्य शायद ही कभी उपस्थित होते हों। पहले इस सभा को कानून-

सभा द्वारा स्वीकृत मसविदों (बिलों) को नामज़ूर करने (Veto) का अधिकार था, किन्तु १९११ के पार्लमेंट क़ानून द्वारा इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। लार्ड सभा का प्रधान लार्ड चान्सलर होता है, जो सरकार का एक सदस्य होता है। मन्त्रि-मण्डल में तीन लार्ड सदस्यों का रहना आवश्यक है। लार्ड सभा ब्रिटेन की सबसे बड़ी क़ानूनी अदालत भी है।

लाल सेना—रूस के सोवियत संघ की सेना। सन् १९१७ की रूसी राज्य-क्रान्ति के समय इसका निर्माण हुआ। लाल सेना यह इसलिये कहलाई क्योंकि इसकी पताका लाल है। आज तक, सरकारी तौर पर भी, रूस के किसान-मजदूरों की यह सेना इसी नाम से प्रसिद्ध है। इसमें १ से २ करोड़ तक रिजर्व सैनिक हैं। युद्ध से पूर्व इस सेना में ७,००० जंगी वायुयान थे और ५,००० से अधिक टैंक। अब तो यह सेना आधुनिक रूप में बहुत अधिक यान्त्रिक बनादी गई है, और युद्धायुध भी इसके बहुत बढ गये हैं।

लावल, पियरे—फ्रान्सीसी राजनीतिज्ञ, १८८३ में पैदा हुआ; पेरिस में वकालत की, समाजवादी दल की ओर से पार्लमेन्ट का सदस्य बना; पिछले युद्ध के बाद कुछ दिनों के लिये साम्यवादी बना, फिर दक्षिणपन्थी बन गया, १९२५ से १९३५ तक बराबर किसी-न-किसी मन्त्रि-मण्डल में रहा। १९३५-३६ में प्रधान मन्त्री और वैदेशिक मन्त्री रहा। मास्को गया और स्तालिन से भेंट की। उसने देश की राजनीति में 'पापुलर फ्रन्ट' का विरोध किया और १९३७-'३८ के बीच फासिस्त कार्यवाहियों में उसका हाथ पाया गया। वह नात्सियों से लड़ना नहीं चाहता था, फलतः उसकी नीति के कारण, फ्रान्स का पतन हुआ। १९४० में वह वैदेशिक मन्त्री बना। वह नात्सियों को आश्रय देता था और उनके हाथ में फ्रान्सीसी बेड़ा सौंप देना चाहता था। १४ दिसम्बर १९४० को पेतॉ ने उसे हिरासत में लेलिया और मोशिये

लावल जर्मन राजदूत ओ० ऐबेज़ के हस्तक्षेप से रिहा हुआ। जुलाई १९४१ में एक फ्रान्सीसी देशभक्त ने गोली चलाकर उसे घायल कर दिया।

लितविनोफ्, मैक्सिम—सोवियत रूस का राजनीतिज्ञ, नस्ल का यहूदी, सन् १९०५ से रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन मे शामिल रहा; १९३० मे सोवियत रूस का वैदेशिक मत्री बना, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे, सोवियत सघ के प्रतिनिधि की हैसियत से, भाग लेता रहा, और १९३४ के बाद से राष्ट्रसघ मे सोवियत का प्रतिनिधि था। ससार की प्रजातान्त्रिक सत्ताओ के साथ सोवियत के सहयोग का समर्थक था। मार्च १९३९ मे जब सोवियत रूस ने हिटलर से समझौते की वार्त्ता आरम्भ की, तो लितविनोफ को पद के दायित्व से मुक्ति देदी गई। मार्च १९४१ मे जब सोवियत-जर्मन मतभेद बढ रहा था तो लितविनोफ् सोवियत कम्युनिस्ट दल की परराष्ट्र समिति का प्रधान नियत किया गया और, नवम्बर १९४१ मे, वाशिगटन मे सोवियत का राजदूत और परराष्ट्र विभाग का उप-कमिसार नियत किया गया।

लिथुआनिया—क्षेत्र० २१,५०० वर्ग०; जन० २५ लाख। पहले यह रूस का बाल्टिक-देशीय प्रान्त था, जो सन् १९१८ मे स्वाधीन हुआ। इसकी राजधानी विलना तथा मैमल प्रदेश के सम्बन्ध मे, लिथुआनिया का पोलैंड तथा जर्मनी से, १९३९ तक, झगडा रहा। १९२६ में अधिनायक-तन्त्र हटकर यहाँ किसान-डिक्टेटरशिप कायम हुई। मार्च १९३९ मे मैमल प्रदेश जर्मनी ने ले लिया तथा सितम्बर १९३९ मे विलना जिला सोवियत रूस ने। यह कृषि-प्रधान देश है। अक्टूबर १९३९ मे रूस ने लिथुआनिया को अपना संरक्षित राज्य बना लिया। सोवियत सेना ने मुल्क पर क़ब्ज़ा कर लिया और, अगस्त १९४० मे, लिथुआनिया सोवियत सघ मे मिला लिया गया। जुलाई १९४१ मे जर्मनी ने इस देश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

लिनलिथगो, विक्टर अलेक्जेंडर जॉन होप, मारक्विस आफ्—जन्म २४ सितम्बर सन् १८८७, अप्रैल १६३६ से भारत के वाइसराय के पद पर नियुक्त हैं, (१६४१ में आपका कार्य-काल समाप्त होगया, किन्तु एक वर्ष के लिये अवधि बढ़ा दी गई ।), कृषि के विशेषज्ञ हैं, सन् १६२६-२८ में शाही भारतीय कृषि-कमीशन के अध्यक्ष थे। आपको विज्ञान से भी रुचि है और इस विषय का आपको परिपूर्ण ज्ञान है। सन् १६३४ में आपको मेडिकल रिचर्स कौन्सिल का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसी वर्ष आपको इम्पीरियल कालिज आफ् साइन्स एन्ड टेक्नोलाजी की कार्य-कारिणी परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। सन् १६३४ में आपकी अध्यक्षता में ज्वाइंट पार्लमेंटरी कमिटी ने भारतीय शासन-सुधार मसविदा (इंडिया बिल) पर अपनी रिपोर्ट तैयार की, जिसके आधार पर भारत के लिए सन् १६३५ का नया शासन-विधान बनाया गया। सन् १६३८ में आपने भारतीय पशु-प्रदर्शनी का आयोजन किया। तब से यह मेला प्रतिवर्ष, फरवरी मास में, नई देहली में होता है। १६४२ में, एक वर्ष के लिए, फिर अवधि बढ़ाई गई। अप्रैल '४३से, ६ मास के लिये, उनके कार्यकाल की अवधि और बढ़ा दीगई है। लार्ड लिनलिथगो को गान्धी-जी का व्यक्तिगत मित्र बताया जाता है। लार्ड कर्जन के बाद आपही इतने लम्बे समय तक रहनेवाले भारतीय वाइसराय हैं।

लुफ्टवैफ्—जर्मनी की आकाश-सेना।

लेटविया—बाल्टिक राष्ट्र-समूह का एक रूसी प्रान्त, जो १६१७ में स्वाधीन राज बना, क्षेत्र० २५,००० वर्ग०, जन० २०,००,०००, राजधानी रीगा, प्रारम्भिक-प्रजातन्त्रवादी शासन-विधान, मई १६३४ में, स्थगित कर दिया गया और समस्त राजनीतिक दल भंग कर दिये गये। तब से राष्ट्रपति के० उलमा-निस अधिनायक-तन्त्र-प्रणाली के अनुसार शासन कर रहा है। साम्यवाद-विरोधी

पुरातन नीति के अतिरिक्त वर्तमान युद्ध मे यह देश तटस्थ था। इस देश में १२ फीसदी रूसी और ३ फी० जर्मन है। अक्टूबर १६३६ मे रूस ने इसे अपना सरक्षित राज्य बना लिया, सोवियत सेना ने देश पर पूर्ण अधिकार कर लिया और, अगस्त १६४०, मे इसे सोवियत सघ मे शामिल कर लिया गया। अल्पसख्यक जर्मन, हिटलर की अनुमति से, जर्मनी भेज दिये गये। इस देश के कुछ हिस्से मे बर्फ नही पडती, इसलिये यह रूस के लिये एक आवश्यक देश था। जुलाई सन् १६४१ मे जर्मनी ने लेटविया पर अधिकार कर लिया।

लेनिन, व्लाडीमीर इलियिच—साम्यवाद का प्रवर्त्तक, रूसी राज्य-क्रान्ति का नेता; २२ अप्रैल १८७० को पैदा हुआ, इसके पिता कालिज मे अध्यापक थे, वकालत पास की और मज़दूर आन्दोलन मे शामिल होगया, उपनाम लेनिन रखा, असल नाम उलियानाफ् था। लेनिन पक्का मार्क्सवादी था। रूसी समाजवादी-दल मे उसने क्रान्तिवादी, कभी समझौता न करने-वाला, पक्ष बनाया। १६०३ में इसका दल, 'बोलशेविक' नाम से, नरम समाजवादी दल से अलग होगया। सन् १६०७ से १६१७ तक लेनिन, निर्वासन की अवस्था मे, पैरिस, वीयना और ज्यूरिच आदि मे रहता हुआ समाजवादी समारोहो मे सदैव क्रान्ति का सन्देश देता रहा।

१६१४ मे, पिछला महायुद्ध शुरू होने पर, उसने कहा कि समाजवादियो को इसमें मदद न देनी चाहिये। मार्च १६१७ मे, रूस की क्रान्ति के बाद, लेनिन स्वदेश लौटना चाहता था ताकि क्रान्ति मे सक्रिय भाग लेसके। जर्मन सैनिक अधिकारियों ने रूसी दुश्मन से पीछा छुडाने के इस मौके को ग़नीमत समझा और उन्होंने लेनिन को एक मुहरबन्द गाडी मे बिठाकर जर्मनी मे होकर रूस भेज दिया। अप्रैल १६१७ को वह पीटर्सबर्ग आया और बोलशेविक दल का नेतृत्व ग्रहण किया। ट्रात्स्की के साथ उसने जुलाई मे क्रान्ति का पहला संगठन किया, किन्तु इसमें सफलता न मिली। दूसरी बार, ७ नवम्बर १६१७ (उस समय की रूसी जंत्रियों के अनुसार २५ अक्टूबर १६१७) को फिर विद्रोह का संगठन किया। इस बार सफलता मिली और नरमदली करेन्स्की सरकार को उखाड फेका गया। लेनिन रूसी सरकार का, जिसका नाम उस वक्त 'कौन्सिल आफ् दि पीपल्स कमिसार' पड़ा था, प्रेसिडेन्ट बना। मज़दूरों तथा सैनिको की सोवियतों

(पचायतो, कौन्सिलो) के हाथ मे मज़दूरों का अधिनायक-तन्त्र आगया। उस समय रूस मे सिर्फ १४ लाख औद्योगिक मजदूर थे। रूस मे गृह-युद्ध आरभ होगया, इसलिये लेनिन ने, जैसे भी हो तैसे, जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ सधि करने का आयोजन किया, ताकि निश्चिन्त होकर देश के सघर्ष को सँभाल सके। गृह-युद्ध १९२१ तक चला। इसमे बोल्शेविको की विजय हुई, जिनका इस समय साम्यवादी (कम्युनिस्ट) नाम प्रचलित होगया था। नरम समाज-वादियो से मोर्चा लेने के लिये लेनिन ने तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सघ (थर्ड इन्टर-नेशनल) की स्थापना की। यह विशुद्ध साम्यवादियों की सस्था है। क्रान्ति-कारी गृह-युद्ध मे सफलता प्राप्त करने के बाद लेनिन ने 'नवीन आर्थिक नीति' का आश्रय लिया। इस नीति के अनुसार उसने रूस में देशी और विदेशी पूँजीपतियो को अवसर दिया कि वह एक सीमा तक अपना मुनाफा रखकर रूस के नष्ट-भ्रष्ट उद्योग-व्यवसाय और छोटे धन्धो को तरक्की दे और इस प्रकार देश की बिगडी हुई सामाजिक स्थिति एक समतल पर आजाय। सन् १९२७ मे सोवियत रूस ने इस नीति का अन्त करके शुद्ध समाजवादी पच-वर्षीय योजना को एतदर्थ चालू किया। १९२२ मे बोल्शेविक-विरोधी दल की एक महिला ने लेनिन पर गोली चलाई, जिससे वह घायल होगया। लेनिन की जीवन-रक्षा तो तब होगई, किन्तु उसके बाद उसका स्वास्थ्य गिरा हुआ रहा। अधिक श्रम के कारण उसका स्वास्थ्य ख़राब होता गया, और सन् १९२३ मे वह रोग-शय्या पर पड गया और २१ जनवरी १९२४ को उसका प्राणान्त होगया। लेनिन के शरीर को मसाले आदि से सुरक्षित रखा गया है और वह मास्को के एक प्रदर्शन-भवन मे आज भी सुरक्षित है। वर्ष मे एक बार समस्त रूसी जनता उसके मृत शरीर के दर्शन कर क्रान्ति की स्मृति को नवचेतना प्रदान करती है। लेनिन की स्मृति मे पीत्रोग्राद का नाम बदल कर लेनिनग्राद रखा गया है। लेनिन का लिखा 'इम्पीरियलिज्म' नामक ग्रन्थ विश्व-विख्यात है। आचार्य नरेन्द्रदेव ने 'साम्राज्यवाद' नाम से इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है।

लेनिन के सिद्धान्त—पूँजीवाद और उसके पापो के सम्बन्ध मे लेनिन के सिद्धान्त मार्क्स जैसे हैं, किन्तु लेनिन के युग मे उनमे और विकास हुआ है।

पूँजीवाद, अपने प्राथमिक युग मे, छोटे-छोटे उत्पादको, ज़मीदारो, महाजनो और सूदख़ोरो मे पनपता है। उसके उत्तरकालीन विकास-युग मे, बडे पैमाने पर उत्पादन करनेवाले, राजे-रईस, बडे बेङ्कर पूर्वोक्त लघु पूँजीपतियो को आत्म-सात कर जाते हैं। यह बडे पूँजीपति, वर्तमान समाज मे, राज्य या शासन-सस्था के एक अन्योन्याश्रित अङ्ग बन गये है इसलिये कि, राज्य के सहयोग से, उन्हे अपने माल की खपत और व्यापार फैलाने के लिये, देश-विदेश की मडियाँ उनके हाथ मे आजाती हैं और वहाँ का कच्चा माल भी उन्हे मिल जाता है। इन्ही बडे पूँजीपतियो की स्वार्थ-रक्षा के लिये अनेक साम्राज्यवादी देशो मे पारस्परिक सघर्ष और युद्ध होते है। अतएव साम्राज्यवाद पूँजीवाद का ही एक पाप है।

श्रमजीवियो मे पूँजीवाद दो वर्ग उत्पन्न करता है। बुद्धिजीवी श्रमजीवियो को अधिक पारिश्रमिक या वेतन देकर उनमे श्रेष्ठता अथवा सम्पन्नता के भाव की वह सृष्टि करता है। बड़ी तनख़ाहे पानेवाले यह पढे-लिखे मज़दूर क्रान्ति-वादी मनोभावना से विमुख होकर सुधारवाद का प्रचार करने लगते हैं। ग़रीब कोटि के मज़दूरो को वह भ्रमित करने का प्रयास करते हैं, किन्तु यह समुदाय सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करने पर स्थिर रहता है।

मार्क्स की भाँति लेनिन राज्य को, हुकूमत करनेवाले समुदाय का, एक औज़ार मानता है। उसकी सम्मति मे पार्लमेन्टरी-शासन प्रणाली पूँजीवादी समुदाय का एक अदृष्ट अधिनायक (डिक्टेटर) तन्त्र है।

साम्राज्यवाद पूँजीवाद के अप्रकट विरोधाभासो की वृद्धि करता है, जिससे नितनए सघर्ष और युद्ध चलते रहते हैं। साम्राज्य या राज्य सामन्तो और पूँजीपतियो के आश्रय पर खडे हैं। इन सब पापो का निराकरण किसान-मजदूरो की क्रान्ति से होगा जो इनके स्थान पर, समाजवादी संसार की सृष्टि करके पार्लमेन्टरी के स्थान पर किसान-मजदूरो की पंचायती सरकार क़ायम करेगे। समाज मे से जब वर्ग-भेद मिट जायगा,
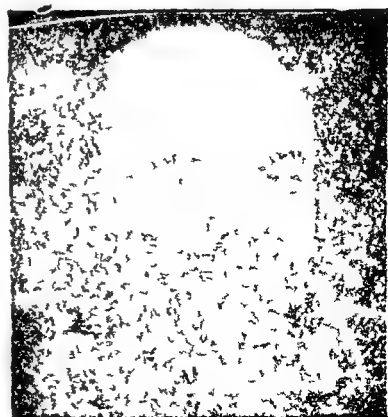
सबको सामाजिक हित की प्रेरणा होगी, तब स्वतः ही समाज मे शान्ति और सुख की वृद्धि होकर राज्यहीन किसान-मजदूर कम्युनिस्ट राज्य की स्थापना होजायगी।

लोकार्नो की सन्धि—फ्रान्स, ग्रेटब्रिटेन, जर्मनी, इटली और बेलजियम के बीच, १६ नवम्बर १६२५ को, हुई सन्धि। इस सन्धि के अनुसार जर्मनी, फ्रान्स तथा बेलजियम ने यह स्वीकार किया कि वे अपनी वर्त्तमान पारस्परिक सीमाओ की रक्षा करेंगे तथा एक दूसरे के विरुद्ध बल-प्रयोग न करेंगे। राइनलैण्ड से जर्मनी ने अपनी फौजे हटा लेना स्वीकार किया। ब्रिटेन तथा इटली ने इस समझौते के पालन के लिये पारस्परिक सहायता करने का वचन दिया। सन् १६३६ मे हिटलर ने राइनलैण्ड में फिर फौजें भेजकर इस सधि को भग कर दिया, और ब्रिटेन, फ्रान्स और बेलजियम ने, पारस्परिक सुरक्षा के लिये, नया समझौता कर लिया।

लोहिया, डा० राममनोहर—पीएच० डी०; भारत के कांग्रेस समाजवादी विचारक और नेता, वैदेशिक समस्याओ के मर्मज्ञ, जन्म २३ मार्च १६१०, एम० ए० उत्तीर्ण करने के बाद देश-सेवा मे लग पडे। अखिल-भारतीय कांग्रेस कमिटी के वैदेशिक विभाग के मत्री रहे। अ०-भा० कांग्रेस-समाजवादी दल की कार्य-समिति के सदस्य हैं। डा० लोहिया ने कई पुस्तकें लिखी हैं। भारत-रक्षा-कानून के अन्तर्गत सन् १६४० से राजबन्दी हैं। १६४२ मे साम्यवादियो को छोडा गया, समाजवादियो को नही, फलतः डा० लोहिया अभी जेल मे हैं।

व

वज़ीरिस्तान—अफ़ग़ानिस्तान तथा सीमा-प्रान्त के मध्य का प्रदेश जहाँ मुसलिम क़बीले रहते हैं। ॲगरेज़ इस प्रदेश मे ड्यूरेड-पक्ति तक पहुँच गये हैं। इस प्रदेश म सडके निकाली गई हैं, क़िले बनाये गये हैं और क़बीलो को मदद दी गई है। नवम्बर १९३६ मे वज़ीरिस्तान मे युद्ध आरम्भ होगया। युद्ध ईपी के फ़क़ीर के नेतृत्त्व मे आरम्भ हुआ। सन् १९३७-३८ मे वज़ीरिस्तान मे अशान्ति तथा असन्तोष रहा। क़बीलो ने हिन्दू और ॲगरेज़ दोनो के विरुद्ध जहाद् छेड दिया। सरकार की ओर से क़बीलो के गॉवो पर बम-वर्षा कीगई। सरकार ने फ़क़ीर को पकडने का बडा प्रयत्न किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। दिसम्बर १९३८ मे यह युद्ध समाप्त होगया। सन् १९३७ तक इस युद्ध मे सरकार के २३ लाख पौंड व्यय हुए। यह क़बीले बहुधा अशान्ति उत्पन्न करते रहते हैं। अफ़ग़ान सरकार और ब्रिटिश सरकार दोनो मे से एक का भी नियन्त्रण यह नहीं मानते।

वफ़्द—अरबी भाषा का शब्द, अर्थ सभ्यमण्डल (डेपुटेशन), १३ नवम्बर १९१८ को, अपने देश, मिस्र, के लिये स्वाधीनता की मॉग रखने के लिये, तीन सदस्यों का एक सभ्यमण्डल, स्वर्गीय मिस्री नेता सआदज़ ग़ग़ुल पाशा के नेतृत्त्व मे, बरतानी हाई कमिश्नर से मिला। १९२३ के चुनाव में ज़ग़लुल पाशा के दल की विजय हुई, फलतः वह प्रधान मन्त्री बने और १९२४ में उन्होंने वफ़्द दल की स्थापना की। १९२७ मे ज़ग़लुल की मृत्यु होगई, और उनके सहकारी नहास पाशा दल के नेता बने, जो अनेक बार प्रधान मन्त्री रहे और आजकल भी मिस्री-सरकार के वज़ीरे आज़म हैं। १९३८ में कुछ कार्यकर्त्ता वफ़्द दल से अलग होगये और 'सआदी' नाम से उन्होंने दल बनाया। वफ़्द और सआदी दोनो ही अपने-अपने दल का प्रबल नेतृत्त्व

बताते हैं। सम्राटियों के पार्लमेन्ट मे सदस्य अधिक हैं, किन्तु जनता पर वफ्द का ही प्रभाव है।

वर्साई की सन्धि—१६१४-१८ के विश्व-युद्ध की समाप्ति पर यह संधि मित्र-राष्ट्रों (Allied and Associated Powers) तथा जर्मनी के मध्य, २८ जून १६१६ को, हुई। इस संधि का प्रथम अंश राष्ट्रसंघ के संगठन के विषय में है और उत्तरार्द्ध मे जो निश्चय किये गये हैं, उनमें मुख्य इस प्रकार हैं—जर्मनी अल्सेस-लारेन फ्रान्स को, यूपेन-मलमेडी बेलजियम को, पोज़ेन तथा कोरीडर पोलेण्ड को, मेमल लिथुआनिया को, उत्तरी श्लेस्विग (जनमत लेने के बाद) डेनमार्क को, पूर्वी अपर साइलीशिया (जनमत लेने के बाद) पोलेण्ड को, इलुचिन चैकोस्लोवाकिया को देदेगा; दांजिग पर से अपना प्रभुत्व हटा लेगा; आस्ट्रिया से अपना सबंध स्थापित न करेगा; जर्मनी खुद निःशस्त्र होजायगा, सार्वजनिक सैनिक-सेवा को त्याग देगा; वह एक लाख संख्या की छोटी-सी सेना और छोटी-सी नौ-सेना रख सकेगा, लड़ाकू हवाई जहाज, डुबकनी कश्तियॉं, जंगी तोपख़ाने और टैंक न रख सकेगा, हथियार बनाने के कारख़ानों को बरबाद कर देगा; राइनलैण्ड पर १५ वर्षों तक मित्रराष्ट्रों का अधिकार रहेगा, सार प्रदेश अन्तर्राष्ट्रीय-समिति के शासन के अधीन रहेगा तथा १६३५ मे, जनमत लिये जाने के उपरान्त, उसका भविष्य निश्चित किया जायगा, जर्मन नदियों पर अन्तर्राष्ट्रीय नियत्रण रहेगा, जर्मन उपनिवेशों को, राष्ट्रसंघ के शासनादेश के अधीन, मित्र-राष्ट्र आपस मे बॉंट लेंगे, जर्मनी पूर्ण रूप से युद्ध के अपराध को स्वीकार करेगा और एतदर्थ क्षतिपूर्ति देगा, जिसकी रकम बाद मे तय की जायगी। इनके अलावा कुछ धारायें और थीं। क्षतिपूर्ति को क्रमशः कम कर दिया गया और १६३२ मे वह बिलकुल उड़ा दीगई; राइनलैन्ड भी, वक्त से पहले, खाली कर दिया गया। आपस की बातचीत द्वारा यह बातें तय हुई थीं और अब हिटलर ने पूरे सन्धि-पत्र को ही फाड़ फेंका है।

वल्लभभाई पटेल, सरदार—भारतीय राष्ट्रीय महासभा के नेता, कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य, जन्मतिथि (स्वयं सरदार को भी ज्ञात नहीं), सन् १८७६ ई०, नडियाद और बड़ौदा मे प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के
१८ खेड़ा के हाईस्कूल से मेट्रिक किया और उसके बाद मुख़्तारी पास की।

गोधरा मे मुख़्तारी शुरू की। यहीं आपकी पत्नी प्लेग-पीड़ित हुई और बम्बई मे उनका देहान्त होगया। बैरिस्टर बननेकी आपकी प्रबल इच्छा थी। मुख़्तारी चमक निकली थी, आपने कुछ और रुपये का प्रबन्ध किया और विलायत गये। वहाँ आपने अथक परिश्रम किया, फलतः आपकी फीस माफ़ होगई और ५० पौण्ड की वृत्ति मिली। आपसे प्रभावित होकर न्यायाधीश स्काट ने कहा कि वल्लभभाई एक नामी बैरिस्टर बनेगा।

१९१६ मे विलायत से लौट कर अहमदाबाद मे बैरिस्टरी शुरू की। इसी वर्ष आप प्रथम गुजरात प्रान्तीय सम्मेलन के मन्त्री चुने गये। १९१७-१८ मे गुजरात के खेडा जिले की फ़सले मारी गई। किसानो ने गुहार की कि लगान मुलतवी कर दिया जाय। उनकी सुनवाई नही हुई। आपने अपनी प्रेक्टिस स्थगित कर दी, खेडा मे कर-बन्दी सत्याग्रह का सगठन किया और किसानो की विजय हुई। इससे पूर्व गुजरात की देहात मे प्रचलित वेगार की प्रथा के विरुद्ध भी आपने किसानो की सहायता की। १९१९ के रौलट क़ानून सत्याग्रह मे आपने बहुत काम किया। १९२३ में, असहयोग के बाद, नागपुर-झण्डा-सत्याग्रह मे, सेठ जमुनालाल बजाज आदि के जेल भेज दिये जाने पर, आपने नेतृत्त्व सॅभाला और झन्डा-सत्याग्रह मे सफलता प्राप्त की। असहयोग का व्यापक प्रयोग बारदोली मे होने वाला था, वल्लभभाई ने ही उस क्षेत्र को तब एतदर्थ तय्यार किया। गुजरात की बोरसद तहसील मे, डाकुओं के उत्पात के कारण, देहातो पर भारी ताजीरी पुलीस टैक्स लगाया गया। पुलीस की कारस्तानियो के कारण देहातियों की यह आपत्ति और भी बढी। सरदार ने पुलीस की पोल खोली, जनता को सत्याग्रह के लिये सगठित किया, फलतः ताजीरी टैक्स उठा लिया गया। १९२२ मे आपने राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था, गुजरात विद्यापीठ, की स्थापना की और उसके सचालन के लिये १० लाख की निधि इकट्ठी की। १९२५ की बाढ से गुजरात में हाहाकार मचा गया। बाढ-पीडितों की सहायतार्थ आपने जो कुछ किया, सरकार के अर्थ-सचिव तक ने उसकी सराहना की। आपकी सबसे महान् कृति १९२८ का बारदोली सत्याग्रह है जिसमें, अनेक विकट परीक्षाओं के बाद, अन्त मे किसानों की विजय हुई। इसी विजय के

उपलक्ष मे आपको 'सरदार' की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् १६३१ के तूफानी युग मे आपको कराची कांग्रेस का प्रधान बनाया गया।

गान्धीजी के गोलमेज कान्फरेन्स से वापस लौटते ही फिर दमन चल पड़ा। सरदार वल्लभभाई पटेल ने गुजरात का दौरा करके किसानो का सगठन किया। दमन और अत्याचार के कारण गुजरात के किसान बडोदा आदि रियासतों मे हिजरत कर गये। सरदार इन दिनो, एक साल के भीतर-तीन बार गिरफ्तार किये गये। स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण, सन् १६३४ मे, आपको रिहा किया गया। इसके बाद ही कांग्रेस पार्लमेन्टरी बोर्ड का भार आप पर डाल दिया गया। आपने चुनावो को सफल बनाया और आठ प्रान्तो के कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो का नियन्त्रण किया। आप बडे कठोर अनुशासन-शील सेनापति हैं, इसलिये पार्लमेन्टरी बोर्ड के युग मे आपने कडे हाथ से कांग्रेस की आन्तरिक शुद्धि की। गान्धीजी, देश का भार उठाते हुए भी, बड़े हँसमुख और विनोद-प्रिय हैं। किन्तु सरदार को आजतक किसी ने मुसकाते नही देखा। सरदार विरोधी को क्षमा करना जानते ही नही, भले ही वह सगा भाई हो। अगस्त १६४२ मे आप भी पकड लिये गये हैं।

वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद्—सन् १६१६ के भारतीय शासन विधान के अनुसार आज भी भारत की केन्द्रिय सरकार का सचालन होरहा है, यद्यपि अप्रैल सन् १६३७ से भारत के प्रान्तो मे, सन् १६३५ के गवर्नमेंट आफ् इन्डिया ऐक्ट के अनुसार, प्रान्तीय विधान स्थापित होकर निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा शासन-सचालन आरम्भ हुआ, किन्तु नवम्बर १६३६ से सयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बम्बई, मदरास, बिहार, उडीसा, सीमाप्रान्त तथा आसाम मे, कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डलो के त्यागपत्र दे देने से, वैधानिक-सकट उपस्थित होगया है। इन प्रान्तो मे तब से गवर्नरी शासन चालू है।

वाइसराय की कार्यकारिणी-परिषद् (Executive Council) मे

आरम्भ से छै-सात सदस्य नियुक्त होते आये हैं। इनमे आधे आई० सी० एस० योरपियन और तीन या चार ग़ैर-सरकारी भारतीय सदस्य होते रहे हैं, किन्तु उन्हे कभी अर्थ-विभाग, सेना-विभाग तथा गृह-विभाग जैसे महत्वपूर्ण विभाग नही सोपे गए।

वाइसराय इस परिषद् का अध्यक्ष होता है। राजनीतिक विभाग तथा परराष्ट्र-विभाग उसके अधीन रहते हैं। भारत का प्रधान सेनाध्यक्ष भी इस परिषद् का एक सदस्य होता है।

यह परिषद् वाइसराय के शासन-सूत्र मे सहयोग देने के लिये है। इस परिषद् की तुलना मन्त्रि-मण्डल से नही की जा सकती। इसके सदस्य केन्द्रिय धारा-सभा के प्रति नही प्रत्युत् वाइसराय के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है। प्रत्येक सदस्य का वेतन प्रायः ५५००) मासिक और भत्ता अलग। सदस्य को एक सुन्दर बँगला, मोटर तथा स्टाफ भी मिलता है।

जब युद्ध के कारण केन्द्रीय सरकार का कार्य अधिक बढा तथा वैधानिक संकट से उत्पन्न स्थिति के शमन के लिये भी, पहली बार परिषद् मे, जुलाई १६४१ मे विस्तार किया गया और सदस्यो की सख्या सात से बारह करदी गई। पॉच नये पद बनाये गये और उनका भार भारतीयो को सौंपा गया। एक साल बाद, जुलाई १६४२ मे, कार्यकारिणी का पुनः विस्तार किया गया, और तीन नये सदस्य और बढ़ा कर उनकी सख्या पन्द्रह कर दीगई।

१६३६ मे, युद्ध आरम्भ होने के समय, वाइसराय की कार्यकारिणी मे नीचे लिखे सात सदस्य थेः—

(१) हिज़ ऐक्सिलेन्सी जनरल (सन् '४२ के अन्त मे फील्ड मार्शल) सर आर्चीबाल्ड पर्सीवल, वेवल प्रधान-सेनाध्यक्ष, (रक्षा-विभाग) सर्वमाननीय (२) नलिनीरंजन सरकार (शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमिविभाग); (३) सर ऐन्ड्रू क्लो (यातायात-विभाग); (४) सर हुरमसजी पी० मोदी (रसद-विभाग), (५) सर रेजीनाल्ड मैक्सवैल (स्वराष्ट्र (होम)-विभाग); (६) दीवान बहादुर सर ए० रामस्वामी मुदालियर (व्यापार-विभाग) और (७) सर जेरेमी रेज़मन (राजस्व-विभाग)। इनके अलावा नीचे लिखे पॉच सदस्य और उनके लिये नये विभाग, जुलाई १६४१ मे, बढाये गयेः—

(८) सर्वमाननीय—सर सय्यद सुल्तान अहमद (क़ानून-विभाग), (९) महामाननीय सर अकबर हैदरी (सूचना और प्रचार विभाग); (१०) मा० मलिक सर फीरोज़ख़ाँ नून (मजदूर-विभाग), (११) मा० श्री एम० एस० अणे (प्रवासी भारतीय-विभाग), (१२) मा० डाक्टर ई० राघवेन्द्र राव (नागरिकरक्षा-विभाग) ।

इन बारह सदस्यो मे से महामाननीय सर अकबर हैदरी और माननीय डा० ई० राघवेन्द्र राव की मृत्यु होजाने और माननीय सर ऐन्ड्रू क्लो के आसाम का गवर्नर नियुक्त होजाने के कारण इनके रिक्त स्थानो पर क्रमशः सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर, सर जे० पी० श्रीवास्तव और सर ई० सी० बैन्थल, उत्तराधिकारी नियुक्त किये गये। जुलाई १९४२ में कार्यकारिणी के विभागो मे रद्दोबदल कीगई और इस कारण तीन नये सदस्य और बढाये गये। नई व्यवस्था के अनुसार प्रधान सेनाध्यक्ष का विभाग युद्ध-विभाग बना दिया गया और रक्षा-विभाग की नये सिरे से रचना की गई । इस पद पर मलिक सर फीरोज ख़ॉ नून नियुक्त किये गये और उनके रिक्त स्थान की पूर्ति डा० बी० आर० अम्बेदकर की नियुक्ति द्वारा की गई। सर राम-स्वामी मुदालियर के युद्ध-मत्रिमडल और प्रशान्त युद्ध-परिषद् मे भारत के प्रतिनिधि मनोनीत होकर लन्दन चले जाने पर (जहॉ रहते समय वह वाइस-राय की कार्यकारिणी के सदस्य बने रहेगे) मा० श्री न० र० सरकार उत्तरा-धिकारी हुए और मा० सरकार के उत्तराधिकार की पूर्ति सरदार सर जोगेन्द्र सिंह की नियुक्ति से हुई। यातायात विभाग मे, कार्य की अधिकता के कारण 'युद्ध-सम्बन्धी यातायात' और 'डाक और रेडियो' दो विभाग कर दिये गये और इस विभाग मे ख़ानबहादुर सर मुहम्मद उसमान को नियुक्त किया गया।

नियुक्ति के बीस दिन के भीतर, रियासत का काम सॅभालने के लिये, सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर त्याग-पत्र देकर त्रावणकोर वापस चले गये। फरवरी १९४३ मे, महात्मा गान्धी के २१ दिन के व्रत के अवसर पर, उन्हें छोडने के प्रश्न पर वाइसराय से मतभेद होजाने के कारण, सर होमी मोदी, श्री अणे और श्री सरकार ने त्यागपत्र देदिये। इन पक्तियों के ...ने तक उनके रिक्त स्थानो की पूर्ति की सूचना प्रकाशित नहीं हुई है।

वायुयानवाहक जलयान (Aircraft Carrier)—यह जहाज बम-वर्षक तथा लड़ाकू हवाई जहाज़ो को ले जाते हैं। इनके ऊपरी भाग मे तख्तो से जडा हुआ इतना हमवार मैदान होता है, जिस पर से हवाई जहाज़ उड़ान भर सकता है।

वाल स्ट्रीट—न्यूयार्क मे स्टाक एक्सचेंज का स्थान। यह अमरीका मे बैंकिंग तथा राजस्व का पर्याय है। वाल स्ट्रीट वहाँ एक राजनीतिक सत्ता है, किन्तु इस अर्थ मे वह सर्वमान्य नही। मार्गन के दलो ने रूज़वैल्ट-शासन का विरोध किया है, किन्तु वाल स्ट्रीट के अन्य महाजन जैसे वारबर्ग और लेहमन शुरू से ही रूजवैल्ट के समर्थक हैं।

व्हाइट हाउस—सयुक्त-राज्य अमरीका का वाशिंगटन-स्थित सेक्रेटरियट।

व्हाइट हॉल—भारत-मत्री का लन्दन-स्थित कार्यालय। भारत का शासन-प्रबंध इसी कार्यालय के द्वारा होता है। इसी कारण भारत-मत्री को व्यंग्य मे कभी कभी "व्हाइट हॉल का महान् मुग़ल" कहा जाता है।

विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीमती—पं० जवाहरलाल नेहरू की बहन; विवाह से पूर्व का नाम स्वरूप कुमारी नेहरू; अँगरेज़ी तथा हिन्दी की शिक्षा प्राप्त की। सन् १९२१ मे श्री रणजित् सीताराम पडित, बार-एट-ला, के साथ विवाह हुआ। संयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेसी-सरकार की, स्थानीय स्वायत्त-शासन विभाग की, भूतपूर्व मन्त्रिणी। आपके पति, मिस्टर पण्डित, कांग्रेस के सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्ता और अँगरेज़ी, फ्रांसीसी, संस्कृत और क़ानून के पंडित हैं। श्रीमती पंडित सन् १९३० और १९४० के आन्दोलन में भी भाग लेती हुई जेल जा चुकी हैं और अगस्त '४२ से फिर जेल में हैं। लखनऊ नगर में श्रीमती पंडित पहली महिला मंत्रिणी हैं।
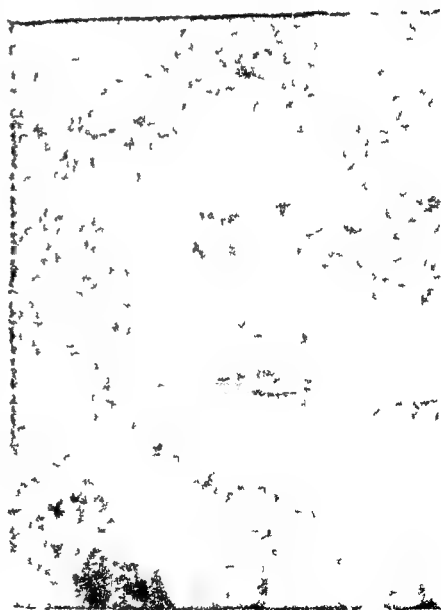
विधान-निर्मात्री-परिषद्—सन् १९३६ में, लखनऊ-कांग्रेस के सभापति

की हैसियत से, प० जवाहरलाल नेहरू के अभिभाषण मे यह मॉग पेश की गई कि भारत मे विधान-निर्मात्री-परिषद् द्वारा शासन-विधान बनाने का अधिकार स्वीकार किया जाय। तब से काग्रेस अपने प्रस्तावो मे बराबर इस मॉग पर जोर देती आ रही है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित विधान-परिषद् द्वारा भारतीयों को शासन-विधान बनाने का अधिकार हो। इसका तात्पर्य यह कि राजनीतिक सत्ता ब्रिटिश पार्लमेंट अथवा ब्रिटिश जनता मे निहित न होकर भारतीय जनता मे निहित होनी चाहिये। ब्रिटिश सरकार ने इस मॉग को स्वीकार नही किया है।

विधानवाद—शासको की 'उदारता' पर आश्रित रहकर देश की क्रमिक राजनीतिक प्रगति की निष्क्रिय वाञ्छा अथवा भारत मे उसके विधान के अन्तर्गत वैध आन्दोलन तथा विधान को कार्यान्वित करके देश की उन्नति करने का कार्यक्रम। सन् १६१६ के बाद, देश मे, इस मनोवृत्ति का अन्त होचुका है और भारतीय जनता महात्मा गान्धी के नेतृत्व में, सत्य और अहिंसा के बल पर, अपनी राजनीतिक मुक्ति के लिये अग्रसर है।

विध्वंसक—यह एक प्रकार का तेज चलनेवाला जलयान है जो टारपीडो-क्राफ्ट का विध्वस कर देता है। इस पर तोपें आदि चढी रहती हैं।

विनोवा भावे—युद्ध-विरोधी सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही; १७ अक्टूबर १६४० को श्री भावे ने, महात्मा गाधी के आदेशानुसार, युद्ध-विरोधी भाषण किया। पुनः कई गॉवो मे घूमे और २१ अक्टूबर १६४० को गिरफ्तार किये जाकर ३ मास की कैद की सजा उन्हे दीगई। विनोवाजी महात्मा गाधी के उन शिष्यो मे हैं जिन्होने सत्य और अहिसा को हृदयङ्गम कर लिया है। १६१६ मे वह इन्टरमीजियेट मे पढते थे। कालिज छोड दिया और साबरमती सत्याग्रह आश्रम मे भर्ती होगये। विनोवाजी सस्कृत के पडित हैं, अरबी और कुरान का भी अध्ययन किया है। वर्धा से दूर पौनार ग्राम मे वह रहा करते थे, किन्तु पिछले दिनो वर्धा के निकट नालवाड़ी ग्राम मे रहकर खादी-कार्यालय, गोरसशाला और चर्मालय का नियन्त्रण कर रहे थे। विनोवाजी साधक हैं और एकान्तिक सेवा मे उनकी अभिरुचि है। युद्ध-विरोधी सत्याग्रह मे, जेल से आने पर दुबारा भी आपने सत्याग्रह किया था। अगस्त, ४२ में

विनोवाजी भी फिर पकड लिये गये हैं।

विपिनचन्द्र पाल, बाबू—विपिन बाबू बंगाल के एक प्रभावशाली नेता थे, और समस्त देश मे उनका मान था। तत्कालीन कांग्रेस मे उनका एक स्थान था। वग-भंग के समय उन्होने बंगाल मे स्वदेशी-प्रचार और विदेशी-बहिष्कार तथा राष्ट्रीय-शिक्षा के आन्दोलन को शक्ति प्रदान की। देश भर मे उनके ओजस्वी भाषणो को बडी उत्सुकता से सुना जाता था। लार्ड मिण्टो के समय मे उन्हे एक बार निर्वासन का दण्ड दिया गया। बंगला 'वन्देमातरम्' के संपादक की हैसियत से अरविन्द घोष पर एक मुकद्दमा चलाया गया। विपिन बाबू यह जानते थे कि उनकी साक्ष्य अरविन्द बाबू के विरुद्ध पडेगी। उन्होने गवाही देने से इनकार कर दिया। इस कारण उन्हे ६ मास क़ैद की सज़ा मिली।

काग्रेस मे वह सदैव उग्र राष्ट्रीयदल के साथ रहे इसलिये अपने समकालीन बगाली नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से उनकी नही पटती रही। समस्त भारत मे उस युग मे तीन नेताओं की धाक थी : बाल (लोकमान्य बालगगाधर तिलक), लाल (पजाब-केसरी लाला लाजपतराय) और पाल (बाबू विपिन चन्द्र)। एक बार आप योरप भी गये। ॲगरेज़ी और बॅगला के ओजपूर्ण वक्ता और प्रभावशाली लेखक थे। अनेक पत्रो का सम्पादन किया। सय्यद हुसैन के बाद प्रयाग के 'इन्डिपेन्डेन्ट' का सम्पादन करते रहे। इसके बन्द होने पर प्रयाग के ॲगरेज़ी साप्ताहिक 'डेमोक्रेट' का भी सम्पादन किया। १९१९ के अमृतसर-अधिवेशन के बाद वह काग्रेस को छोड बैठे। पजाब-सरकार ने, इस अवसर पर, उनके विरुद्ध प्रवेश-निषेध लगा दिया था। किन्तु विपिन बाबू इसको तोड कर अमृतसर पहॅुचे थे। उनका अन्तिम सार्वजनिक भाषण १९२८ के सर्व दल सम्मेलन मे हुआ। जीवन के अन्तिम दिनो मे वह व्यक्तिवादी बन गये थे और 'ईगलिशमैन' मे लेख लिखा करते थे। सन् १९३१ मे उनका देहान्त होगया।

विल्की, वैन्डल ल्यूइस—अमरीकी राजनीतिज्ञ; जाति का जर्मन, ९२ वर्ष पूर्व जिसके जर्मन पुरखे अमरीका मे आ बसे थे; जिसका ख़ानदानी नाम, जर्मन-उच्चारण के अनुसार, 'विलिके' (Willicke) है; इंडियाना विश्व-

विद्यालय से निकलकर विल्की १६१६ से ३२ तक न्यूयार्क आदि में वकालत करता रहा। १६३३ से अनेक अमरीकी छोटी-बडी बिजली कम्पनियों का प्रेसिडेन्ट, चेयरमैन और डाइरेक्टर है। १६३३ तक वह रूजवेल्ट का समर्थक और 'डेमोक्रेट' दल मे था, किन्तु रूजवैल्ट की 'नवीन योजना', विशेषकर सस्ती बिजली के कारखाने क़ायम करने के रूजवेल्ट के कार्यक्रम के कारण—जिससे उसकी बिजली-कम्पनियों को हानि हुई—विल्की रूजवैल्ट से विमुख होकर 'रिपब्लिकन' दल मे शामिल होगया, जहाँ शीघ्र ही वह सर्वप्रिय बन गया। जून १६४० मे रिपब्लिकन परिषद् ने उसे राष्ट्रपति पद के लिये उम्मीदवार मनोतीत किया। नवम्बर १६४० के चुनाव मे उसको दो करोड रायें मिली, किन्तु रूजवैल्ट के मुक़ाबले मे वह ४६,१४,७१८ वोट से हार गया। जनवरी १६४१ मे, जब वह इॅगलैण्ड गया था, तो उसने वहाँ पत्रकारो से कहा कि, 'मै शुद्ध जर्मन हूॅ। मुझे अपने जर्मन रक्त पर गर्व है, किन्तु मै आक्रमण और अत्याचार से घृणा करता हूॅ।' दूसरे अमरीकी 'रिपब्लिकन' नेताओ के विपरीत उसने हिटलरवाद की तीव्र शब्दो मे निन्दा की और ब्रिटेन को पूरी सहायता दिये जाने की वकालत की। उधार और पट्टा क़ानून का भी उसने समर्थन किया। अगस्त १६४२ मे प्रेसिडेन्ड रूजवैल्ट ने उसे अपना विशेष प्रतिनिधि बनाकर रूस, तुर्की, चीन और सुदूरपूर्व के मिस्र, अरब, फिलस्तीन, शाम, इराक, ईरान देशों मे भेजा। स्तालिन आदि कई देश-नेताओ को वह रूजवैल्ट के निजी पत्र लेगया। विल्की के हिन्दुस्तान आने की भी ख़बर थी, किन्तु यहाँ आने और यहाँ की राजनीतिक स्थिति मे हस्तक्षेप करने से उसे इनकार कर दिया गया था।

विलियम फ़िलिप्स—अमरीका के राष्ट्रपति रूजवैल्ट के निजी प्रतिनिधि जो, जनवरी १६४३ मे भारत मे नियुक्त होकर आये हैं। युद्ध के कारण लाखो अमरीकी सेना इस समय भारत मे, धुरी-आक्रमण से उसकी रक्षा के लिये, यह तैनात है। अमरीकी सयुक्त-राज्य बरतानी सरकार को धन-जन से विपुल सहायता देरहा है, इसलिये भी, उस सम्बन्ध के सरकारी आवश्यकीय कार्य-सचालन के लिये मि० विलियम फिलिप्स की भारत में नियुक्ति हुई है। अमरीकी जनता भारत की समस्याओ के सम्बन्ध में

दिलचस्पी रखती है, किन्तु वहाँ की सरकारी नीति इस सम्बन्ध मे तटस्थ रहने की ही है। फरवरी-मार्च १६४३ के महात्मा गान्धी के २१ दिन के व्रत के समय मि० फ़िलिप्स ने वर्तमान भारतीय समस्या के हल के लिये कुछ दिलचस्पी दिखाई थी, क़िन्तु सरकारी तौर पर अमरीका से इसके विपरीत संवाद मिला। आपसे पूर्व कर्नल लुई जान्सन भारत मे, इस स्थिति मे, रहते रहे हैं।

विल्हैल्मिना, नीदरलैंड्स की रानी—३१ अगस्त १८८० को पैदा हुई; १८६० मे गद्दी पर बैठी; प्रिंस हैनरी से (जो १६३४ मे मर गया) विवाह किया; शहज़ादी जूलियाना (जिसने प्रिन्स बरनार्ड से शादी की है) विल्हैल्मिना की उत्तराधिकारिणी पुत्री है। १० मई १६४० को जब जर्मनी ने हालैन्ड पर आक्रमण किया तो विल्हैल्मिना ने उसका मुक़ाबला किया, क़िन्तु जर्मन-सेनाएँ, विश्वासघातियो की सहायता से, जब राजधानी हेग मे दाख़िल होगई तो रानी राज-परिवार सहित इँगलैन्ड को चलीगई।

विशेषाधिकार (Capitulations)—वह सन्धियाँ जिनके अनुसार किसी देश (विशेषकर साम्राज्यवादियो द्वारा अपहरित) मे विदेशी अथवा शासक जाति के नागरिको को, उस देश मे प्रचलित क़ानून से अलग, नागरिक-अधिकार प्राप्त हों। योरपियन और अमरीकी राष्ट्रों ने इस प्रकार की सन्धियाँ तुर्की, फ़ारस तथा अन्य मुसलिम देशों, चीन और दूसरे एशियाई तथा अफ्रीकी देशों से प्राप्त कीं। इन सन्धियो के अनुसार इन देशों मे रहनेवाले योरपियनो और अमरीकनो को हक़ हासिल था कि उनके विरुद्ध चलनेवाले मुक़दमो की सुनवाई उनके अपने देशवासियो द्वारा बनाई गई अदालतो मे हो। यह विशेषाधिकार-सन्धियाँ बहुत पुराने समय, नवी शताब्दि, से होती चली आई हैं। वर्तमान युग मे, अपहरित और पराधीन देशों मे राष्ट्रीय-स्वाधीनता का जागरण आरम्भ होने से, इन अपमानजनक विशेषाधिकारों के प्रति, क्षोभ उत्पन्न हुआ और अब यह सन्धियाँ रद की जा रही हैं। तुर्की ने, १६२३ की लौसेन की सन्धि मे, इनका अन्त कर दिया; फारस ने १६२८ में स्याम ने १६३६ मे और मिस्र मे, १५ अक्टूबर '३७ की मोन्ट्रियो-सन्धि में, इन विशेषाधिकारो का ख़ात्मा तो नहीं हुआ, यह तय हुआ कि आगामी बारह वर्षों तक, विशेष प्रकार के मामलों मे, सम्मिलित अदालतें बैठती रहेंगी। चीन

और मरक्को के कुछ भागों में अब भी यह विशेषाधिकार लागू है।

ह्विग—बरतानवी लिबरल दल का पुरातन नाम, जिसका, १८२८ मे, दल ने त्याग कर दिया।

ह्विप—पार्लमेन्ट या किसी देश की धारा-सभा का वह सदस्य जिसका कार्य, उसके अपने दल के सदस्यो को, किसी मसविदे या प्रस्तावादि पर मत देने के लिये सगठित करना है। जब किसी प्रश्न पर, धारा-सभा के अधिवेशन मे, मत लिया जाता है उस समय वह अपने दल के अधिक से अधिक सदस्यों को आमन्त्रित कर मत दिलाने का प्रबन्ध करता है। बरतानवी हाउस आफ् कामन्स मे एक सरकारी चीफ ह्विप होता है, जो सरकारी मसविदे आदि के बारे में कार्य सचालित कराता है।

वीजमन, डा० चैम—यहूदी-आन्दोलन का नेता; १८७४ मे रूस मे पैदा हुआ, ग्रेट-ब्रिटेन में बस गया; लीड्स विश्वविद्यालय मे अध्यापक रहा. सुप्रसिद्ध रसायनाचार्य युद्धोपयोगी रसायन मे अनेक प्रकार की गैसों और विस्फोटक पदार्थों का आविष्कार किया, इनके द्वारा, पिछले युद्ध मे, अँगरेज़ों की मदद की, १९०६ से ही यहूदी-आन्दोलन मे बालफोर की रुचि उत्पन्न की। अपने युद्धोपयोगी प्रयोगों द्वारा प्रभावित कर १९१७ मे बालफोर से, फ़िलस्तीन के सम्बन्ध मे, यहूदियों के हित मे घोषणा कराई। फिलस्तीन के बँटवारे-सम्बन्धी १९३७ की योजना को वीजमन ने स्वीकार किया, पीछे अस्वीकार कर दिया। १९३९ की एतत्सम्बन्धी योजना को भी मानने से उसने इनकार कर दिया। इस योजना द्वारा फिलस्तीन मे अरब और यहूदियो का सम्मिलित राज्य स्थापित होता, जिसमे यहूदी तिहाई अल्पसख्यक जाति की भाँति रहते।

वेगाँ, जनरल मैक्सिम—फ्रान्स का भूतपूर्व प्रधान सेनाध्यक्ष। १९ मई १९४० को वह फ्रान्स का प्रधान सेनाध्यक्ष बनाया गया। उसने जून १९४० मे रिनौ-मंत्रि-मण्डल को सलाह दी कि फ्रान्स की सेना जर्मनी की सेना का मुकाबला करने मे असमर्थ है, इसलिये फ्रान्स की सरकार को जर्मनी के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। सधि के प्रश्न को सबसे पहले वेगाँ ने मन्त्रिमडल के समक्ष रखा और अपनी बात पर ज़ोर दिया। फ्रान्स के पतन के बाद भी वह और नौसेनापति दार्लां दोनो हिटलर के हाथ की कठपुतली बने रहे,

और यह आशङ्का रही कि वह दोनो कही सब प्रकार की सेना और उसके लवाज़मे को शत्रु के हाथ मे न सौंप दे। वेगॉ भी फ्रान्स के पतन के लिये उत्तरदायी है।

वेवल, फील्डमार्शल सर आर्कीबाल्ड पर्सीवल—भारत के प्रधान सेनाध्यक्ष। ३६ वर्ष से सैनिकक्षेत्र मे सेवा कर रहे हैं। दो वर्ष तक आप वर्तमान युद्ध मे अफ्रीका मे प्रधान-सेनाध्यक्ष का कार्य बडी कुशलता के साथ कर चुके हैं। अफ्रीका मे, सन् १६४० मे, जो विजय मित्र-राष्ट्रो ने प्राप्त की, उसका मुख्य श्रेय आपके सामरिक-कौशल को है। मिस्र तथा पश्चिमी अफ्रीका के रेगिस्तान मे आपकी अध्यक्षता मे मित्रराष्ट्रों की सेना ने इटालियन सेनाओ को बुरी तरह पराजित किया। पॉच मास मे ३॥ लाख युद्ध-बन्दियो सहित अनेक अस्त्र-शस्त्र, टैंक, मशीनगने, आदि मित्रराष्ट्र की सेना के हाथ आये।

सन् १६०८ मे जनरल वेवल भारत के पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त मे सेना मे अफसर रहे। विगत विश्व-युद्ध (१६१४-१८) मे फ्रान्स, वेलजियम, रूस और फिलस्तीन मे, मित्र राष्ट्रो की ओर से, युद्ध मे भाग लिया। आप युद्ध मे घायल होगए और, इस प्रकार वीरतापूर्वक युद्ध मे भाग लेने के उपलक्ष्य मे, आपको सी० एम० जी० तथा एम० सी० की महत्त्वपूर्ण पदवियॉ प्रदान कीगई और गत वर्ष आप फील्ड मार्शल बनाये गये हैं।

वेवल साहब रण-नीति तथा सैन्य-सचालन मे अत्यन्त निपुण हैं। इसलिए अमरीका तथा ब्रिटेन की सरकारों की ओर से प्रशान्त महासागर के लिये आपको सन् १६४२ मे प्रधान सेनाध्यक्ष नियुक्त किया गया।

आप ॲगरेज़ी के कुशल लेखक भी हैं। कई उत्कृष्ट और सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। अगरेजी लेखन-शैली पर आपको अधिकार प्राप्त है।

वैटीकन—ईसाई मत के रोमन कैथलि सम्प्रदाय के महन्ताचार्य्य—पोप—का निवास-स्थल वैटीकन सिटी के नाम से प्रसिद्ध है। धर्माचार्य्य पोप की यह रियासत (State) एक स्वतन्त्र राजभूमि है, जिसका क्षेत्रफल १०८ एकड है। ससार की इस सबसे छोटी स्टेट् के मुख्य द्वारों पर स्विस द्वारपाल, अपनी विचित्र वेषभूपा मे, प्रहरी रहते हैं। वैटीकन मे अनेक राजभवन हैं, किन्तु पोप इनमे से एक के कोने मे सादे कमरो मे रहता है। वैटीकन मे, एक राज्य की भॉति, वेतार का तार, रेडियो, टकसाल, डाकविभाग, डाक-टिकट, रेलवे (२०० गज लम्बी) सब अपने हैं।

वैधानिक-संकट—सितम्बर १६३६ मे योरप में युद्ध आरम्भ होजाने के बाद जब भारतीय काग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से उसके युद्ध-उद्देश पूछे ताकि भारत को युद्ध मे सम्मिलित करने की नीति स्पष्ट होजाय, और ब्रिटिश सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया, अपने युद्ध-उद्देश नहीं बताये, तब भारत के आठ प्रान्तो मे, जहॉ काग्रेस-मन्त्रि-मण्डलों का शासन था, काग्रेसी सरकारो के त्यागपत्र देदेने से, वैधानिक सकट पैदा होगया। शासन-विधान-स्थगित कर दिया गया और प्रान्तीय गवर्नर सलाहकारों की सहायता से शासन करने लगे। तब से आज तक भारत के वैधानिक सङ्कट की यह समस्या बिना सुलझी हुई पड़ी है। गान्धीजी आदि कांग्रेसी नेताओं के प्रयास भी, इस सम्बन्ध मे, विफल रहे और अगस्त १६४२ मे, 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद यह समस्या और भी दुरूह होगई है। अगस्त '४२ के बाद सर तेज बहादुर सप्रू, श्रीराजगोपालाचारी आदि इसके सुलझाव के लिये प्रयत्नशील हैं। हिन्दू महा-सभा भी अपने इस प्रयत्न मे असफल रही है। प्रयत्न अब भी जारी है।

वैल्स, सुमनर—संयुक्त-राज्य अमरीका का उपराष्ट्र-मन्त्री; १८६२ में पैदा हुआ; हरवर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ा, १६१५ मे राज्य के कूटनीतिक-विभाग

मे आया; तोक्यो, क्यूबा आदि मे अमरीका का राजदूत रहा। मध्य और लातीनी अमरीका-सम्बन्धी कूटनीतिक विभागो मे काम करता रहा। १६३३ में उपराष्ट्र मत्री बना। पुनः राजदूत बनाकर भेजा गया और २१ मई १६३७ से उपराष्ट्र मन्त्री है। अमरीका की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध मे राष्ट्रपति रूज़-वैल्ट और राष्ट्र-मन्त्री (सेक्रेटरी आफ् स्टेट्) कार्डल हल के बाद वहाँ तीसरा नम्बर वैल्स का है।

वैस्टमिस्टर-क़ानून—इसके अनुसार ब्रिटिश उपनिवेशो की ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत पारस्परिक समता की स्थिति क़ानूनी रूप से स्वीकार की गई है।

वोरोशिलाफ्, मार्शल क्लीमन्त यफ्रेमोविच्—जन्म १८८१ ई०; ग़रीब बाप का बेटा, इसलिये बाल्य-काल मे लोहे के कारख़ानो मे मज़दूरी करनी पड़ी; रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन मे भाग लिया; बार-बार देश-निकाले की सज़ा देकर साइबेरिया भेजे गये। सन् १६१७ की क्रान्ति मे भाग लिया। रूस के गृहयुद्ध (१६१८-२०) के समय एक सेना का सगठन किया। सन् १६१६ मे वह सोवियत सवार-सेना के सेनापति नियुक्त किये गये। १६२५ से १६४० तक रूस के युद्ध-मंत्री (वार कमिसार) रहे। इस पद पर रहकर वोरोशिलाफ् ने लाल-सेना का नये ढंग से संगठन किया। १६२१ से वह कम्यूनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के सदस्य हैं। मई १६४० मे उन्हे युद्ध-मन्त्रि-पद से हटाकर कौन्सिल आफ़् पीपल्स कमिसार्स का उप-प्रधान नियुक्त किया गया। जून १६४१ मे रूस-जर्मन युद्ध छिडने पर मार्शल वोरोशिलाफ् को राष्ट्र-रक्षा समिति (स्टेट डिफेन्स कमिटी) का सदस्य और उत्तरी युद्ध-क्षेत्र (लेनिनग्राद के बचाव) का प्रथम प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। पीछे आपको पूर्वीय रूस मे नई सोवियत सेना संगठित करने का दायित्त्व भी सोपा गया। आपकी कमान मे रूसी लाल सेना ने महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की है और बराबर प्राप्त कर रही है।

श

शंकरराव देव—काग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य महाराष्ट्र के प्रमुख काग्रेसी नेता; निर्धन माता-पिता के कुल में, पूना के निकट भोर रियासत के एक ग्राम मे, सन् १८६५ मे, जन्म हुआ, पूना से हाईस्कूल परीक्षा पास की और बम्बई से बी० ए०। वह वकील बनना चाहते थे, किन्तु, राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेने के कारण, उन्हे कालेज त्याग देना पड़ा। लोकमान्य तिलक से श्री देव आरम्भ से ही प्रभावित थे। सन् १६१६-१७ के होमरूल आन्दोलन मे भाग लिया। चम्पारन-सत्याग्रह मे गाधीजी के साथ रहे। मराठी 'लोकशक्ति' तथा 'लोकसग्रह' का सपादन किया। असहयोग तथा सत्याग्रह आन्दोलनो मे कई बार जेल गये।
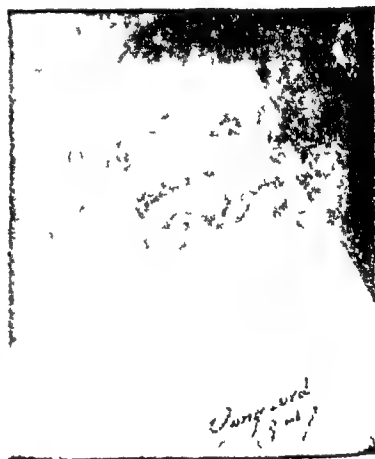
शक्ति-सन्तुलन—इसका यह अर्थ है कि योरप मे एक दल के राज्यो की शक्ति दूसरे दल के राज्यो की शक्ति के बराबर रहे, अन्यथा एक दल के राज्यो का एकाधिपत्य स्थापित होकर योरप की शान्ति के लिये ख़तरा बना रहेगा। ब्रिटिश वैदेशिक नीति की यह परम्परा रही है कि वह योरप मे शक्ति-सन्तुलन की रक्षा के लिये प्रयत्नशील रही है। सन् १८७१ से १६१४ तक योरप मे जो शान्ति रही उसका कारण यह शक्ति-सन्तुलन ही था। एक ओर जर्मनी, इटली तथा आस्ट्रिया का गुट था, दूसरी ओर ब्रिटेन, फ्रान्स, तथा रूस का मित्रदल। शक्ति-सन्तुलन का उद्देश प्रारम्भ से ही योरप की शक्तियो मे समता बनाये रखने का रहा है, जिसमे ग्रेट-ब्रिटेन की स्थिति निरपेक्ष रही है

ताकि वह किसी झगडे के समय उसका निपटारा कर सके। किन्तु जर्मनी की शक्ति बढने से ब्रिटेन के लिये यह आवश्यक होगया कि सन्तुलन को क़ायम रखने के लिये वह एक दल मे शामिल होजाय।

सन् १६१४-१८ के युद्ध के बाद जब योरप मे फ्रान्स की सत्ता अधिक बढी तो ब्रिटेन ने योरप मे फ्रान्स की प्रधानता के भय से जर्मनी के पुनरुत्थान मे योग दिया और उसकी शक्ति को बढ़ने दिया, और जब योरप मे, हिटलर के नेतृत्व मे, जर्मनी की सत्ता अधिक बढ़ गई तो शक्ति को सन्तुलित रखने के लिये ब्रिटेन ने नये सिरे से सोवियत रूस और फ्रान्स से सहयोगिता स्थापित करने का प्रयत्न किया। जहाँ तक रूस से सम्बन्ध था ब्रिटेन को तब इसमे सफलता नही मिली। जर्मनी ने अवसर से लाभ उठाकर अपने पुराने शत्रु रूस से मित्रता करली, योरप मे जर्मनी का प्राधान्य होगया और योरप मे वर्तमान युद्ध छिडा। आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य के लोप होजाने और योरपीय राजनीति मे रूस के रहस्यमय आचरण के कारण शक्ति-सन्तुलन की समस्या कठिन बनी। किन्तु अब ब्रिटेन और रूस मित्र है—यदि युद्ध के बाद भी यह मित्रता स्थिर रहे। फ़ान्स अब ब्रिटेन का मित्र नही है।

शरणागत—सन् १६१४-१८ के युद्ध के बाद योरप के अनेक देशो ने राजनीतिक तथा जातीय भेदभावों के आधार पर अल्पमतों का उत्पीडन शुरू किया। फलतः अत्याचारो से पीडित लोगो ने अपने देशो का परित्याग कर दूसरे देशो मे शरण ली। लडाई के बाद सबसे पहले शरणागत रूसी, आरमीनियन तथा यूनानी थे, जो तुर्की से निकाले गये। 'श्वेत' रूसी २० लाख की संख्या में थे। इनमे से बहुत से पोलेण्ड, फ़ान्स, चीन मे बस गये, शेष ससार के अन्य भागो मे और ३ लाख आरमीनियन निकट पूर्वीय देशो मे। राष्ट्रवादी तुर्की से १६२३ मे निकाले गये १५ लाख यूनानी, राष्ट्रसंघ की सहायता से, यूनान मे बस गये और यूनान-प्रवासी तुर्क बदले मे अपने देश भेज दिये गये। जिनेवा स्थित नानसेन-कार्यालय शरणागतों (विशेषतः रूसियो) की व्यवस्था करता था।

शरणागतो की समस्या दूसरी बार १६३३ में, नात्सीवाद के उद्भव के समय, उठी। जातीय और राजनीतिक कारणों से ३॥ लाख नागरिक जर्मनी

और आस्ट्रिया से निकाले गये, जिनमे ३ लाख यहूदी, तीस हज़ार 'अनार्य' ईसाई और शेष में समाजवादी, साम्यवादी, प्रजातन्त्रवादी, राजसत्तावादी, और कैथलिक ईसाई हैं। मार्च १६३६ में जर्मनी द्वारा चैकोस्लोवाकिया के अपहरण के समय २५,००० व्यक्ति देश छोड़कर पश्चिमी योरप और अमरीका मे जाबसे। राष्ट्रसंघ की ओर से शरणागतो की व्यवस्था के लिये एक हाई कमिश्नर लन्दन में रहता है।

स्पेन के गृह-युद्ध की समाप्ति पर ३॥ लाख स्पेनियों को जब देश छोड़ना पडा, तो, कुछ को छोड़कर, जो मेक्सिको मे जा बसे, इनका बोझ फ्रान्स पर पड़ा। किन्तु १६४० मे फ्रान्स ने उन्हें अपने यहाँ से निकालना आरम्भ कर दिया। सितम्बर १६३६ में जर्मनी द्वारा पोलेण्ड के पराजित होने पर वहाँ के ५० हजार शरणागत अन्य देशों मे चले गये। पोल अनाथ भारत मे लाकर रखे गये हैं। जर्मनी द्वारा योरप के अन्य अनेक देशों के पददलित होने पर भारी सख्या मे उन देशों के लोगो को बाहर निकलना पड़ा। चीन मे जापानी आक्रमणों के कारण करोड़ो व्यक्ति बेघरबार होगये हैं।

शरत्‌चन्द्र बोस—बगाल मे कांग्रेस असेम्बली पार्टी के नेता, कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर, सुभाष बाबू के बड़े भाई। सन् १६३४ मे जब वह बगाल सरकार के नजरबन्द राजबन्दी थे, तब जेल से ही केन्द्रिय असेम्बली के सदस्य चुने गये, किन्तु उन्हें अधिवेशनो मे भाग लेने की आज्ञा नही मिली। बाद मे मुक्त कर दिये गये। सन् १६३७ मे बगाल प्रान्तीय धारा-सभा के सदस्य चुने गये। तब से बराबर असेम्बली मे कांग्रेस-दल का नेतृत्व किया। सन् १६४० में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने उनके विरुद्ध अनुशासन की कारवाई की और उन्हें कांग्रेस से अलग कर दिया तथा उन्हे आदेश दिया गया कि वह कांग्रेस और

असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे दे। शरत् बाबू ने अनुशासन की कार्य-

वाही का विरोध किया। सन् १९४१ में भारत-सरकार ने आपको नज़रबन्द कर दिया और वह जेल में हैं।

शाख्त, डा० जालमर होरेस ग्रीले—जर्मन अर्थशास्त्री तथा राजनीतिज्ञ; १८७७ मे पैदा हुआ; बेंकर बना; एक बैंक मे मैनेजर तथा हिस्सेदार रहा; युद्ध के बाद जर्मन प्रजातन्त्रवादी दल मे शामिल हुआ और १९२३ के जर्मनी के आर्थिक-पतन के समय जर्मन-करेन्सी की स्थिरता के लिये उसने प्रयत्न किया; जर्मन राष्ट्रीय बैंक का प्रधान बना और १९२९ तक इस पद पर रहा। युद्ध का हरजाना देने का उसने विरोध किया और जर्मनी द्वारा विदेशों से क़र्ज़ लिये जाने की नीति मे भी उसने परिवर्तन कराया। सन् १९३१ में वह नात्सी-दल के सम्पर्क मे आया। सन् १९३३ मे हिटलर ने उसे पुनः राइख़ (जर्मन राष्ट्रीय) बैंक का अध्यक्ष बनाया। उसे अर्थ-मत्री भी नियुक्त किया गया और वस्तुतः वह जर्मनी का अर्थ-अधिनायक बन गया। उसने जर्मनी की आर्थिक अवस्था को सुदृढ़ रूप मे संगठित किया। १९३६ में हिटलर ने उसको आदरसूचक तमग़ा दिया। सन् १९३८ मे गोरिंग् के प्रभुत्व के कारण उसे अर्थमंत्रित्व तथा बैंक की प्रधानता से त्यागपत्र देना पडा, क्योंकि वह गोरिंग् की चातुर्वर्षीय योजना का विरोधी था। सन् १९३९ के ग्रीष्म-काल मे वह भारत आया और लड़ाई शुरू होते ही जर्मनी वापस चला गया, और इस समय, कहा जाता है, डा० शाख्त हिटलर को आर्थिक युद्ध-प्रयत्नों मे सलाह देकर उसकी सहायता कर रहा है।

शान्ति-प्रतिज्ञा-संघ—(पीस प्लैज् यूनियन) ब्रिटेन के उग्र शान्तिवादियों की संस्था, बडे पादरी शैपर्ड ने, अक्टूबर १९३४ में, इसकी स्थापना की. इस संस्था मे प्रसिद्ध लेखक तथा राजनीतिक शामिल हैं, जैसे जार्ज लेन्सबरी, ला

पोन्सनबी, बरट्रेन्ड रसल, स्टार्म-जेमूसन और ऐल्डस हक्सले। सन् १६३७ मे यह सस्था 'नो मोर वार मूवमेन्ट' मे शामिल होगई। यह सस्था 'युद्ध-प्रतिरोधी अन्तर्राष्ट्रीय सघ' की ब्रिटिश शाखा है। इसकी ओर मे 'पीस न्यूज़' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता है। इसके १,२०,००० सदस्य है। इसके सदस्य सेना में भर्ती नहीं होते। यूनियन युद्ध का प्रत्येक रूप मे विरोध करती है, चाहे वह रक्षात्मक हो, अथवा दण्डाज्ञा लागू करने के लिये हो अथवा सामूहिक सुरक्षा के लिये छेडा गया हो। यह सस्था जनता की आध्यात्मिक तथा नैतिक भावना से अपील करती है और अहिंसात्मक प्रतिरोध का समर्थन करती है। अन्तर्राष्ट्रीय नीति मे यह ऐसी स्थिति पैदा करना चाहती है जिससे युद्ध असभव होजाय। विश्वव्यापी शान्ति-परिषद् की स्थापना, राष्ट्रसंघ मे सुधार, जिसमे उसे दण्डाज्ञा लगाने का अधिकार न रहे, शासनादेश प्रणाली का विकास, सत्ता-धारियो द्वारा अभाव-पीडितों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना भी इसके उद्देश्य हैं। यह सस्था वर्त्तमान युद्ध के विरुद्ध है। २२ फरवरी १६४० को ब्रिटिश होम सेक्रेटरी सर जान ऐन्डरसन ने पार्लमेंट मे कहा कि अधिकारी इस संस्था की कार्यवाहियो का कडाई से निरीक्षण कर रहे हैं।

शान्तिवाद—युद्ध के उन्मूलन या परित्याग का आन्दोलन। ब्रिटेन, फ्रास, जर्मनी, अमरीका तथा अन्य देशो मे, इन दो विश्वव्यापी युद्धो के पूर्व से ही, शान्तिवादी संस्थाये आन्दोलन कर रही हैं। इस सम्बन्ध मे कई बार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-परिषदें भी आमन्त्रित कीगई। ईसाइयो के 'क्वेकर' फिरक़े ने शान्ति-प्रसार आन्दोलन मे बहुत काम किया है। इसी आन्दोलन के फल-स्वरूप १६१४ के युद्ध से पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-परिषद् हुई। युद्ध के बाद भी प्रयत्न हुए, जैसे राष्ट्र-सघ के विधान की रचना, अन्तर्राष्ट्रीय विश्व-न्यायालय की स्थापना, कैलाग समझौता तथा निःशस्त्रीकरण परिषद्। १६३६ मे, राष्ट्र-सघ के सहयोग से, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-स्थापना के उद्देश से, ब्रुसेल्स (बेलजियम) मे शान्ति-परिषद् हुई, जिसमे भारत के नेता राजेन्द्र बाबू ने भी भाग लिया। शान्तिवाद की अनेक धाराये है, सबसे अधिक उत्साही दल युद्ध-प्रतिरोधियो का है, जिन्होने, १६२८ ई० मे, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-प्रतिरोधी संघ की स्थापना की। इगलैंड और अमरीका मे इस आन्दोलन का बहुत ज़ोर है। किंतु यह

प्रयत्न अबतक केवल एक सिद्धान्त मात्र सिद्ध हुए है।

शान्ति सेवक-संघ—देश मे बढ़ते हुए हिन्दू-मुसलिम दंगो को व्यावहारिक रूप से रोकने के उद्देश से, जुलाई १६४१. मे, महात्मा गांधी की प्रेरणा तथा उद्योग से, भारत मे शान्ति-सेवक-संघो की स्थापना हुई। संघ का उद्देश्य साम्प्रदायिक एकता तथा सामाजिक शान्ति को सुदृढ़ नीव पर खडा करना और साम्प्रदायिक उपद्रवो को अहिंसात्मक उपायो से रोकने का प्रयत्न करना था।

इसके सदस्यो के लिये निम्नलिखित नियम निर्धारित किये गये :—

(१) उसे सघ के उद्देश्यो को स्वीकार करना होगा।

(२) उपद्रवो के बीच अथवा उत्तेजित वातावरण मे उसे आत्मरक्षा तथा दूसरो की रक्षा के लिये अहिंसात्मक प्रतिरोध मे विश्वासी होना आवश्यक है। संघ के आदर्शों को पूरा करने के हेतु उसे आत्म-बलिदान के लिये प्रस्तुत रहना चाहिए।

(३) उसे प्रत्येक सप्ताह निर्धारित कार्य के सपादन के लिये समय देना होगा और आवश्यकता पड़ने पर पूरा समय भी देना पडेगा।

(४) सघ की कार्य-समिति के दो सदस्यो की सिफारश पर कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये कार्य-समिति के समक्ष आवेदन-पत्र प्रस्तुत कर सकता है। यदि कोई सदस्य संघ के उद्देश्यो के विरुद्ध कार्य करेगा तो उसे सदस्यता से पृथक् कर दिया जायगा। जो व्यक्ति संघ के उद्देश्यो से सहानुभूति रखेंगे तथा साम्प्रदायिक एकता मे विश्वास रखेंगे, परन्तु वे सघ के सदस्य बनने के लिये तैयार न होगे तो, कार्य-समिति उन्हे सहायक बना सकेगी और उन्हे उनके अनुकूल कार्य सोपा जायगा।

शाम—पूर्वीय भूमध्यसागर पर फ़िलस्तीन के उत्तर मे एक देश; अँगरेज़ी नाम सीरिया; क्षेत्र० ५८,००० वर्ग०; जन० ३४ लाख; भाषा अरबी; पहले तुर्की-साम्राज्य का देश, किन्तु १६१४-१८ के विश्व-युद्ध के बाद राष्ट्रसंघ के शासनादेश के अनुसार, फ्रांस के संरक्षण मे आगया। हजाज़ के बादशाह हुसैन का बेटा अमीर फ़ैज़ल, जो युद्ध मे मित्र-राष्ट्रों का समर्थक था, १६२० मे शामी-कांग्रेस द्वारा शाम का बादशाह घोषित किया गया, किन्तु मित्र-

राष्ट्रों ने इस निर्णय को अस्वीकार किया। अतएव अमीर फ़ैज़ल को शाम छोड़ देना पड़ा और वह शाम के बजाय इराक़ का बादशाह बन गया। कई बार के विभाजन के बाद शाम को चार राज्यो मे बॉटा गया : मुख्य शाम, क्षेत्र० ४६,००० वर्ग०; जन० २० लाख, राजधानी दमिश्क। लेबानन, क्षेत्र० ३८ सौ वर्ग०, जन० ७ लाख, राज० बैरूत, फ्रान्सीसी शासक भी यहीं रहता है। लताक़िया, क्षेत्र० २८ सौ वर्ग०; जन० ३॥ लाख; और जबल ड्रूज़, क्षेत्र० २४ सौ वर्ग० जन० ५० हज़ार, जहॉ युद्धप्रिय मुसलिम वर्ग आबाद है। शाम में ३ लाख ख़ानाबदोश बद्दू भी हैं। उक्त चारों राज्यों मे पारस्परिक राजनीतिक सम्बन्ध नहीं है। पूर्वकालीन शाम-देशीय संघ का अन्त १६२४ में चुका है। अलेक्ज़ेन्ड्रेटा का इलाक़ा १६३८ में तुर्की को दिया जा चुका है।

शाम मे स्वाधीनता के लिये अरब-राष्ट्रीयता का प्रबल आन्दोलन जारी है, और शाम १८४७ से राष्ट्रीयता का उद्गम क्षेत्र रहा है। १६२० से १६३२ तक, फ्रान्सीसी-शासन के विरुद्ध, वहॉ बहुत से विद्रोह हुए। अखिल-अरब-वाद उनके आन्दोलन की पृष्ठभूमि है। नवम्बर-दिसम्बर १६३६ मे फ्रान्स के साथ दो सन्धियॉ हुई, जिन पर तीन वर्ष बाद अमल होने वाला था, और इस प्रकार मुख्य शाम और लेबानन को स्वाधीनता दी जाने वाली थी। बदले में इन दोनों राज्यों को फ्रान्स के साथ मित्रता और व्यापारिक सन्धियॉ करनी पड़ीं और राज्यो में फ्रान्सीसी फौजों का रहना स्वीकार किया गया।

सन्धिकर्ता दोनो देशों मे मुख्य शाम राष्ट्रीयतावादी है और लेबानन में ईसाई अधिक हैं। उनकी फ्रान्स से सहानुभूति थी और वह अपने देश मे तिरगा फ्रान्सीसी झंडा लगाते थे। लेबानन के ईसाई यहूदियो के भी पक्ष-पाती हैं। उक्त सन्धियों पर अमल का वक्त भी न आया था कि वर्तमान युद्ध छिड गया।

जर्मनो द्वारा शाम पर क़ब्जा होने की जब सम्भावना बढ गई, विशी फ्रान्स के इशारे पर उन्होंने देश मे आना शुरू कर दिया, तब, ८ जून १६४१ को, बरतानवी और आज़ाद फ्रान्सीसी २ फ़ौजे शाम मे दाख़िल होगईं।

विशी .फ्रान्स की सेनाओ से युद्ध हुआ और १२ जुलाई को विशी की सेनाओ-ने हथियार डाल दिये। ब्रिटेन और आज़ाद .फ्रान्सीसियो ने मुल्क शाम की स्वाधीनता की घोषणा करदी, वहाँ .फ्रान्सीसी शासन समाप्त हो गया और शामियो को आज़ादी दे दी गई कि वह सब एक होजायॅ अथवा अपने मुल्क मे अनेक राज्य स्थापित करले। २६ दिसम्बर १६४१ के आज़ाद फ्रान्स ने शाम देश की स्वाधीनता और शामी प्रजातन्त्र के प्रभुत्त्व को स्वीकार कर लिया और शाम का पूर्व प्रधान मन्त्री, शेख़ ताजुद्दीन, प्रजातन्त्र का राष्ट्रपति बना।
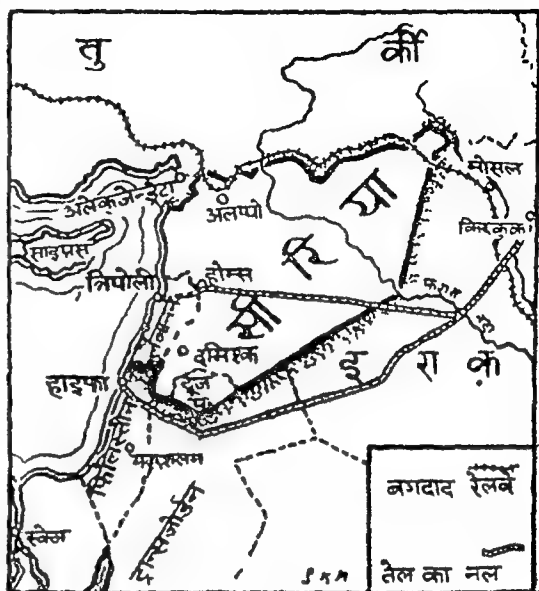
शार्दूलसिह कवीश्वर, सरदार—सिख कांग्रेसी नेता, जन्म १८८६ ई०; अमृतसर मे बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। असहयोग आन्दोलन (१६२०-२१) मे भाग लिया ; दिल्ली से 'सिख रिव्यू' तथा लाहौर से 'न्यू हैरल्ड' पत्रों का सम्पादन किया। सन् १६२५ में प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन पंजाब के सभापति बनाये गये। कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य रहे। सन् १६३२ के आन्दोलन मे कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष रहे। Non-violent Non-co-operation (अहिंसात्मक असहयोग) तथा Studies in Sikh Religion (सिख धर्म-मीमान्सा) नामक अॅगरेजी पुस्तकें

लिखी हैं। सन् १६३६ से श्री सुभाषचन्द्र बोस द्वारा स्थापित अग्रगामी दल के सगठन का कार्य कर रहे थे। सन् १६४२ के आरम्भ मे आप नजरबन्द कर दिये गये।

शासन-उत्क्रान्ति—सहसा सरकार मे बलपूर्वक परिवर्तन, जो शासन-सूत्र-सचालक सरकारी वर्ग अथवा सैनिक अफसरों द्वारा किया गया हो। राज्य-क्रान्ति (Revolution) तथा शासन-उत्क्रान्ति (फ़्रान्सीसी भाषा के शब्द Coup d'etat) मे अन्तर यह है कि क्रान्ति में देश की अधिकाश जनता भाग लेती है और शासन-उत्क्रान्ति मे केवल राजकीय सत्ताधारियो, विशेषकर सैनिकदल, द्वारा शासन में परिवर्तन किया जाता है। योरप के देशो मे अनेक उत्क्रान्तियाँ हुई हैं : नेपोलियन प्रथम ने १७६६ में, नेपोलियन तृतीय ने १८५१ मे, मुसोलिनी ने १६२५ में, पिल्सुद्स्की ने पोलेन्ड में १६२८ में इस प्रकार की शासन-उत्क्रान्ति की। ब्रिटिश इतिहास में केवल क्रामवेल इस प्रकार का उदाहरण है। शासन-उत्क्रान्ति का प्रयत्न असफल भी हुआ है, जैसे १६२० मे जर्मनी का कैप पुत्र। लातीनी अमरीका मे तो यह उत्क्रान्ति वहाँ की राजनीति का एक अग बन गई है। पहले युग मे उत्क्रान्तिकारी केवल सरकारी भवनों पर कब्ज़ा करते थे, किन्तु आधुनिक युग मे वह रेलवे, रेडियो केन्द्र, बिजलीघर, वाटरवर्क्स तथा अन्य कारखानों पर भी अधिकार कर लेते हैं।

शासन-परिवर्त्तन—प्रजातत्र राज्यो मे सामान्यतया मन्त्रि-मण्डल वैधानिक रूप से बदलते रहते और तदनुसार सरकारें कायम होती रहती हैं। इसमे न कोई उत्क्रान्ति होती है और न हिंसा ही।

शासन-विधान—किसी भी प्रजातत्रवादी अथवा अन्य राज्य का वह मौलिक विधान जिसके अनुसार राज्य का शासन-प्रबन्ध होता है। प्रजातन्त्र राज्यो मे प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा सगठित विधान-निर्मात्री-परिषद् द्वारा शासन-विधान बनाया जाता है। इस विधान मे देश की कोई धारा-सभा परिवर्तन नही कर सकती। जहाँ लिखित विधान होता है, वहाँ ऐसा ही नियम है। ब्रिटेन मे पार्लमेंट ही सर्वोच्च विधान परिषद् है। इसलिये उसे विधान बनाने या उसमे सशोधन करने का पूरा अधिकार है।

शासनादेश-प्रणाली—पिछले युद्ध के बाद, वर्साई की संधि की धाराओ के अनुसार, जर्मन तथा तुर्की उपनिवेशो के शासन-प्रबन्ध के लिये, यह एक नवीन प्रणाली (Mandate) स्थापित कीगई। इसके द्वारा इन दोनो देशों के उपनिवेश और शासित देश राष्ट्र-सघ के अधीन होगये और इनका शासन-भार कुछ मित्रराष्ट्रो, विशेषतः ब्रिटेन और फ्रान्स को, सोप दिया गया। यह शासना-देश प्रणाली तीन प्रकार की है।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी—यह सस्था अमृतसर मे १५ नवम्बर १९२० को स्थापित कीगई। इस संस्था का उद्देश्य यह है कि सिख पथ के गुरुद्वारो का समुचित प्रबन्ध सिखो द्वारा ही हो, सरकार द्वारा नही।

श्रीनिवास शास्त्री—महामाननीय वी० एस०; पी० सी०; भारतीय लिबरल दल के प्रसिद्ध नेता ; जन्म १८६६ ई० ; शिक्षा प्राप्त करने के बाद ट्रिपलीकेन हाईस्कूल के हैडमास्टर होगये। सन् १९०६ मे इस पद से त्यागपत्र देदिया। सन् १९१५-२७ तक स्वर्गीय गोखले के बाद पूना मे भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष रहे। सन् १९१३-१६ तक मदरास व्यवस्थापिका सभा के सदस्य रहे। सन् १९१६-२० तक दिल्ली मे इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल के मेम्बर रहे। सन् १९२१ मे साम्राज्य शान्ति-सम्मेलन मे भाग लेने गये। राष्ट्र-संघ तथा वाशिंगटन सम्मेलन के अधिवेशनो मे भारत के प्रतिनिधि बना कर भेजे गये। सन् १९२१ मे प्रिवी-कौसिलर (पी० सी०) की पदवी मिली। १९२२ में उपनिवेशो मे भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से दौरा किया। १९२१-२४ मे राज्य-परिषद् के सदस्य रहे। १९२३ मे केनिया सभ्य-मण्डल के सदस्य बने। सन् १९२६-२७ मे दक्षिण अफ्रीकी भारतीय सभ्य मण्डल के सदस्य थे। १९३७ से '४१ तक मदरास की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य रहे।

शुक्ल, पंडित रविशंकर—मध्यप्रान्तीय कांग्रेस-सरकार के भूतपूर्व प्रधान-मंत्री। सन् १९३८ के मध्य मे, जब डा० बी० एन० खरे को, उनके विरुद्ध कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्ड द्वारा लगाये गये अनुशासन के फलस्वरूप, प्रधान-मंत्रि-पद से त्याग-पत्र देना पडा, तब प० रविशंकर शुक्ल ने मंत्रि-मण्डल बनाया। डा० खरे के मत्रि-मण्डल मे आप शिक्षा-मंत्री थे। आपने अपने प्रधान-मत्रि-काल मे 'विद्या-मन्दिर' की योजना तैयार कराई और उसके

अनुसार प्रांत मे शिक्षा का प्रसार किया। 'मन्दिर' शब्द पर आपत्ति उठाकर मुसलमानो ने इस योजना का विरोध किया। १९३९ में युद्धादेश प्रश्न पर, समस्त कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के साथ, आपके मन्त्रि-मण्डल ने भी त्याग-पत्र दे दिया। अगस्त सन् १९४२ से जेल में हैं। अपनी जन्म भूमि रायपुर में प्रसिद्ध वकील रहे हैं। असहयोग-काल मे आपने प्रेक्टिस छोड़ दी और देश सेवा मे सलग्न रहे।

शुशनिग, डा० कर्ट फान—भूतपूर्व आस्ट्रियन चान्सलर, जन्म सन् १८९७; आस्ट्रिया के विविध मंत्रि-मण्डलों में सदस्य रहा; जुलाई १९३४ मे, डाल्फस की हत्या के बाद, आस्ट्रिया का चान्सलर बना। आस्ट्रिया मे राजतन्त्र स्थापित करने का प्रयत्न वह कर रहा था कि हिटलर ने आस्ट्रिया को जर्मनी मे मिलाने की मॉग पेश की। शुशनिग ने प्रतिरोध करने का विचार किया, इसी बीच हिटलर ने उसे बुला भेजा और धमकाकर उससे आस्ट्रिया मे नात्सीवाद का मार्ग प्रशस्त करने के सम्बन्ध मे लिखा लिया। लौटकर शुशनिग ने हिटलर के विरुद्ध जनमत लेने का प्रयत्न किया। इसी अवसर पर, १२ मार्च १९३८ को, जर्मन-सेनायें आस्ट्रिया मे आगई और हिटलर ने आस्ट्रिया को जर्मन राइख़ मे मिला लिया, डा० शुश-निग को गिरफ़्तार कर लिया गया और आज भी वह राजबन्दी है।

श्वेत-रूस—सोवियत सघ का एक प्रजातन्त्र; दक्षिण-पश्चिमी सरहद

पर स्थित; श्वेत रूसियो द्वारा बसा हुआ; भाषा रूसी से भिन्न किन्तु रूसी और यूक्रेनी से मिलती-जुलती; १६३६ के आरम्भ मे इसका क्षेत्रफल ४६००० वर्ग० तथा जन० ५० लाख से ऊपर थी; राजधानी मिन्स्क। १६२० के सोवियत-पोलैन्ड-युद्ध के बाद २० लाख श्वेत रूसियो की आबादी का इलाक़ा पोलेन्ड के पास रहा आया था। सितम्बर १६३६ मे, पोलैन्ड के बँटवारे के समय, सोवियत सघ का आधिपत्य स्थापित होजाने से, श्वेत रूसी प्रजातत्र की संख्या मे ४० फ़ीसदी बृद्धि होगई। श्वेत रूसी एक जाति है, राजनीतिक समुदाय नहीं। रूसी गृह-युद्ध-काल के बोल्शेविक-विरोधी 'श्वेत रूसियो' से इस जाति का कोई सम्बन्ध नहीं है। सोवियत संघ मे यह क़ौम 'बाइलो रूसी' कहलाती है (रूसी भाषा का 'बाइली'=श्वेत)। आजकल के रूस-जर्मन-युद्ध में श्वेत रूसी अन्य देशवासियो के साथ अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये नात्सियो से डट कर लोहा लेरहे हैं।

श्वेत-सेना—रूस के सन् १६१७-१६२१ के गृह-युद्ध में क्रान्ति-विरोधी सेना। क्रान्तिकारी साम्यवादियो की सेना 'लाल सेना' थी। उसकी तुलना में विरोधियो की सेना 'श्वेत' कहलाई। यह शब्द फ्रान्सीसी राजक्रान्ति से ग्रहण किया गया है, क्योकि फ्रान्सीसी प्रजातन्त्रवादियों के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली राजतन्त्रवादी सेनाओ का चिह्न श्वेत कमल था, जो फ्रान्सीसी राज-परिवार का भी चिह्न था। रूस के सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होते ही इन देश-द्रोहियो का भी अन्त होगया।

श्लैसविग-हाल्स्टीन—जर्मनी का एक उत्तरी प्रान्त ; क्षेत्र० ५,३०० वर्ग०, १८६४ में जिसे प्रशा ने डेनमार्क से ले लिया। इस प्रदेश के डेनिश अधिवासी अर्द्ध शताब्दि से अधिक समय से मतालबा कर रहे थे कि उन्हे डेनमार्क वापस भेज दिया जाय। १६४० मे, वर्साई की संधि के नुसार, इसके सम्बन्ध मे, जनमत लिया गया, फलतः उत्तरी श्लैसविग ज़िला डेनमार्क को वापस कर दिया गया, तब से यह 'दक्षिणी जटलैण्ड' कहलाता है। इस ज़िले में ३५,००० जर्मन भी हैं, जिनको अनेक अधिकार प्राप्त हैं और उनके अपने मदरसे हैं। जर्मनी ने डेनमार्क पर अधिकार कर लिया है किन्तु इस ज़िले को जर्मन-राइख़ मे शामिल नहीं किया है।

स

सऊदी अरब—जिसे सऊदिया भी कहा जाता है; इब्न सऊद का स्वतन्त्र अरब राज, जो अरब प्रायद्वीप के आन्तरिक भाग, मुख्य अरब और लालसागर के किनारे के भू-भाग, हैजाज, को मिलाकर बना है; क्षेत्र० ४॥ लाख वर्ग०, जन० ४५ लाख, राजधानी, अरब के मध्य, नज्द में, अररियाज़। मुसलमानों के तीर्थ-स्थल, मक्का शरीफ और मदीना मुनव्वरा, सऊदिया के ही अन्तर्गत हैं। मक्का इस देश की दूसरी राजधानी माना जाता है और जद्दा, लालसागर पर, यहाँ का प्रधान बन्दरगाह है। नज्द और हैजाज़ को मिलाकर, सन् १९३२ मे, इब्न सऊद ने इस सल्तनत की स्थापना की। यह प्रदेश विस्तृत किन्तु छितरा बसा हुआ और जिसका अधिकाश भाग सहरा यानी मरुभूमि है। नज्द वहाबी सम्प्रदाय के मुसलमानों का केन्द्र है। वहाबी मुसलमान, धर्म में बाह्याचार के अधिक क़ायल नहीं। वे पाकबाज और पवित्रतावादी तो हैं किन्तु शान्तिवाद के विरुद्ध वह लडाके और कट्टर हैं। सऊदी अरब, आधुनिक सभ्यता के अनुसार, पिछड़ा हुआ देश है। वहाँ अच्छी सड़कें नहीं हैं, सिर्फ मोटरें वहाँ चलती हैं, थोडे से हवाई जहाज़ और टैंकों से लैस छोटी-सी आधुनिक सेना है। हैजाज रेलवे मदीना से दमिश्क तक जाती है, किन्तु इसकी हैजाज शाखा इस समय बन्द है। 'रियाल' यहाँ का (हिन्दुस्तानी रुपये के बराबर) सिक्का है। पूर्वी सऊदिया मे मिट्टी का तेल भी निकलता है, जिसका ठेका केलिफोर्निया की स्टैन्डर्ड आइल कम्पनी के पास है। सन् १९४०–४१ मे यहाँ ६ लाख टन तेल निकाला गया। इब्न सऊद अँगरेजों का दोस्त है, मिस्र और इराक़ से भी सऊदिया की मैत्रीपूर्ण सन्धियाँ हैं। १९३४ मे इब्न सऊद ने यमन (अरब के अन्य स्वाधीन राज) पर चढ़ाई करदी, जिसमे यमन की हार हुई। इस युद्ध में सऊदिया को बरतानिया ने और यमन को इटली ने मदद दी।

सत्यमूर्ति, एस०—सुप्रसिद्ध कांग्रेसी विधानवादी नेता; जन्म १८८७ ई०; बी० ए०, एलएल० बी०; मदरास हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध ऐडवोकेट थे। सन् १९१९ में कांग्रेस-डेपुटेशन के सदस्य की भाँति और सन् १९२५ मे स्वराज्य दल के प्रतिनिधि होकर इँगलैण्ड गए। मदरास की अनेक शिक्षा-सस्थाओं के सभापति थे। मदरास प्रान्तीय कौंसिल और अ०-भा० कांग्रेस कमिटी के सदस्य रहे। सहकारी समितियों तथा कमीशनों के सदस्य रहे और उनके सामने बयान दिए। तामिल नाड प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के सभापति रहे। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में तीन बार जेल-यात्रा की। केन्द्रिय लेजिस्लेटिव असेम्बली के प्रमुख सदस्य तथा केन्द्रिय असेम्बली कांग्रेस-पार्टी के उपनेता थे। आपके तर्कपूर्ण और प्रभावशाली भाषणो से असेम्बली के सरकारी हलक़ों मे चिन्ता उत्पन्न होजाती थी। 'भारत छोडो' प्रस्ताव के बाद आपको ११ अगस्त '४२ को पकड़ कर नज़रबन्द कर दिया गया था, किन्तु जेल में सख्त बीमार होजाने के

कारण १० जनवरी '४३ को मदास के जनरल अस्पताल मे लाये गये और २ फ़रवरी को रिहा कर दिये गये। २८ मार्च को अस्पताल में ही उनका देहान्त होगया।

सत्याग्रह—शाब्दिक विभक्ति सत्य+आग्रह अर्थात् सत्य के लिये आग्रह : व्यक्ति या व्यक्ति-समूह द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सत्य पर आश्रित रहकर अहिसात्मक प्रतिरोध या प्रयास। महात्मा गांधी ने इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम दक्षिण अफ़्रीका के भारतीय आन्दोलन मे किया। महात्मा गाधी ने अपनी 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक में लिखा है—

"सत्याग्रह को अँगरेज़ी मे Passive resistance (निष्क्रिय प्रतिरोध) कहा जाता है। यह शब्द उस तरीक़े के लिये काम मे लाया गया है जिसमें लोगों ने अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए स्वयं कष्ट उठाया है। शस्त्र-

के प्रति उत्तरदायी हो और समस्त विभाग भारतीयों को सौंप दिए जायँ।

मार्च, ४२ मे आपने नई देहली में सर स्टैफर्ड क्रिप्स से भेट की और अपनी उक्त मॉगों पर जोर दिया। आपको कई वर्ष पूर्व सरकार ने 'सर' की उपाधि प्रदान की थी। आप प्रिवी कौंसिल के भी सदस्य हैं। भारत के वर्तमान वैधानिक सङ्कट के निवारण के लिये आप निरन्तर प्रयत्नशील हैं, और अगस्त १६४२ मे 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद उत्पन्न हुई स्थिति मे, भारत की एकमात्र सार्वजनिक सस्था काग्रेस के दमन के बाद, आप ही देश की स्थिति सँभालने का प्रयत्न प्रमुख रूप से कर रहे हैं। फरवरी १६४३ मे, महात्मा गान्धी के २१ दिन के व्रत के समय, आपकी अध्यक्षता मे ही, सर्वदल सम्मेलन हुआ और ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री मि० चर्चिल को तार भेजा गया। आप और आपके सहयोगी श्री राजगोपालाचारी, आदि अन्य भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

समाजवाद—सार्वजनिक सम्पत्ति और सुगठित आर्थिक-व्यवस्था की एक प्रणाली तथा एक राजनीतिक आन्दोलन। इसी प्रणाली की स्थापना करना समाजवाद का उद्देश है। १६वीं शताब्दिके पूर्वार्द्ध-कालमें आधुनिक समाजवाद के अनुकूल आदर्श मानव-संस्थाओं की कल्पना पुस्तको मे कीगई। इससे भी बहुत पूर्व, सबसे पहले, सर टामस मोर (काल १४७८-१५३५) ने अपनी 'यूटोपिया' नामक पुस्तक मे आदर्श समाजवादी सस्थाओं की कल्पना की। सर टामस के मत के अनुयायी अपने उद्देश की सिद्धि का साधन क्रान्ति को नहीं प्रचार को मानते हैं। १७७२ और १८३७ के बीच फ्रान्सीसी लेखक एफ० सी० फौरियर ने इस प्रकार के समाज की कल्पना को व्यावहारिक रूप देने के लिये सस्थाओं की स्थापना की। सन् १७७१-१८५८ मे राबर्ट ओइन नामक कपडे के एक कारख़ानेदार ने इस प्रकार का एक आदर्श

कारख़ाना खोला और इँगलेण्ड और अमरीका मे आदर्श समाजवादी संस्थाओं की स्थापना के लिये उसने बहुत-सा धन दिया। किन्तु यह सब प्रयत्न विफल हुए।

समाजवाद को १८४१ मे सबसे पहले राजनीतिक महत्ता प्राप्त हुई। फ्रान्स मे प्राउढन और लुई ब्लेक ने राष्ट्रीय उद्योग-धन्धो की स्थापना की। किन्तु कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक ऐंजल्स, दोनों जर्मन समाजवादियो, ने पूर्वोक्त दोनों का विरोध किया। मार्क्स और ऐंजल्स ने अपने कम्युनिस्ट घोषणापत्र में समाजवाद की नवीन व्याख्या की और 'लीग आफ् कम्युनिस्ट्स' की स्थापना की। अपने घोषणापत्र मे इन लोगो ने इस प्रणाली को अस्वीकार किया कि मानवता और नैतिकता के प्रचार से समाजवाद की स्थापना होसकती है। इन्होंने कहा कि समाजवाद का सम्बन्ध तो वर्ग-संघर्ष से है। मार्क्सवाद, जो 'वैज्ञानिक समाजवाद' कहा जाता है, के उदय के बाद 'यूटोपियन' सिद्धान्त का अन्त होगया।

उपरान्त जर्मनी समाजवाद का केन्द्र बन गया। १८८१ से १८६१ तक ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया और रूस सहित अनेक देशो में समाजवादी दल स्थापित हुए। १८६५ मे मार्क्स ने इन्टरनेशनल वर्कर्स एसोसियेशन की स्थापना की, बाद में जिसका नाम 'फर्स्ट इन्टरनेशनल' पड़ा, और जिसके कुछ हज़ार सदस्य थे। मार्क्सवाद और अराजकतावाद (अनारकिज्म) में संघर्ष चलता रहा और १८७२ में इसका अन्त हो गया। १८८३ में मार्क्स की मृत्यु हो-गई, किन्तु ऐंजल्स १८६४ तक, जब उसकी मृत्यु हुई, इस आन्दोलन को चलाता रहा। १८८६ में इंटरनेशनल को पुनर्संगठित किया गया और संसार भर के समाजवादी दल उसमें सम्मिलित होगये। इस 'द्वितीय इंटरनेशनल' को विश्वक्रांति का केंद्र माना तो गया किंतु इसमे सुधारवादी और क्रांति-कारी दो पक्ष होगये: सुधारवादी शांतिपूर्ण आंदोलन द्वारा क्रमिक विकास पर ज़ोर देते थे और क्रांतिकारी हिन्सापूर्ण क्रान्ति पर।

१६१२ में अन्तर्राष्ट्रीय संघ (इन्टरनेशनल) ने युद्ध के विरोध की आवाज़ उठाई और घोषणा की कि यदि पूँजीपतियों ने युद्ध छेड़ा तो मज़दूर समुदाय विद्रोह करेगा। किन्तु, अगस्त १६१४ में, युद्ध छेड़ने पर यह कुछ नहीं हुआ। कुछ को छोड़कर सन्सार के समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीयता का त्याग कर

राष्ट्रवादी बनगये और युद्ध-प्रयत्नों में अपनी-अपनी सरकार की उन्होंने मदद की। उग्र समाजवादियों ने इस नीति की निन्दा की और नया आन्दोलन सगठित किया। १९१७ की दूसरी क्रान्ति के बाद, लेनिन के नेतृत्त्व में, रूस में यह आन्दोलन जोर पकड़ गया। जर्मनी में, नवम्बर १९१८ में, लेबकनेख्त के नेतृत्त्व मे, समाजवादी आन्दोलन उठा और उसने वहाँ युद्ध का अन्त ही कर दिया। जर्मनी मे नरम समाजवादी शक्तिशाली होगये, किंतु उग्र दल क्रान्ति के प्रयत्न मे सलग्न रहा। इसके नेता लेबकनेख्त और रोज़ा लक्सम्बर्ग मारे गये और सरकार ने आन्दोलन का अन्त कर दिया। उपरान्त १९२० में मास्को मे तृतीय या 'कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल' की स्थापना हुई। योरप के अनेक देशों मे कम्युनिस्ट दलों ने समाजवादी सस्थाओ से सम्बन्ध तोड़ लिया। समाजवादी अपने देशो की सरकारों के अधिकारी बन गये। उन्होंने तय किया कि जब तक बहुमत समाजवाद के पक्ष में नहीं हो जायगा, वह सरकारों मे समाजवादी विधान की स्थापना न करेंगे। ज्यूरिच (स्विट्ज़रलेन्ड) में, अधूरे ढंग पर, 'सोशलिस्ट इन्टरनेशनल' की स्थापना कीगई। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दलों के बीच के 'स्वतन्त्र समाजवादियों' ने १९२२ मे 'टू-एन्ड-ए-हाफ़ इन्टरनेशनल' नाम से अपनी 'ढाई ईंट की मसजिद' अलग बनाई, किन्तु जल्द इनका ख़ात्मा होगया। सन् १९२२ और १९३३ के दर्मियान सैकन्ड और थर्ड इन्टरनेशनल को एक करने के प्रयत्न में पारस्परिक सघर्ष चलता रहा। मज़दूर आन्दोलन के इस विग्रह के कारण जर्मनी में नात्सीवाद का उत्थान हुआ, जिसने वहाँ समाजवाद के दोनो पक्षों को नष्ट कर दिया। दोनों को मिलाने के लिये सयुक्त-मोर्चा (पापुलर फ्रन्ट) के नाम से फिर प्रयत्न हुआ, किन्तु उसका क्षणिक प्रभाव केवल स्पेन और फ्रान्स में हुआ। जर्मनी-इटली-स्पेन के गॅठजोडे ने प्रजातन्त्र-देशों मे समाजवादी विचार-धारा को दुर्बल कर दिया। इस युद्ध मे बरतानवी और मित्रदेशीय समाजवादी, हिटलरवाद के ख़िलाफ़, अपने देशो की सहायता कर रहे हैं। विदेशों मे पड़े हुए जर्मन समाजवादी भी हिटलरवाद के विरोधी हैं।

समाजवाद की दो प्रमुख्य धाराओ—प्रजातन्त्री समाजवाद (डिमोक्रेटिक ...्म) और साम्यवाद (कम्युनिज्म)—के अतिरिक्त कई अन्य धारायें

हैं, जिनके अपने उद्देश है, जैसे अराजकतावाद (अनारकिज्म), संघवाद (सिंडीकेलिज़्म), सहकारितावाद (को-अपरेटिविज्म) और ईसाई (कैथलिक) समाजवाद (क्रिस्चियन सोशलिज़्म) ।

संसार मे रूसी सोवियत संघ ही सपूर्ण रूप से समाजवादी देश है । मेक्सिको मे भी समाजवाद का प्रसार हुआ है । अन्य देशो मे समाजवाद का व्यवहार तो आरम्भ नही हुआ किंतु जनता पुकारने लगी है कि राष्ट्रीय सम्पत्ति पर सरकार का आधिपत्य होना चाहिए ।

सम्पूर्णानन्द, श्री—सयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेसी नेता, जन्म सन् १८६६ ई०; बी० एससी०, एल० टी०; डैली कालिज इन्दौर में अध्यापक और डूँगर कालिजियट हाईस्कूल बीकानेर मे प्रिन्सिपल रहे । प्रयाग के उपरान्त काशी से प्रकाशित 'मर्यादा' और काशी के'आज'तथा ॲगरेज़ी दैनिक 'टुडे' का सम्पादन किया । सभी कांग्रेसी आन्दोलनो मे भाग लिया और बार बार जेल गये । सन् १६२३–२६ तक काशी विद्यापीठ के अध्यापक । १६२४–२६ मे प्रान्तीय धारा सभा के सदस्य और १६२५–२६ तक संयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के मंत्री रहे तथा १६३०–३६ मे अ०-भा० कांग्रेस कमिटी के सदस्य । सन् १६३४ मे अखिल-भारतीय काग्रेस समाजवादी दल के अध्यक्ष । समाजवादी विचार-धारा के प्रचार मे अग्रगण्य रहे । हिन्दी के प्रसिद्ध दार्शनिक और राजनीतिक लेखक । सन् १६३७ मे, पं० प्यारेलाल शर्मा के त्यागपत्र देदेने के बाद, समाजवादी दल से त्यागपत्र देकर, यू० पी० कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल मे शिक्षा-मंत्री नियुक्त हुए । आपने हर्षवर्धन, महदाजी सिंधिया, मिस्र की स्वाधीनता, चीन की स्वाधीनता, अशोक, अन्तर्राष्ट्रीय-विधान, समाजवाद, व्यक्ति और राज्य, दर्शन और जीवन, आदि कई पुस्तके लिखी हैं । सन् १६४० मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति निर्वाचित किये गये, किन्तु युद्ध-विरोधी-सत्याग्रह में जेल चले जाने के कारण सम्मेलन में सम्मिलित न होसके । आपकी रचनाओ पर 'मंगलाप्रसाद' और 'मुरारका' पारितोषक आपको प्रदान किये जाचुके हैं । 'भारत छोडो' प्रताव के बाद आप जेल मे हैं ।

सर्वहारा—इस शब्द का प्रयोग केवल श्रमिको के लिये किया जाता है, जो सम्पत्तिहीन हैं अर्थात् जो किसी सम्पत्ति या सम्पत्ति के साधनो के स्वामी

नहीं हैं। वे अपना श्रम वेचकर ही अपना भरण-पोपण करते हैं। इसमें बौद्धिक तथा शारीरिक श्रम करने वाले दोनों ही प्रकार के श्रमिक शामिल हैं।

सरोजिनी नायडू, श्रीमती—कांग्रेस की सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्री; जन्म १८७६ ई०, हैदरावाद तथा लदन में शिक्षा प्राप्त की। डा० एम० जी० नायडू के साथ, १८६८ मे, विवाह किया। दो पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हैं। काव्य से इन्हें बडा अनुराग रहा। अँगरेजी मे कई काव्य-ग्रथ लिखे। १९१६ में शासन-सुधार कमिटी के सामने गवाही दी। १९१६ मे अन्तर्राष्ट्रीय महिला मताधिकार परिषद् जिनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड) में सम्मिलित हुईं और वहाँ भाषण दिया। भारत की प्रतिनिधि की हैसियत से काग्रेस द्वारा दक्षिण अफ्रीका भेजी गईं। बम्बई म्युनिसिपल कारपोरेशन की सदस्या रही हैं और बम्बई प्रांतीय काग्रेस कमिटी की अध्यक्षा भी। १९२२ में अखिल-भारतीय काग्रेस कमिटी की सदस्या और सन् १९२५ मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कानपुर-अधिवेशन की राष्ट्र-नेतृ चुनीगईं। नमक-सत्याग्रह, १९३०, में अपने बडी वीरता-पूर्वक भाग लिया और धरासना मे नमक गोदाम पर सत्याग्रह किया। श्रीमती सरोजिनी देवी उच्चकोटि की कवियित्री हैं। विदेशों मे भी उनकी कविता का समुचित आदर हुआ है। आपकी अँगरेज़ी और उर्दू भाषण-शैली भी कवित्त्वपूर्ण और कलापूर्ण है। अँगरेज़ी, वँगला, फ़ारसी, उर्दू पर आपका समानरूप से अधिकार है। गाधीजी के सम्पर्क ने आपके कवित्त्वमय जीवन में सत्य और शिव का सम्मेलन कर दिया है। काग्रेस कार्यकारिणी की सदस्या होने के कारण, 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद अगस्त १९४२ में, आपको पकड़ लिया गया था, किंतु बीमार होजाने के कारण मार्च १९४३ मे आपको रिहा कर दिया गया।

सविनय अवज्ञा—यह सत्याग्रह का एक स्वरूप है। उद्देश विशेष की

सिद्धि के लिये शासन के अनैतिक क़ानूनों को शान्तिपूर्वक भग करना तथा फल-स्वरूप जो दंड दिया जाय उसे सहर्ष स्वीकार करना इसका तात्पर्य है।

सहकारिता दल—सन् १६१८ में, पार्लमेंट तथा स्थानीय शासन में प्रत्यक्ष सहकारी प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के उद्देश से,ब्रिटिश सहकारिता आन्दोलन द्वारा, इस दल की स्थापना कीगई। सहकारी संस्थाओं के २४ लाख अर्थात् कुल सहकारी आन्दोलन के सदस्यों की अर्द्धसंख्या, इस दल के सदस्य हैं। १६२७ मे इस दल ने ब्रिटेन के मज़दूर दल से समझौता किया। तबसे पार्लमेंट की मज़दूर सीटों मे से कुछ जगहे इस दल के प्रतिनिधियों के लिये सुरक्षित रहती हैं।

संघवाद (सिन्डीकेलिज्म)—यह समाजवाद का एक स्वरूप है। फ्रांसीसी भाषा मे सिन्डीकेट का प्रयोग 'मज़दूर-सघ' के अर्थ में किया जाता है। यह एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है जिसका ध्येय मज़दूर संघों को सामाजिक क्रान्ति तथा भावी समाज-रचना का आधार बनाना है। सघवादी मज़दूर-दल को एक राजनीतिक दल के रूप मे सगठित कर पार्लमेंट में प्रवेश के पक्ष में नहीं हैं। वह विधानवाद के ख़िलाफ़ हैं। सत्ताधारी वर्ग के विरुद्ध मज़दूरों के 'सीधे' तथा औद्योगिक कार्य के पक्ष में हैं। हड़ताल उनका प्रमुख अस्त्र है। उनके अनुसार हड़तालों को सार्वजनिक हड़ताल का रूप देना चाहिये। इसीसे अन्त मे क्रान्ति होगी। क्रान्ति के बाद मज़दूर संघों को (मार्क्स के अनुसार राज्य को) कारख़ानों पर अपना अधिकार जमा कर उन्हें समाजवादी सिद्धान्तों के आधार पर चलाना चाहिये। इसमें भौगोलिक इकाई का कोई प्रतिनिधित्व नहीं होगा प्रत्युत् समाज की सस्थाएँ मज़दूर-संघो के प्रतिनिधियों द्वारा चलाई जायँगी।

बीसवीं शताब्दि के आरम्भिक युग मे, विश्व-युद्ध से पूर्व, फ्रान्स, स्पेन, जर्मनी, इटली, ब्रिटेन, आदि देशों मे इस आन्दोलन ने अच्छी प्रगति की; परन्तु बाद में यह मन्द पड़ गया। संघवाद अराजकवाद, मार्क्सवाद तथा मज़दूरसंघवाद का सम्मिश्रण है।

संघीय न्यायालय—सन् १६३५ के भारतीय शासन-विधान की धारा २००-२०३के अनुसार भारतमे १अक्टूबर सन्१६३७ से सघीय न्यायालय (Federal Court of India) को स्थापना कीगई। विधान के अनुसार संघीय न्याया-

लय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा ६ तक न्यायाधीश नियुक्त किये जा सकते हैं। सम्राट्, भारतीय व्यवस्थापक मण्डल तथा वाइसराय की प्रार्थना पर, इन न्यायाधीशों की सख्या में वृद्धि कर सकता है। सम्राट् प्रधान न्यायाधीश तथा न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है तथा उन्हें सपरिषद् सम्राट् द्वारा निर्धारित वेतन और भत्ता मिलता है। प्रत्येक न्यायाधीश को अपना पद ग्रहण करते समय राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ती है। ६५ वर्ष की आयु के बाद उन्हे अवकाश ग्रहण करने की व्यवस्था कीगई है।

इस समय संघीय-न्यायालय का प्रमुख भवन नई दहली में है। सर मौरिस ग्वायर इसके प्रधान न्यायाधीश हैं। इनके अतिरिक्त दो न्यायाधीश हैं। श्री एम० आर० जयकर तथा माननीय सर शाह मुहम्मद सुलेमान सर्वप्रथम न्यायाधीश नियुक्त किये गये। श्री जयकर प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति के सदस्य नियुक्त किए गये, इसलिये उन्होने त्याग-पत्र देदिया। माननीय सर शाह की मृत्यु होगई। सर शाह के स्थान पर सर मुहम्मद ज़फरुल्लाखाँ को न्यायाधीश और सर ब्रजेन्द्रलाल मित्र को एडवोकेट-जनरल नियुक्त किया गया। सर मुहम्मद ज़फ़रुल्ला पीछे चीन में भारतीय सरकार के एजेन्ट नियुक्त किये गये और उनके स्थान पर माननीय सर श्रीनिवास वरदाचारियर नियुक्त हुए।

सघीय न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र दो भागों में विभक्त है; (१) मौलिक अधिकार-क्षेत्र (Original Jurisdiction) और (२) अपीलों को सुनने का अधिकार-क्षेत्र। ऐसे मामले जो सघ-राज्य या ब्रिटिश भारतीय प्रान्त या सघ मे शामिल देशी राज्य के बीच किसी ऐसे प्रश्न के सम्बन्ध मे होंगे जिस पर कोई क़ानूनी अधिकार या उसकी मात्रा निर्भर है, तो वे संघीय न्यायालय मे ही आरम्भ होगे।

सघीय न्यायालय को दो प्रकार की अपीलें सुनने का अधिकार है—(१) ब्रिटिश भारत के हाईकोर्टों के निर्णयो की अपीले, (२) देशी रियासतो के हाईकोर्टों के निर्णयो की अपीले।

ब्रिटिश हाईकोर्टों के ऐसे निर्णयो की अपीले संघीय न्यायालय मे की जा सकेंगी जिनका सम्बन्ध शासन-विधान की धाराओ या उसके लिये सपरिषद् द्वारा जारी किये गये किसी ऑर्डर की व्यवस्था से हो और जिनके

विषय मे हाईकोर्ट यह प्रमाणित करे कि उनका सम्बन्ध इस प्रकार के प्रश्नो से है। हाईकोर्ट से इस आशय का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेने पर ही सघीय न्यायालय मे अपील की जा सकती है। सघीय न्यायालय की किसी विशेष आज्ञा से किसी अन्य निर्णय की अपील भी उस न्यायालय मे की जा सकती है।

संघीय न्यायालय के निर्णयो की अपीले प्रिवी कौंसिल मे की जाती है। यह अपीले सघीय न्यायालय की आज्ञा या सपरिषद् सम्राट् की आज्ञा से की जा सकती हैं।

संयुक्त-मोर्चा (पापुलर .फ्रन्ट)—सन् १६३५ मे साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संघ ने यह प्रस्ताव किया कि फ़ासिज़्म के विरुद्ध साम्यवादी, समाजवादी तथा अन्य प्रजातंत्रवादी दल एक संयुक्त-मोर्चा क़ायम करे। संयुक्त मोर्चे के प्रचार का सामान्य कार्यक्रम फासिज्म का सामूहिक प्रतिरोध तथा उग्र सामाजिक सुधारो के लिये आन्दोलन—किन्तु समाजवाद का ग्रहण नहीं—करना था। स्पेन तथा फ्रान्स मे सयुक्त मोर्चे की सरकारे स्थापित कीगईं। स्पेनी संयुक्त-मोर्चे का, वहॉ के गृह-युद्ध मे, पतन होगया और फ्रान्स मे, १६३८ के आरम्भ मे, यह समाप्त कर दिया गया।

संयुक्त-राज्य अमरीका—महाद्वीपीय क्षेत्र० ३०,२६,७८६ वर्ग०; उसके बाहरी शासित प्रदेशो सहित कुल क्षेत्र० ३७,३८,३६५ वर्ग०; सयुक्त राज्यो की जन० १३,००,००,०००; संयुक्त अमरीका मे ४८ राज्य तथा २ प्रदेश हैं; राजधानी वाशिंगटन। अमरीकी शासन-विधान संघ-(Federal) प्रणाली का है, जिसमे राज्यो को काफ़ी सत्ता प्राप्त है। हाल ही में केन्द्रिय सत्ता को अधिक सशक्त बनाया गया है। संघीय-पार्लमेंट कांग्रेस कहलाती है, उसमे दो धारा-सभाएँ हैं: प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) और सीनेट। पहली सभा में, दो वर्ष के लिये, जनता द्वारा निर्वाचित, ४३५ सदस्य होते है और सीनेट मे ६६, जो ६ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। प्रत्येक राज्य की जनता दो प्रतिनिधि चुन कर सीनेट मे भेजती है। इसमे प्रति दो वर्ष बाद एक-तिहाई सदस्यो का चुनाव होता रहता है। सयुक्त-राज्य का उपराष्ट्रपति सीनेट का प्रधान होता है। मसविदे (बिल) दोनों सभाओं में पेश किये जा सकते हैं, किन्तु राजस्व मे वृद्धि करने वाले मसविदे केवल प्रतिनिधि सभा मे ही पेश किये जा सकते

हैं। मसविदों का दोनों धारा-सभाओं द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है।

राष्ट्रपति ही संयुक्त-राज्य का प्रमुख शासक है। वह चार वर्ष के लिये, परोक्ष निर्वाचन-प्रणाली द्वारा—समस्त राष्ट्र की जनता के चुने हुए मतदाताओं द्वारा—चुना जाता है। राष्ट्रपति किसी भी मसविदे को, जो कांग्रेस द्वारा स्वीकार किया गया हो, अस्वीकार कर सकता है, किन्तु कांग्रेस की दो-तिहाई राय से यह अधिकार व्यर्थ किया जा सकता है। अमरीकी राष्ट्रपति को अपार अधिकार प्राप्त हैं। युद्ध-पूर्व फ्रांस की भाँति वह केवल प्रतिनिधिक व्यक्ति ही नहीं अपितु, वास्तव में, अमरीका का शासक होता है। वह स्वयं अपना प्रधान मन्त्री होता है और अपने मंत्रि-मण्डल को मनोनीत करता है। यह मंत्री राष्ट्रपति के प्रति—कांग्रेस के प्रति नहीं—उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार स०-रा० अमरीका की सरकार पार्लमेन्टरी नहीं राष्ट्रपति की सरकार कही जा सकती है। अमरीकी विधान वास्तव मे कांग्रेस और राष्ट्रपति के बीच सन्तुलन स्थापित रहने के उद्देश पर आधारित है। वह कांग्रेस के विचार के लिये कोई भी बिल भेज सकता है। वह सीनेट की सम्मति से संधि भी कर सकता है। युद्ध-घोषणा के लिये कांग्रेस की सम्मति आवश्यक है। राष्ट्रपति पद के लिये एक व्यक्ति कई बार खड़ा होसकता है; अतएव वर्तमान राष्ट्रपति, फ्रेंकलिन रूज़वेल्ट, अतकब ३ बार चुने जाचुके हैं। अमरीका का न्याय-विभाग बहुत स्वतंत्र तथा शक्तिशाली है। यदि सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) किसी क़ानून को अवैधानिक घोषित करदे, तो वह क़ानून रद होजाता है। राष्ट्रपति और कांग्रेस के साथ तीसरा स्थान वहाँ न्याय-विभाग का है। प्रथम दोनों द्वारा स्वीकृत विधान पर भी न्याय-विभाग विचार कर सकता है।

प्रत्येक राज्य की अपनी दो धारा-सभाएँ हैं। प्रत्येक राज्य का प्रमुख शासक गवर्नर होता है, जिसका चुनाव किया जाता है। सयुक्त-राज्य की २॥ लाख स्थायी सेना और युद्धकाल मे शुरू कीगई अनिवार्य सैनिक-भर्ती के अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में नागरिक सेनाएँ हैं, जिनकी सख्या दो लाख है, और जो 'नेशनल गार्ड्स' कहलाती हैं। पिछले युद्ध के बाद अमरीका मे ४०,५७,००० सैनिक थे। राष्ट्रपति ही वहाँ का प्रधान सेनापति है। १६ सितम्बर १६४० को राष्ट्रपति रूज़वैल्ट ने कांग्रेस द्वारा स्वीकृत

अनिवार्य-सैनिक-सेवा मसविदे पर हस्ताक्षर किये। अमरीका में पहली बार शान्त-युग मे ऐसा किया गया। इस क़ानून के अनुसार २१ से ३१ तक की अवस्था वाले नागरिको को सेना में भर्ती होना अनिवार्य कर दिया गया और दिसम्बर १९४१ में, अमरीका के लडाई में शामिल होने पर, यह उम्र २० और ४४ कर दी गई। १९२१ की वाशिगटन-संधि के अनुसार अमरीका बरतानिया के बराबर नौ-सेना रख सकता था, किन्तु १९३९ ई० तक अमरीका इससे लाभ न उठा सका और उसके जंगी जहाज़ों का वज़न बरतानवी जंगी जहाज़ों के एकत्रित वज़न से कुछ कम था। उस समय अमरीकी नौसेना में १५ जंगी जहाज़, १७ भारी और १९ हलके क्रूज़र, ५ वायुयान-वाहक जहाज़, २०६ विध्वंसक और ८६ डुबकनी कश्तियाँ थीं। किन्तु आज तो अमरीका अतुलनीय जंगी सामान तय्यार कर रहा है।

अमरीका मे प्रतिवर्ष १,५३,९०० प्रवासियों को बसने की आज्ञा है। ब्रिटेन, जर्मनी, आयरलैण्ड तथा अन्य उत्तरी योरपीय देशों से प्रवासी वहाँ जासकते हैं और दक्षिण तथा पूर्वीय देशों के प्रवासी थोड़ी संख्या में। अन्य अमरीकी देशो के प्रवासियों को बसने की आज़ादी है। अमरीका में दो प्रमुख दल हैं: रिपब्लिकन तथा डेमोक्रेट। पिछले ८० साल से इन्हीं दो दलों—रिपब्लिकनों की अधिक—सरकारें रही हैं। पिछला चुनाव ५ नवम्बर १९४० को हुआ था। वर्तमान ४३५ प्रतिनिधियों मे २६८ डेमोक्रेट और १६२ रिपब्लिकन हैं, और सीनेट मे ६८ डेमोक्रेट और २८ रिपब्लिकन। सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, मज़दूर कई छोटे दल भी हैं। समाजवादी आन्दोलन दुर्बल अवस्था मे है। बताया जाता है कि अमरीका में सब नागरिकों को समानरूप से बढ़ने और राष्ट्र की सम्पत्ति से लाभ उठाने का अवसर प्राप्त है, इसलिये वहाँ समाजवादी प्रगति की गुञ्जायश नहीं है। किन्तु कुछ लोग राष्ट्रपति रूज़वेल्ट की नवीन योजना और वर्तमान अमरीकी मज़दूर आन्दोलन की ओर इङ्गित कर कहते हैं कि वहाँ पूर्व युग समाप्त हो चुका है और सोशलिज़्म वहाँ विकसित होगा।

संयुक्त-राज्य अमरीका विगत विश्व-युद्ध के बाद से संसार में सबसे शक्तिशाली राज्य बन गया है। वह सबसे धनी देश है। कुछ को छोड़कर राष्ट्र के लिये सभी आवश्यक सामग्री और कच्चा माल वह स्वयं तैयार

और पैदा करता है। सन् १९३९ मे ५ करोड़ ३० लाख टन ईसपात, ४९ करोड़ ९० लाख टन कोयला और १७ करोड़ २० लाख टन तेल वहाँ पैदा हुआ, जो किसी भी देश की पैदावार से अनेक गुना अधिक है। यद्यपि एक बड़ी सीमा तक अमरीका स्वाश्रयी है तथापि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समर्थक है।

अकरीका की वैदेशिक नीति का मूल तत्त्व यह रहा है कि वह योरपीय मामलों मे हस्तक्षेप न करे और न योरप का कोई राष्ट्र उसकी नीति के पालन मे बाधा उपस्थित करे। वह मनरो-सिद्धान्त का अनुयायी है। विगत विश्व-युद्ध में अमरीका के सम्मिलित होने के अनेक कारण बताये जाते हैं, जैसे मित्र-राष्ट्रों को दिया हुआ ऋण, प्रजातन्त्र का अनुयायी होना और अँगरेज़ी-भाषा-भाषियो की एकता। इनके अलावा अमरीका की यह आशङ्का कि यदि मित्र-राष्ट्र हारगये तो जर्मनी से अमरीकी सुरक्षा को ख़तरा पैदा होजायगा। कुछ भी हो, पिछले युद्ध के बाद अमरीका को निराशा हुई, वर्साई की सन्धि पर उसने हस्ताक्षर नहीं किये और न राष्ट्रसघ मे ही वह सम्मिलित हुआ, (यद्यपि सघ के जनक अमरीकी राष्ट्रपति विल्सन थे) और संसार की राजनीति से तटस्थ रहने की भावना अमरीका में एक बार फिर प्रबल होउठी।

योरप मे अशान्ति बढते देख १९३५ मे वहाँ तटस्थता कानून बनाया गया, ताकि पिछले युद्ध की स्थिति को फिर न दुहराया जासके। पिछले युद्ध मे अमरीका ने मित्र-राष्ट्रों को सामान उधार दिया था और उसे अपने जरिये पहुँचाया था, जिसमे उसके जहाज डुबा दिये गये थे। १९३७ में तटस्थता कानून की पुनरावृत्ति कीगई, जिसके द्वारा विदेशों को हथियारों का बेचना और पहुँचाना बिलकुल रोक दिया गया और दूसरे जगी सामानों को नकद मूल्य पर, और लेजाने की जिम्मेदारी ख़रीदार राष्ट्र के ज़िम्मे रखकर बेचना तय किया गया। सितम्बर १९३९ मे वर्तमान युद्ध छिड़ने पर कांग्रेस का विशेष अधिवेशन किया गया और, हफ़्तों के वाद-विवाद के बाद, हथियारों को बेचने का बन्धन रद कर दिया गया और नक़द मूल्य पर हथियार अपने आप लेजाने का क़ानून स्वीकार किया गया। लड़ाई के दौरान मे जब दिखाई पड़ा कि ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रो को अमरीकी ऋण और जहाजों की आवश्यकता है, तब, १२ मार्च १९४१ को, 'उधार और पट्टा क़ानून',

बनाया गया जिसके द्वारा नक़द दाम देने की धारा उठा दीगई। इसके बाद राष्ट्रपति रूज़वैल्ट और अनेकानेक अमरीकी जन अनुभव करने लगे कि उनका महाद्वीप ससारव्यापी युद्ध और उससे उत्पन्न विकट परिस्थितियो से पृथक् नही रह सकता। नात्सीवाद की सम्भावित विजय के बाद का ख़तरा उन्हे दिखाई पडने लगा। अतएव उन्होंने अपने देशवासियो को मित्रराष्ट्रो की सहायता की जाने की आवश्यकता को सुझाया। किन्तु फ्रास के पतन के बाद तक अमरीका चुप रहा। मित्र-राष्ट्रों को सहायता देने के प्रश्न पर विचार करने के लिये एक कमिटी बिठाई गई, जिसने जनता को वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराया। अमरीका मे स्वय नात्सी और पादरी कफलिन् की फासिस्त कारस्वाइयों ने और भी स्पष्ट कर दिया कि इँगलैण्ड की सम्भावित हार के बाद अमरीका पर भी आपत्ति आये बिना न रहेगी। तटस्थतावादी अमरीकी कह रहे थे कि उनका देश किसी भी आक्रमण का मुक़ाबला करने मे समर्थ है, किन्तु नात्सी-युद्ध-कला की भीषणता और जर्मनी-इटली-जापान का त्रिगुट बन जाने से उनकी धारणा निर्मूल होगई। अस्तु, अमरीका ने युद्ध की तय्यारियाँ कीं—जगी सामान बनने लगे, अनिवार्य सैनिक भर्ती जारी कीगई, ब्रिटेन से उसने नाविक और हवाई अड्डे प्राप्त किये—कनाडा और लातीनी अमरीकी प्रजातन्त्रो को मिलाकर अपने गोलार्द्ध की रक्षा का उसने सूत्रपात किया। देश की नात्सी और फासिस्त कार्यवाहियो को रोक दिया गया। ब्रिटेन के अमरीका-स्थित-साम्राज्यान्तर्गत कुछ अड्डे अमरीका को, ९९ साल के पट्टे पर, मुफ़्त दिये गये और कुछ के बदले मे ५० विध्वंसक, अन्य जगी लवाजमे सहित, ब्रिटेन को दिये गये।

अप्रैल १९४१ मे अमरीकी जहाज़ ब्रिटेन की सहायता के लिये अतलान्तिक मे पहुँच गये और ७ जुलाई १९४१ को अमरीकी फौजो ने आइसलेन्ड पर अधिकार कर लिया, जहाँ बरतानी सेना पहले से पडी थी। लाल सागर का रास्ता अमरीकी जहाजो के लिये खोल दिया गया। ब्रिटेन की सहायता के लिये अमरीका को आगे बढते देख जर्मनी ने छेड़छाड शुरू करदी। २८ दिसम्बर '४० और १२ सितम्बर '४१ को दो अमरीकी जहाज़ जर्मनो ने डुबा दिये, तब अमरीकी नौसेना को जर्मन-जहाजो को देखते ही उन पर गोला बारी करने का आर्डर जारी किया गया। ७ दिसम्बर १९४१ को जापान ने

अमरीका के प्रशान्त महासागरीय इलाक़े पर हमला कर दिया और ११ दिसम्बर १९४१ को जर्मनी और इटली ने अमरीका के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करदी। तब अमरीका का मित्रदल से सम्बन्ध और निकट होगया।

योरप के अतिरिक्त अमरीका का राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थ दक्षिणी अमरीका और सुदूरपूर्व के देशों, विशेषकर चीन, में है। अमरीका ने करीबियन सागर में सामरिक महत्त्व के अड्डे ब्रिटेन से प्राप्त किये हैं और पनामा नहर पर भी उसका सरक्षण है। वह पश्चिमी गोलार्द्ध की सभी अमरीकी रियासतों की एकता के लिये प्रयत्नशील है। दक्षिण अमरीका में भी सयुक्त-राज्य का बहुत-सा धन व्यापार में लगा हुआ है। दक्षिण अमरीकी रियासतें इसे 'उत्तरी अमरीका का साम्राज्यवाद' कहकर उसकी निन्दा करती हैं। सुदूरपूर्व में अमरीका और जापान का द्वेष पुराना है। लड़ाई में शामिल होने से पूर्व से ही अमरीका च्याग काई-शेक की चीन की सहायता कर रहा है और अब तो अमरीका चीन को अपना सहयोगी मानता है। अमरीका रूस की भी सहायता कर रहा है। तुर्की को भी उसने उधार-पट्टा आधार पर सहायता देने को कहा है। अमरीका और ब्रिटेन का निकट सम्बन्ध होने के कई विशेष कारण हैं: दोनों की भाषा एक है, दोनों के आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज एक हैं, राजनीतिक जीवन सम्बन्धी विचारदृष्टि एक है। सभ्यता एक है, जाति भी, पूरी नही तो आधी, एक है। यही कारण है कि १९४० से यह विचार-धारा भी चल पड़ी है कि सयुक्त-राज्य अमरीका और ब्रिटिश राष्ट्रसमूह (साम्राज्य) का एक सघ स्थापित होना चाहिये।
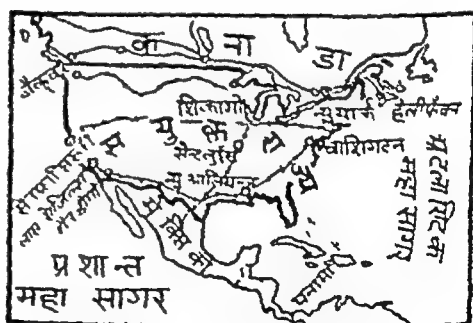
स्मट्स, फील्डमार्शल जान क्रिश्चियन—दक्षिण अफ्रीकी यूनियन के प्रधान-मन्त्री; सन् १८७० में, एक साधारण किसान-परिवार में, जन्मे, खेतों पर मजदूरी की; दक्षिण अफ्रीकी युद्ध में अँगरेज़ों से लड़े। सन् १९०२ में बोअर-सधि-सभ्य-मण्डल में प्रिटोरिया में शामिल थे। बोअरों और अँगरेजों में मेल

बढ़ाने का प्रयत्न किया । दक्षिण अफ्रीकी संघ की, बरतानी राष्ट्र-समूह के अन्तर्गत, स्थापना मे जनरल बोथा की मदद की। सन् १६१० में प्रथम बोथा-सरकार मे जनरल स्मट्स अर्थ-सचिव बने । १६१४ के विश्व-युद्ध मे उन्होने जर्मन पूर्वी अफ्रीका मे अँगरेज़ी सेना का सचालन किया। १६१७ मे साम्राज्य-युद्ध-मत्रि-मण्डल मे उन्हे स्थान मिला तथा विजय तक लड़ाई में सलग्न रहे और वर्साई की सुलह के समय शान्ति-सन्धि परिषद् मे उन्होने भाग लिया। इसके बाद वह दक्षिण अफ्रीकी सघ-सरकार के प्रधान-मत्री बनाये गये। साम्राज्य की समर्थक 'साउथ अफ्रीकन नरम राष्ट्रवादी पार्टी' के वह नेता बने। सन् १६२४ मे जनरल हर्टज़ोग के 'क्रान्तिवादी राष्ट्रीय दल' ने जनरल स्मट्स की सरकार को उखाड दिया, किन्तु १६३४ मे, दोनो दलो मे मेल होगया; फल-स्वरूप 'संयुक्त दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रीय दल' की स्थापना हुई। तब से वह उप प्रधान-मत्री रहे और जनरल हर्टज़ोग प्रधान-मत्री । वर्तमान युद्ध छिड़ने पर हर्टजोग अफ्रीकी सघ सरकार को निरपेक्ष रखने के पक्ष मे थे, और स्मट्स युद्ध मे ब्रिटेन को सहायता देने के पक्ष मे। जब पार्लमेंट मे इस प्रश्न पर राय ली गई तो जनरल स्मट्स के पक्ष मे ८० मत मिले, हर्टज़ोग को ६७, अतः हर्टज़ोग ने प्रधान-मत्रिपद से त्यागपत्र देदिया और स्मट्स प्रधान-मत्री बने। उन्होने मत्रि-मण्डल बनाया जो युद्ध मत्रिमण्डल कहलाता है । तब से वह युद्ध में ब्रिटेन की सहायता कर रहे हैं। मई १६४१ मे जनरल स्मट्स को ब्रिटिश सेना मे फील्डमार्शल (सर्वोच्च सेनापति) का पद दिया गया है।

स्वदेश-प्रत्यागमन—किसी देश के प्रवासी-जनो को उनके मातृदेश मे वापस भेजे जाने की व्यवस्था।

स्वदेशी—भारत की बनी वस्तुओ का व्यवहार। सन् १६०५ के आन्दोलन मे इस शब्द का यही तात्पर्य था। किंतु वास्तव मे स्वदेशी वस्तु वह है जो अपने देश के ही कच्चे माल द्वारा अपने देश मे तैयार कीगई हो और जिसके बनाने की मज़दूरी और मुनाफा भारतीयो को ही मिले तथा जिसके बनाने मे कोई भी विदेशी सामान न लगाया गया हो। जब महात्मा गाधी ने खादी तथा ग्रामोद्योग आन्दोलन चलाये तो उन्होने स्वदेशी की परिभाषा और भी विस्तृत करदी। उनके मतानुसार वही वस्तु स्वदेशी और ग्राह्य है जो हाथ से

बनाई गई हो, जिसकी तैयारी मे मशीन का प्रयोग न किया गया हो। ग़रीब और ग्रामीण जनता के लिये हितकारी होने के कारण खादी और ग्रामोद्योग के अहिंसात्मक प्रयोग द्वारा ही भारतीय सामाजिक विकास हो सकता है।

स्वदेशी आन्दोलन—सन् १९०५ के बगभग के समय बगाल में स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन का जन्म हुआ। उस समय विदेशी वस्तुओं—विशेषकर विदेशी कपडे—के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार पर ज़ोर दिया गया। फलतः देश की कुछ औद्योगिक उन्नति भी हुई। कपडे के कई पुतलीघर बगाल आदि में खुले। छोटी-मोटी स्वदेशी वस्तुओं के बनाने का भी प्रयास हुआ, किंतु एक तो सामान की कमी, दूसरे भडकीले विदेशी माल का मुक़ाबला, तीसरे जनता की बढती हुई फैशन-प्रियता, अतः उसमें सफलता न मिली। जो वस्तुएँ स्वदेशी के नाम पर चली भी, उनमें बहुत-सा सामान आदि विदेशी लगता रहा। वास्तव मे ऐसा प्रयत्न कभी नही हुआ जिसमें किसी भी वस्तु के बनाने में विदेशो के आश्रित कदापि न रहना पडे। सन् १९३० के सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के समय भी 'बहिष्कार' का आन्शिक प्रयोग हुआ।

स्वर्ण-मानदण्ड—इस मुद्रा-प्रणाली के अनुसार बैंक के नोटो के बदले सोना किसी भी समय निर्धारित दर से मिल सकता है। इसके तीन तरीक़े हैं: (१) पूर्ण स्वर्ण मानदण्ड—इसके अनुसार केन्द्रिय बैंक नोटों के बदले मे सोने के सिक्के देती है और सोना निर्धारित मूल्य पर बेचती तथा ख़रीदती है। (२) स्वर्ण बुलियन मानदण्ड—कोई सोने का सिक्का जारी नही किया जाता। नोटों के बदले सोना नही दिया जा सकता, परन्तु केन्द्रिय बैंक नियत दर पर सोना बेच तथा खरीद सकती है। (३) स्वर्ण विनिमय मानदण्ड—केन्द्रिय बैंक न सोना बेचती और न खरीदती है। वह विदेशी बैको से सोने मे भुगतान लेती है। अमरीका, फ्रान्स, हालैण्ड, बेलजियम और स्विट्जरलैण्ड मे, लड़ाई शुरू होने तक, सोने का सिक्का जारी था। अन्य देश बहुत पहले उसके चलन को छोड चुके हैं।

स्वराज्य—अपने देश मे अपने लिये अपना शासनाधिकार। भारतवर्ष मे स्वराज्य शब्द का काग्रेस से विशेष सबध है। सन् १९०६ मे काग्रेस के कत्ता अधिवेशन मे प्रथमबार स्वर्गीय दादभाई नौरोजी ने इस शब्द का

प्रयोग किया। तब से यह शब्द भारतीय राजनीति मे प्रचलित है। कांग्रेस ने अपने विधान के उद्देश्यो मे इसे स्थान दिया। दिसम्बर १९१९ मे सम्राट् द्वारा हुई शाही घोषणा मे भी स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया गया था। सन् १९२९ के दिसम्बर तक भारतीय 'स्वराज' शब्दसूचक राजनीतिक लक्ष्य से सन्तुष्ट थे। स्वराज्य' का अर्थ था ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन। किन्तु १९२९ की लाहौर कांग्रेस मे कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य प्राप्ति के ध्येय का त्यागकर पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित किया। तब से 'पूर्ण स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

स्वराज्य-दल—सन् १९२३-२४ मे स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरजन दास तथा प० मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य-दल बनाने का प्रयत्न किया। इस दल का उद्देश्य धारासभाओं मे जाकर आन्तरिक असहयोग करना था। खादी-प्रचार, मादक-द्रव्य-निषेध तथा सेना के व्यय मे कमी आदि भी इसके कार्यक्रम मे शामिल थे। यह दल केन्द्रीय और प्रान्तीय धारासभाओ मे शक्तिशाली दल रहा। सन् १९२९ तक इसने कार्य किया। सन् १९३४ मे स्वर्गीय डाक्टर अन्सारी, स्व० श्री सत्यमूर्ति आदि ने इस दल को, इसी उद्देश्य से, पुनर्संगठित किया।

स्वस्तिक—卐 इस प्रकार का चिन्ह। यह आर्यों, हिन्दुओ का, पुरातन पवित्र धार्मिक चिन्ह है। विवाहादि मागलिक अवसरो पर सौभाग्यसूचक स्वस्तिक चिन्ह सजावट के साथ बनाये जाते हैं। नात्सी जर्मनी ने भी स्वस्तिक को अपना राष्ट्रीय चिन्ह बनाया है। वह इसे प्राचीन नार्डिक अथवा ट्यूटो-निक चिन्ह बताते हैं, किन्तु इसकी पुष्टि मे उनके पास कोई आधार नही है। हिन्दू इसे 'श्री' और 'ॐ' का रूप मानते हैं, और योरपियन विचारको के अनुसार स्वस्तिक सूर्य का प्रतीक है, जिसके चिन्ह पुरातन सभ्यताओ के अवशेषो मे पाये जाते हैं। मगोलिया, उत्तरी और दक्षिणी अमरीका तथा पूर्वीय देशो, यहाँ तक कि फिलस्तीन मे भी इसके चिन्ह पाये गये हैं।

आधुनिक काल मे स्वस्तिक पहले-पहल उन जर्मन सिपाहियो के जगी टोपो पर लगा दिखाई दिया जो, १९१९ मे, फिनलेन्ड और बाल्टिक राज्यो मे बोलशेविको से लड कर वापस लौटे थे। फिनलेण्ड की हवाई सेना का चिन्ह भी स्वस्तिक था। बाल्टिक से लौटे हुए जर्मन-सैनिक तत्कालीन जर्मन

प्रजातन्त्र के विरोधी थे। यह लोग बराबर स्वस्तिक चिन्ह धारण किये रहे। इन्हींके द्वारा स्वस्तिक राष्ट्रीय-समाजवादी जर्मनी का क़ौमी निशान बना।

साइमन—लार्ड, प्रथमकोटि के वाइकाउन्ट; इससे पूर्व सर जान साइमन कहलाते थे; अँगरेज़ राजनीतिज्ञ; २८ फर्वरी १८७३ को पादरी ऐडूविन साइमन के घर में पैदा हुए, एडिनबरा तथा आक्सफर्ड मे शिक्षा प्राप्त की, १८६१ मे बैरिस्टर बने, १९०६ में लिबरल-दल की ओर से पार्लमेंट के सदस्य चुने गये, १९१०-१३तक सालिसिटर-जनरल और १९१३-१६ तक अटार्नी जनरल रहे। १९१७ में फ्रास के मैदान मे हवाई सेना मे मेजर बन कर गये और युद्ध मे लड़े। १९२२ मे फिर पार्लमेंट के सदस्य चुने गये, तब से उसी इलाक़े के मेम्बर हैं। १९३१ मे राष्ट्रीय लिबरल दल मे शामिल हुए। १९२८ में भारत की राजनीतिक प्रगति की जॉच करनेवाले कमीशन के नेता नियुक्त होकर भारत आये,जहॉ आपके सभ्य-मण्डल का बहिष्कार हुआ। सन् १९३१-३५ तक वैदेशिक मन्त्री और सन् १९३५-३७ तक गृह-मन्त्री तथा १९३७ से अर्थ-मन्त्री रहे। चेम्बरलेन मन्त्रि-मण्डल के बहुत प्रभावशाली सदस्य थे। मई १९४० मे उन्हे लार्ड की पदवी प्रदान की गई और चर्चिल के मन्त्रिमण्डल मे लार्ड चान्सलर हुए।

सादाबाद का समझौता—सन् १९३४ मे तुर्की, इराक़, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के बीच राजनीतिक सहयोग और सहमति के सम्बन्ध मे हुई सन्धि।

सामूहिक राज्य—यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमे राज्य का और [illegible] का आधार व्यावसायिक तथा व्यापारिक सघ होते हैं।

सामूहिक राज्य की पार्लमेंट का चुनाव प्रादेशिक चुनाव-क्षेत्रो द्वारा न होकर व्यापारिक सघो द्वारा होता है। एक सघ को नियत सख्या मे सदस्य चुनकर भेजने का अधिकार रहता है। ससार मे केवल इटली की फासिस्त व्यवस्था मे इस प्रणाली को स्थान दिया गया है।

सामूहिक सुरक्षा—इस शब्द की रचना १६२४ मे और उसके बाद उस समय हुई जब निरस्त्रीकरण के प्रश्न पर राष्ट्र-सघ की ओर से अनेक रिपोर्टें निकली और उन पर विवाद हुए। इसका अर्थ यह है कि समस्त देशों को सम्मिलित होकर अलग अलग प्रत्येक देश की सुरक्षा के लिये वचन-बद्ध होना चाहिये। १६३५ मे राष्ट्र-सघ ने सामूहिक-सुरक्षा की समस्या पर विचार करने के लिये एक विशेष समिति नियुक्त की और अबीसीनिया के अपहरण पर इटली के विरुद्ध जो दण्डाज्ञायें लागू की, उनसे इस शब्द का अधिक प्रचार हुआ। इन दण्डाज्ञाओ के विफल होने पर राष्ट्र-सघ ने नात्सी जर्मनी के विरुद्ध भी, सामूहिक सुरक्षा के लिये, कार्यवाही करनी चाही, परन्तु प्रयास असफल रहा।

साम्प्रदायिक निर्णय—अगस्त १६३२ म ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री सर रेमज़े मेक्डानल्ड ने भारत की प्रान्तीय तथा केन्द्रीय धारासभाओं मे प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे अपना निर्णय दिया। यही साम्प्रदायिक निर्णय के नाम से प्रसिद्ध है। मुसलमानो ने इस निर्णय को स्वीकार किया और उसका स्वागत किया। हिन्दू महासभा ने इसका विरोध किया तथा कांग्रेस इस सम्बन्ध मे तटस्थ रही।

साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली—भारत मे १६०६ के मिन्टो-मार्ले-सुधारो के साथ साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली का सूत्रपात हुआ। प्रान्तीय, केन्द्रीय धारासभाओ तथा स्थानीय बोर्डों मे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि को अलग-अलग सम्प्रदाय मानकर उनके स्थान नियत किये गये। इसी सुधार द्वारा सिखो को हिन्दुओ से पृथक् किया गया। १६३१ म अछूत कहे जानेवाले समुदाय को पृथक् निर्वाचन देकर हिन्दू-राष्ट्र से पृथक् करने का प्रयत्न गान्धीजी के व्रत द्वारा विफल होगया। भारत मे आज-पर्य्यन्त यही प्रणाली जारी है।

साम्यवाद (कम्युनिज्म)—एक क्रान्तिकारी विचारधारा तथा आन्दोलन जिसका लक्ष्य पूँजीवादी व्यवस्था का नाश कर सर्वहारावर्ग का पचायती

शासन स्थापित करना है। अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन मे सदैव से दो पक्ष रहे हैं, नरम तथा उग्र अथवा माडरेट और रेडिकल। साम्यवाद समाजवाद की उग्र धारा है। रूस की सोशलिस्ट पार्टी मे, १६०३ मे, बोलशेविक (उग्र) और मैनशेविक (नरम) दो दल हुए थे। नवम्बर १६१७ मे, लेनिन के नेतृत्त्व मे, रूसी सत्ता बोलशेविको के हाथ आगई और इसके बाद के गृह-युद्ध मे इस दल ने मैनशेविको सहित सब नरम दलो पर विजय पाई। बोलशेविको या कम्युनिस्टो ने उद्योग-धन्धो का राष्ट्रीयकरण किया, जमीन किसानो को बॉट दी और जर्मनी और आस्ट्रिया से छिडे हुए युद्ध को बन्द कर उनसे सन्धि कर ली। (नरम समाजवादियो ने लड़ाई मे, अपने देशो की सरकारो की, मदद की)। नरम समाजवादियो से अलग पहचाने जाने के लिये लेनिन ने बोलशेविक दल का नाम कम्युनिस्ट रखा था। मार्क्स और एँजल्स ने १८४८ के अपने घोषणापत्र मे 'कम्युनिस्ट' शब्द का ही प्रयोग किया है। इसी प्रकार अन्य देशो मे भी मजदूर सघो मे दो दल हुए और १६२० मे, मास्को मे, कम्युनिस्ट या तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सघ की स्थापना हुई। साम्यवादी दर्शन भौतिकतावादी होते हुए भी आत्मवादी है। यह एक ऐसे सुखी मानव-समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमे सबके पास समान रूप से सम्पत्ति हो और सबके अधिकार समान हो, क्योंकि असमानता ही वर्तमान सामाजिक सघर्ष का मूल है। इसके लिए वह बल-प्रयोग का भी समर्थक है। साम्यवाद प्रजातन्त्रवादी समाजवाद के विरुद्ध है। वह इसे धोखे की टट्टी मानता है और प्रजातन्त्र को पूँजीपतियो का गुप्त अधिनायक-तन्त्र। वह वैधानिक रूप से समाजवादी व्यवस्था स्थापित करनेके पक्ष मे नही है। उसकी दृष्टि मे सशस्त्र क्रान्ति ही समाजोद्धार का मूल साधन है। रूसी क्रान्ति तथा सोवियत सघ विश्व-क्रान्ति के नमूने हैं।

साम्राज्यवाद (इम्पीरियलिज्म)—१६१८ तक ब्रिटेन मे साम्राज्यवादी विचारधारा की प्रबलता रही। बरतानवी कामनवैल्थ के विविध देशो को एक सूत्र मे सगठित करने और साम्राज्य को बढाने की विचारधारा वहाँ काम करती रही। अतएव सकुचित अर्थ मे यह शब्द केवल ब्रिटिश साम्राज्य के लिये व्यवहृत होता रहा। किन्तु विकसित अर्थ मे इसका भाव है देशो को करके साम्राज्य की स्थापना करना। आधुनिक युग मे साम्राज्यवाद

की लालसा उन्नीसवी सदी मे प्रबल रही और प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यो के संघर्ष के परिणामस्वरूप पिछला १६१४-१८ का महायुद्ध हुआ। साम्राज्यो की स्थापना पहले राष्ट्रीय ऐक्य के आधार पर हुई, औद्योगिक और सैनिक बल पर साम्राज्य बाद मे बने जैसे जर्मनी, इटली और जापान में। किन्तु जब इन्होने देखा कि बडी-बडी शक्तियाँ संसार का पहले से ही आपस मे बॉटे हुए या हडपे हुए बैठी हैं, तो इन्होने संसार के उन भूभागों पर आक्रमण शुरू किये जो अबतक बॉटे नहीं जा सके थे, जैसे जापान १६३२ से चीन के अपहपण मे सलग्न है और १६३५ मे इटली ने अबीसीनिया को हडप लिया था। इन राष्ट्रो ने अपने पडोसी राष्ट्रो को भी, 'रहने या बसने के लिये स्थान' प्राप्त करने के बहाने, हडपना शुरू कर दिया, जैसा कि हिटलरी-जर्मनी १६३८ से पूर्वीय योरप मे कर रहा है। बाद मे इन राष्ट्रो ने बडे राष्ट्रो के अधिकृत देशो पर भी आक्रमण शुरू कर दिये, जैसे जापान ने १६४१ के अन्त मे ब्रिटेन, अमरीका और हालैण्ड के सुदूर-पूर्वीय साम्राज्य पर आक्रमण करके उसे हथिया लिया तथा जर्मनी और इटली बरतानवी साम्राज्य की प्राप्ति के लिये उत्तरी अफरीका मे लड रहे है और रूस पर इन्होने साम्राज्यवादी लिप्सा के कारण ही आक्रमण किया है।

सैद्धान्तिक रूप मे अँगरेज़ विचारक हाब्सन ने १६१० मे कहा था कि आर्थिक स्वार्थ और साम्राज्यवाद मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। १६१५ मे लेनिन ने, मार्क्स के सिद्धान्तानुसार, बताया कि साम्राज्यवाद शक्तिशाली पूँजीवादियो और सम्पत्तिशालियो की कृति है, जिन्हे माल तैयार करने के लिये कच्चा सामान चाहिये और उस माल को बेचने के लिये बडे-बडे बाज़ार। और यह दोनो काम बिना साम्राज्य की स्थापना और उसके विस्तार के असम्भव है। यह पूँजीवादी ही दूसरे देशो के हडपने के लिये युद्ध कराते है। साम्राज्यवाद की मूल भित्ति आर्थिक स्वार्थ है, वैसे ससार मे युद्ध राष्ट्रीयता, राजनीतिक अग्रणियो की महत्त्वाकांक्षा और किसी सिद्धान्त विशेष के प्रचार के कारण भी हुए हैं।

सावरकर, वीर विनायक दामोदर—बार-एट-ला; हिंदू-महासभा के अध्यक्ष, जन्म सन् १८८३; 'विहार' पत्र का सचालन किया; 'अभिनव भारत' नामक सस्था स्थापित की; शिवाजी छात्रवृत्ति लेकर इंगलैड अध्ययन के लिये गये। वहाँ 'स्वाधीन भारत समाज' स्थापित किया। १६१० मे उन्हे,

नासिक षड्यन्त्र के अभियोग में, इँगलैंड में, गिरफ़्तार किया गया। जब उन्हें जहाज द्वारा भारत लाया जा रहा था, तब फ्रांस के निकट, १६१० ई० में, वह जहाज के छेद मे से समुद्र में निकल कर भाग गये और कितने ही मील तैरकर किनारे लगे। उन्हें मारसेई में गिरफ़्तार किया गया। इस पर प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि फ्रांस की सीमा पर पकडे गये ब्रिटिश नागरिक को फ्रांस ब्रिटेन के सुपुर्द करे या नहीं। निर्णय के लिये मामला अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय के सामने भेजा गया। परिणामतः ब्रिटेन के सुपुर्द कर दिये गये। ४० वर्ष की क़ैद की सजा दी गई। सन् १६११ से १६२४ तक कालेपानी मे रहे। अन्डमान मे पूरे चौदह वर्ष पोर्ट ब्लेयर जेल की एक कोठरी मे बिताये, जिसके द्वार पर दिनरात ताला बन्द रहता था। कालेपानी भेजे जानेवाले भयङ्कर अपराधियों को भी अधिक-से-अधिक पॉच साल बाद जेल से निकाल कर बाहर कर दिया जाता था, किन्तु आपको एक दिन भी बाहर नहीं किया गया। सन् १६२४ मे वह रिहा हुए, किन्तु रत्नगिरि मे नज़रबन्द कर दिए गये, और इस तरह बराबर १६३६ तक नजरबन्द रहे। प्रत्येक दो वर्ष बाद नज़रबन्दी की अवधि बढाई जाती रही। छूटते ही आपने हिन्दू महासभा को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और १६३७ से हिन्दू महासभा के अध्यक्ष चुने जाते रहे हैं। महासभा के वह सबसे प्रभावशाली नेता हैं। सन् १६३६ मे निजाम हैदराबाद मे सत्याग्रह-आन्दोलन का सचालन आपकी प्रेरणा और हिन्दूसभा की ओर से किया गया, जिसमे महासभा विजयी हुई। आपने विशाल हिन्दू-राष्ट्र मे जीवन और जागरण तथा सामूहिक चेतना का विकास किया है। वीर सावरकर एक प्रभावशाली सङ्ग-

ठनकर्त्ता ही नहीं, प्रत्युत् अनेक भाषाविद्, विद्वान् लेखक तथा कवि भी हैं। उनकी लिखी मेज़िनी की जीवनी ज़ब्त हुई। 'सन् १८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्ध' पुस्तक भी ज़ब्त कर लीगई। उनका लिखा सिखो का इतिहास भी ज़ब्त कर लिया गया। आपने मराठी मे नाटक तथा उपन्यास भी लिखे हैं।

स्तालिन, जोसफ विसारियोनोविच्— सोवियत रूस का अधिनायक; २१दिसबर १८७६ को, कोहकाफ़ (काकेशस) के दीदी-लोलो नामक स्थान मे, जन्म हुआ; इसका पिता मोची था। एक गिर्जे के कालिज मे, पादरी बनने के विचार से, उसने धार्मिक शिक्षा प्राप्त की, किंतु वह काकेशस के तेल के कुँओ पर सगठित समाजवादी क्रांतिकारी आन्दोलन मे शामिल होगया। १८६८ से वह समाजवादी दल का सदस्य था और १६०३ से बोलशेविक दल का सदस्य रहा है। असली नाम जुगशविली है, किंतु उसने अपना नाम बदल कर स्तालिन (फौलादी आदमी) रक्खा।

उसने ज़ारशाही के ख़िलाफ सघर्ष किया, कई बार जेल गया तथा साइ-बेरिया मे निर्वासित किया गया। बोलशेविक दल की केन्द्रिय समिति का १६१२ से सदस्य है। मार्च १६१७ की क्रान्ति के बाद वह पीटर्सबर्ग गया और वहाँ लेनिन के अधीन साम्यवादी दल के राजनीतिक विभाग (पोलिटिकल ब्यूरो) का सदस्य होगया। अक्टूबर-क्रान्ति-निर्देशक समितियो का सदस्य रहा। सन् १६१६ मे वह दलकी केन्द्रिय समिति का प्रधान-मत्री बनाया गया। जनवरी १६२४ में, लेनिन की मृत्यु के बाद, स्तालिन तथा ट्रात्स्की मे उत्तराधिकार के लिये काफी संघर्ष रहा। उसने ट्रात्स्की के विरुद्ध ज़िनोवीफ् और कैमनीफ् से मिलकर सगठन किया और, ट्रात्स्की को निकाल देने के बाद, जिनोवीफ् दल के प्रभाव को हटाने के लिये, उसने दक्षिणपन्थी रीकाफ् और कैलीनिन से सहयोग किया। १६२७ मे दल का पूरा अधिकार उसके हाथ मे आगया। ट्रात्स्की समस्त विश्व मे समाजवादी क्रान्ति का समर्थक था और स्तालिन "केवल एक देश मे समाज-वाद का प्रचार" अर्थात् रूस का समाजवादी ढग पर विकास चाहता है। आदर्श-भेद से दोनो दलो मे ख़ासी चख़चख़ रही। अन्त मे स्तालिन के 'राष्ट्रीय' कम्युनिस्ट दल की विजय हुई और उसने धन्धो के राष्ट्रीयकरण और खेती के सामूहिककरण के लिये प्रथम पचवर्षीय योजना जारी की। राष्ट्र-शुद्धि के लिये

उसने पीछे मास्को के मुकदमे चलाये।

सन् १६३४ से १६३८ तक साम्यवादियों ने ससार में यह प्रचार किया कि स्तालिन नात्सीवाद के विरुद्ध है। वह हिटलर के विरुद्ध पाश्चात्य राष्ट्रों से सहयोग चाहता है। १० मार्च १६३६ को स्तालिन ने नात्सी जर्मनी को आक्रमक और बरतानिया और फ्रान्स को अनाक्रमक राष्ट्र बतलाते हुए कहा—"हम उन राष्ट्रो की सहायता के लिये हैं जो आक्रमण के शिकार हुए हैं तथा जो अपने देशों की स्वाधीनता के लिये लड़ रहे हैं।" किन्तु जब पोलैंएड के प्रश्न पर फ्रान्स, ब्रिटेन तथा रूस में सधि-वार्ता चल रही थी तब, २३ अगस्त १६३६ को, स्तालिन ने हिटलर के साथ अनाक्रमक-सधि करली और पोलैंड के विषय मे उसको स्वतन्त्रता दे दी तथा जर्मनी और पोलैंएड के पन्द्रह दिन के युद्ध के बाद, सितम्बर १६३६ में, स्तालिन ने हिटलर के साथ पोलैंएड का बँटवारा कर लिया। युद्ध मे तटस्थ रहने की स्तालिन की स्पष्ट इच्छा के बावजूद हिटलर ने, २२ जून १६४१ को, सोवियत संघ पर आक्रमण कर दिया और तब से स्तालिन ब्रिटेन और अमरीका के साथ मिलकर नात्सी-आक्रमण का मुक़ाबला कर रहा है। स्तालिन एक यथार्थवादी राजनीतिज्ञ है। ट्रात्स्की ने उसे क्रान्ति का विश्वासघाती कहा है, किंतु अन्य लोग उसे विश्व-साम्यवाद का नेता मानते हैं। उसके शासन-काल मे रूस एक महान् शक्ति बनगया है। यद्यपि ससार के अन्य भागो मे साम्यवाद की विजय नही हुई है, तथापि यह तो निश्चय है कि स्तालिन के रूस मे समाजवादी आर्थिक और सास्कृतिक व्यवस्था का पर्याप्त विकास हुआ है। रूस मे स्तालिन की तुलना महान् पीटर से की जाती है। पीटर के लिये व्यक्तिगत रूप से ।लि के हृदय मे भी आदर है। १६४१

तक स्तालिन ने सोवियत सघ मे कोई सरकारी पद ग्रहण नही किया। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रधान मन्त्री की हैसियत से वह सेवा करता रहा। ६ मई १६४१ को अलबत्ता वह कौन्सिल आफ् पीपल्स कमिसार्स (प्रधान मन्त्रियो की परिषद्) का अध्यक्ष और रूस-जर्मन-युद्ध छिडने पर नव-निर्मित राष्ट्र-रक्षा समिति (स्टेट् कौन्सिल आफ् डिफेन्स) का अध्यक्ष बना, जिस हैसियत मे उसे सब अधिकार दे दिये गये। १६३४ मे उसकी प्रथम पत्नी का देहान्त होजाने पर उसने अपने निकट सहकारी कागनोविच् की बहन से शादी की। पहली शादी से उसे एक पुत्र और एक पुत्री है।

स्तालिन-दुर्ग-पंक्ति—यह रूस की पश्चिमी सीमा पर, बाल्टिक सागर से कृष्णसागर तक, एक प्राकृतिक दुर्गपक्ति है। यह फ्रान्स की मेजिनो-दुर्ग-पक्ति की भाँति नही है। सीमा पर जो नदियाँ तथा झीलें हैं उनके बीच-बीच मे क़िले बना दिये गये हैं। इस किलेबन्दी की तुलना फ्रान्स तथा बेलजियम की सीमा पर बनी हुई दुर्ग-पंक्ति से की जा सकती है। इस पंक्ति मे लोहे की एक जगी दीवार शामिल है। साथ ही ख़ास ख़ास जगहो पर मज़बूत क़िले बने हुए हैं।

स्याम—पूर्वी एशिया का प्राचीन राज्य, जहाँ पूर्व काल मे आर्य सभ्यता का प्रचार था; अँगरेज़ी नाम थाईलैण्ड; क्षेत्र० २ लाख वर्ग०; जन० डेढ़ करोड, जिनमे २५ लाख चीनी है, राजधानी बकाक, शासक आनन्द महिडोल, जिसका जन्म सन् १६२५ मे हुआ, और प्रधान मन्त्री लुआग् पिबुल संग्राम। राजा की नाबालिग़ी मे एक राज-परिषद् शासन-सचालन करती है। १६३२ तक इस देश मे स्वेच्छाचारी एकतत्र शासन था। सन् १६३२ मे राजतन्त्र और सैनिक-वर्ग की उत्क्रान्ति द्वारा नया शासन-विधान बनाया गया और तदनुसार एक धारासभा की स्थापना हुई। इसमे आधे प्रतिनिधियो की नामज़दगी राजा द्वारा होती है तथा शेष का चुनाव किया जाता है, किन्तु सन् १६५२ से सभी सदस्यो का चुनाव किया जानेवाला है। आजकल इस देश मे सैनिक अधिनायक-तत्र है। राजनीतिक संस्थाओं पर प्रतिबध है तथा चुनावो का सचालन सरकार द्वारा किया जाता है। पिछला राजा प्रजाधिपोक १६३५ मे गद्दी छोड गया और १६४१ मे इँगलैण्ड मे उसकी मृत्यु होगई। पिछले कुछ वर्षों मे सरकार ने देश के पाश्चात्यीकरण

और राष्ट्रीय उत्थान की नीति ग्रहण की है। स्याम की जिन देशों के साथ सन्धियाँ थीं, १९३९ में उन्हें रद कर दिया गया। उनके स्थान पर समता, न्याय और स्याम के आर्थिक आधिपत्य के आधार पर, नये सिरे से, सन्धियाँ की गईं। ग्रेटब्रिटेन के साथ भी स्याम की मैत्री-सन्धि और पारस्परिक अनाक्रमण समझौता था। बकाक में बरतानी प्रभाव की धाक थी, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में जापान ने उससे होड लगादी।

इस देश का व्यापार अधिकतर मलय, हागकाग्, ब्रिटेन तथा जापान के साथ होता रहा है। सन् १९३९ में देश का नाम स्याम के स्थान पर थाईलैंण्ड रखा गया। थाईलैण्ड शब्द देश के सरकारी नाम 'मुआग् थाई' (स्वतन्त्र जनता का देश) शब्द का अँगरेज़ी भावानुवाद है।

स्याम मध्यकालीन स्वतन्त्र भारत का एक उपनिवेश था। शताब्दियों तक वहाँ आर्य-हिन्दू सभ्यता प्रचलित रही, जिसका प्रभाव वहाँ के राजवंश तथा प्रजावर्ग में अब भी पाया जाता है। स्यामी जनता बौद्ध और ईसाई धर्मों की अनुयायिनी है।

थाईलैण्ड के निकट ही हिन्द-चीन देश है, जो फ्रांस के नियन्त्रण में था। थाईलैण्ड ने १९४० में, फ्रांन्स से मॉग की कि हिन्द-चीन में बहुसख्यक थाई जनता द्वारा बसा हुआ, मेकांग् नदी के किनारे का पकलाई प्रदेश उसको वापस कर दिया जाय। कोई सन्तोषप्रद उत्तर न मिलने पर थाईलैण्ड की सेना ने, २३ नवम्बर १९४० को, हिन्दचीन
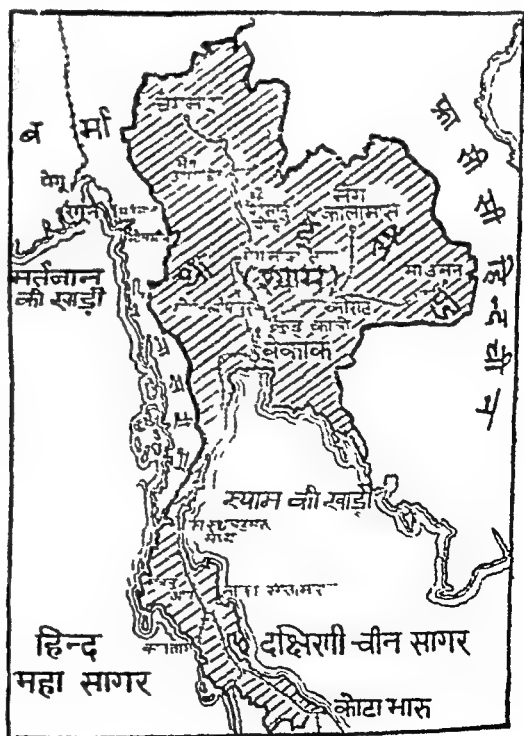
मे, ६३ मील दूर तक, हमला कर दिया। सेनाओ मे कई मास तक संघर्ष रहा। थाईलैण्ड की सेना आगे बढ़ती गई। जापान को इन दोनो देशो ने मध्यस्थ मान लिया और ६ मई १९४१ को सन्धि होगई। स्याम को पकलाई सहित कुछ और इलाक़ा भी मिल गया।

जब जापान ने प्रशान्त महासागर मे अमरीकी और बरतानवी द्वीपो पर, ७ दिसम्बर १९४१ को, आक्रमण किया तब उसने स्याम पर भी हमला कर दिया। थोडे दिन के मुक़ाबले के बाद स्याम ने जापान से, २० दिसम्बर को, सन्धि करली और जापानी सेनाओ को रास्ता देदिया। इस देश मे जापान ने अपने सैनिक और हवाई अड्डे स्थापित किए और वहाँ से मलय तथा ब्रह्मा पर आक्रमण करके उन्हे जीत लिया और हिन्द-चीन पर भी प्रभुत्व कर लिया। सयुक्त-राष्ट्र अमरीका ने इसके बाद थाईलैण्ड के विरुद्ध निर्यात-प्रतिबधक क़ानून लगा दिया।

स्लाव—पूर्व तथा दक्षिण-पूर्वीय योरप की एक जाति, जिसमे ८ करोड रूसी, ३ करोड़ ६० लाख यूक्रेनी, ६० लाख श्वेत रूसी, ७० लाख पोल, ७० लाख चैक, २५ लाख स्लोवाक, १ करोड यूगोस्लाव (६० लाख साइबेरियन, ४० लाख क्रोट और १० लाख स्लोवेनीज़ सहित) तथा ४० लाख बलग़ारी शामिल हैं।

स्वाधीनता-दिवस—प्रति वर्ष २६ जनवरी को भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस स्वाधीनता-दिवस मनाती है। इस दिन समस्त भारतवासी भारत को स्वाधीन बनाने की प्रतिज्ञा को दोहराते हैं। १९२९ की काग्रेस मे पूर्ण स्वराज्य को देशोद्धार का लक्ष्य घोषित करने के उपरान्त सन् १९३० से यह दिवस बराबर समस्त देश मे मनाया जाता है।

स्वायत्त-शासन—किसी देश का उसकी प्रजा द्वारा शासन।

स्वाश्रयी व्यवस्था—किसी देश की ऐसी सुगठित आर्थिक व्यवस्था कि उसे अन्य किसी राष्ट्र पर आश्रित न रहना पडे।

सिक्यांग्—चीन का उत्तर-पश्चिमी सूबा; चीनी-तुर्किस्तान का चीनी नाम; क्षेत्र० ५॥ लाख वर्ग०; जन० १२ लाख, जिसमे केवल १० फ़ीसदी चीना हैं, ६० फी० तुर्क यानी मुसलमान हैं, शेष मे मंचू, चीना-मुसलमान

(तुगन), मगोल, किरगिज, कज्जाक और श्वेत रूसी हैं; राजधानी उरुमची। काशगर में बरतानी दूतावास है। यद्यपि सिंक्यांग और भारत के बीच ऊँचे पर्वत हैं, किन्तु फिर भी, भारत के लिये, सामरिक दृष्टि से, यह प्रदेश महत्त्वपूर्ण है। १६३० में सोवियत सेनाओं ने गैर-सरकारी तौर पर, इस प्रान्त पर कब्ज़ा कर लिया और तब से यह प्रदेश वस्तुतः सोवियत रूस के अधीन है। शासन में सोवियत रूसी सलाहकार और सोवियत अफसर हैं और सेना में सोवियत लवाज़मा है। चीन बराबर इस देश पर अपने आधिपत्य का दावीदार है।

सिकन्दर हयातखाँ, सर—१६३७ से पजाब सरकार के प्रधान मन्त्री। अलीगढ और लन्दन में तालीम पाई। पिछले युद्ध में आप पहले हिन्दुस्तानी थे, जिसे कम्पनी-कमाण्ड मिली थी। सन् १६१६ में सबसे पहले पजाब-कोंसिल के सदस्य चुने गए। सन् १६२८ में प्रान्तीय साइमन कमिटी के अध्यक्ष थे। आप सन् १६३७ से पूर्व पजाब-सरकार के माल-मन्त्री तथा अर्थ-मन्त्री के पदों पर रहे। रिजर्व बैंक आफ् इडिया के डिपुटी गवर्नर के पद पर नियुक्त किए गए। पजाब में एक वर्ष तक स्थानापन्न गवर्नर नियुक्त किए गए थे। आप पजाब की यूनियनिस्ट पार्टी के नेता रहे। सन् १६३७ में मि० मुहम्मदअली जिन्ना के आग्रह से मुसलिम-लीग का सदस्य होना स्वीकार किया। तब से मुसलिम लीग की कार्य-समिति के सदस्य रहे। सन् १६३६ से आप युद्ध-प्रयत्न में बड़ी लगन और दिलचस्पी से भाग लेते रहे। आपने दो बार उत्तरी अफ्रीका तथा मिस्र के रणक्षेत्रों में भारतीय सेनाओं का निरीक्षण भी किया। लीगी होते हुए भी आपके शासन-काल में पजाब में सामाजिक शान्ति रही और पाकिस्तान-योजना का भी आपने कभी स्पष्ट रूप से समर्थन नहीं किया। २५ दिसम्बर १६४२ की रात को दिल की धड़कन बन्द होजाने से आपकी मृत्यु होगई।

सिख—हिन्दू-समाज के अन्तर्गत, सामाजिक और धार्मिक सुधार के प्रश्न को लेकर, आजपर्यन्त अनेक सुधार-आन्दोलन हुए. किन्तु यह सभी आन्दोलन समूचे हिन्दू-समाज मे क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की अपेक्षा नये-नये सम्प्रदायो के प्रतीक बनकर रह गए। श्रीगुरु नानक देव अपने युग मे हिन्दू-समाज के अन्तर्गत एक प्रमुख सुधारक हुए। उन्होने एकेश्वरवाद, रूढ़िगत वर्ण-व्यवस्था के उन्मूलन और जीवन मे धर्ममय आचार के सामञ्जस्य पर बल देते हुए हिन्दू-राष्ट्र की सामाजिक एकता की आधार-शिला प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया। किन्तु उनकी विचारधारा का प्रतीक सिख सम्प्रदाय बन गया। आरम्भ मे सिख पन्थ एक अध्यात्मवादी शान्तिप्रिय सम्प्रदाय था। किंतु बाद के सिख गुरुओ ने, जिनमे श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी मुख्य हैं, इस पंथ को युग के अनुकूल जामा पहनाया और हिंदू-राष्ट्र के अन्तर्गत साम्राज्यवाद-विरोधी और देश की स्वाधीनता के लिये बलिदान होने को तत्पर रहनेवाले राष्ट्र-रक्षक समूह की स्थापना, सिख पन्थ मे नवीन सुधारों द्वारा, की।

भारत मे सिखो की सबसे अधिक आबादी पंजाब प्रान्त मे है। किन्तु पंजाब मे भी वह अल्पसंख्यक जाति है। सिख एक वीर सैनिक सम्प्रदाय है, जो हिंदू-समाज के अंतर्गत होते हुए भी राजनीतिक रूप मे उससे पृथक् करदी गई है। सिखो का हिंदू-समाज से प्रथक्करण एक दुःखप्रद घटना है।

सिंगापुर—ब्रिटेन के पूर्व-देशीय स्ट्रेट्स सैटलमेण्ट उपनिवेश का अंग तथा बरतानवी सुदूरपूर्वीय साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण नाविक और व्यापारिक अड्डा, जो चीन-सागर से लेकर हिन्द महासागर तक का संरक्षण करता है। विपुल-धन-राशि व्यय करके संसार के महान् नाविक अड्डो की भाँति इसे आधुनिकतम रूप मे बढ़ाया गया था। १९३८ मे यह इस रूप में बनकर
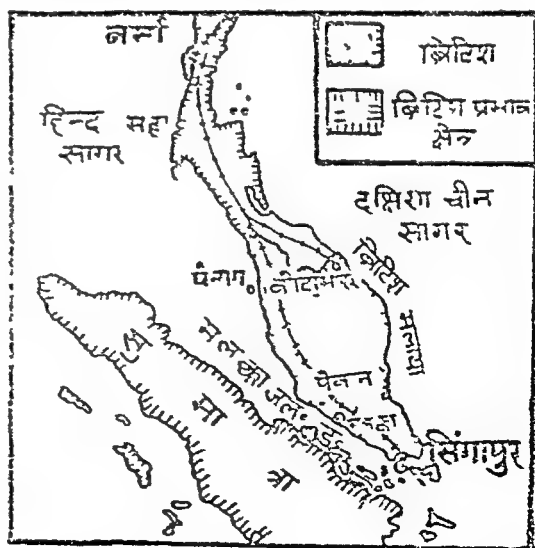
चुका था। सिंगापुर की आबादी ७ लाख है, जिसमे ५½ लाख चीना हैं। सुदूरपूर्व के युद्ध मे, ११ जनवरी १६४२ को, बरतानवी फौजों ने सिंगापुर खाली कर दिया और जापानियो ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया और अब उन्होंने इसका जापानी नाम 'शोनन' (पूर्व का सितारा) रख दिया है।

स्टिम्सन, हेनरी ल्यूइस—सयुक्त-राज्य अमरीका का युद्ध-मन्त्री, २१ सितम्बर १८६६ को पैदा हुआ; वकील बना; न्यूयार्क के दक्षिणी जिले का १६०६-०६ मे सरकारी वकील रहा; १६११-१३ मे युद्ध-मंत्री, १६१८ में अमरीकी तोपखानेका फ्रान्स मे कर्नल, १६२७-२८ मे फिलिपाइन्स का गवर्नर-जनरल, और १६२६-३३ में, हूवर के राष्ट्रपति-काल मे, राष्ट्र-मन्त्री रहा। १६३० में लन्दन की नौसेना परिषद् और १६३२ की निरस्त्रीकरण परिषद् में अमरीकी प्रतिनिधि-मण्डल का नेता था। अमरीकी 'रिपब्लिकन' दल वर्तमान युद्ध मे तटस्थ रहने की नीति का पोषक है, किन्तु स्टिम्सन एक प्रधान 'रिपब्लिकन' होते हुए भी, वर्तमान युद्ध के आरम्भ से ही, अमरीका द्वारा मित्रराष्ट्रों को सहायता देने का समर्थक है। अमरीकी नौसेना विभाग का मन्त्री कर्नल नाक्स भी 'रिपब्लिकन' है, किन्तु तटस्थता-नीति का विरोधी है। राष्ट्रपति रूज़वैल्ट ने, जून १६४० मे, इन दोनो को अपने मन्त्रि-मण्डल मे शामिल किया है।

स्पिट फाइर—एक प्रकार का वायुयान, जो अपने से नीचे उड़ते हुए शत्रु के हवाई जहाज के पीछे के भाग पर हमला करता है।

स्विट्ज़रलैण्ड—क्षेत्र० १५,६४४ वर्ग०, जन० ४१,५०,००० जिनमे तीस लाख जर्मन, ८½ लाख फ्रासीसी तथा २½ लाख इटालियन-भाषा-भाषी हैं। यह तीनो वहॉ की राष्ट्रभाषा तथा सरकारी भाषाएँ हैं। स्विट्ज़रलैण्ड मे कोई अल्पमत समस्या नहीं है। सभी जातियो और वर्गों को वहॉ समान अधिकार प्राप्त हैं। योरप मे वह एक आदर्श राज्य है। इस देश का शासन-विधान सर्व-श्रेष्ठ ढग का प्रजातन्त्रवादी प्रकार का है। इसमे २२ प्रान्त हैं, जिन्हे पूर्ण स्थानीय स्वाधीनता प्राप्त है। प्रत्येक प्रान्त की अपनी निजी पार्लमेंट और सरकार है। प्रमुख प्रश्नो पर जनमत लिया जाता है। सन् १८१५ मे इस देश की तटस्थता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय गारटी दीगई थी। तटस्थ देश होने से उसकी बैंको मे विदेशी [illegible] बहुत जमा है। २ अरब फ्राक का सोना स्विट्ज़रलैण्ड की बैंको मे जमा है।

स्विट्ज़रलैण्ड की संघीय असेम्बली मे दो धारासभाएँ हैं : राष्ट्रीय-परिषद् (National Council) जनता द्वारा आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुनी जाती है। राज्य-परिषद् (Council of State) प्रत्येक प्रान्त द्वारा चुनी जाती है और उसमे प्रत्येक प्रान्त के—उसकी आबादी कुछ भी हो—दो प्रतिनिधि होते हैं। संघीय असेम्बली संघीय परिषद् (गवर्नमेण्ट) और उसके फ़ेडरल प्रेसिडेन्ट (प्रधान-मन्त्री) का चुनाव करती है। प्रधान-मन्त्री ही राज्य के शासन का प्रमुख होता है। राष्ट्रपति वहाँ अलग नहीं होता। प्रधान-मन्त्री एक वर्ष तक अपने पद पर रहता है। तीनों मुख्य जातियों के प्रतिनिधियो को क्रमशः यह पद मिलता रहता है।

स्विट्ज़रलैण्ड मे कई राजनीतिक दल हैं। 'नये मोर्चे' तथा 'राष्ट्रीय मोर्चे' के नाम से नात्सी दल बने, किन्तु उनका अभी कोई प्रभाव नहीं है। कम्युनिस्ट दल पर वहाँ बन्धन है। नात्सियो ने वहाँ के जर्मनो को एकाधिपत्य स्थापित करने को उकसाने का प्रयास किया, किन्तु उस देश मे सभी जातियों को सम्पूर्ण रूप से समान अधिकार प्राप्त हैं, इसलिये उनका प्रयास विफल रहा। आल्प्स पहाड के दर्रों का रक्षक होने और फ्रांस की सीमा पर स्थित होने के कारण इस देश का सामरिक महत्त्व है। पहाड़ों से घिरा होने के कारण इस देश की स्थिति प्राकृतिक रूप से सुरक्षित है। यहाँ ७ लाख सेना है।
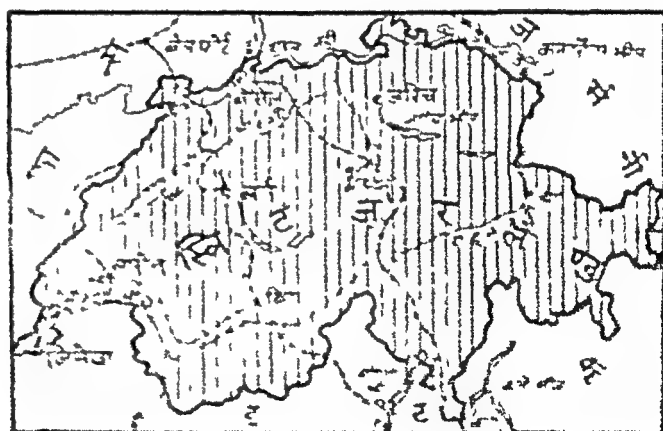
सीगफ्रीड किलेबन्दी—जर्मनी की पश्चिमी सीमा पर स्थित किलेबन्दी, जो फ्रान्स की मेजिनो किलेबन्दी के मुकाबले पर बनाई गई। सन् १९३८ में यह दुर्गपंक्ति शीघ्रतापूर्वक तीन मास में ही बना दी गई। १९३९ में इसे और बढ़ाया गया।

सीतारामय्या, डा० बी० पट्टाभि—बी० ए०, एल० एम० एस०; दक्षिण भारत के प्रमुख कांग्रेसी नेता, गांधीवाद के अधिकारी व्याख्याकार और गांधी-जी के पुरातन भक्त। अ०-भा० कांग्रेस कमिटी के पुराने सदस्य। सन् १९१९ से १९३० तक अँगरेजी साप्ताहिक 'जन्मभूमि' का सञ्चालन-सम्पादन किया। सन् १९३०-३४ के बीच तीन बार सत्याग्रह आन्दोलन में जेल-यात्रा की। सन् १९३१ से कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य। सहकारी आन्दोलन में बहुत भाग लिया और आन्ध्र बैंक, भारतलक्ष्मी इंशारेन्स कम्पनी, आन्ध्र इंशोरेन्स कम्पनी, तथा आगरा म्युचुअल इंशोरेन्स कम्पनी की स्थापना आदि से सम्बन्धित हैं। सन् १९३९ में महात्मा गांधी की अनुमति से आप राष्ट्रपति पद के चुनाव में, श्री सुभाषचन्द्र बोस के विरुद्ध, खड़े हुए, जिसमें आपकी पराजय हुई। इस अवसर पर कांग्रेस में अवाञ्छित संघर्ष रहा। डा० पट्टाभि अँगरेजी के लेखक हैं। अँगरेजी तथा तामिल में कई ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं, जिनमें 'कांग्रेस का इति-हास' और 'समाजवाद : गांधीवाद' महत्वपूर्ण हैं।

स्वीडन—क्षेत्र० १,७३,००० वर्ग०; जन० ६३ लाख, राजधानी स्काटहोम, राजा गुस्तव पञ्चम, जिसका जन्म १८५८ में हुआ और जो १९०७ में गद्दी पर बैठा। यह देश परम्परा से तटस्थ रहा है। पहले इसका अन्य नार्डिक (नार्वे, डेनमार्क तथा फिनलैण्ड) देशों से राजनीतिक सहयोग रहा है। स्वीडन में कच्चा लोहा बहुत अधिक है, इसीलिये इसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व है। इसके लोहे की दुनिया में बहुत माँग रहती है। जर्मनी को यह बहुत अधिक कच्चा लोहा भेजता है, ब्रिटेन को भी भेजता था। स्वीडन प्रजातंत्र देश है, इसलिये वहाँ नात्सीवाद लोकप्रिय नहीं है, यद्यपि जर्मनजाति के प्रति परम्परागत प्रेम है। यद्यपि स्वीडन की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामा-जिक व्यवस्था समाजवादी नहीं है तथापि वहाँ समाजवाद के प्रति आस्था है। इसीलिये समस्त योरप में स्वीडन के मजदूरों का जीवन-मानदण्ड सर्वोच्च है और उद्योग-धन्धों पर साम्यवादी प्रभाव है और बैंकों पर सरकार का असर

सीतारामय्या, डा० बी० पट्टाभि—बी० ए०, एल० एम० एम०; दक्षिण भारत के प्रमुख कांग्रेसी नेता, गांधीवाद के अधिकारी व्याख्याकार और गांधी-जी के पुरातन भक्त। अ०-भा० कांग्रेस कमिटी के पुराने सदस्य। सन् १९१९ से १९३० तक अँगरेज़ी साप्ताहिक 'जन्मभूमि' का सचालन-सम्पादन किया। सन् १९३०-३४ के बीच तीन बार सत्याग्रह आन्दोलन में जेल-यात्रा की। सन् १९३१ से कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य। सहकारी आन्दोलन में बहुत भाग लिया और आन्ध्र बैंक, भारत लक्ष्मी इशोरेन्स कम्पनी, आन्ध्र इशोरेन्स कम्पनी, तथा आगरा म्युचुअल इंशोरेन्स कम्पनी की स्थापना आदि से सम्बन्धित हैं। सन् १९३९ में महात्मा गांधी की अनुमति से आप राष्ट्रपति पद के चुनाव में, श्री सुभाषचन्द्र बोस के विरुद्ध, खडे हुए, जिसमें आपकी पराजय हुई। इस अवसर पर कांग्रेस में अवाञ्छित संघर्ष रहा। डा० पट्टाभि अँगरेजी के लेखक हैं। अँगरेजी तथा तामिल में कई ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं, जिनमें कांग्रेस का इतिहास' और 'समाजवाद : गांधीवाद' महत्वपूर्ण हैं।

स्वीडन—क्षेत्र० १,७३,००० वर्ग०; जन० ६३ लाख; राजधानी स्काटहोम, राजा गुस्तव पंचम, जिसका जन्म १८५८ में हुआ और जो १९०७ में गद्दी पर बैठा। यह देश परम्परा से तटस्थ रहा है। पहले इसका अन्य नार्डिक (नार्वे, डेनमार्क तथा फिनलैण्ड) देशों से राजनीतिक सहयोग रहा है। स्वीडन में कच्चा लोहा बहुत अधिक है, इसीलिये इसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व है। इसके लोहे की दुनिया में बहुत माँग रहती है। जर्मनी को यह बहुत अधिक कच्चा लोहा भेजता है, ब्रिटेन को भी भेजता था। स्वीडन प्रजातंत्र देश है, इसलिये वहाँ नात्सीवाद लोकप्रिय नहीं है, यद्यपि जर्मनजाति के प्रति परम्परागत प्रेम है। यद्यपि स्वीडन की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था समाजवादी नहीं है तथापि वहाँ समाजवाद के प्रति आस्था है। इसीलिये समस्त योरप में स्वीडन के मजदूरों का जीवन-मानदण्ड सर्वोच्च है और उद्योग-धन्धों पर साम्यवादी प्रभाव है और बैंकों पर सरकार का असर

है। सहकारितावाद वहाँ अत्यन्त विकसित है। कच्चे लोहे की खानों पर भी राज्य का स्वाम्य है। इस देश मे स्वीडिश नात्सी-दल का कुछ भी प्रभाव नहीं है। स्वीडन इस समय युद्ध मे तटस्थ है, किन्तु रूस के फिनलेण्ड पर और जर्मनी के नारवे पर हमला करने पर उसने दोनो दलित देशो के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की, और जब जर्मनी ने रूस पर हमला किया तो उसने एक जर्मन डिवीज़न को, नार्वे से फिनलेण्ड की सरहद तक, अपने देश मे होकर निकल जाने दिया। बरतानिया और सोवियत संघ की सरकारो ने स्वीडन की इस कार्यवाही का प्रतिवाद किया।
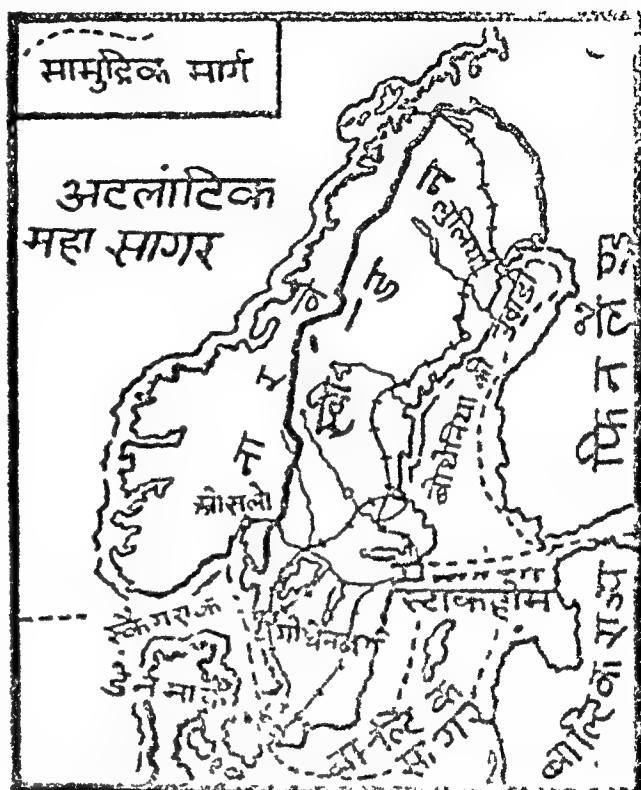
नियुक्त हुए। गिरफ़्तार किये गये और ६ मास की क़ैद की सज़ा दीगई।

१६२२ मे लौटकर बाढ-पीड़ित ग्रामीणों की सेवा मे लग पडे। उपरान्त अँगरेज़ी दैनिक 'फारवर्ड' के प्रधान सम्पादक हुए। सन् १६२४ में कलकत्ता कारपोरेशन के सदस्य चुने गये। इसी वर्ष कारपोरेशन के प्रधान अफसर (चीफ ऐक्ज़िक्युटिव आफिसर) नियुक्त कियेगये। १८१८ के बगाल रेग्युलेशन के अन्तर्गत गिरफ़्तार किये जाकर माडले में नज़रबंद करके रखे गये। यहाँ सुभाष बाबू का स्वास्थ्य बहुत ख़राब होगया, उनका वज़न ४० पौंड कम होगया, और क्षय के लक्षण दिखाई पडने लगे। १६२७ मे उनकी अवस्था चिंतनीय होगई। सरकार ने कहा कि श्री बोस चिकित्सा के लिये भारत न जाकर सीधे जाना चाहें तो उनको योरप भेजा जा सकता है, किंतु आपने इस शर्त को स्वीकार नही किया। आपने जेल से लिखा कि मैंने अपने को भगवान के आश्रित छोड दिया है, मै राष्ट्र को भुला नही सकता। देश मे आन्दोलन हुआ और १५ मई १६२७ को उन्हें रिहा कर दिया गया। छूटकर आने पर आपको बंगाल कौंसिल का सदस्य चुना गया और बगाल प्रांतीय कांग्रेस कमिटी का प्रधान भी। १६२८ मे गिरफ्तार किये गये, किंतु ज़मानत पर रिहा हुए और उस वर्ष के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन मे आप वालन्टियर सेना के प्रधान नायक बनाये गये। बाद में आपको क़ैद की सज़ा मिली। १६२६ की कांग्रेस के बाद कार्यकारिणी की नियुक्ति के समय आप असतुष्ट रहे और स्वर्गीय श्री सत्यमूर्ति, डा० आलम आदि के साथ आपने कांग्रेस डिमोक्रेटिक दल की स्थापना की, किंतु यह दल नगण्य रहा। सन् १६३० मे भद्र अवज्ञा आन्दोलन छिड़ने तक आपको दो बार गिरफ़्तार किया गया और कैद की सजा दीगई। गाधी-इरविन-समझौते के अनुसार रिहा हुए। १६३२ में पकडे जाकर नजरबद कर दिये गये। आपका स्वास्थ्य जेल मे एकदम गिर गया। छूटे और वीयना इलाज के लिये गये, यही श्री विट्ठलभाई पटेल अपना इलाज करा रहे थे। प्रेसिडेंट पटेल और सुभाष बाबू ने बीमारी की अवस्था में, भारत-सबधी काफी प्रचार योरप मे किया। गाधीजी ने जब भद्र अवज्ञा आन्दोलन स्थगित किया तो पटेल और सुभाष ने अपनी उग्र असहमति प्रकट की। पिता की बीमारी के कारण आप भारत आये, किंतु जल्द

वापस चले गये। १६३६ मे योरप से लौटे। फिर पकड लिये गये और सुभाष बाबू जेल मे पुनः सख्त बीमार होगये। मार्च १६३७ मे आपको छोडा गया। स्वास्थ्य-लाभ के लिये डलहौज़ी जाकर रहे। लौटते ही कार्य मे जुट जाने से तबीअत फिर बिगड़ उठी। नवम्बर मे फिर योरप गये। योरप मे रहते समय ही देश ने आपको राष्ट्रपति चुना। १६३८ मे आपके राष्ट्रपति-काल मे आसाम मे कांग्रेस मन्त्रिमण्डल कायम हुआ। आपने अथक दौरा करके सघ-शासन-योजना का ज़ोरदार विरोध किया। १६३६ मे वह फिर, डा० पट्टाभि सीतारामैया के मुक़ाबले मे, राष्ट्रपति चुने गये। इस प्रश्न पर उनमे तथा कांग्रेस के अन्य नेताओ मे मतभेद उत्पन्न होगया।

अ०-भा० कांग्रेस कमिटी ने जून १६३६ मे बंबई मे एक प्रस्ताव इस आशय का पास किया कि कोई भी कांग्रेस-जन प्रातीय काग्रेस कमिटी की पूर्व स्वीकृति के बिना सत्याग्रह नहीं कर सकेगा। इस प्रस्ताव की सुभाष बाबू ने जनता मे कडी आलोचना की। इस पर उनके विरुद्ध अनुशासन की कारवाई की गई और उन्हे तीन वर्ष के लिये काग्रेसकी किसी भी संस्था के चुनाव के अयोग्य घोषित कर दिया गया। सन् १६४० मे उन्होने कलकत्ता मे कालकोठरी—हालवैल स्मारक—को ध्वस करने के लिये सत्याग्रह शुरू किया। इसमे उन्हे सफलता मिली। इस सत्याग्रह के सबध मे उन्हे सज़ा मिली, किंतु बाद मे उन्हे स्वास्थ्य ख़राब होनेके कारण रिहा कर दिया गया। पीछे भारत रक्षा-विधान के अन्तर्गत कई मुक़दमे उन पर चले। स्वास्थ्य उनका ख़राब रहा। वह एकात और संयत जीवन व्यतीत करते हुए

आध्यात्मिक प्रयोग और अध्ययन मे समय बिताने लगे। इसी बीच २६ जनवरी १९४१को सुना गया कि सुभाष बाबू घर से लापता होगये हैं। नवम्बर १९४१ में सरकार ने कहा कि बोस किसी धुरी देश में रह रहे हैं। बॅगला और ॲगरेज़ी मे आपने कई पुस्तके लिखी हैं।

सुरक्षित स्वर्ण-कोष—स्वाधीन देश अपनी बैंको मे चालू मुद्राओ के बराबर स्वर्ण-कोप रखते हैं। इससे देश की साख रहती है और विदेशो मे वह स्वर्ण मे भुगतान भी कर सकते हैं। ससार का सबसे अधिक सोना सयुक्त-राज्य अमरीका मे है, इसके बाद ब्रिटेन, फ्रान्स, स्विट्जरलैण्ड तथा हालैण्ड मे। सितम्बर १९३९ तक बैंक आफ् इॅगलेण्ड मे ६० करोड़ पौंड का, अमरीका की फैडरल रिज़र्व बैंको मे १२ अरब ७० करोड़ डालर का, और बैंक आफ् फ्रान्स मे ४० करोड पौंड का सोना सुरक्षित था। जर्मनी ने अपनी राइख बैंक के हिसाब मे सोने की कोई रकम नहीं दिखाई, किन्तु अनुमानत. उसके पास २० से ५० करोड़ मार्क का गुप्त स्वर्ण-कोष था।

सेवाग्राम—यह वर्धा (मध्यप्रात) नगर से ५ मील की दूरी पर एक छोटा-सा ग्राम है, जिसके पास सन् १९३०-३२ के सत्याग्रह आन्दोलनो के बाद गांधीजी ने अपना आश्रम बनाया। सेवाग्राम भारत की राजनीति का केन्द्र है। गाधीजी का निवास-स्थल होने के कारण देश-विदेश के अनेक राजनीतिज्ञ वहॉ पहुॅच चुके हैं। आश्रम के ही कारण यहॉ डाकघर और टेली-फोन भी है। गॉव का नाम सेगॉव से सेवाग्राम कर दिया गया है।

स्पेन—क्षेत्र० १,९५,००० वर्ग०; जन० २ करोड ४० लाख, उसके अफ्रीकी साम्राज्य को मिलाकर २,८०,००,०००। सन् १९३१ तक स्पेन में राजतन्त्र था, जिसमे १९२५ के बाद जनरल प्रिमो द रिवेरा वास्तव मे वहॉ का अधिनायक था। अप्रैल १९३१ मे रिवेरा की डिक्टेटरशिप उखाड फेंकी गई और स्पेन मे प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। दक़ियानूस दल का जमोरा राष्ट्रपति बना। बादशाह अल्फोंजो त्रयोदश स्पेन से निर्वासित कर दिया गया। बाद को देश के दक़ियानूसी और वामपन्थी दलो मे कशमकश रही और १९३६ के चुनाव मे वामपथियों की जीत हुई, फलतः उनका नेता अज़ाना, ११ मई १९३६ को, स्पेन का, जमोरा के स्थान पर, राष्ट्रपति चुना गया। उसने प्रजा-

तन्त्रवादी सरकार बनाई, जिसमे समाजवादी और साम्यवादी मंत्री नियुक्त नही किये गए। सरकार ने कुछ सामाजिक तथा भूमि-संबंधी सुधार किये, जिनसे बडे ज़मींदारो तथा दक़ियानूस-दल और दक्षिण-पंथियो मे असन्तोष उत्पन्न होगया। फलतः १८ जुलाई १९३६ को जनरल फ्रांको ने भू-सेना को पूरी और नौसेना की आंशिक सहायता से विद्रोह कर दिया। जर्मनी तथा इटली ने फ्रांको को भडकाया, क्योंकि वह योरप मे संयुक्त-मोर्चा (पापुलर फ्रन्ट) के संगठन को पनपता हुआ नहीं देखना चाहते थे, और चाहते थे कि स्पेन धुरी राष्ट्रो के साथ रहे। यह विद्रोह गृह-युद्ध के रूप मे बदल गया, जो तीन साल तक चलता रहा। मार्च १९३९ मे फ्रांको की विजय हुई। तब से स्पेन सैनिक अधिनायकतन्त्र के अधीन है और जनरल फ्रांको वहॉ का अधिनायक है। फेलेंज वहॉ का अकेला दल है, जिसका प्रधान भी फ्रांको है।

स्पेन का गृह-युद्ध, १९३६-३९—१८ जुलाई १९३६ को स्पेनी मरक्को मे जनरल फ्रांको ने स्पेन की प्रजातन्त्र सरकार के विरुद्ध विद्रोह शुरू किया। उसके दूसरे दिन स्पेन की समस्त सेनाऍ विद्रोहियो से मिल गईं। उन्होंने उत्तर-पश्चिमी तथा दक्षिणी स्पेन मे शासन-सत्ता हस्तगत कर ली। उत्तरी तथा पूर्वी स्पेन मे सैनिक-विद्रोह पापुलर फ्रन्ट सरकार द्वारा दबा दिया गया और किसान-मज़दूरो ने केन्द्रिय, उत्तरी और पूर्वी स्पेन मे, मेड्रिड, बारसीलोना और बिलबाओ मे विजय प्राप्त की। सरकार ने नागरिक अनिवार्य सेना बनाई और फ्रांस की पापुलर फ्रन्ट सरकार से हथियार तथा युद्ध-सामग्री मॉगी, किंतु फ्रांस ने इनकार कर दिया और वह तटस्थ रहा। इटली तथा जर्मनी ने स्पेन के विद्रोहियो की युद्ध-सामग्री से मदद की। प्रजातन्त्री सेना के पास फ़ौजी-लवाज़मे की कमी थी, इसलिये फ्रांको ने उन्हे पीछे खदेड दिया और मेड्रिड को २½ साल तक घेरे पडा रहा। पीछे फ्रांस ने गैर-सरकारी तौर पर कुछ सहायता भेजी। १९३७ मे दोनों ओर नई तैयारियॉ हुई। रूस की सरकार ने स्पेन की प्रजातन्त्रवादी सरकार को युद्ध-सामग्री भेजी। इटलीने एक लाख सेना स्पेन मे विद्रोहियो की मदद के लिये भेजी तथा जर्मनी ने तोपे, हवाई-जहाज़, टैंक तथा सैनिक भेजे। रूस ने भी प्रजातन्त्रवादियों को टैंक, हवाई जहाज़ तथा सेना भेजी। फ्रांको को उसके मददगारो ने ज़्यादा और ज़्यादा तादाद

में मदद मिली, जबकि सरकार को न तो मदद जल्द मिली और न उनके यहाँ अनुशासन क़ायम रहा। स्पेन के अराजकतावादी दल ने सरकारी अनुशासन मानने से इनकार कर दिया और कैटालोनियावालो ने अपने देश से बाहर लड़नेसे। काबालेरो की सरकार को हटना पड़ा और नरमदली नेग्रिन की सरकार ने अपनी शक्ति फ्राको को रोकने के स्थान पर अपने विरोधियो को दबाने में लगाई। ४ अप्रैल १६३६ को मेड्रिड के पतन के साथ फ्राको विजयी हुआ।

स्वेज़-नहर—मिस्र में होकर निकाली गई विशाल नहर जो भूमध्यसागर को लाल-सागर से मिलाती है। इस नहर की मालिक एक फ्रान्सीसी कम्पनी है। इस कम्पनी के ६,५२,००० हिस्सों मे से २,६५,००० हिस्से अँगरेज़ी सरकार के पास हैं। डाइरेक्टरों के बोर्ड में फ्रान्स तथा ब्रिटेन के प्रतिनिधि हैं। अबीसीनिया के अपहरण के बाद, आवागमन की अधिकता के आधार पर, इटली ने भी नहर के बोर्ड मे प्रतिनिधित्व पाने की माँग की थी। नहर-कम्पनी उन समस्त जहाज़ों से लगान लेती है, जो इसमे होकर आते-जाते हैं। यह नहर पूर्व देशीयबरतानवी साम्राज्य की जीवन-रक्षक धमनी मानी जाती है और नहर-रक्षा का प्रबन्ध ब्रिटेनके हाथ मे है, जहाँ उसकी ज़बरदस्त फौजे रहती हैं। नहर-कम्पनी का चार्टर १६६७ में ख़त्म हो जायगा और तब यह मिस्र की सम्पत्ति होजायगी। सभी राष्ट्रों के जहाज़ो को, लड़ाई के समय मे भी, इस नहर से आने-जाने से रोका नहीं जा सकता। हाँ, बरतानी नौसेना नहर के दहाने और मुहाने पर तैनात है ताकि शत्रु-राष्ट्र का जहाज़ नहर में न घुस सके।
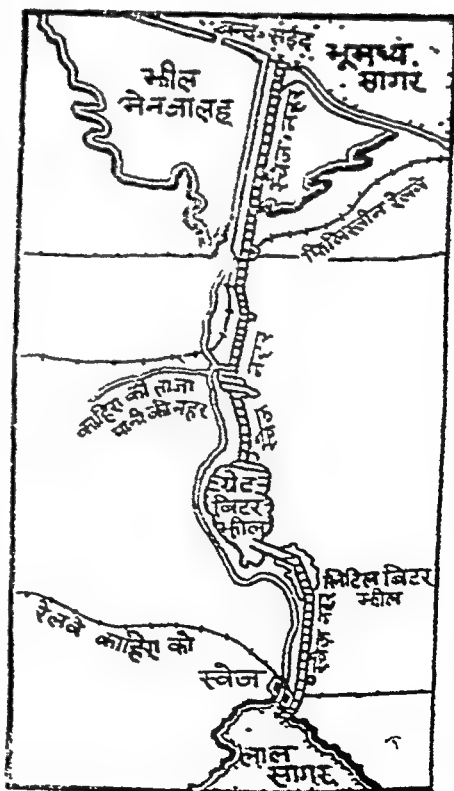
स्टैन्डर्ड आइल कम्पनियाँ—समस्त ससार मे मिट्टी का तेल और पैट्रोल बेचनेवाली अमरीकी कम्पनियो का समूह, जिनकी स्थापना मृत जान डी० राकफैलर ने की। १९११ मे, एक अमरीकी क़ानून के विरोध मे, यह कम्पनियाँ तोड़ दीगई, पर किसी-न-किसी तरह यह कम्पनियाँ क़ायम रही और राकफैलर का भी इनसे सम्पर्क बना रहा। सामूहिक रूप से इनका सगठन अब अस्त-व्यस्त होगया है, अनेक स्टैन्डर्ड आइल कम्पनियाँ बन गई है, जिनमे आपस मे बाज़ार के अन्दर प्रतियोगिता भी रहती है। कैलिफोर्निया, न्यूजर्सी और न्यूयार्क की स्टैन्डर्ड आइल कम्पनियाँ सब इसी समूह की हैं। न्यूयार्क की स्टैन्डर्ड आइल कम्पनी सोकोनी-वैकुअम-समुदाय की वैकुअम आइल कम्पनी मे मिल गई है। स्टैन्डर्ड आइल-कम्पनियाँ समस्त ससार मे तेल की निकासी का नियन्त्रण भी करती हैं, ख़ासकर संयुक्तराष्ट्र अमरीका, रूमानिया, वेनेज़ुला, दक्षिण अमरीका की रियासतों, इराक़ और दक्षिण अरब मे। १९३८ मे मैक्सिको के तेल का व्यवसाय इनके हाथ से निकलकर मैक्सिकन सरकार के हाथ मे जाचुका है। इन कम्पनियो के अधीन समस्त ससार के तेल की निकासी का चौथाई भाग है। तेल निकालना, उसे साफ़ करना, यातायात द्वारा ससार भर मे पहुँचाना और बेचना, सब कुछ इन्हीके हाथ मे है।

स्ट्रैसा का मोर्चा—मुसोलिनी के सुझाव पर, १९३४ मे, योरपियन राष्ट्रो की एक परिषद्, स्ट्रैसा नगर मे, डेन्यूब नदी के कछार मे किसी भी राष्ट्र के सम्भावित विस्तार की समस्या पर विचार करने के लिये, हुई थी। इस परिषद् मे इटली ने पश्चिमी राष्ट्रो—ब्रिटेन और फ्रान्स—का पक्ष लिया था और जर्मनी का विरोध किया था। इस परिषद् की कार्यवाही स्ट्रैसा मोर्चा नाम से प्रसिद्ध है।

सोकल—चैकोस्लोवाकिया का शारीरिक-विकास-सम्बन्धी राष्ट्रीय आन्दोलन, जिसके दस लाख सदस्य हैं। इस आन्दोलन द्वारा, १९वी सदी मे, चैक राष्ट्रीय-जागरण और आधुनिक चैक जातीय-जीवन के विकास मे बहुत साहाय्य मिला है। अक्टूबर १९४१ मे नात्सियो ने इस आन्दोलन को वहाँ भङ्ग कर दिया। अन्य स्लाव-जातीय देशो मे भी सोकल सस्थाये पाई जाती हैं, किन्तु सोवियत रूस मे यह आन्दोलन नहीं है।

सोवियत—परिषद् या पंचायत का अर्थसूचक रूसी शब्द। सन्

१६०५ की रूसी राज्य-क्रान्ति के समय मज़दूरो ने सोवियत नामक सस्थाएँ स्थापित कीं। सन् १६१७ की राज्य-क्रान्ति मे उनका पुनसंगठन किया गया। साम्यवादी क्रान्ति की वह आधारभूत सस्थाएँ बन गईं और जब क्रान्ति समाप्त होगई तो रूसी शासन-विधान उन्हींके आधार पर बना। सन् १६३६ के परिवर्तित शासन-विधान द्वारा उनकी सगठन-प्रणाली मे सुधार कर दिया गया। प्रारम्भिक सोवियत प्रणाली मे, जनता का प्रत्यक्ष सहयोग रहने के विचार से, व्यवस्थापक और शासन सत्ता सयुक्त थी। उच्च सोवियतो का अप्रत्यक्ष चुनाव होता था तथा स्थानीय एव राज्य के प्रबन्ध मे साम्य था।

सोवियत संघ—पूरा नाम समाजवादी सोवियत प्रजातन्त्र सघ (Union of Socialist Soviet Republics); क्षेत्र० ८२,२७,००० वर्ग०, जन० १६,३०,००,०००। सोवियत सघ का इतिहास साम्यवादी क्रान्ति, लेनिन तथा स्तालिन के प्रयत्नों और कार्यों का इतिहास है। १६१७ की कम्युनिस्ट-क्रान्ति के बाद 'रूसी समाजवादी पचायती प्रजातन्त्र सघ' (Russian Socialist Federative Soviet Republic) की स्थापना हुई। १६२३ मे यूक्रेन तथा सीमाप्रान्त की अन्य पचायते इसमे शामिल कीगई और रूस का शासन-विधान बनाया गया जिसमे मज़दूरो की सत्ता को प्रमुख स्थान दिया गया। शासन-प्रबन्ध की आधारभूत सस्थाऐ सोवियते अर्थात् कौंसिले या पचायते थीं, जो म्युनिसिपैलिटी आदि स्थानीय शासन-प्रबध के साथ-साथ राज्य के शासन-प्रबध मे भाग लेती थीं। छोटी सोवियते बड़ी (ज़िला, प्रान्तीय और देशिक) सोवियतो का, अप्रत्यक्ष ढग से, चुनाव करती थी। अखिल-रूसी सोवियत काग्रेस का चुनाव, छोटी सोवियतो द्वारा—प्रत्येक २५,००० मज़दूरो की ओर से एक प्रतिनिधि तथा प्रत्येक सवालाख किसानो की ओरसे एक प्रतिनिधि के आधार पर—होता था,जिसमे मज़दूरो के मुक़ाबले किसानों को एकबटेपॉच मताधिकार प्राप्त था। यह काग्रेस एक केन्द्रीय कार्यकारिणी कौंसिल का चुनाव करती थी, जो ऐसे समय मे नियम बनाती थी जबकि काग्रेस का अधिवेशन नहीं होता था। केन्द्रीय कार्यकारिणी ही सरकार की नियुक्ति करती थी जो कौंसिल आफ् दि पीपल्स कमिसार्स कहलाती थी। सोवियत-सघ मे सात स्वायत्त-भोगी जनतन्त्र (फेडरल रिपब्लिक्स) थे।

सन् १९३६ मे इस शासन-विधान मे संशोधन किया गया। सोवियत नाम तो रहा किन्तु सोवियत-व्यवस्था उठा दीगई। अप्रत्यक्ष चुनाव-प्रणाली त्याग दीगई और सोवियत कांग्रेस हटा दीगई। अब छोटी-बडी समस्त सोवियतो का प्रत्यक्ष रूप से, जनता द्वारा ही, चुनाव होता है और छोटी सोवियते बडी सोवियतो का नियन्त्रण नही करती। सघ की सुप्रीम कौंसिल, अन्य देशो की पार्लमेन्ट की भाँति, सबसे बडी धारा-सभा है। इसका चुनाव किसानो तथा मज़दूरो द्वारा अब समान मताधिकार से होता है। पुराने बचेखुचे सम्पत्तिशालियो को मताधिकार प्राप्त नहीं है। सुप्रीम कौंसिल मे दो सभाये हे : संघ की कौंसिल (कौंसिल आफ् यूनियन), जिसमे ३ लाख आबादी पर एक प्रतिनिधि होता है, दूसरी राष्ट्रों की कौंसिल (कौंसिल आफ् नेशनेलिटीज), जिसमे प्रत्येक संघीय जनतन्त्र के २५ सदस्य होते हैं और स्वायत्त-भोगी जातिगत प्रदेशो के प्रतिनिधियो के लिये जिसमे एक संख्या नियत है। सुप्रीम कौंसिल प्रत्येक जनतन्त्र के लिये एक प्रेसिडेसी का चुनाव करती है, जिसमे १५ सदस्य तथा एक अध्यक्ष होता है। अध्यक्ष प्रत्येक प्रजातन्त्र राज्य का राष्ट्रपति होता है। सुप्रीम कौंसिल ही संघ के मन्त्रिमण्डल (कौंसिल आफ् दि पीपल्स कमिसार्स) का चुनाव करती है, जो सुप्रीम कौंसिल के प्रति उत्तरदायी होता है। कमिसार्स कौंसिल का अध्यक्ष प्रधान-मंत्री होता है। आजकल कामरेड जोसफ वी० स्तालिन प्रधान-मंत्री है। इस समय सोवियत संघ मे २५ प्रजातंत्र राज्य हैं, जिनमे उपरोक्त प्रणाली की अपनी सरकारें क़ायम हैं। रूस मे १८० प्रकार की जातियाँ बसती हैं, अतएव सबको स्वराज का उपभोग प्राप्त होने के विचार से, प्रजातन्त्रों के अन्तर्गत, क़ौमी जनतन्त्र, स्वायत्तभोगी प्रदेश और स्वतन्त्र इलाक़े क़ायम कर दिये गये हैं।

सोवियत संघ के पन्द्रह प्रमुख प्रजातन्त्र—रूस, यूक्रेन (जिसका अधिकाश भाग, १९४१ मे, नात्सी-साम्राज्य-लिप्सा का शिकार हुआ था), श्वेत रूस, आरमीनिया, जार्जिया, अजरवेजान, उज़्बकिस्तान, क़ज़ाक़िस्तान, तुर्कमानिस्तान, ताजिकिस्तान, किरग़िज़िया तथा लेटविया, लिथुआनिया, ऐस्टोनिया और मोल्दाविया (जिनमे प्रथम तीन को, जुलाई १९४१ में, रूस पर आक्रमण के समय, जर्मनी और चौथे को, उसी अवसर पर, रूमानिया अपहरण कर चुका

था)। प्रजातन्त्रो की १५ भाषाये सरकारी भाषायें हैं और रूसी भाषा को प्रधानता प्राप्त है। संघ की आबादी में रूसी ८॥ करोड़ हैं। प्रजातन्त्रों को सब से पृथक होने का अधिकार प्राप्त है, पर व्यवहारतः ऐसा अभीतक हुआ नहीं है।

साम्यवादी दल ही सोवियत सघ मे एक मात्र सरकार द्वारा स्वीकृत राजनीतिक दल है। इस दल द्वारा स्वीकृत उम्मेदवार ही चुनावो मे खडे होसकते हैं। जी० पी० यू० सघ की खुफिया पुलिस है। जोसफ स्तालिन इस दल का प्रधान-मत्री है और वही सोवियत सघ का शासक तथा अधिनायक है। सघ की लाल सेना को खूब सुसज्जित किया गया है। रूस की आर्थिक-प्रणाली समाजवादी है। उद्योगों तथा यातायात के साधनो पर राज्य का स्वाम्य है। राष्ट्रनिर्मात्री समिति द्वारा बनाई गई और सुप्रीम सोवियत द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार इनका सचालन किया जाता है। कृषि सामूहिक (कलैक्टिव फार्म्स—रूसी शब्द 'कोलख़ोज') ढग पर की जाती है, किन्तु प्रत्येक किसान एक मकान, एक या दो एकड़ भूमि तथा एक या दो गाय अपनी रख सकता है। सामूहिक खेती मे तो उसका साझा है ही।

रूस की वैदेशिक नीति, देश-काल की स्थिति के अनुसार, समय-समय पर बदलती रही है। सन् १९१७-२२ तक वह पूँजीपति और साम्राज्यवादी राष्ट्रो के सम्पर्क से अलग रहा। रपालो की सन्धि के बाद, सन् १९२२-१९३३ तक, उसने जर्मनी से सहयोग किया। इस अवधि मे रूस, अपने देश मे हस्तक्षेप किये जाने के सम्बन्ध मे, निरन्तर सशङ्कित रहा। बरतानिया और फ्रान्स दोनो को वह अपने सम्बन्ध मे, एक को उकसानेवाला और दूसरे को हस्तक्षेप का साधन बननेवाले की भाँति देखता रहा। १९३४ से ३९ तक उसने ससार के प्रजातन्त्रों से सहयोग किया। हिटलर के बोलशेविज्म-विरोधी होने के कारण रूस को उसकी ओर से आक्रमण का भारी भय था। इसलिये वह राष्ट्र-सघ मे सम्मिलित हुआ और बहुत सचेत भाषा मे फ्रास और चैकोस्लोवाकिया के साथ उसने सधियाँ की। चीन मे जापान का प्रसार होने और जापान के जर्मनी से गँठजोड़ा करने के कारण रूस की चिंता बढ़ी। रूस ने जापान के ख़िलाफ चीन की मदद की, किसी नीति-विशेष के कारण नही, आदर्शपालन के लिये। १९३९-४० मे उसने जर्मनी से सहयोग किया, उसके साथ अनाक्रमण

संधि की और पोलैंड के बँटवारे मे भी साथ दिया। योरप के साम्राज्यवादी-प्रचारको के अनुसार रूस ने वर्तमान युद्ध के प्रारम्भिक-काल मे मित्र-दल के विरुद्ध जर्मनो को कूटनीतिक सहायता दी, जिसके बदले मे जर्मनी ने पूर्वीय योरप मे, कुछ समय के लिये, रूस को स्वतन्त्र छोड़ दिया, फलतः रूस ने पोलैंड, रूमानिया और बाल्टिक देशो पर अधिकार प्राप्त कर लिया। १६४१ मे रूस-जर्मन-युद्ध छिड़ा। १६४० के मध्य-काल मे फ्रास का पतन होने पर रूस-जर्मनी की मित्रता वाह्यरूप से १६४१ तक क़ायम रही। जबकि जर्मनी ने बलकान-राष्ट्रसमूह को हड़पा, तब रूस ने नात्सियो की निंदा की। इसके बाद पूर्वीय योरप के दोनो सीमान्तो पर सैन्य-संग्रह के कारण आपत्ति के आसार दिखाई देने लगे और, २२ जून १६४१ को, विना किसी पूर्व सूचना के, हिटलर ने सोवियत संघ पर आक्रमण कर दिया। १२ जुलाई १६४१ को मास्को मे बरतानिया और सोवियत के बीच एक समझौता हुआ कि दोनो राष्ट्र मिलकर नात्सी-जर्मनी का मुक़ाबला करेंगे और अलग संधि नही करेंगे।

जर्मन आक्रमण के बाद, स्तालिन की अध्यक्षता मे, पॉच सदस्यो की एक राष्ट्र-रक्षा समिति (स्टेट् डिफेन्स कमिटी) बनाई गई, जिसे शासन के समस्त अधिकार दे दिये गये। सितम्बर १६४१ मे ब्रिटेन, अमरीका और सोवियत के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन मास्को मे हुआ और बरतानिया और अमरीका ने रूस को विपुल युद्ध-सामग्री भेजने का वचन दिया। नवम्बर १६४१ मे अमरीका ने रूस को १ करोड डालर का ऋण दिया।

सोवियत रूस और उसके द्वारा समस्त विश्व मे साम्यवाद का प्रसार होने के संबध मे तीन विचार-धारायें हैं : (१) सोवियत रूस ने संसार-व्यापी कम्युनिज़्म का विचार त्यागकर परम्परागत रूसी राष्ट्रीय नीति को ग्रहणकर लिया है। (२) संसार-व्यापी क्रांति का कार्य-क्रम क्षणिक रूप से स्थगित कर दिया गया है और उपयुक्त अवसर प्राप्त होते ही स्तालिन उसका अनुसरण करेगा। (३) स्तालिन ऐसा नहीं करेगा, उसके स्थान पर रूस मे अधिक उग्र नीति की सरकार क़ायम होगी और वह, ट्रात्स्की द्वारा अनुमोदित, सारी दुनिया मे क्रांति का आयोजन करेगी।

सोशल डेमोक्रेट्स—हालेण्ड, स्विट्ज़रलेण्ड, डेनमार्क, स्वीडन, फिन-

लेण्ड, हगरी और जर्मनी के समाजवादी मजदूर दल सोशल डेमोक्रेट्स कह-लाते हैं। जर्मनी मे, नात्सीवाद के उदय के समय से, यह दल ग़ैर-क़ानूनी करार दे दिया गया है।

स्कोदा कारखाना—यह बोहेमिया मे, पिल्सेन नामक स्थान पर, अस्त्र-शस्त्र बनाने और लोहे की ढलाई करने वाले बड़े कारखानो का विशाल समूह है। युद्ध का सामान बनाने वाले यह ससार के बड़े कारख़ानो मे से है। लड़ाई से पूर्व इसमे २२,००० मजदूर काम करते थे। फ्रान्सीसी कम्पनी-समूह श्नीदर-क्रूसत का यह कारखाना चैकोस्लोवाकिया पर जर्मन-आधिपत्य स्थापित होने के बाद जर्मनी के अधिकार मे चला गया है।

स्लोवाक—यह जाति स्लाव कौम के अन्तर्गत है, जो चैक-जाति से बहुत मिलती-जुलती है। स्लोवाक लोग सदियो तक हगरी के तावे रहे और पिछले युद्ध के फलस्वरूप, १६१८ मे, चैकोस्लोवाकिया के निर्माण के समय, इन का उद्धार हुआ। २० साल तक स्लोवाक चैको के साथ एक राज्य मे रहते रहे, किन्तु उसके बाद वह अपनी राजनीतिक स्वाधीनता अलग मॉगने लगे, जो म्युनिख समझौते के अनुसार, अक्टूबर १६३८ मे, चैकोस्लोवाकिया का पुन-संगठन होते समय, उनको मिल गई और नात्सी-ढंग की डिक्टेटरशाही वहॉ कायम हुई। १० मार्च १६३६ को स्लोवाक राजधानी, ब्रातीस्लावा, मे जर्मनी के नात्सियो ने विद्रोह करा दिया और स्लोवाक पूर्ण-स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई, तब से स्लोवाकिया में, जर्मन-संरक्षण मे, एक कठपुतली सरकार क़ायम है। जर्मन फौजे वहॉ क़ाबिज हैं और स्लोवाक लोगो को, जर्मनी के पक्ष में, पोलेण्ड और रूस से लड़ना पड़ा है। प्रवासी स्लौवाक चैको से मिलकर मित्रराष्ट्रो की सहायता कर रहे हैं और वह लन्दन-प्रवासी डाक्टर बेनेश की अस्थायी चैकोस्लोवाकी सरकार के सचालन मे भाग ले रहे हैं।

स्लोवेनीज—दक्षिणी स्लाव जन-समूह जो आल्प्स पर्वत के दक्षिण-पूर्व भाग मे बसा हुआ है, इनकी संख्या दस लाख, रोमन कैथलिक ईसाई। सदियों तक यह जाति आस्ट्रिया के अधीन रही है। पिछले महायुद्ध के बाद यह लोग यूगोस्लावी राज्य के अन्तर्गत सर्बिया, क्रोशिया तथा अन्य दक्षिणी स्लाव देशों के साथ मिला दिये गये और इनके प्रदेश का नाम स्लोवेनिया रख

दिया गया। इस प्रदेश मे कच्चा लोहा निकलता है तथा यह सामरिक महत्त्व का भी है। अप्रैल १६४१ मे जब जर्मनी ने यूगोस्लाविया का अपहरण किया तो स्लोवेनिया के उत्तरी भाग को भी, जिसमे थोडे से जर्मन आबाद हैं, वह दबा बैठा। मई १६४१ मे उसके कुछ भाग को इटली ने हड़प लिया और कुछ ज़िले हंगरी को दे दिये गये।

ह

हंगरी—क्षेत्र० ६४,००० वर्ग०; जन० १,३०,००,०००,; राजधा बुदापेस्त। पहले यह आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य का आधा भाग था। १६१ १८ के युद्ध के बाद यह स्वतंत्र होगया, किन्तु इसमे उसे अपने ७५ फ़ीस प्रदेश और ६० फ़ीसदी जनसंख्या से हाथ धोने पड़े। उत्तर मे स्लोवाकि चैकोस्लोवाकिया ने, पूर्व मे ट्रान्सिलवेनिया रूमानिया ने, दक्षिण मे क्रोशि तथा अन्य प्रदेश यूगोस्लाविया ने और पश्चिम मे आस्ट्रिया ने बर्गनलैण्ड प्रदे ले लिये। आरम्भ मे, १६१६ मे, कुछ समय तक साम्यवादी अधिनायक-त रहने के बाद से नौसेनापति होर्थी हंगरी का शासक है। यद्यपि हंगरी मे रा तन्त्र है, किन्तु वहाँ राजा नही है। सितम्बर १६३८ मे, जब म्युनिख समझौ के अनुसार, चैकोस्लोवाकिया का प्रथम बॅटवारा हुआ, तब स्लोवाकिया व बड़ा प्रदेश, और, मार्च १६३६ मे, चैको० के दूसरे बॅटवारे मे, उसे रूस का ल कार्पेथियन सूबा मिल गया। अगस्त १६४० मे उसने ट्रान्सिलवेनिया रूम निया से लेलिया। हंगरी इस युद्ध मे तटस्थ रहा, किन्तु धुरी राष्ट्रो से मित रहा। १६४० में वह त्रिगुट मे शामिल हुआ और १६४० में ही उसने जर्म फ़ौजो को रूमानिया के लिए रास्ता देदिया, और अप्रैल १६४१ मे तो व धुरी राष्ट्रो के साथ यूगोस्लाविया के युद्ध में और जून १६४१,मे रूस के आ मण मे शामिल हुआ। हंगरी के प्रधान मन्त्री, काउन्ट तेलेकी, ने हंगरी के युद्ध

सम्मिलित होने से पूर्व, अपने देश की नीति से निराश होकर, २ अप्रैल १६४१ को, आत्मघात कर लिया। १६४१ के सात अप्रैल को वरतानिया ने हंगरी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और उसी वर्ष ६ दिसम्बर को ब्रिटेन ने और १२ दिसम्बर को अमरीका ने हंगरी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करदी। हगरी में सोशलिस्ट, नात्सी, खेतिहर, सयुक्त-ईसाई कई दल हैं। नेशनल-यूनियन सरकारी दल है। शासन-सत्ता मे ज़मीदारो का प्रमुख हाथ है।

हड़ताल—श्रमिकों अथवा अन्य जनता द्वारा किसी महापुरुष की मृत्यु पर अथवा किसी अन्याय के लिए शोक या प्रतिरोध-प्रदर्शनार्थ या किसी अधिकार, सुविधा अथवा सुयोग की प्राप्ति के लिए काम-धन्धा अथवा कारबार बन्द कर देना। 'अन्दर रहो' हड़ताल भी इसका एक प्रकार है। सबसे पहले १६३४ मे पोलैण्ड के मज़दूरो ने इसका प्रयोग किया। जबतक उनकी मॉगें स्वीकार नहीं कर ली गईं, कोयले की खानों से वह बाहर नही निकले। फ्रान्स और अमरीका मे भी इस प्रकार की हड़तालो का ज़ोर रहा। भारत मे इसके एक-दो उदाहरण ही हैं।

हर्टज़ोग, जेम्स बैरी मुनिक—जनरल, दक्षिण अफ्रीकी राजनीतिज्ञ तथा वहाँ का पूर्व प्रधानमन्त्री, बोअर-कुल मे १८६६ में पैदा हुआ, विक्टोरिया कालिज तथा एमस्टर्डम विश्वविद्यालय मे पढा; १८६५ मे आरेंज फ्री स्टेट मे जज होगया, बोअर-युद्ध मे बोअरों की ओर से अँगरेजो से लड़ा और बाद मे अँगरेज़ो का विकट विरोधी रहा, प्रथम बोथा-मन्त्रिमण्डल मे, १६०७ मे, प्रान्तीय शिक्षा-मन्त्री और १६१० ई० में न्याय-मन्त्री नियुक्त हुआ। इस काल मे वह बराबर बोथा की ब्रिटिश-पोषक नीति का विरोधी रहा। १६१२ मे मंत्रिमंडल से त्याग-पत्र देकर उसने दक्षिण अफरीका मे प्रजातन्त्र की स्थापना को उद्देश बनाकर

१६१३ मे 'राष्ट्रवादी' विरोधी-दल की स्थापना की। बोथा और स्मट्स की नीति दक्षिण अफ्रीका को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रखने की थी। आरम्भ मे दक्षिण अफ्रीकी पार्लमेंट मे हर्टज़ोग के ५ समर्थक थे, किन्तु १६२४ मे इनकी संख्या ६३ होगई। तब हर्टज़ोग ने मज़दूर-दल से क्षणिक समझौता करके स्मट्स की सरकार को उखाड़ दिया और स्वयं प्रधानमन्त्री बना। सन् १६३४ मे हर्टज़ोग की 'नेशनलिस्ट' और स्मट्स की 'माडरेट साउथ अफ्रीकन' पार्टियाँ एक होगई और 'यूनाइटेड साउथ अफ्रीकन नेशनल पार्टी' की स्थापना हुई। हर्टज़ोग १५ वर्ष तक पदस्थ रहा। वर्तमान युद्ध मे हर्टज़ोग ने दक्षिण अफ्रीकी संघ की तटस्थता पर ज़ोर दिया, किन्तु संघीय पार्लमेन्ट मे, ५ सितम्बर १६३६ को, उसका यह प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। इस पर हर्टज़ोग की सरकार ने त्याग-पत्र दे दिया और स्मट्स प्रधान-मंत्री बना। २३ जनवरी १६४० को जनरल हर्टज़ोग ने पार्लमेंट मे एक अन्य प्रस्ताव इस आशय का रखा कि दक्षिण अफ्रीकी संघ इस युद्ध मे भाग न ले। ५६ के मुक़ाबले ८१ मत से यह प्रस्ताव गिर गया। अपने सहयोगी डा० मलान के साथ तब जनरल हर्टज़ोग ने वक्तव्य प्रकाशित किया कि उनका मन्तव्य ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् अफ्रीकी प्रजातन्त्र की स्थापना करना है। हर्टज़ोग-मलान का संयुक्त-दल अफ्रीका मे ५० प्रति-शत अफ्रीकी-भाषा-भाषियो का प्रतिनिधित्त्व करता है।

२६ अगस्त १६४० को हर्टज़ोग का एक शान्ति-प्रस्ताव कि "लडाई में सम्प्रति हार होचुकी है" ६५ के मुक़ाबले ८२ मत से अस्वीकृत हुआ। नेशन-लिस्ट पार्टी-कांग्रेस के तय करने पर कि प्रस्तावित बोअर प्रजातन्त्र मे अँगरेज़ी-भाषा-भाषियों को समान अधिकार नहीं दिये जायँगे, हर्टज़ोग का मलान से मत-भेद होगया। उसने दल और पार्लमेंट से त्यागपत्र दे दिया और, ७ मार्च १६४१ को अन्य राष्ट्रीय नेता हवेर्गा के साथ, स्मट्स-मलान-विरोधी 'नवीन अफ्रीकी दल' उसने बनाया।

हरिजन—सन् १६३२ से महात्मा गांधी ने इस शब्द का प्रयोग दलित वर्ग के लिए किया है। तब से यह काफी प्रचलित होगया है। भारत में ६ करोड ऐसे हिन्दू हैं जिन्हे नागरिकता के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं। हिन्दुओ के इस पिछडे तथा दलित समुदाय के लिए 'हरिजन' और कहीं-कहीं

'भगत' शब्द प्रयोग किया जाता है। सरकार ने, अपने उद्देशानुसार, इस वर्ग के लिए 'परिगणित जातियाँ' (Scheduled Castes) नाम दिया है। सन् १६३३ से महात्मा गाधी 'हरिजन' नाम का एक साताहिक अँगरेज़ी पत्र भी प्रकाशित करते हैं, जिसमें उनके विचार रहते हैं।

हरिजन-सेवक-संघ—२५ सितम्बर १६३२ को, महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय के सभापतित्व मे, बम्बई में हिन्दुओं के नेताओं तथा प्रतिनिधियों की सभा मे एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। 'साम्प्रदायिक-निर्णय' (कम्युनल ऐवार्ड) मे निर्धारित दलित-वर्ग को हिन्दू-राष्ट्र से पृथक् करने की प्रस्तावित योजना के विरोध में महात्मा गान्धी यरवदा जेल मे इस समय आमरण व्रत कर रहे थे। इस प्रस्ताव मे यह घोषणा कीगई कि भविष्य में हिंदुओं मे किसी भी व्यक्ति को, केवल जन्म के कारण, अस्पृश्य न माना जायगा और जिन्हे अबतक ऐसा माना जाता रहा है, उन्हें समान नागरिक अधिकार प्राप्त होंगे। सन् १६३२ की ३० सितम्बर को सार्वजनिक विराट् हिन्दू सभा मे यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि अस्पृश्यता के विरुद्ध प्रचार के निमित्त अ०-भा० अस्पृश्यता-विरोधी संघ स्थापित किया जाय, जिसका मुख्य कार्यालय देहली मे रहे। इसी सभा मे यह निश्चय किया गया कि (१) समस्त सार्वजनिक कुएँ, धर्मशालाएँ, सड़कें, स्कूल, श्मशान, दलित जातियों के लिए खोल दिये जायँ। (२) समस्त सार्वजनिक मन्दिरो मे देव-दर्शन करने से दलित जातियो को न रोका जाय। इन दोनो उद्देशों के पूरा करने मे बल-प्रयोग या दबाव से नही प्रत्युत् शान्ति और समझौते से काम लिया जाय।

श्री सेठ धनश्यामदास बिड़ला इस सघ के अध्यक्ष तथा श्री अमृतलाल वी० ठक्कर इसके प्रधान-मन्त्री नियुक्त किये गये। २६ अक्टूबर १६३२ को इस सस्था का नाम बदलकर 'हरिजन-सेवक-संघ' कर दिया गया। २ जनवरी १६३५ को इस सघ का नया विधान बनाया गया।

सघ का प्रबध एक केन्द्रिय बोर्ड के हाथ मे है, जिसमे अध्यक्ष, प्रधान-मत्री तथा कोषाध्यक्ष के अतिरिक्त समस्त प्रान्तीय बोर्डों के अध्यक्ष सदस्य हैं। १५ सदस्य तक प्रधान को नियुक्त करने का अधिकार है। प्रत्येक प्रान्त मे

सुविधानुसार एक या दो बोर्ड हैं। देशी रियासतों मे भी बोर्ड हैं। प्रत्येक ज़िला और नगर मे भी उसकी शाखाएँ हैं।

इस सघ की ओर से दलित जातियों मे शिक्षा-प्रसार के लिए उद्योग किया जाता है। इसके लिए 'गांधी-छात्र-वृत्ति' की व्यवस्था कीगई है। इसके फड से उच्च शिक्षा के लिए प्रत्येक प्रान्त मे दलित वर्ग के छात्रो को वृत्तियाँ दी जाती हैं। प्रत्येक प्रान्तीय बोर्ड की ओर से माध्यमिक शिक्षा के लिए वृत्तियॉ दी जाती हैं। गॉवो मे उनकी सुविधा के लिए रात्रि-पाठशालाएँ तथा कुएँ और तालाब बनाये जाते हैं। इस संघ की ओर से दलित छात्र और छात्राओ के लिए छात्रावास भी स्थापित किये गये हैं।

मन्दिर-प्रवेश के लिए भी संघ की ओर से प्रयत्न किया जाता है। दलित छात्रो को उद्योग-धन्धे और व्यवसाय के लिये प्रोत्साहित किया गया है। देहली में, जहॉ केन्द्रिय बोर्ड का प्रधान-कार्यालय है, एक 'हरिजन उद्योग-शाला' की स्थापना की गई है, जिसमे छात्रों के लिये विविध प्रकार के शिल्प-कला-कौशल-शिक्षण का प्रबध है। इसी प्रकार की एक सस्था प्रयाग में 'हरिजन-आश्रम' नाम से है, जिसका सचालन मुशी ईश्वरशरण के हाथ मे है, जो लगन तथा सेवा-भाव से आश्रम का संचालन कर रहे हैं।

हवाई टारपीडो—हवा मे सीधा उड़नेवाला बम, जिसमें पंखे लगे रहते हैं। इसे रेडियो द्वारा नियत्रित किया जा सकता है।

हाकोन—नारवे का बादशाह; डेनमार्क के राजा आठवें फ़्रेडरिक का पुत्र; ३ अगस्त १८७२को पैदा हुआ; प्रिन्स कार्ल के नाम से डेनमार्क का शहज़ादा कहलाया ; स्वीडन से नारवे के पृथक्करण के समय नारवे की गद्दी के लिये चुना गया; बादशाह सप्तम ऐडवर्ड की राजकुमारी माड से विवाह किया, जिससे २ जुलाई १९०३ को युवराज ओलफ़ पैदा हुआ; १९३८ में रानी माड का देहान्त होगया। अप्रैल १९४० में जब जर्मनी ने नारवे पर आक्रमण किया तो राजा हाकोन ने मोर्चा लिया और मित्र-सेनाओं के साथ-साथ नारवे की सेना का संचालन किया। हथियार डाल देने के हिटलर के मतालबे को उसने ठुकरा दिया और जर्मन उड़ाकों द्वारा विशेष रूप से उसीको लक्ष्य बनाकर गोले बरसाये जाने के अवसर पर उसने अत्यन्त

धैर्य का परिचय दिया। जून १९४० मे हाकोन इंगलैण्ड चला गया और आक्रमक के विरुद्ध नारवे को लड़ाने के प्रयत्न मे तबसे सलग्न है।

हार्स्ट वेसल गायन—नात्सी-दल का क़ौमी गीत (नेशनल ऐन्थम), जो जर्मनी का दूसरा राष्ट्रीय गीत है। युवक नात्सी हार्स्ट वेसल ने इसकी रचना की। वेसल १९३० मे कम्युनिस्टों मे झगड़ते समय मारा गया। नात्सी कहते हैं कि यह राजनीतिक झगड़ा था, किन्तु कम्युनिस्ट झगडे की जड एक वेश्या को बताते हैं। इस गीत का भाव एक कम्युनिस्ट गीत से लिया गया है, और कम्युनिस्टों का वह गीत ईसाइयों की मुक्ति-सेना (साल्वेशन आर्मी) के एक प्रार्थना-पद की छाया पर है।

हार्डीकर, डा० नारायण श्रीधर—आपका जन्म हुबली मे, सन् १८८९ मे, हुआ। नेशनल मेडिकल कालिज कलकत्ता तथा अमरीका के मिशीगन और न्यूयार्क विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की। आरम्भ मे चिकित्सा-कार्य करने के उपरान्त राष्ट्र-सेवामे लग पडे। महात्मा गाधी के 'यगइडिया' साप्ताहिक पत्र के प्रबध-सम्पादक भी रहे। कुछ समय तक कर्णाटक प्रान्तीय काग्रेस कमिटी के प्रधान मंत्री पद पर रह कर कार्य किया। हिन्दुस्तानी सेवा-दलके संगठन मे बहुत वर्षों तक कार्य किया तथा उसके मत्री रहे। 'वालटियर' नामक पत्र का सम्पादन किया। नागपुर झडा सत्याग्रह मे कर्णाटक के स्वय-सेवकों का सगठन किया और इस सत्याग्रह मे जेल-यात्रा भी की। आपने १९३८ मे चीन को सेवा-दल भेजने का निश्चय किया था, किन्तु सरकार ने स्वीकृति नही दी।

हॉलैण्ड—सरकारी नाम नीदरलैण्ड्स का राज्य, क्षेत्र० १२½ हजार वर्ग०, जन० ८७,००,०००, राजधानी हेग, रानी विल्हेलमिना। यह देश सदैव तटस्थ रहा है। यहाँ पार्लमेण्टरी शासन-प्रणाली है। यह बहुत सम्पन्न

देश है, जिसमे कृषि और उद्योग-धन्धो का विपुल व्यवसाय है। जर्मनी का इसपर पहले से दॉत था। हॉलेण्ड का औपनिवेशिक साम्राज्य भी सुसम्पन्न था, जो सुमात्रा, जावा (जो पूर्वकालीन भारत के उपनिवेश रहे हैं तथा जहॉ आर्य सभ्यता के चिह्न अब भी अवशेष हैं), बोर्नियो, डच-गाइना आदि मे फैला हुआ था, और जिस सबका क्षेत्रफल ७,८८,००० वर्गमील है। निरपेक्ष होने पर भी, मई १९४० मे, जर्मन सेनाओ ने इस देश पर आक्रमण किया। ५ दिन तक डचो ने जर्मनो से लोहा लिया, फिर हथियार रख दिये, तब इस देश पर जर्मन अधिकार होगया। अधिकृत हालैण्ड मे जर्मनो ने नात्सी शासन स्थापित कर दिया है, और नीदरलैण्ड्स ईस्ट इण्डीज़ के डच प्रदेशो—सुमात्रा, जावा, आदि का सन् १९४२ मे जापान ने अपहरण कर लिया है। डच सेनाये ईस्ट-इन्डीज़ मे, अमरीकी और बरतानी सेनाओ के साथ, जापानियो से लड़ रही हैं, और रानी और उसकी सरकार लन्दन मे हैं।
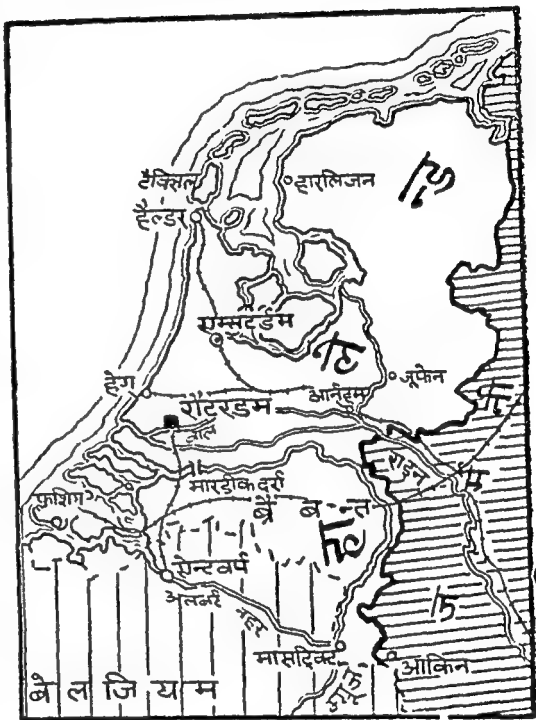
हाशा, ऐमिल—एलएल० डी०; चैकोस्लोवाकिया का अन्तिम राष्ट्रपति; १८७२ मे पैदा हुआ; वकील रहने के बाद, सन् १९२५ मे, चैकोस्लोवाकी सुप्रीम ऐडमिनिस्ट्रेशन कोर्ट का अध्यक्ष बना; अक्टूबर १९३८ मे, म्युनिख-समझौते के बाद बेनेश के त्याग-पत्र दे देने पर, हाशा राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। चैकोस्लोवाकिया के अवशेष भाग को स्वतंत्र बनाये रखने का उसका प्रयत्न विफल हुआ। १४ मार्च १९३८ को जबकि जर्मन-सेनाऍ चैको... व मे प्रवेश कर चुकी थी, हर हिटलर ने उसे बर्लिन मे तलब किया, जहॉ. धमकियो के बीच उससे एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करालिये गये,

अनुसार चैको० जर्मन-'सरक्षण' मे चलीगई। हिटलर ने हाशा को 'सरक्षित' प्रदेश बोहेमिया और मोराविया का दिखाऊ राष्ट्रपति बना रहने दिया।

हिटलर, एडोल्फ—जर्मनी का अधिनायक; २० अप्रैल १८८९ को ब्रॉनॉ (आस्ट्रिया) मे पैदा हुआ, इसका पिता कस्टम्स अफसर था, लिंज़ (आस्ट्रिया) मे, जो उस समय अखिल-जर्मनवाद का गढ था, हिटलर ने चौथी श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की, वहीं से हिटलर की विचारधारा पर अखिल-जर्मनवाद का गहरा प्रभाव पड़ा। रँगसाज (पेन्टर) बनने की वाञ्छा से वह वीयना गया, किन्तु वीयना के कला-विद्यालय की प्रवेशिका-परीक्षा में वह असफल रहा। अतः कुछ समय तक वह वीयना में राज (मैमार) का काम करता रहा। उपरान्त पोस्टकार्डों पर चित्र बनाकर उन्हें वीयना के शराबख़ानों मे बेचता और उनसे होनेवाली थोड़ी-सी आय पर अपना गुज़र-बसर करता रहा। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि हिटलर दीवारों को काग़ज से सजाने का काम किया करता था। यह भी सच नहीं है कि उसका असली नाम शिकूलग्रूबर है। उसका पैतृक नाम यही है, किन्तु उसके बाप ने, १८४२ मे ही इसे बदलकर, हिटलर कर दिया था। जब हिटलर १३ वर्ष का था तबही उसके पिता का देहान्त होगया।

युवक हिटलर राजनीतिक-चर्चा मे दिलचस्पी लेने लगा। वह अखिल जर्मनवाद के पक्ष मे और समाजवाद तथा आस्ट्रिया के राजवश के विरुद्ध बातें करता। सन् १९११ में वह म्युनिख (बवेरिया) गया, जहाँ वह अपने बनाये चित्रों को बेचकर गुज़र करता था। अगस्त १९१४ मे योरप में युद्ध छिड़ने पर वह जर्मन-सेना मे वालटियर की हैसियत से भर्ती होगया। ग़ैर-जर्मन आस्ट्रियन-हैब्सबर्ग-राजवश के प्रति घृणा होने के कारण उसने अपने देश की सेना मे भर्ती होने से इनकार कर दिया। युद्ध की समाप्ति तक वह पश्चिमी मोर्चे पर अर्दली-सिपाही की भाँति काम करता रहा और लान्स-कारपोरल से अधिक उसकी तरक़्क़ी नही हुई। युद्ध के अन्तिम काल में गैस लग जाने से, थोड़े समय के लिये, उसकी दृष्टि ख़राब होगई। युद्ध की समाप्ति पर वह म्युनिख वापस आगया और युद्धोत्तर जर्मन-सेना मे गुप्तचर होगया। उसका कार्य राजनीतिक दलो, संस्थाओ तथा व्यक्तियो की निगहबानी करना था। इस हैसियत से वह एक भोजन-क्लब के सदस्यों के सम्पर्क मे आया, जो

अपने को 'जर्मन-मज़दूर-दल' कहते थे और इनकी बैठकें गुप्त रूप से म्युनिख की एक सराय मे हुआ करती थीं। ड्रैक्सलर नामक एक मज़दूर ने इस दल की स्थापना की थी, जिसके कुल ६ सदस्य थे। हिटलर इस दल का सातवाँ सदस्य बना और उसने दल के विकास के लिये आन्दोलन आरम्भ किया। दल सुसङ्गठित हुआ, हिटलर उसका नेता बना और उसने ड्रैक्सलर को निकाल बाहर किया। दल का नाम बदलकर 'राष्ट्रीय-समाजवादी जर्मन मज़दूर दल' रख दिया गया। सन् १६२३ मे हिटलर के इस दल ने सत्ता हस्तगत करने के लिये शासन-उत्क्रान्ति का प्रयत्न किया। बवेरिया के कमिश्नर और म्युनिख छावनी के जनरलो के सहयोग पर हिटलर ने भरोसा किया, किन्तु वह इसके विरोधी होगये और उत्क्रान्ति का प्रयास विफल गया। हिटलर पकड़ा गया, उसको पाँच साल क़ैद की सज़ा दीगई और उसे लैन्ड्सबर्ग, (बवेरिया) के क़िले मे बन्दी बनाकर रखा गया, जहाँ उसने अपनी संसार-प्रसिद्ध पुस्तक 'माईन काम्फ'—(Mein Kampf) 'मेरा सघर्ष' का—जिसमें उसकी राजनीतिक योजनाओ का उल्लेख है—प्रथम खण्ड लिखा। राष्ट्रवादी अधिकारियों की सहायता से, आठ महीने बाद, कारावास की अवधि से पूर्व ही, उसे रिहा कर दिया गया। उसने अपने दल का पुनर्संगठन किया और अपने आत्मचरित का दूसरा खण्ड, १६२५-'२७ मे लिखा।

'मेरा संघर्ष'—'माईन काम्फ' वस्तुतः हिटलर की आत्मकथा नही है। इस पुस्तक मे उसने अपनी योजनाओ का विवेचन किया है, जिनका सारांश इस प्रकार है : संसार में केवल आर्य जाति ही, जिसे नार्डिक जाति भी कहा गया है, सर्वश्रेष्ठ है। इसी जाति ने अपने बाहुबल द्वारा इतर हीन जातियो पर विजय प्राप्तकर वर्तमान सभ्यता का निर्माण किया। हिटलर का जीवन-तत्त्व जाति और रक्त पर आधारित है। किन्तु, हिटलर के अनुसार, आर्यों ने विजित हीन जातियो से रक्त-मिश्रण करके यह पाप कमाया कि आर्य जाति का क्रमशः शारीरिक और आत्मिक पतन होगया। सम्प्रति अधर्मी सशक्त यहूदी जाति आर्यों को नष्ट कर डालना चाहती है। इन यहूदियो का संसार-व्यापी गुप्त संगठन है। इनका मुख्य उद्देश आर्यों से रक्त-मिश्रण करके आर्य-राष्ट्रों के जातीय आधार को नगण्य बना देना है। इस प्रकार वह आर्यों को एक

ऐसी वर्ण-संकर पतित जाति बना देना चाहते हैं जो सहज ही उनके आधिपत्य के आगे नतमस्तक होजाय। फ्रास इन यहूदियो का गढ है, जो पूर्णतया यहूदी पूँजीपतियो के नियन्त्रण मे है। फ्रान्स मे हब्शी (नीग्रो) प्रवासियो की सख्या निरन्तर बढ रही है, और फ्रान्स, इन हब्शियो द्वारा, वर्ण-संकरता का शिकार होरहा है। यह सब यहूदियो की ही करतूत है, और यही यहूदी, योरप की शेष श्वेत जातियो को वर्ण-संकर बनाने के लिए, काङ्गो से राइन तक, सफेद-काली वर्ण-सकर जाति का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं। जर्मनी ही वस्तुतः समस्त ससार मे आर्य शक्ति है, यहूदी इसी कारण उससे द्वेष मानते है। आर्यत्त्व के स्तम्भ जर्मनी का नाश करने के लिए ही यहूदियों ने पिछला युद्ध कराया। जर्मनी का नामोनिशान मिटा देने के लिए वह फ्रास को उत्तेजित करते और साथ ही बोलशेविज्म के छद्मवेश में दूसरी ओर से भी वे आक्रमण करते हैं। बोलशेविज़्म के पीछे यहूदियो की शक्ति ही काम कर रही है। बोलशेविज्म, साधारणतया मार्क्सवादी समाजवाद, यहूदियो की ही चाल है, जिसके द्वारा वह संसार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते है। कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, डेमोक्रेट, फ्रीमैसन यहूदी-बोलशेवीवाद की सिद्धि के लिए ही सब देशो मे काम कर रहे हैं। हिटलर समझता है कि इस ख़तरे से जर्मनी, और साधारणतया समस्त आर्य जाति, की रक्षा का भार उसे सौंपा गया है।

अपनी योजना द्वारा, राष्ट्रीय-समाजवादी नेतृत्व मे, हिटलर एक सशक्त राष्ट्रवादी राज्य स्थापित करना चाहता है। यह राज्य अन्य सब दलो को मिटा देगा, यहूदियो से मोर्चा लेगा और जातीय विकास के लिये पूर्ण उद्योग करेगा। राष्ट्रीय-समाजवादी जर्मनी शस्त्रीकरण करेगा और वर्साई की संधि को व्यर्थ कर देगा। समस्त जर्मन-भाषा-भाषियो को राइख़ के अन्तर्गत सगठित होना चाहिए। इतना ही नही, हिटलर के अनुसार, जर्मनी को अपनी वैदेशिक नीति मे कार्यशील होना पडेगा। युद्ध (विगत) से पूर्व जर्मनी ने अपनी नौशक्ति और उपनिवेशो के विस्तार पर बल दिया, किन्तु इससे बरतानिया अनिवार्यतः उसका शत्रु होगया। यह भूल दुबारा हरगिज नही दुहराई जानी चाहिए। वास्तव मे जर्मनी तो योरपियन महाद्वीप मे, जहाँ

ब्रिटेन से उसकी प्रतिद्वन्द्विता न हो, अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता है। अपने देशवासियो के लिए जर्मनी को नई भूमि जीतनी ही चाहिये, और यह भूमि पूर्व दिशा मे है। दक्षिण रूस (यूक्रेन) को भी विजय करके जर्मन किसानो को वहाँ बसाना आवश्यक है। किन्तु पूर्व दिशा मे पग धरने से पूर्व जर्मनी को अपने पीठ पीछे के पश्चिमी मार्ग को साफ कर लेना चाहिये। फ्रान्स का सर्वनाश कर देना ज़रूरी है। किन्तु इस उद्देश की सिद्धि के लिए जर्मनी को मित्र देशो की आवश्यकता है। ब्रिटेन और इटली, इस काम के लिए, स्वतः विचार मे आते हैं। दोनो ही योरप मे फ्रान्सीसी प्राधान्य के विरोधी हैं और दोनो को सहज ही अपने पक्ष मे किया जा सकता है। हिटलर आगे कहता है कि अपने नौसेना बढाने के आयोजन का त्याग कर और उपनिवेशो के वापस मिल जाने से जर्मनी बरतानिया की मित्रता प्राप्त कर सकता है। इटली की मित्रता तो और भी सस्ती पडेगी : केवल दक्षिणी-जर्मन-टाइरोल का त्याग। इस प्रकार बरतानिया और इटली से दोस्ती करके जर्मनी फ्रान्स को पीस देगा। तब जर्मनी पूर्व की ओर बढ़ेगा, वाहियात बोलशेवी रूस को कुचल डालेगा और उसके सुविशाल नये प्रदेश को छीन लेगा। इस प्रकार एक शताब्दि के उपरान्त योरपीय महाद्वीप मे प्रथम वर्ग की जाति के २५ करोड़ जनो का एक जर्मन-साम्राज्य होगा। जबतक जर्मनी की स्थिति अपने महाद्वीप मे सुरक्षित न होजाय, तबतक समुद्र पार जर्मन-साम्राज्य के विस्तार के प्रश्न को स्थगित रखना चाहिये। अन्त में हिटलर लिखता है कि केवल इतना भर करने की आवश्यकता है। फिर तो, समुद्र पार के विस्तार जैसे प्रश्नो पर हमारा एक ही उत्तर होगा, और वह यह कि "या तो जर्मनी संसार में सर्वश्रेष्ठ शक्ति होकर रहेगा या फिर मिट जायगा।"

हिटलर का उत्थान—सर्व प्रथम १९२८ मे राष्ट्रीय-समाजवादी दल ने राइख़ताग (पार्लमेंट) के चुनाव मे भाग लिया और दल के बारह सदस्य राइख़-ताग में पहुँच गये। उन्हे कुल आठ लाख मत मिले। किन्तु विश्व-व्यापी आर्थिक संकट हिटलरके लिये वरदान सिद्ध हुआ, जिसने, १९३० में जर्मनीको जर्जरित कर दिया था। हिटलरने बडे-बड़े कारख़ानेदार पूँजीपतियो को आश्वासन दिया कि वह साम्यवाद के उठते हुए तूफ़ान से उनकी रक्षा करेगा। इस प्रकार हिटलर

ने उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त की। १९३० के चुनाव में हिटलर के दल को ख़ूब सफलता मिली : १०६ नात्सी उम्मीदवार कामयाब हुए। हिटलर ने इस चुनाव में विशेष रूप से चार बातों के आधार पर अपना प्रचार किया : (१) वर्साई की संधि की कटुता, (२) यहूदियों की अवाञ्छनीयता, (३) प्रजा-तन्त्र-प्रणाली की पुष्टि, और (४) मार्क्सवाद का विरोध। जर्मन पार्लमेंट में अब नात्सी तथा साम्यवादी दो बड़े दल थे। इन्होंने पार्लमेंटरी प्रणाली के अनुसार शासन संचालन असम्भव कर दिया। दूसरी ओर बूढ़े राष्ट्रपति हिन्डन-बर्ग के हिमायतियों में सेना-नायकों और जमींदारों का गुट था, जिसने जर्मनी में वस्तुतः अपना अधिनायक-तंत्र क़ायम कर रखा था। बढ़ते हुए आर्थिक संकट के कारण जर्मन-जनता की जैसे-जैसे शोचनीय अवस्था होती गई तैसे-तैसे उग्र विचार-धारा के प्रति उन्हें आशंका हुई, हिटलर का दल बढ़ता गया और चुनावों में विजय पर विजय प्राप्त करता गया। १० अप्रैल १९३२ को, जब हिटलर हिन्डनबर्ग के मुक़ाबले में, राष्ट्रपति पद के चुनाव में खड़ा हुआ तो उसे १ करोड़ ३४ लाख मत और, ३१ जुलाई १९३२ को राइख़-ताग की सदस्यता के चुनाव में, १ करोड़ ३७ लाख मत मिले। फिर भी, हिन्डनबर्ग को पौने दो करोड़ मत मिले थे, और वह राष्ट्रपति रहा, और उसने हिटलर का चान्सलर बनाये जाने का मतालबा अस्वीकार कर दिया। ६ नवम्बर १९३२ के चुनाव में नात्सी-मत पहली बार कम हुए, इस चुनाव में हिटलर को कुल १ करोड़ १७ लाख मत प्राप्त हुए। इससे हिटलर की कला भंग होती दिखाई देने लगी। इसी समय जनरल फ़ान श्लेशर, जिसका जर्मनी में उस समय बड़ा प्रभाव था, हिटलर के आन्दोलन से अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए षड्यन्त्र रच रहा था। उसे चान्सलर बनाया गया। हिन्डनबर्ग के निकट-वर्ती सत्ताधारी गुट और हिटलर दोनों का एक साथ निष्कासन करनेके विचारसे श्लेशरने शासन-उत्क्रान्ति की योजना बनाई। जनरल श्लेशर के गुट में फौलाद के कारख़ानेदार कोरे दिवालिए पूँजीपति भी शामिल थे। हिटलर ने इनको पहले ही आश्वासन दिया था। वह हिटलर की सरकार से आर्थिक सहायता की आशा कर रहे थे, अतः उन्होंने हिटलर को बचाने और जनरल के बजाय उसे चा-न्सलर बनाने का निश्चय किया। यह लोग समझते थे कि जनरल अपने अन्तर

मे समाजवादी है। इस गुट की बैठक पूर्व चान्सलर फ़ान पैपेन के तत्त्वावधान में, कोलन मे, एक महाजन के मकान पर अर्द्धरात्रि को हुई। ज़मीदार तथा व्यापारी अधिकतर ग़ैर-नात्सी 'जर्मन राष्ट्रवादी दल' के अनुयायी थे। उन्हे भरोसा था कि हिटलर उनके हाथ का कठपुतला बन जायगा और बूढ़े हिन्डनबर्ग को—भले ही उसने कुछ महीने पहले हिटलर को चान्सलर बनाने से इनकार कर दिया था—समझा लेने मे कोई दिक़्क़त ही नहीं थी। श्लेशर को मंत्रि-मण्डल से पद-च्युत कर दिया गया, और, ३० जनवरी १६३३ को, राष्ट्रवादियों का सयुक्त मंत्रि-मण्डल बना और इसीदिन हिटलर जर्मनी का चान्सलर नियुक्त किया गया।

शक्ति-सम्पन्न हिटलर—शक्ति-सम्पन्न होते ही हिटलर ने पहला काम यह किया कि उसने राइखताग-भवन मे आग लगवाई। नात्सियो ने पार्लमेंट की इमारत मे आग लगाई और इसका दोषारोप साम्यवादियो पर किया गया। अपने बहुसंख्यक विरोधियो को गिरफ़्तार करने और साम्यवादियो और समाजवादियो की कार्यवाहियो का अन्त करने के लिये ही—ताकि वह आगामी चुनाव मे हस्तक्षेप न कर सके, और बाद मे यह नारा बलन्द करने के लिये कि जर्मनी को कम्युनिस्ट-विद्रोह से बचा लिया गया—हिटलर ने यह षड्यन्त्र रचा। किन्तु चुनाव में नात्सी दल को मनचाही सफलता न मिली। ५ मार्च १६३३ के जर्मन पार्लमेंट के चुनाव मे नात्सी उमीदवारो को कुल ४४ फीसदी यानी १,७२,७०,००० मत मिले। जर्मनी के एकमात्र शक्ति-सम्पन्न हिटलर के नात्सी दल का बहुमत इस समय भी न होसका। इस चुनाव मे राष्ट्रवादियो को ८ फीसदी मत मिले। हिटलर ने, विरीधी-दल के तथा साम्यवादी सदस्यो को राइखताग से धीगाधीगी निष्कासित कर देने के बाद, एक क़ानून राइखताग से स्वीकार कराया जिसके अनुसार वह जर्मनी का अधिनायक बनकर वहाँ की गुप्त पुलिस (गेस्टापो) तथा अपने दल की सेना के सहयोग से शासन करने लगा। इस प्रकार जर्मनी में प्रजातन्त्र के अवशेष का भी अन्त कर दिया गया। अपने विरोधियो को पकड़-पकड़कर उसने केन्द्रीय कैदख़ानो मे—जो इसीलिये बनाये गये थे—भर दिया, जिनमें से बहुत से तो मर गये। मज़दूर संघ तोड़ दिये गये, समस्त विरोधी दलो का दलन कर दिया गया और यही हाल राष्ट्रवादियो का हुआ, जिनके साहाय्य के कारण ही हिटलर शक्ति-सम्पन्न बना था। यह

लोग इसी भ्रम मे रहे कि हिटलर उनके हाथ मे खेलेगा। इस प्रकार देश में अपने शासन को सुदृढ बनाकर हिटलर को विदेशो की चिन्ता लगी। उसने दिखावा शुरू किया कि उसने बोलशेविज्म की बाढ से दुनिया को बचा लिया है। दूसरी ओर वह यह भी कहता रहा कि उसका इरादा ससार मे शान्ति स्थापित करने का है, और वह सन्धियों का पालन करेगा।

'रक्त-स्नान'—नात्सी दल मे एक अनिश्चित समाजवादी-पक्ष भी था जो चाहता था कि नात्सी दल के कार्यक्रम का जो समाजवादी अन्श है, उसे पूरा किया जाय। दूसरी ओर ईसपात के कारखानेदार (जिनके धन्धों का सरकारी रुपये से पुनर्सङ्गठन होचुका था) तथा फौजी जनरल चाहते थे कि दल के कार्य-क्रम मे से समाजवादी अन्श को निकाल दिया जाय और समस्त शक्ति शस्त्रीकरण तथा साम्राज्यवाद पर लगाई जाय। ३० जून १९३४ को इसेन मे डा० क्रप के मकान पर एक सभा हुई और उसके बाद ही क्रान्तिवादी अगुआओं और उनके अनुगामियों को यकायक गिरफ्तार करके सबका वध कर दिया गया। इनमे कप्तान रोहम भी, जिसके प्रयत्नों के कारण ही हिटलर का अभ्युदय हुआ था तथा जो नात्सी दल की सेना का प्रधान था, मारा गया। बहुत-से ग़ैर-नात्सी भी बेक़ुसूर मारे गये, जिनमे जनरल फान श्लेशर और ७५ वर्ष के बूढे हर फान काहर आदि कैथलिक राजनीतिज्ञ और अधिकारी मुख्य हैं। अनुमानतः इसमें ३०० से १००० व्यक्तियो की हत्या कीगई। २५ जुलाई १९३४ को हिटलर ने आस्ट्रिया मे विद्रोह कराया, जिस देश के मामलात मे हस्तक्षेप न करने की, कुछ दिन पूर्व ही, उसने घोषणा की थी। इस विद्रोह मे आस्ट्रिया के चान्सलर डालफस सहित अनेक हत्यायें कीगईं। आस्ट्रिया की सरकार ने इस विद्रोह का दमन कर दिया। साथ ही मुसोलिनी ने अपने देश की उत्तरी सीमा पर, आस्ट्रिया मे हिटलर के इस सशस्त्र हस्तक्षेप को रोकने के लिये, सैन्य-सचालन आरम्भ कर दिया। अतएव हिटलर को, इस विद्रोह मे, कोरे हाथो बैठ जाना पडा। २ अगस्त १९३४ को हिंडनबर्ग की मृत्यु होगई और हिटलर ने राष्ट्रपति तथा चान्सलर पदों को सयुक्त कर दिया। इस अवसर पर तथा अन्य अवसरो पर भी उसने, अपनी नीति के सम्बन्ध मे, जनमत लिये जाने की आज्ञा निकाली, किन्तु विरोध पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, साथ

ही डर-धमकी का बाज़ार गर्म था। ऐसे दिखावटी मत-संग्रह का परिणाम जो होना था वही हुआ: ६६.५ प्रतिशत मत हिटलर के पक्ष में प्राप्त हुए। राइख़ताग के चुनाव मे भी ऐसे ही हथकन्डे इस्तेमाल किये गये, जिसमे केवल नात्सी दल के उमीदवार ही खड़े होसकते थे।

साम्राज्यवाद तथा शस्त्रीकरण का विस्तार—शस्त्रीकरण का आयोजना तेज़ी से आरम्भ किया गया, और, मार्च १६३५ में, वर्साई की संधि की अवहेलना करके, जर्मनी मे अनिवार्य सैनिक भर्ती जारी की गई और किसी ने चूँ तक न की। सितम्बर १६३५ मे यहूदियो के विरुद्ध नूरेम्बर्ग में क़ानून बनाये गये।

हिटलर ने अब जर्मनी से बाहर हाथ डालना आरम्भ किया। ७ मार्च १६३६ को लोकार्नो संधि को तोड़कर हिटलर ने राइनलैण्ड पर फिर क़ब्ज़ा कर लिया। उसने वादा किया कि क़ब्ज़ा किये हुए इलाक़े पर वह क़िलेबन्दी नहीं करेगा। यह भी कहा कि 'आश्चर्यो' का युग समाप्त होचुका है, और योरप मे उसे कोई मुल्क नहीं चाहिये। और इस प्रकार हिटलर जर्मनी से बेकारी का अन्त करने में समर्थ हुआ। १६३८ मे हिटलर ने साम्राज्य-विस्तार आरम्भ कर दिया। जिन सिपहसालारो ने उसकी तजवीज़ का विरोध किया, फ़रवरी १६३८ मे, उन्हे निकाल बाहर किया गया और शस्त्रीकरण पर असीम धन व्यय किया गया। १२ मार्च १६३८ को हिटलर ने आस्ट्रिया पर अपना अधिकार जमा लिया। इस समय हिटलर ने घोषणा की कि वह योरप में अब किसी भी देश पर विजय प्राप्त करना नहीं चाहता। गोरिंग् को उसने अपनी ओर से अधिकार दिया कि वह ब्रिटिश सरकार के प्रति घोषणा करदे कि जर्मनी चैकोस्लोवाकिया पर हमला करना नहीं चाहता।

चाहते । × × × चैक राष्ट्र में मेरी और अधिक दिलचस्पी नहीं है।" यही नहीं, उसने शेष चैकोस्लावाक राष्ट्र की रक्षा का भी वचन दिया। इस पर, म्युनिख-समझौते के अनुसार, सुडेटनलैन्ड जर्मनी को दे दिया गया। किन्तु हिटलर ने अपना क़दम नहीं रोका। चैको० के राष्ट्रपति हाशा को बर्लिन तलब किया गया और तदनुसार शेष चैको० को जर्मनी ने अपना 'संरक्षित' राज्य बना लिया। थोड़े दिन बाद उसने मैमल प्रदेश को भी हड़प लिया। इसके बाद फिर भी हिटलर ने एक बार घोषणा की कि योरप मे अब उसे और कुछ नहीं लेना है।

पोलैन्ड और हिटलर—हिटलर ने ,'शान्ति-स्थापनार्थ", १९३४ में, पोलैन्ड के साथ एक समझौता अनाक्रमण-सन्धि के रूप मे किया था। चैको-स्लोवाकिया के प्रथम बँटवारे में उसने पोलैन्ड को भी हिस्सा दिया था। किन्तु, मार्च १९३९ मे, चैको० के शेष भाग को हड़प लेने के बाद ही, पोलैन्ड के विरुद्ध तैयारियाँ होने लगीं। हिटलर ने पोलैण्ड से डाज़िग् और कोरीडर की वापसी का मतालबा किया। पोलैन्ड ने, ब्रिटेन और फ्रान्स की ओर से मिले हुए रक्षा के वचन के भरोसे, इस मतालबे को नामंज़ूर किया, किन्तु शान्तिपूर्ण समझौते के लिये बातचीत जारी रखने की इच्छा प्रकट की। हिटलर ने अगस्त १९३९ मे छद्मवेशी नात्सी सेना को डाज़िग पर क़ब्ज़ा कर लेने की आज्ञा दे दी और, २३ अगस्त को अपने घोर शत्रु रूस से समझौता करके उसने ससार को आश्चर्य-चकित कर दिया। हिटलर आशा करता था कि पश्चिमी राष्ट्र—ब्रिटेन और फ्रान्स—पोलैन्ड की सहायता के सम्बन्ध मे अपने वचन का पालन नही करेंगे। बरतानवी राजदूत ने २३ अगस्त को जब हिटलर से कहा कि ब्रिटेन प्रत्येक अवस्था मे पोलैन्ड की सहायता करेगा और हिटलर से, उसके लड़ाई मोल लेने के इरादे पर विचार करने की बात कही तो हिटलर ने जवाब दिया—"मै ५० वर्ष का होचुका। ५५ या ६० का होने से पेश्तर, आज, मै लड़ाई को पसन्द करता हूँ।" २९ अगस्त को पोलैन्ड को कहा गया कि वह अपना प्रतिनिधि बर्लिन भेजे, जो उसके (हिटलर के) सामने अपनी शर्तें पेश करे और जिसको समझौते पर हस्ताक्षर करने का अधिकार प्राप्त हो। शुशूनिग और हाशा की गति पोलैण्ड देख चुका था, उसने इनकार

कर दिया। ३० अगस्त को दांज़िग और कोरीडर के सम्बन्ध मे एक अल्टीमेटम पोलैण्ड के राजदूत को देदिया गया, किन्तु इसके फौरन बाद हिटलर ने घोषणा की कि पोलैण्ड ने अल्टीमेटम लेने से इनकार किया है अगर्चे उस वक्त तक यह पोलैण्ड की सरकार के पास पहुँचा तक न था। १ सितम्बर १९३९ को हिटलर ने दांजिग् जर्मनी मे मिला लिया और पोलैण्ड पर धावा कर दिया। ३ सितम्बर को, पोलैण्ड को अपने दिये हुए वचन के अनुसार, ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करदी। १९४० के अप्रैल और मई मे हिटलर ने नारवे, डेनमार्क, हालेण्ड, बेलजियम, लक्समबर्ग और फ्रान्स पर आक्रमण कर दिया। अप्रैल १९४१ मे यूगोस्लाविया और यूनान पर, और जून १९४१ मे, बिना कोई चेतावनी दिये, सोवियत संघ पर हमला कर दिया, जिसके साथ उसका समझौता था। ११ दिसम्बर १९४१ को उसने संयुक्त-राज्य अमरीका के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करदी।

हिटलर का यह रवय्या रहा है कि अपने विरोधियों को तत्काल शान्त कर देने और वास्तव मे अवसर प्राप्त करने के लिए शुरू मे वह दृढ़तापूर्वक वचन दे देता है, किन्तु जैसे ही मौक़ा पाता है फौरन् अपने वादे से फिर जाता है। जर्मन अल्प-संख्यकों के साथ ज़्यादती होने का बहाना वह हमेशा लेता रहा है। उसकी नीति एक के बाद एक देश का ख़त्म करने की रहा है।

हिटलर की विचारधारा मे नवीन बात कोई नहीं है। उसकी योजना का आधार पुरातन अखिल-जर्मनवाद है, जिससे वह अपने युवाकाल से ही प्रभावित है। पूर्वीय योरप मे जर्मन-विस्तार के सिद्धान्त को उसने जनरल ल्यूडनडर्फ की ब्रेस्त-लितास्क-संधि की नीति से सीखा है, और उसका समस्त आयोजन पुरातन जर्मन-साम्राज्यवाद और सामरिकवाद को चालू रखने का है।

हिटलर अविवाहित है। वह मासाहारी नहीं है। तम्बाकू और शराब भी नहीं पीता। उसके पास निज की कोई सम्पत्ति नहीं है और न किसी बैंक मे उसका हिसाब है।

हिटलर-युवक—१४ से २१ वर्ष तक के जर्मन युवकों को इस संस्था मे शामिल होना अनिवार्य है। हिटलर-युवक' नात्सी-दल की एक शाखा है। इसके सदस्य भूरे रग की फौजी वर्दी पहनते हैं। वे फौजी शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। इस सस्था का लक्ष्य जर्मन युवकों मे नात्सीवाद की भावना को पुष्ट करना है। जर्मन युवतियों और १० से १४ वर्ष के बालकों के लिये इस प्रकार के सगठन जर्मनी मे अलग हैं।

हिंडनबर्ग, फील्ड मार्शल पॉल फान—जन्म १८४७ ई०, विगत महा-युद्ध मे, पूर्वीय मोर्चों पर जर्मन-सेना का कमान्डर रहा और जनरल लूडनडर्फ और जनरल हाफमन् के साथ, १९१४ से १७ तक, रूस में उसने महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की, फलतः उसे जनरल स्टाफ का चीफ नियुक्त किया गया। किंतु १९१८ मे पश्चिमी मोर्चों पर वह जर्मन-सेना की पराजय को न रोक सका। युद्ध के बाद सेनापति हिन्डनबर्ग अवकाश ग्रहण कर हेनोवर मे रहने लगा। युद्ध मे जर्मनी की हार के बावजूद जर्मन जनता हिंडनबर्ग का सम्मान करती रही। सन् १९२५ में दक्षिण-पथी दल की ओर से वह राइख़ का अध्यक्ष चुना गया। तब सबने हिन्डनबर्ग द्वारा जर्मनी मे राजतन्त्र की पुन-र्स्थापना की आशा की। किंतु हिंडनबर्ग कुछ काल तक समाजवादी सरकार के साथ और बाद मे, जर्मनी के आर्थिक-सकट-काल तक, विधान के अनुसार शासन करता रहा। १९३० मे जर्मनी मे नात्सीवाद के प्रादुर्भाव ने पार्लमेन्टरी शासन को असम्भव बना दिया। वह बहुत बूढ़ा, ८३ वर्ष का, होचुका था, जर्मनी के ज़मींदारो और जनरलो की जत्थेबन्दी के हाथ मे राष्ट्रपति हिन्डनबर्ग कठपुतली बन कर रह गया। जर्मन-शासन-विधान की धारा ४८ के अनुसार मनमाने रूप मे आज्ञायें और घोषणायें प्रचारित करने लगा, और अंत मे, २० जुलाई १९३२ को, प्रशा मे शासन-उत्क्राति कराकर उसने जर्मनी की अतिम प्रजातन्त्र सरकार का ख़ात्मा कर दिया।

अगस्त १९३२ मे उसने हिटलर को जर्मनी का चान्सलर बनाने से इनकार

कर दिया। फलतः नात्सीदल उसकी कड़ी व्यक्तिगत आलोचना करने लगा। जनवरी १९३३ मे हिंडनबर्ग ने अपना रुख़ बदला और हिटलर को राइख़ का चासलर बना दिया। वृद्धावस्था के कारण उसका स्वास्थ्य ख़राब होगया था। पूर्वीय प्रशा मे अपनी ज़मीदारी पर वह मर रहा था कि, ३० जून १९३४ को, हिटलर ने साम्यवादियो तथा नात्सी-विरोधियो के ख़िलाफ 'रक्त-स्नान'-काण्ड कर डाला। हिटलर के इस काण्ड के समर्थन मे हिंडनबर्ग के नाम से एक तार छपा, किंतु यह सन्दिग्ध है कि तार हिंडनबर्ग ने लिखा था। ८७ वर्ष की अवस्था मे उसकी मृत्यु होगई। पूर्वीय प्रशा मे, उसकी प्रथम विजय की भूमि पर, हिंडनबर्ग की समाधि बनाई गई है।

हिन्द-चीन—क्षेत्र० २,८१,००० वर्ग० और जन० २,४०,००,०००, इस देश के पॉच भाग हैं : कोचीन-चीन, अनाम, कम्बोडिया, तानकिंग् और लाओस। अनाम तथा कम्बोडिया नाम मात्र के साम्राज्य थे। उनके अपने सम्राट् हैं, किन्तु वास्तव मे फ्रान्स का रेजीडेण्ट उनका शासक था। हिन्द-चीन का शासन-प्रबन्ध फ्रासीसी गवर्नर-जनरल द्वारा किया जाता था। यह बहुत सम्पन्न देश है और यह फ्रास के बहुमूल्य उपनिवेशो मे से था। यह कृषि-प्रधान देश है। चावल और रबर भी पैदा होता है। जस्ता तथा टीन की खाने हैं। आबादी मंगोलियन है। भाषाये कई प्रकार की बोली जाती हैं। फ्रासीसी शासन के विरुद्ध जनता मे असन्तोष था। जापान का इस देश पर दॉत था। जून १९४० मे फ्रास का पतन हो जाने पर, सितम्बर १९४० मे, जापान ने हिन्द-चीन मे अपने फौजी और हवाई अड्डे क़ायम करने के लिये मतालबा

किया। फ्रासीसी और जापानी सेनाओ मे, इस कारण, कुछ दिन तक युद्ध होने के बाद विशी की फ्रासीसी सरकार ने जापान के कुछ मतालबो को मान लिया। स्याम ने भी हिन्द-चीन से अपने थाई-भाषाभाषी मकलाई जिले को—जिसे ५० वर्ष पूर्व हिन्द-चीन मे मिला लिया गया था—वापस माँगा। फ्रान्सीसी और स्यामी सेनाओ के कुछ दिन के युद्ध के बाद, मई १९४१ मे, यह प्रदेश स्याम को वापस कर दिया गया। जापान इन दोनो देशो के बीच पच बना और दोनो ने वचन दिया कि जापान के विरुद्ध वह किसी गुट मे सम्मिलित न होगे। जापान ने हिन्द-चीन मे अपने अड्डे बनाये और उन्हीके द्वारा डच, बरतानवी और अमरीकी साम्राज्य पर, ७ दिसम्बर १९४१ को, उसने हमला करके आगे के महीनो मे ब्रह्मा तक के विशाल भूभाग को हड़प लिया। हिन्द-चीन पर आक्रमण करने के कारण सयुक्त राज्य अमरीका ने जापान को जगी सामान बेचना बन्द कर दिया। इसी समस्या को हल करने के लिये जापान के प्रतिनिधि वाशिंगटन गये। वह वहाँ बातचीत करही रहे थे कि इधर जापान ने विश्वासघातपूर्वक उक्त आक्रमण कर दिया।

हिन्दुस्तानी—'हिन्दुस्तानी' से मतलब उस भाषा से है, जिसमे न सस्कृत और न अरबी-फारसी के ठेठ बोलो या मुहावरों की भरमार हो। ऐसी भाषा जो हिन्दी और उर्दू दोनो लिपियो या ख़तो मे आसानी के साथ लिखी जासके, जिसे सभी प्रकार के, सभी पेशे के, लोग सारे देश में आपस मे बातचीत करते वक्त बोलते और बख़ूबी समझते हैं। काग्रेस अपने सभी कामो में इसी भाषा को बरतती रही है और इसीके रिवाज पर जोर देती है। काग्रेसी सरकारें भी, सरकारी कामो मे, इसी भाषा को बरतती रही। हिन्दुस्तानी के चलन से हमारे देश के एक बडे सवाल का हल आसानी से हो जाता है। 'हिन्दुस्तानी' से मतलब उस भाषा से भी है, जिसे हमारे देश मे विदेशी ईसाई मिशनरी, गोरे फौजी अफसर, योरपियन आई० सी० एस० या विदेशी योरपियन व्यापारी वगैरह बोलते हैं। इनकी हिन्दुस्तानी, अगरेजी से अरबी-फारसी के शब्दो मे तर्जुमा होने की वजह से, हमारी दिनरात बोली जाने-वाली सादा हिन्दुस्तानी के मुकाबले, कठिन है। हिन्दुस्तानी असल मे उस सादा बोली का नाम है जिसे बच्चे-बूढे, मजदूर-मुन्शी, मर्द-औरत, नौकर-

मालिक, बाबू-पंडित, हाकिम-अर्दली सभी दिनरात बोलते और समझते हैं।

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ—महात्मा गांधी की प्रेरणा से, २३ अक्टूबर १९३७ को, वर्धा में, एक शिक्षा-परिषद् का आयोजन किया गया, जिसमें भारत-भर के नामी शिक्षा-विशारदों ने भाग लिया। इस परिषद् में महात्माजी ने देश की वर्तमान शिक्षा में सुधार के लिये अपनी योजना प्रस्तुत की। उनकी योजना का सारांश यह है : (१) शिक्षण-शालाओं तथा विद्यालयों को स्वावलम्बी बनाया जाय, अर्थात् उनके संचालकों को बाहरी आर्थिक-सहायता के आश्रित न रहना पड़े। (२) शिक्षा का माध्यम बालकों की मातृभाषा हो, अँगरेजी नहीं। प्रत्येक विद्यार्थी को हिन्दुस्तानी का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। (३) शिक्षा पुस्तकीय न होकर अधिकांश में व्यावहारिक होनी चाहिए। इसके लिये यह आवश्यक है कि किसी एक रचनात्मक उद्योग के आधार पर शिक्षा दी जाय।

महात्माजी की इस योजना पर विचार करके, नवीन शिक्षा-योजना के आधार पर पाठ्य-क्रम तय्यार करने के लिये, शिक्षा-परिषद् ने जामिया मिल्लिया के आचार्य डा० ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक उपसमिति नियुक्त की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में विद्यार्थियों के लिये ७ वर्ष का पाठ्य-क्रम निर्धारित किया है। शिक्षा का आधार कोई एक उद्योग रक्खा गया है, जैसे—(१) सूत कातना या बुनना, (२) कृषि, (३) बढ़ई का काम, (४) फलों तथा साग-सब्ज़ी की बाड़ी, (५) चमड़े का काम। इस रिपोर्ट में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने पर ज़ोर दिया गया है। सैद्धान्तिक शिक्षण के लिए साधारण गणित, सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, शारीरिक व्यायाम, [illegible], [illegible], [illegible]

का विकास करना। (२) मौलिक शिक्षा के लिये उपयोगी साहित्य का निर्माण करना । (३) मौलिक शिक्षा के प्रसार के लिये प्रचार कार्य करना । (४) मौलिक राष्ट्रीय शिक्षा को स्वीकार करने के लिये प्रान्तीय सरकारो से सिफारश करना ।

महात्माजी की प्रेरणा तथा सघ के प्रयत्नो के फलस्वरूप भारत मे मौलिक राष्ट्रीय शिक्षा (Basic National Education) का काफी प्रचार हुआ है। काग्रेसी मन्त्रि-मण्डलो ने, अपने अपने प्रान्तो में, इस नवीन शिक्षा-प्रणाली का प्रयोग करने की व्यवस्था की। मध्य-प्रान्त मे इसके अधीन विद्यामन्दिर की योजना का प्रारम्भ हुआ। सयुक्त-प्रान्त, बम्बई, विहार, मदरास मे बुनियादी तालीम की शिक्षा के लिये अध्यापको के वास्ते ट्रेनिग् कालिज खोले गये।

संघ की ओर से 'नई तालीम' नामक एक मासिक पत्र १ जनवरी १६३६ से प्रकाशित होता है। श्री ई० डब्ल्यू०, आर्यनायकम् (सिहली ईसाई सज्जन) इस सघ के मन्त्री है तथा उनकी सहायिका उनकी पत्नी श्रीमती आशादेवी हैं।

हिमलर, हेनरिख—जर्मन-नात्सी नेता; नात्सी जर्मनी की गुप्त राजनीतिक-पुलिस, गेस्टापो, तथा नात्सी ब्लैक गार्ड (कालीवर्दी सेना) का प्रधान-सचालक, जर्मनी मे वह नात्सीवाद पर होनेवाले आक्रमण से दल की रक्षा करता है। जिस जिस प्रदेश को हिटलर ने विजय किया है, हिमलर उस देश को इस सेना के बल पर अपने अधीन रखता है। स्वय जर्मनी मे हिमलर का बहुत आतङ्क है।

हिरोहितो—जापान का सम्राट्, जिसका जन्म सन् १६०१ मे हुआ और २५ दिसम्बर १६२६ को राज्य-सिहासन पर बैठा। जापानी साम्राज्य २६६० वर्ष पुराना बताया जाता है, और हिरोहितो राजवश मे १२४वॉ है। जापानी अपने को उत्तर-पूर्वीय एशिया से गये हुए आर्यों की

सन्तान मानते हैं। वह अपने को सूर्यवशी कहते और अपने राजवंश को सूर्य से उत्पन्न बताते है। जापानी सम्राट् उनके लिये परम पूज्य और पवित्र सूर्य का पुत्र है। कोई जापानी भूल से भी अपने सम्राट् का नाम निरादरपूर्वक नही लेता। ऐसा होने पर वह हाराकीरी (आत्मघात) करके प्राण दे डालता है। विदेशो मे जापान का सम्राट् 'मिकाडो' और स्वदेश मे 'तेनो' कहा जाता है। हिरोहितो पहला जापानी सम्राट् है, जिसने, युवराज की अवस्था मे, अपने देश से निकल कर ससार-यात्रा की और इस कारण अनेक फौजी तथा अन्य सरकारी अफसरो ने वहाँ हाराकीरी कर डाली। जापान मे कहने को इंगलैण्ड-जैसी पार्लमेंटरी शासन-पद्धति है, किन्तु सम्राट् मन्त्रि-मण्डल की नियुक्ति करता है। मन्त्रि-मण्डल की नियुक्ति इस बात को ध्यान मे रखकर कीजाती है कि छोटी धारा-सभा मे बहुमत सम्राट् के पक्ष मे रहे। सम्राट् को मन्त्रि-मण्डल को पदच्युत करने का भी अधिकार है। वह धारासभा को भी भग कर सकता है। कोई भी कानून उसी समय वैधानिक माना जाता है जबकि, दोनो धारासभाओ से स्वीकृत होजाने के उपरान्त, उसपर सम्राट् के हस्ताक्षर होजायॅ।
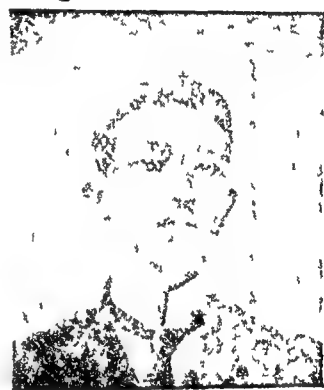
हूवर, हरबर्ट क्लार्क—अमरीका का भूतपूर्व राष्ट्रपति और राजनीतिज्ञ; १८७४ मे, एक लुहार के घर मे पैदा हुआ; बचपन मे ही अनाथ होगया; रिश्तेदारो ने पाला-पढाया-लिखाया; १८९५ मे खनिज (माइनिग्) इजीनियर बना, १९१४ तक पॉच मुल्को मे नौकरी-धन्धा करता रहा, पिछले महायुद्ध के समय योरप मे था, लन्दन की अमरीकी रिलीफ कमिटी का अध्यक्ष बना, पीछे वेलजियम-सहायक कमीशन का प्रधान और १९१७—१९ मे अमरीका का खाद्य-सामग्री-व्यवस्थापक और युद्ध-समिति का सदस्य। लडाई के बाद केन्द्रीय योरप मे अमरीकी रिलीफ कमिटी का प्रधान रहा, उन मुल्को को हर प्रकार का माल मुहय्या किया जहॉ शत्रु का घेरा रह चुका था। १९२१—२८ तक अमरीकी व्यापार-विभाग का मन्त्री रहा। इस हैसियत से देश की उन्नति करने के कारण उसकी बहुत प्रशंसा हुई। १९२९—३३ मे अमरीका का राष्ट्रपति रहा। हूवर 'रिप-

बलिकन' दल का है, और १९४१ तक वह इस युद्ध में तटस्थ नीति का पोषक था, किन्तु जब जापान और धुरी राष्ट्रों ने अमरीकी प्रदेशों आदि पर हमला किया तो वह अमरीका के युद्ध-प्रयत्नों का पूर्ण समर्थक बन गया।

हेनलीन, कोनराद—सुडेटन-जर्मन राजनीतिज्ञ १८९८ में पैदा हुआ, शुरू में एक बैंक में क्लार्क था, बाद को व्यायाम-शिक्षक बना।

१९२३ में चैकोस्लोवाकिया में जर्मन व्यायाम-आन्दोलन का प्रमुख हो गया और १९३३ में सुडेटन-जर्मन-दल का संगठन किया। इसी आन्दोलन के कारण चेको० का पतन हुआ।

हेब्सबर्ग—आस्ट्रिया-हंगरी का भूतपूर्व राजवंश, इस वंश के राजा पहले जर्मन कहलाते थे, १३वीं शताब्दि से आस्ट्रियन सम्राट् कहलाये। चार्ल्स-प्रथम, जिसने नवम्बर १९१८ में गद्दी छोड़ी, आस्ट्रिया का अन्तिम सम्राट् तथा हंगरी का राजा था। १९२३ में वह मर गया। ओटो नामक उसका सबसे बड़ा पुत्र है। हंगरी के कुछ लोगों ने उसे राजा बनाने का प्रयत्न किया। वह आस्ट्रिया की गद्दी पर आने की बातचीत कर रहा था कि हिटलर ने आस्ट्रिया को जर्मन राइख में मिला लिया। पूर्व सम्राज्ञी जिता और प्रिन्स ओटो आजकल अमरीका में हैं। दक्षिण अमरीका और इंगलैण्ड में भी इस वंश के कुछ लोग राजगद्दी की प्राप्ति के लिए आन्दोलन कर रहे हैं।

हैलीफैक्स, ऐडवर्ड फ्रेडरिक लिण्डले वुड—लार्ड, पहले लार्ड इरविन कहलाते थे, १६ अप्रैल १८८१ को जन्मे, आक्सफर्ड में शिक्षा प्राप्त की, १९१० में अनुदार दल की ओर से पार्लमेंट के सदस्य चुने गये, १९१५-१७ में मेजर बनकर फ्रान्स के रणक्षेत्र पर लड़े, १९२२-२४ तक उपनिवेश उपमन्त्री, प्रिवी कौन्सिलर, शिक्षा-बोर्ड के प्रधान तथा बाल्डविन-मन्त्रिमण्डल में कृषि-मन्त्री रहे। अक्टूबर १९२५ में लार्ड इरविन बनाये जाकर भारत के वाइसराय नियुक्त किये गये। आपके ही कार्यकाल के बीच १९२८ में साइमन कमीशन भारत में आया और १९२९ में भारत ने पूर्ण

स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित किया। १९२९ मे ही क्रान्तिकारियो ने आपकी स्पेशल को उड़ाने का प्रयत्न किया था, जिसके कारण इस वर्ष के कांग्रेस अधिवेशन मे, केवल महात्मा गान्धी की प्रेरणा और प्रभाव से, आपके प्रति सहानुभूति का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। आपके ही शासन-काल १९३० मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हुआ। आन्दोलन के आदि मे लार्ड इरविन ने वेगपूर्ण आर्डिनेन्स-शासन द्वारा दमन-चक्र चलाया, किन्तु उसकी निष्फलता को आप अनुभव करने लगे और १९३१ मे आपकी सरकार ने कांग्रेस से सन्धि करली, फलतः गोलमेज़ कान्फरेन्स हुई। आपके व्यक्तित्व से महात्मा गान्धी प्रभावित हुए बिना न रहे और उन्होने आपको 'सच्चा ईसाई' कहा। १९३१ में विलायत लौटकर १९३२ मे, अपने पिता के बाद, पुश्तैनी वाइकाउन्ट बने और सरकार मे फिर क्रमश. शिक्षा-बोर्ड के प्रधान, युद्ध-मन्त्री, लार्ड प्रिवी सील और कौन्सिल के लार्ड प्रेसिडेण्ट रहे। नवम्बर १९३७ म हिटलर से समझौते की बातचीत करने भेजे गये, किन्तु असफल रहे। ऐन्थनी ईडन के त्यागपत्र देदेने पर, २५ फरवरी १९३८ को, लार्ड हैलिफैक्स विदेश-मन्त्री बनाये गये। आरम्भ मे आप सन्तुष्टिकरण नीति के समर्थक रहे, किन्तु पीछे जर्मनी से लोहा लेने के पक्षपाती बन गये। रूस से समझौता करने का प्रयत्न किया और, सितम्बर १९४० मे, जब फ्रान्सीसी-सरकार की जड हिल चुकी थी, आपने फ्रान्स और बरतानिया की ओर से पोलैण्ड को बचाने के वचन को पूरा करने पर ज़ोर दिया। वह चेम्बरलेन की सरकार मे और उपरान्त, दिसम्बर १९४० तक, चर्चिल-मन्त्रिमण्डल मे विदेश-मन्त्री रहे। उपरान्त आपको अमरीका मे राजदूत बनाकर भेजा गया और विदेश-मन्त्री का भार फिर ईडन ने सॅभाला। आजकल आप वाशिंगटन मे नियुक्त हैं।

हैस, रुडाल्फ—नात्सी नेता; मिस्र के सिकन्दरिया नगर मे, २६ अप्रैल १८९६ को, पैदा हुआ, जहॉ हैस का बाप व्यापार करता था, प्रारम्भिक शिक्षा सिकन्दरिया के एक अॅगरेज़ी स्कूल मे पाई, पिछले युद्ध मे जर्मन-सैनिक की भॉति लडा, आहत हुआ और १९१८ मे उड़ाका बन गया। १९१९ मे बवेरिया के विद्रोह मे श्वेत-पक्ष की ओर से लडा; म्युनिख विश्वविद्यालय मे पढता रहा। हिटलर के राष्ट्रीय-समाजवादी दल में पहले जत्थे के साथ भर्ती हुआ और

हिटलर का विश्वासपात्र और मित्र बन गया। सन् १६२३ मे जब हैस की अवस्था २७ वर्ष की थी तब हिटलर की ३४ वर्ष। ड्रैक्सलर का मूलोच्छेद करके हिटलर ने जब अपनी 'नेजनेल सोजियालिस्ट पार्टे' (वर्त्तमान राष्ट्रीय समाजवादी दल) की रचना की, तभी हिटलर और हैस की प्रथम भेट हुई। हैस का नात्सी-दल मे तृतीय स्थान रहा है। हिटलर के बाद दूसरा स्थान मार्शल गोरिग् का है। जब हिटलर को गिरफ्तार करके १६२४ मे लैन्ड्सबर्ग के क़िले मे रखा गया, तब हैस भी उसके साथ क़ैद था। यहा हिटलर ने अपना आत्म-चरित 'माईन काम्फ' ('मेरा सघर्ष') लिखा। हिटलर बोलता जाता था और हैस लिखता जाता था। रिहाई के बाद हैस को हिटलर ने अपना प्राइवेट सैक्रेटरी बनाया। बाद मे हैस नात्सी दल का रूहेरवॉ बन गया। सन् १६३३ मे हिटलर के जर्मनी का सर्वेसर्वा बनने के समय हैस हिटलर की गुप्तचर-टोली (Liaison Staff) का प्रधान था। हिटलर ने उसे अपना मन्त्री और डिपुटी (सहायक) नियुक्त किया। वह हिटलर को प्रत्येक प्रकार की गुप्त सूचनाऍ देता था। जब जब हिटलर ने किसी देश पर आक्रमण किया, तब तब पहले हैस ने उस देश में जाकर वहॉ की स्थिति का अध्ययन कर गुप्त सूचनाऍ हिटलर को दी। सितम्बर १६३६मे, वर्त्तमान युद्ध छिडने पर, हिटलर ने हैस को नात्सी दल का तृतीय नेता मनोनीत किया।

१० मई १६४१ की रात को, स्काटलैण्ड पर ग्लासगो की दिशा मे, एक जर्मन-वायुयान उड़ता हुआ दिखाई दिया। यह वायुयान ग्लासगो के पास गिर पड़ा। कुछ देर बाद उसमे से एक जर्मन अफसर निकला, जिसके पास हवाई छतरी भी थी। उसे ग्लासगो के एक अस्पताल मे लेजाया गया। वहॉ उसने अपना नाम रुडाल्फ हैस बतलाया। वह बवेरिया के आग्सबर्ग से उडकर आया था। उसके साथ उसके भिन्नभिन्न अवस्थाओ के चित्र भी थे। उसने बताया कि वह अपने मित्र, हैमिल्टन के ड्यूक, से मिलने जारहा था। ड्यूक से लड़ाई से पूर्व का उसका परिचय है। किन्तु वह कुछ दूर आगे ही गिर पड़ा और और गिरफ्तार कर लिया गया। हैस के इस पलायन से ससार मे आश्चर्य उत्पन्न होगया। उसने ड्यूक तथा बरतानी वैदेशिक ~म। के अफसर, मि० कर्क पैट्रिक, से बाते की, किन्तु रहस्य खुला नही,

यद्यपि अनेक प्रकार की बातें अब तक, इस सम्बन्ध में, कही गईं। जर्मन रेडियो ने कहा कि हैस पागल होगया है और वह हिटलर की आज्ञा के बिना ही निजी तौर पर सन्धि-वार्ता करने के लिये उड गया है। इँगलैण्ड मे कहा गया कि वह नात्सी-दल से विमुख होकर शरणार्थी बनकर आया है। जर्मनी मे उसके संगी-साथी पकड लिये गये और सहकारी नेता (Deputy Fuehrer) का उसका पद तोड़ दिया गया। ब्रिटेन मे बाद मे भी कहा गया कि हैस यहाँ के कुछ दलों से सन्धि-वार्ता करने आया था। किन्तु सरकारी तौर पर बताया गया कि हैमिल्टन के ड्यूक का इस सम्बन्ध मे कोई हाथ नही है। स्तालिन ने, अक्टूबर १९४१ मे, कहा कि हैस जर्मनी द्वारा रूस पर किये जानेवाले आक्रमण मे ब्रिटेन का सहयोग प्राप्त करने गया था। कुछ भी हो, हैस इँगलेंड मे तबसे राजबन्दी नही युद्धबन्दी है और लडाई के बाद, मित्रराष्ट्रों की विशेष अदालत में, उस पर मामला चलाया जायगा। सितम्बर १९४२ मे मोशिये स्तालिन ने हैस पर तत्काल मुक़दमा चलाने का मतालबा किया, किंतु अन्य मित्र राष्ट्रों—ब्रिटेन और अमरीका—ने इसे अभी अनुपयुक्त समझा।

होमरूल—आयर्लैण्ड के स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे इस शब्द का बहुत प्रचार हुआ। तबसे वहाँ यह राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक स्वायत्त का पर्याय बन गया है। भारत मे लोकमान्य तिलक ने और उनके बाद स्वर्गीया श्रीमती ऐनी बीसेण्ट ने, अपने १९१६-१७ के राष्ट्रीय आन्दोलन में, इस शब्द का बहुत प्रयोग किया। दोनों के आन्दोलन-काल में होमरूल लीग संस्थायें भारत में बनीं।

होर्थी द' नेगीबान्या, निकोलस—हंगरी का नौसेनापति और शासक; १८६८ में पैदा हुआ; १९१३ मे आस्ट्रिया के बादशाह का अङ्ग-रक्षक रहा; पिछली लडाई में आस्ट्रिया की नौसेना के प्रधान-संचालक की हैसियत से

अँगरेज़ों से लड़ा; १६१८ मे आस्ट्रियन नौसेना का उप-प्रधान-सेनापति बना, १६१६ में हगारियन सोवियत जनतन्त्र के विरुद्ध 'श्वेत-सेना' का सङ्गठन किया और कम्युनिस्टो को हराया। आस्ट्रिया का भूतपूर्व सम्राट् चार्ल्स दो बार हगरी की राजगद्दी का का दावीदार बन कर आया, किन्तु होर्थी ने दोनो बार उसे सत्ता सोपने से इनकार कर दिया। होर्थी ससार की राज-सत्ताओं मे परिवर्तन किये जाने का समर्थक है। उसने इटली और जर्मनी से नाता जोड़ा। उसने दक्षिण स्लोवाकिया अक्टूबर १६३८ मे, लघु-कार्पेथियन रूस मार्च १६३६ मे और ट्रान्सिलवेनिया अगस्त १६४० में प्राप्त कर लिये। अप्रैल १६४१ मे उसने यूगोस्लाविया के विरुद्ध और जून १६४१ मे रूस के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला धुरी-राष्ट्रो का साथ दिया।

होर, महामाननीय सर सेमुअल—ब्रिटिश राजनीतिज्ञ, २४ फरवरी १८८० को जन्मे, उपनिवेश कार्यालय में कार्य शुरू किया, १६१४-१८ के युद्ध मे भाग लिया और लेफ्टिनेंट-कर्नल के पद तक पहुँचे। १६२२-२६ तक हवाई विभाग के मन्त्री और १६३१-१६३५ तक भारत-मत्री रहे। आपके ही युग मे गोलमेज कान्फरेन्स हुई और भारतीय शासन-विधान बना। सन् १६३५मे वैदेशिक मन्त्री बनाये गये, किन्तु उसी वर्ष नवम्बर मे उन्हे त्यागपत्र देना पड़ा, क्योंकि इटली-अबीसीनिया-सघर्ष के समझौते के सम्बन्ध मे उनकी बनाई योजना के कारण, जो होर-लावल-योजना कहलाती है, जनता मे उनके प्रति विश्वास न रहा। सन् १६३७-३६ तक वह जल-सेना-विभाग के अध्यक्ष तथा गृह-मन्त्री रहे। जेल-सुधार-सम्बन्धी (वेत की सज़ाके वह विरोधी हैं) तथा स्वतन्त्र आयर्लैंण्ड की सेना के विरुद्ध क़ानून उन्होंने बन-

वाये। वर्तमान युद्ध आरम्भ होने पर उन्हें युद्ध-मन्त्रिमण्डल मे लिया गया।

होर-बलीशा, महामाननीय लेस्ली, एम० पी०—ब्रिटिश राजनीतिज्ञ; १८९५ मे जन्मा; लन्दन के एक दलाल का पुत्र; आक्सफर्ड मे शिक्षा प्राप्त की; पिछली लड़ाई मे भर्ती हुआ और मेजर के पद तक पहुँचा, १९२३ मे उदार दल की ओर से पार्लमेट का सदस्य चुना गया, तब से बराबर सदस्य है; १९३१ मे वह राष्ट्रीय उदार-दल मे शामिल हुआ; इसी वर्ष व्यापार-मत्री का पार्लमेंटरी सेक्रेटरी बनाया गया और १९३२ मे अर्थ-मत्री। १९३४-३७ तक यातायात-मत्री रहा। यातायात-सम्बन्धी अनेक सुधार किये। १९३५ मे प्रिवी कौंसिलर बनाया गया। मई १९३७ मे युद्ध-मंत्री नियुक्त किया गया। होर-बलीशा ने युद्ध-विभाग मे ख़ूब तरक्क़ी की। रॅगरूटी के और अच्छे तरीक़े निकाले, यान्त्रिक बरतानवी सेना बनाई, फौजी अफ़सरो मे रद्दोबदल की और अनिवार्य भर्ती के काम को बढाया। ३ सितम्बर १९३९ को उसे युद्ध-मन्त्रि-मण्डल का सदस्य बनाया गया। ५ जनवरी १९४० को प्रधान मत्री, चेम्बरलेन ने, होर-बलीशा को युद्ध-मत्री पद त्यागकर व्यापार-मण्डल मे चले जाने को कहा। उसने पद त्याग दिया, किन्तु सरकार मे अन्य पद लेने से इनकार कर दिया।

होहेन्ज़ोलर्न—जर्मनी का राज-वन्श। १९१८ मे जर्मनी मे राजतन्त्र का अन्त होगया। यद्यपि नात्सीवाद राजतन्त्र का विरोधी है, किन्तु इस वन्श के बचे-खुचे लोग राजगद्दी की प्राप्ति के लिये अब भी लालायित हैं।

प रि शि ष्ट

अखिल-भारतीय ग्रामोद्योग संघ—अक्टूबर १९३४ मे, बंबई-कांग्रेस में, महात्मा गांधी के प्रयत्न एवं प्रेरणा से, अ०-भा० ग्रामोद्योग सघ की स्थापना के हेतु प्रस्ताव स्वीकार हुआ। इस प्रस्ताव के अनुसार श्री जगदीशन् कुमारप्पा को, महात्मा गांधी की सरक्षकता मे, ग्रामोद्योग संघ का संगठन करने का कार्य सौंपा गया। ग्रामीण उद्योगो को पुनर्जीवित और पुनर्संगठित कर ग्रामीण जनता की आर्थिक, शारीरिक और नैतिक उन्नित करना संघ का प्रमुख उद्देश है। संघ के अधीन दो समितियाँ हैं:—(१) उद्योग-समिति, (२) प्रबंध-समिति। उद्योग-समिति के सदस्य—(१) श्री कृष्णदास जाजू, (२) श्रीजगदीशन् सी० कुमारप्पा, (३) सेठ जमनालाल बजाज (अब स्वर्गीय), (४) डा० ख़ानसाहब, (५) डा० गोपीचन्द भार्गव, (६) श्री बैकुठराय मेहता। प्रबंध-समिति के सदस्य—श्री कृष्णदास जाजू, श्रीमती गोसी बहन, श्रीशूरजी वल्लभदास, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमदास अशर, श्री शंकरलाल बैंकर, श्री बैकुठराय मेहता, श्री जे० सी० कुमारप्पा।

सघ का मुख्य कार्यालय वर्धा मे है। ग्रामोद्योगो के शिक्षण के लिए एक विद्यालय भी है। नवीन अनुसंधान का कार्य भी किया जाता है। हाथ का पिसा आटा, हाथ का कुटा चावल, तेल निकालना, ईख के रस और खजूर

की नीरा से गुड़ और शक्कर तैयार करना, मधु-मक्खिका-पालन, देहाती चीज़ों से साबुन बनाना, रेशम तथा टसर तैयार करना, कम्बल बुनना, काग़ज तैयार करना, तथा मरे हुए जानवरों के चमड़े की वस्तुएँ तैयार करने की व्यवस्था की गई है। अगस्त '४२ मे संघ के सचालकों और कार्यकर्त्ताओं मे से अनेक के जेल चले जाने से सघ का काम अब प्राय. अस्तव्यस्त दशा मे होगया है।

अ०-भा० चर्खा संघ—भारत मे खादी-उत्पत्ति के कार्य का सुचारु रूप से सचालन करने के हेतु, सितम्बर १९२५ मे, अ०-भा० कांग्रेस कमिटी ने, महात्मा गाधी की प्रेरणा से, अ०-भा० चर्खा सघ की स्थापना की। सघ के तीन प्रकार के सहायक—सदस्य, सहयोगी, आजीवन सहयोगी—हैं। प्रत्येक सदस्य को प्रतिमास १००० गज बटदार, अच्छा हाथ का कता हुआ सूत, शुल्क के रूप मे, देना पड़ता है। सहयोगी को प्रतिवर्ष १२) और आजीवन सहयोगी को एक मुश्त ५००) चन्दा देने पड़ते हैं। सघ की कार्य-समिति मे कुल १५ सदस्य हैं, इनमे निम्न १२ सदस्य स्थायी हैं:—

(१) महात्मा गाधी, (२) सेठ जमनालाल बजाज, (३) श्री राज-गोपालाचार्य, (४) श्री गगाधरराव देशपाडे, (५) श्री कोडा वैंकटप्पय्या, (६) डा० राजेन्द्रप्रसाद, (७) प० जवाहरलाल नेहरू, (८) श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त, (९) सरदार वल्लभभाई पटेल, (१०) श्री मणिलाल कोठारी, (११) श्री रणछोड़लाल अमृतलाल, और (१२) श्री शकरलाल बैंकर। इनमे श्री मणिलाल कोठारी तथा सेठ जमनालाल बजाज का स्वर्गवास होगया तथा सर्वश्री सतीशचन्द्र दासगुप्त, रणछोड़लाल और राजगोपालाचारी ने सघ की कार्य-समिति से त्यागपत्र दे दिए। इन रिक्त स्थानो पर श्री गोपबधु चौधरी, श्री धीरेन्द्र मजूमदार, श्री कृष्णदास जाजू, श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमदास नये सदस्य चुने गए।

इस समिति को चन्दा-सग्रह करने, स्थावर सम्पत्ति की व्यवस्था करने, सम्पत्ति को सुरक्षित रखने, जायदाद गिरवी-रहन रखने, खादी शिक्षण-शालाएँ स्थापित करने तथा खादी भडारो को खोलने की व्यवस्था करने का अधिकार है। तिलक-स्वराज फड से २० लाख रुपये चर्खासघ को खादी-निर्माण के लिए मिले थे। २७ लाख रुपये की पूँजी से सघ ने अपना खादी-निर्माण का कार्य

शुरू किया। इस संघ की विविध प्रान्तो मे १५ शाखाएँ हैं। प्रत्येक प्रान्त मे सघ का अवैतनिक एजेंट नियुक्त है। प्रान्त के खादी-सबंधी-कार्य का पूरा दायित्त्व एजेंट पर होता है।

चर्खा संघ का उद्देश्य हाथ के कते-बुने वस्त्र और वस्त्र-व्यवसाय को प्रोत्साहन देना है। खादी के क्षेत्र मे अनुसंधान तथा प्रयोगों द्वारा खादी-निर्माण मे उन्नति करना भी सघ का उद्देश्य है। सन् १६३७ मे ११,७७,५५८) की खादी तैयार कीगई, और सन् १६३८ मे २४,३७,६३३) की। कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डलो के शासन-काल मे खादी-उद्योग को यथेष्ट प्रोत्साहन मिला। खादी-निर्माण के लिए सरकारी सहायता भी दीगई। सन् १६३८ में २३,२०,१४०) की खादी बिकी। खादी एक महत्वपूर्ण ग्रामोद्योग है। भारत के भूखो मरते ग्रामीणो को खादी ही रोटी दे सकती है। खादी उद्योग मे १,७७,४६६ कतैये और १३,५६८ बुनकर—कोली, जुलाहे—लगे हुए रहे। भारत मे ६०६ खादी-उत्पत्ति केन्द्र और ५७८ बिक्री के खादी-भडार चालू रहे। सन् १६४१-४२ मे खादी-उत्पादन मे बहुत प्रगति हुई। लगभग १ करोड की खादी इस वर्ष मे तैयार कीगई, जिसके द्वारा प्रायः १५ हज़ार गॉवो के कोई ३॥ लाख कारीगरो को ५० लाख रुपये से अधिक आजीविका मे मिले। लडाई के कारण मिल का कपडा मॅहगा होजाने से खादी की बहुत मॉग बढी, जिसे पूरा करने के लिये १६४२-४३ मे खादी की उत्पत्ति बढाने और वस्त्र-स्वावलम्बन की योजना को कार्यान्वित किया जानेवाला था। जिन स्थानो मे चर्खे चलने बन्द होगये थे या नही चलते थे, वहॉ भी चल पडे थे। किन्तु अगस्त '४२ के घटना-क्रम से चर्खा संघ भी न बच सका। बिहार-सरकार ने पहले दिन, ६ अगस्त को, ही विज्ञप्ति निकालकर बिहार-शाखा पर ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये जिनसे चर्खा संघ का काम चालू रखना असम्भव होगया। दूसरे प्रान्तों मे भी या तो हुक्म से संघ की शाखाओ को बन्द किया गया या प्रतिबन्ध के कारण उन्हे बन्द कर देना पडा, जब कि प्रान्तीय सरकारो से चर्खा सघो को काफी सहायता मिलती रही है। दमन के कारण ४०० से अधिक खादी-उत्पादक केन्द्र और भण्डार इस समय बन्द होचुके हैं। माल की ज़ब्ती, लूट और आग आदि से ६ लाख रुपये की हानि हुई है और डेढ़ लाख कारीगर बेकार होगये हैं।

अ०-भा० देशी राज्य-प्रजा-परिषद्—सबसे प्रथम अमरशहीद गणेशशङ्कर विद्यार्थी ने अपने 'प्रताप' द्वारा देशी राज्यों की नमित, दलित और शोषित प्रजा के त्राण के लिये उद्योग किया। श्रीविजयसिंह पथिक को राजस्थान में उन्हींने भेजा और वहाँ के प्रायः पन्द्रह देशी राज्यो मे आन्दोलन का सूत्र-सञ्चालन किया। तत्कालीन 'राजपूताना-मध्य-भारत सभा' की स्थापना उन्हींके प्रयत्न से हुई। पीछे यह आन्दोलन व्यापक हुआ। किन्तु सन् १६२७ से पूर्व भारत मे देशी राज्यों की प्रजा का कोई अखिल-भारतीय सगठन नहीं था, यद्यपि कुछ प्रमुख क्षेत्रों मे स्थानीय कार्यकर्त्ता, देशी राज्यों की जनता में, कार्य कर रहे थे। गुजरात तथा बबई प्रान्त के देशी राज्यों मे श्रीअमृतलाल सेठ, मध्यप्रान्त के देशी राज्यो मे श्रीअभ्यकर तथा राजस्थान मे श्रीविजयसिंह पथिक, श्रीरामनारायण चौधरी तथा श्रीजयनारायण व्यास आदि कार्यकर्त्ता सगठन-कार्य कर रहे थे। सन् १६२८ मे भारत के शासन-सुधारों की जॉच के लिए साइमन-कमीशन भारत आया। देशी राज्यों के कार्यकर्त्ताओं ने अपनी मॉगें कमीशन के समक्ष रखने के लिए अपना एक भारतव्यापी सगठन बनाने का निश्चय किया और सन् १६२७ मे बबई मे अ०-भा० देशी-राज्य प्रजा-परिषद् की स्थापना की गई। इस संस्था को प्रभावशाली बनाने मे भारत के राष्ट्रीय नेताओ ने पूरा सहयोग दिया। महात्मा गाधी, सरदार पटेल, स्व० सेठ जमनालाल बजाज, प० जवाहरलाल नेहरू, डा० पट्टाभि सीतारामैया, डा० राजेन्द्रप्रसाद, श्री मेहताब प्रभृति नेताओ ने देशी राज्य-प्रजा आन्दोलनों का सचालन भी किया और परिषद् के सालाना अधिवेशनों मे नेहरूजी, सरदार पटेल, डा० कैलाशनाथ काटजू, सेठ बजाज, डा० पट्टाभि ने सभापति का आसन भी ग्रहण किया।

इस परिषद् का लक्ष्य स्वाधीन सघीय भारत के एक प्रमुख अंग के रूप मे, अहिंसात्मक और शान्तिमय उपायो द्वारा, देशी राज्यो मे उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है। अखिल-भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् के अन्तर्गत अग्रलिखित समितियॉ हैं—(१) राज्य समितियॉ, (२) स्वीकृत समितियॉ, (३) प्रान्तीय समितियॉ, (४) सामान्य सभा (General Council), (५) कार्य-समिति (Standing Committee)। कार्य-समिति मे १५

सदस्य हैं। समय-समय पर इसके अधिवेशन होते रहते है।

अणे, माधव श्रीहरि—महात्मा गाधी के २१ दिन के व्रत के समय, उन्हे छोडे जाने के प्रश्न पर, आपने अपने सहयोगी, श्रीनलिनीरजन सरकार (वाणिज्य-सदस्य) तथा सर होमी मोदी (रसद-सदस्य) के साथ, १७ फर्वरी १९४३ को, वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल की सदस्यता (प्रवासी-भारतीय-विभाग) से त्यागपत्र देदिया। उपर्युक्त तीनो सदस्यो ने अपने १८ फर्वरी १९४३ के, एक सयुक्त वक्तव्य मे लिखाः—

"गवर्नर-जनरल की कौंसिल से हमारे त्यागपत्रो की घोषणा होचुकी है, और इस समय हम जो कुछ कहना चाहते हैं, वह यह है कि जिन्हे हम मौलिक प्रश्न मानते थे उनपर कुछ मतभेद पैदा होगया और हमने यह अनुभव किया कि हम अब अपने पदो पर नहीं रह सकते।" तीनो सदस्यो ने अलग-अलग वक्तव्य भी प्रकाशित किये।

अन्सारी—अब्दुलक़य्यूम, एम० ए०; सुप्रसिद्ध मोमिन नेता; जन्म सन् १९०५; अलीगढ, प्रयाग और कलकत्ता विश्वविद्यालय मे शिक्षा पाई; १९२०-२१ के ख़िलाफत और असहयोग आन्दोलनो मे भाग लिया और जेल गये; १९३८ मे मोमिन जमाअत के संगठन मे सम्मिलित हुए और तभी से जमीअतुल-मोमिनीने-हिन्द (आल-इडिया मोमिन कान्फ़रेन्स) के उप-प्रधान हैं। आप अ०-भा० मोमिन नोजवान एसोसियेशन के प्रधान-मन्त्री और बिहार-प्रान्तीय जमीअतुल मोमिनीन के प्रधान है। १९४० मे प्रथम बिहार प्रान्तीय मोमिन कान्फरेन्स के पटना अधिवेशन के और मोमिन नौजवान कान्फरेन्स के, १९४१ मे, द्वितीय अखिल-भारतीय अधिवेशन के प्रधान बनाये गये। अन्सारी साहब अखिल-भारतीय आज़ाद मुसलिम पार्टीज़ फैडरेशन (विविध स्वतन्त्र भारतीय मुसलिम समुदाय संघ) की कार्यकारिणी के सदस्य हैं, साथ ही आज़ाद मुसलिम कान्फरेन्स की अल्पसख्यक-अधिकार-समिति के सदस्य भी। आप बिहार मोमिन पार्लमेण्टरी बोर्ड के अध्यक्ष और पटना विश्वविद्यालय के फैलो हैं। आपने अनेक उर्दू पत्रो का सम्पादन किया है और उच्च कोटि के उर्दू गद्य-लेखक हैं। आपकी अँगरेज़ी मे लिखी 'पोलिटिकल डिमान्ड्स आफ् मोमिन कम्युनिटी' (मोमिन जमाअत के सयासी मतालबात अथवा मोमिन समुदाय की राजनीतिक

मॉर्गे) का मुसलिम लीग अथवा उसको भारत की एकमात्र प्रतिनिधि मुसलिम संस्था माननेवाले ब्रिटिश अधिकारियों ने कोई उत्तर नहीं दिया है।

अन्सारी—डाक्टर शौकतुल्ला, एम० डी०, स्वर्गीय महान् भारतीय नेता डाक्टर मुख्तार अहमद अन्सारी के भतीजे, जन्म सन् १९०७, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई। चिकित्सा-शास्त्र पढ़ने इंगलैण्ड गये, वहाँ तथा जर्मनी में डाक्टरी पढ़ी। १९३८ में वापस भारत लौटे, और अपने चचा के स्थान पर दिल्ली के सुप्रसिद्ध डाक्टर हैं। डाक्टर शौकतुल्ला अन्सारी, अपने यशस्वी चचा की भाँति, भारतीय राजनीति में अग्रसर होकर भाग ले रहे हैं। आप आज़ाद मुसलिम दल के प्रधान मन्त्री हैं।

अल्लामा 'मशरिक़ी'—केन्द्रिय असेम्बली में, सितम्बर '४२ में ख़ाकसारों पर से पाबन्दी उठाये जाने सम्बन्धी प्रस्ताव पर हुए वादविवाद के अनुसार, प्रान्तीय सरकारों की सहमति से, भारत सरकार ने ख़ाकसार-आन्दोलन के संचालक अल्लामा मशरिक़ी को ता० २८ जनवरी '४३ को रिहा कर दिया और ख़ाकसारों पर से पाबन्दी उठाली। अल्लामा ने सरकार की शर्तों को स्वीकार कर लिया है और एक बयान निकाल कर कहा है कि लड़ाई के समाप्त होने तक उनका आन्दोलन सैनिक ढंग का न रहेगा। ख़ाकसार व्यक्तिगत रूप में समाज-सेवा करते रह सकते हैं। सामूहिक रूप से वे न वर्दी पहनेंगे, न कोई हथियार, न बेलचा धारण करेंगे, न 'अख़्वत' बैज लगायेंगे, न क़वाइद-परेड करेंगे और युद्ध-प्रयत्नों में सरकार की भरसक सहायता करेंगे।

अल्लाहबख़्श, मुहम्मदउमर—सिंध-सरकार के प्रधान-मन्त्रि-पद से आप च्युत कर दिये गये। माननीय ख़ानबहादुर अल्लाहबख़्श, ओ० बी० ई० ने, ब्रिटिश-नीति के विरोध-स्वरुप 'ख़ान बहादुर' तथा 'ओ० बी० ई०' की पदवियाँ सितम्बर '४२ के तीसरे हफ़्ते में त्यागदी। इस सम्बन्ध में जो पत्र भारत के वाइसराय को आपने लिखा, उसका एक अवतरण निम्नलिखित है:—

"मुझे मिली हुई दोनों सम्मानास्पद उपाधियों को, जो मुझे ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान कीगई थी, त्याग देने का मैंने निर्णय कर लिया है, क्योंकि, मैं अनुभव करता हूँ कि, अपनी विचारधारा और धारणा के अनुकूल मैं और अधिक काल तक उन्हें धारण नहीं किये रह सकता। दीर्घकाल से भारत

अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष मे संलग्न है। वर्तमान युद्ध के प्रारम्भ होने पर आशा की गई थी कि उन्ही उद्देशो और आदर्शों के आधार पर, जिनके सरक्षण के लिये मित्र-राष्ट्र आज जूझ रहे हैं, भारत को स्वतन्त्रता प्रदान कीजायगी और वह एक स्वाधीन देश की भॉति विश्वव्यापी सघर्ष मे भाग लेसकेगा।

"मेरी यह दृढ़ धारणा है कि भारत को स्वाधीन होने का पूर्ण अधिकार है और भारत की जनता को ऐसी अवस्थाओ मे रहना चाहिये, जिनमें कि वह शान्ति और सहयोग से रह सके। ब्रिटिश सरकार के कार्य और घोषणा से यह स्पष्ट होगया है कि वह भारतीय दलों और सम्प्रदायो को अपने मतभेदो को दूर करने मे सहयोग देने और देश की जनता के हाथो मे सत्ता सौंप देने और उन्हे स्वतत्र वातावरण मे सुखपूर्वक जीवन विताने का अवसर देने तथा अपने जन्म-सिद्ध अधिकार के अनुसार अपने देश के भाग्य का निर्माण करने देने के वजाय ब्रिटिश सरकार की नीति भारत मे अपना साम्राज्यवादी आधिपत्य क़ायम रखने और उसे पराधीनता की वेडियो मे जकडे रखने और देश के राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक मतभेद को प्रचार का साधन बनाकर उससे लाभ उठाने की रही है। वह राष्ट्रीय शक्तियों को, अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यो तथा मन्तव्यो की पूर्ति के लिए, कुचल देना चाहती है।"

अपने पत्र मे मि० अल्लाहबख़्श ने चर्चिल और ऐमरी की घोषणाओं एवं वक्तव्यो की आलोचना भी की। इसी कारण, वाइसराय के आदेश से सिंध के गवर्नर ने, जनता की प्रतिनिधि व्यवस्थापक-परिषद् के प्रति उत्तरदायी प्रधान-मंत्री श्री मुहम्मदउमर अल्लाहबख्श को नवम्बर '४२ के दूसरे सप्ताह में अपने पद से बरख़ास्त कर दिया। भारत में ही नही समूचे ब्रिटिश साम्राज्य मे सम्भवतः यह सबसे पहला उदाहरण है जब जनता के प्रति उत्तरदायी प्रधान-मंत्री को, केवल अपने विचार-स्वातन्त्र्य के कारण, इस प्रकार पद-च्युत किया गया हो।

आज़ाद, मौलाना अबुलकलाम—'भारत छोड़ो' प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद, ९ अगस्त १९४२ के प्रातःकाल, अन्य नेताओं सहित आपको भी पकड़ लिया गया। अप्रैल १९४३ मे आपकी बेगम साहबा का देहान्त होगया। धर्मपत्नी की रुग्णावस्था मे और उनकी मृत्यु के बाद मौलाना साहब को पैरोल

पर नहीं छोड़ा गया। अ०-भा० मोमिन कान्फरेन्स ने अपने अप्रैल '४३ के वार्षिक अधिवेशन मे, इस कारण, निन्दात्मक प्रस्ताव पास किया।

आज़ाद मुसलिम कान्फरेन्स—भारत के स्वतन्त्रता-प्रिय मुसलमानो की अखिल-भारतीय सस्था, जो मुसलिम लीग को भारतीय मुसलिम जाति की प्रतिनिधिक सस्था और मि० जिन्ना को प्रतिनिधिक-अगुआ नहीं मानने। यह सस्था भारतीय राजनीतिक उद्धार के सम्बन्ध मे कांग्रेस से सहयोग करती है और हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये देश के सर्व साम्प्रदायिक-ऐक्य और सङ्गठन की समर्थक है। 'पाकिस्तान' योजना को यह संस्था, शब्द और भावना दानो प्रकार से, इसलाम की शिक्षा के विपरीत और भारतीय स्वातन्त्र्य के लिये विघातक मानती है। अखिल-भारतीय आजाद मुसलिम कान्फरेन्स की कार्यकारिणी ने अपनी नई दिल्ली की बैठक में, १ मार्च १९४२ को, एक प्रस्ताव स्वीकार किया था, जिसमें कहा था कि मुसलिम लीग भारतीय मुसलिमो की एकमात्र प्रतिनिधि सस्था नहीं है। साथ ही, प्रस्ताव मे, ब्रिटिश सरकार से कहा गया था कि वह शीघ्र ही भारतीय स्वाधीनता को स्वीकार करे और वास्तविक अधिकार जनता के प्रतिनिधियो को सौंपदें ताकि वह पूर्ण दायित्व के साथ शत्रु से देश की रक्षा कर सके और अन्य स्वाधीन देशों से सहयोग प्राप्त कर सके। नवम्बर '४२ में आजाद मुसलिम दल ने, भारतीय मुसलमानो के सबध मे, वास्तविक स्थिति से परिचित कराने के उद्देश से, चीन, रूस, अमरीका और ब्रिटेन को एक डेपुटेशन भेजना निश्चय किया था। इसका सदर दफ़्तर दिल्ली मे है।

ईसपात—फौलाद या ईसपात लडाइयो के कारणो मे एक बडा प्रलोभन रहा है। पाश्चात्य सभ्यता मे तेल और कोयले के साथ ईसपात का भी बडा भाग है। जिन देशो मे कच्चा लोहा पाया जाता है, साम्राज्यवादी योरपीय देशो की लोलुप दृष्टि से वह देश बचने नहीं पाये हैं, क्योकि यह विनाशकारी सभ्यता जिन उपादानों पर खडी है, उनमे फौलाद भी मुख्य है। फौलाद किन देशो मे किस मात्रा मे बनता है, उसका ब्यौरा (१९३८ के आँकड़े प्रति दस लाख टन मे) इस प्रकार है:—सयुक्त-राज्य अमरीका २८·८; जर्मनी २३, रूसी सोवियत सघ १८·२; ग्रेट ब्रिटेन १०·६, फ्रास ६·१; जापान ६;

इटली २·४ ; वेलजियम २·३ । इन देशो मे से अमरीका, रूस और फ्रांस मे कच्चा लोहा निकलता है, दूसरे देशो को ईसपात बनाने के लिये स्वीडन, फ्रांस और स्पेन से कच्चा लोहा ख़रीदना पडता है। कच्चा लोहा (आयर्न ओर) भारत के पर्वत-प्रदेशो में भी निकलता है ।

कासाब्लांका-सम्मेलन—जनवरी १९४३ के अन्तिम सप्ताह मे, अफ्रीका में, फ्रान्सीसी-मरक्को के प्रमुख नगर कासाब्लाका में, अमरीकी राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और बरतानवी प्रधान मत्री मि० चर्चिल तथा दोनो देशो के सेना-विभागो के उच्च अफसरो के बीच, दस दिनो तक, लगातार सम्मेलन हुआ । मोशिये स्तालिन तथा जनरलिस्सिमो च्यांग् काई-शेक को भी इस सम्मेलन मे आमन्त्रित किया गया बताया जाता है। किन्तु अपने-अपने क्षेत्रों में युद्ध-संलग्न रहने के कारण वे सम्मेलन मे उपस्थित न होसके। किन्तु, कहा गया है कि, उन्हे सम्मेलन के प्रत्येक निश्चय से अवगत किया गया था। मि० चर्चिल ने इस सम्मेलन को अपने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण युद्ध-सम्मेलन और राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने इसे "बिला शर्त आत्म-समर्पण-सम्मेलन" कहा है । इस सम्मेलन में जो निश्चय किये गये, उन्हे प्रकाशित नहीं किया गया है, किन्तु मि० चर्चिल और प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्ट ने जो वक्तव्य दिये है, उनसे निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट हैं :—

(अ) सन् १९४३ मे ससार भर में धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध घनघोर आक्रमणात्मक युद्ध किया जायगा ।

(ब) रूसी रण-क्षेत्र पर नात्सी अपनी विपुल युद्ध-सामग्री का प्रयोग कर रहे हैं और रूसी जनता शत्रु की सेना और सामग्री दोनों को नष्ट कर रही है, अतः उसकी प्रशंसा की गई और निश्चय किया गया कि रूस को अधिक-से-अधिक सहायता प्रदान की जायगी ।

चीन को भी प्रत्येक प्रकार की शक्य सहायता प्रदान की जायगी, जो [illegible] रहा है ।

(स) [illegible] जापान को पूर्णरूपेण [illegible] देने पर ही—अर्थात्, [illegible] [illegible] देने पर ही—[illegible] में शान्ति स्थापित होसकेगी । [illegible]

का अर्थ धुरीराष्ट्रो, उनकी जनता, का नाश नही है, किन्तु, अन्य देशो के प्रति उनकी घृणा, विभापिका और दासतामूलक नीति का नाश है।

(द) 'युद्ध-रत' फ्रास के प्रतिनिधि जनरल चार्ल्स द' गॉल और जनरल जिरौ भी इस सम्मेलन में सम्मिलित थे। इन दोनो ने फ्रास को स्वतन्त्र करने के लिये पारस्परिक सहयोग की सहमति दी। फ्रासीसी राष्ट्र समिति ने एक वक्तव्य निकाल कर कहा है कि तत्काल ही पदाति, जलीय और वायव्य सेना का सङ्गठन करके मोर्चे क़ायम किये जायँगे। उक्त दोनो जनरलो ने फ्रासीसी उत्तरी और पश्चिमी अफरीका के वर्तमान युद्ध को दृष्टिगत रखकर अपनी योजना बनाई।

दोनो देशो के सेना विभाग के नायको ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक, इस विश्व-युद्ध के सम्बन्ध मे, व्यापक और परिपूर्ण तथा अभूतपूर्व योजनायें तैयार की हैं। मि० चर्चिल ने कहा है कि उन्हे विश्वास है कि इन योजनाओ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलेगा।

१२ फरवरी को, इस सम्बन्ध मे, अमरीकी राष्ट्र के नाम सन्देश देते हुए प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्ट ने कहा कि, इन दिनो उत्तरी अफ्रीका के ट्यूनीशिया-क्षेत्र पर हमारी अमरीकी, बरतानवी और फ्रासीसी फौजे लड़ रही हैं। वही धुरी-शत्रु-सेनाएँ जो वहाँ विजय प्राप्त कर रही थीं, उन्हे ब्रिटिश आठवी सेना के सेनापति मान्टगोमरी ने १५०० मील पीछे खदेड दिया है। आगे हम शत्रु पर चारो ओर से आक्रमण करेंगे। ट्यूनीशिया के युद्ध मे हमे बहुत बलिदान करना पड़ेगा।

हम अपने इरादो को छिपाना नही चाहते। ट्यूनीशिया मे युद्ध समाप्त करने के बाद हम योरप मे उन देशो के उद्धार के लिये बढेगे जो आज नात्सी जुए के नीचे प्रपीड़ित होरहे हैं। हिटलर इसे जानता है, इसीलिये वह ट्यूनीशिया मे अपनी भारी शक्ति लगाये हुए है। जर्मनी और इटली पर हमारा अबाध युद्ध चलेगा। पूर्व मे रूस शत्रु पर करारी चोटे कर रहा है, हम पश्चिम से वही करेंगे। कासाब्लाका मे यह प्रकट होचुका है कि समस्त प्रवासी फ्रासीसी, अपने देश के उद्धार के लिये, सङ्गठित होरहे हैं। हम अपनी अतलातिक योजना मे स्पष्ट कर चुके हैं कि जो देश शत्रु-प्रहार के शिकार हुए हैं, उनको मुक्त कराकर उनकी स्वाधीनता का पुनर्निर्माण किया

जायगा। कासाब्लाका के निर्णय और योजना किसी एक युद्ध-क्षेत्र, किसी एक देश अथवा किसी एक सागर तक सीमित नहीं हैं। यह वर्ष समाप्त होने से पूर्व समस्त ससार को हमारे कार्यों द्वारा, बातो द्वारा नही, उनका पता चल जायगा। संसार को अनेक नवीन सवाद सुनने को मिलेगे, अवश्य ही जर्मनो, इटालियनो और जापानियो के लिये वह सवाद अशुभ होगे।

विशाल प्रशान्त महासागर मे हम जापान से एक-एक करके द्वीप लेने और उसे वहाँ हराने मे समय नही लगायेंगे, बल्कि हम चीन की भूमि से भी आक्रमक जापान को निकाल भगाने मे विस्तृत और निर्णयात्मक आक्रमण करेगे। जापानियो पर चीन मे और स्वयं जापान देश पर भी हमारे हवाई आक्रमण होगे। इन निर्णयो की सूचना हम जनरलिस्सिमो को देचुके हैं। तोक्यो पर आक्रमण के प्रत्येक साधन का हम उपयोग करेगे।

धुरी राष्ट्र हमारे विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं कि युद्ध के बाद हम सयुक्त-राष्ट्र—अमरीका, ब्रिटेन, चीन और रूस—आपस मे कुत्ते-बिल्ली की भाँति लड़ेगे। हमारा—हम मित्र राष्ट्रो का—का कासाब्लाका मे दिया हुआ उत्तर यह है कि, तुम्हे हमारे सामने बिलाशर्त हथियार रख देने होंगे। रूस इस समय शत्रु को मुँहफेर जवाब दे रहा है। धुरी राष्ट्रो को जान लेना चाहिये कि युद्ध को समस्त ससार के क्षेत्रो पर जीतने के लिये हम सब एकमत हैं। हम एक दूसरे की पूरी सहायता करेगे। अगर आज जापान को पराजित किया जाता है तो दूसरे ही दिन संयुक्त-राष्ट्रो के समस्त साधन जर्मनी को समाप्त करने मे लग जायँगे। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ऐसा नियमित इक़रारनामा करना चाहते थे कि जापान से पहले जर्मनी को ख़त्म किया जायगा, और तब ब्रिटिश साम्राज्य के समस्त साधन और सैन्य, जापानियो पर अन्तिम आक्रमण करने के लिये चीन के साथ जुटाये जायँगे। मैंने उनसे कह दिया कि ऐसे किसी भी नियमित वक्तव्य अथवा इक़रार की आवश्यकता नहीं है। यह सर्वविदित और स्पष्ट है कि एशिया, योरप और अफ्रीका में बर्बर शक्तियों के विनाश के सम्बन्ध मे अपने इरादों में हमारा मतैक्य है। नारवीक से कुमनिंग तक, भूमध्यसागर से कोरल सागर तक और बर्लिन से तोक्यो तक आज मानव-जाति युद्धाग्नि में दग्ध होरही है। अब्राहम लिंकन के शब्दों ने इस इतिहास को आज [illegible]

नहीं कर सकते। हमने इरादा कर लिया है कि इस युद्ध को अन्त तक लड़ेंगे—उस दिन तक जबकि सयुक्त राष्ट्रो की विजित सेनाएँ बर्लिन, रोम और तोक्यो की सडको पर घूमती दिखाई देंगी।

केन्द्रीय कैदखाने—हिटलर के वह क़ैदखाने जिन्हे उसने अपने नात्सी-शासन के विरोधियो को क़ैद करने के लिए जर्मनी में क़ायम कर रखा है। योरप के साम्राज्यवादी प्रचारकों के अनुसार वर्तमान युद्ध आरम्भ होने के समय ४० हजार व्यक्ति वहाँ कैद थे, और दो लाख से अधिक इन क़ैदख़ानों मे पहले रह चुके हैं। सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, डेमोक्रेट, कैथलिक तथा नात्सीवाद-विरोधी प्रोटेस्टेन्ट ईसाई, यहूदी, चेक, राजतन्त्रवादी वह नात्सी भी क़ैद किये गये हैं जो दल की नीति में अन्ध-विश्वास नहीं रखते। राजनीति से अलग रहनेवाले ऐसे जर्मन भी इनमे डाल दिये जाते हैं जो सभी नात्सी-क़ानूनों का पालन नहीं करते। क़ैद मे डालते वक्त न तो अदालत द्वारा अपराध साबित किया जाता है और न क़ैद की कोई मीयाद ही मुक़र्रर है। बहुत से व्यक्ति सात-सात वर्षों से जेलो मे पड़े सड़ रहे हैं। जेलख़ानो में क़ैदियों से ऐसी सख्त मशक्क़त ली जाती है जिसे करने के वे अभ्यस्त नहीं होते। जेलख़ानों के जमादार उन्हे पीटते, उनके साथ दुर्व्यवहार करते और उनका अनिर्वचनीय प्रपीडन करते हैं। इन कैम्प जेलो मे हज़ारो, इन प्रतारणाओ के कारण, घुलघुल कर मर चुके हैं। यह क़ैदख़ाने नात्सी-शासन के अत्यन्त काले कारनामो मे हैं, लेकिन नात्सी इन्हीके द्वारा जर्मन जनता को आतङ्कित रखकर अपना शासन चला रहे हैं। इनमे कई कैम्प जेल तो बहुत बदनाम हैं। अक्तूबर १६३६ में बरतानवी सरकार ने इन कैम्प जेलो के सम्बन्ध मे श्वेतपत्र प्रकाशित किया था। जर्मनी के यह नरक सन्सार मे कोई अपवाद नही हैं। प्रजातन्त्र की दुहाई देनेवाले, किन्तु कार्यतः साम्राज्यवादी राष्ट्रो के अधीन देशो मे भी बिना मुक़-दमा चलाये जेलो मे वर्षों डाले रखने के उदाहरण आज भी मौजूद हैं।

खान अब्दुलगफ़्फ़ार खाँ—अक्टूबर १६४२ मे आपको गिरफ़्तार कर लिया गया। सिन्ध और बगाल मे मुसलिम लीग के मन्त्रिमण्डल बन चुके हैं। अब लीगी और सरकारी क्षेत्रो मे सीमाप्रान्त मे भी लीगी-मिनिस्टरी क़ायम करने की चर्चा है।

गांधी-लिनलिथगो-पत्र-व्यवहार—गांधीजी ने २६ जनवरी १६४३ को, भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो के नाम एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने ता० ६ फर्वरी से (व्रत १० फरवरी से आरम्भ हुआ) २१ दिन तक उपवास रखने का मन्तव्य प्रकट किया। वाइसराय गाधीजी को केवल उपवास-काल के लिये जेल से मुक्त कर देने की व्यवस्था करना चाहते थे। इसे गान्धीजी ने स्वीकार नहीं किया। आग़ाख़ॉ-महल मे ही गांधीजी ने अपना व्रत आरम्भ किया। १० फ़रवरी १६४३ को लार्ड लिनलिथगो ने यह सब पत्र-व्यवहार समाचार-पत्रो मे प्रकाशित करा दिया जो गांधीजी के बीच अबतक हुआ था, जिसका सारमात्र इस प्रकार है:—

ता० ६ अगस्त १६४२ को महात्मा गांधी बंबई मे गिरफ़्तार किये गये थे। इसके ४-५ दिन बाद अर्थात् १४ अगस्त १६४२ को गाधीजी ने वाइसराय को निम्नलिखित पत्र लिखा, जिसमे उन्होने कहा :—

"सरकारी प्रस्ताव मे लिखा है कि "सपरिषद्-गवर्नर-जनरल को कुछ पिछले दिनो से कांग्रेस पार्टी द्वारा गैरक़ानूनी तथा हिंसात्मक कार्यों के लिए विगत भयानक तैयारियो का ज्ञान रहा है, जिनका उद्देश्य यातायात के साधनो तथा जनता के उपयोग की सेवाओ मे बाधा डालना, हड़तालो का सगठन तथा सरकारी कर्मचारियो को भड़काना और रक्षा के कार्यों एवं रंगरूटो की भरती मे बाधा डालना है।" गाधीजी ने इस पर लिखा—"यह वास्तविकता का अत्यन्त विरूप है। किसी भी अवस्था मे हिंसा की बात तो सोची भी नहीं गई थी। उन कार्यों की व्याख्या का, जिन्हे अहिंसात्मक आन्दोलन मे शामिल किया जा सकता है, खीचातानी करके यह अर्थ लगाया गया है कि कांग्रेस हिंसात्मक कार्य के लिए तैयारी कर रही थी।"

यदि गांधीजी का यह पत्र उसी समय सरकार द्वारा प्रकाशित कर दिया जाता तो भारत मे जो भयङ्कर विद्रोह हुआ और निर्दोष व्यक्तियो की जो हत्याएँ हुईं, वह न होनी और जनता मे शान्ति स्थापित होजाती।

२३ सितम्बर १६४२ मे गाधीजी ने दूसरा पत्र भारत-सरकार के गृह-विभाग के सेक्रेटरी के नाम लिखा। इस पत्र मे गांधीजी ने लिखा—

"जो कुछ इसके विपरीत कहा गया है, उसके बावजूद मै यह दावा

करता हूँ कि काग्रेस की नीति अब भी स्पष्टतः अहिंसात्मक है। काग्रेसी नेताओं की एकदम गिरफ़्तारियों ने जनता में रोष के भाव पैदा कर दिये और यहाँ तक कि उनमे आत्म-संयम भी न रहा। मै यह अनुभव करता हूँ कि जो सर्वनाश हुआ है उसके लिए सरकार—काग्रेस नहीं—ज़िम्मेदार है। सरकार के लिए अब उचित मार्ग मुझे यही लगता है कि काग्रेसी नेताओं को रिहा कर दिया जाय और समस्त दमनकारी क़ानूनों और कार्यों को वापस ले लिया जाय और समझौते के उपाय और साधन सोचे जायँ।"

इसके बाद तीसरा पत्र गाधीजी ने १ जनवरी १९४३ को लार्ड लिनलिथगो के नाम लिखा। इस पत्र मे गाधीजी ने अपने उपवास का सकेत-मात्र दिया और लिखा कि—

"समय अब निकट पहुँच रहा है और अब मेरा धैर्य्य भी समाप्ति पर है। सत्याग्रह के विधान में, जैसा कि मै जानता हूँ, ऐसे अवसरों के लिये भी एक उपाय है। एक वाक्य मे वह उपाय है उपवास द्वारा शरीर का नाश। उस विधान मे यह भी है कि केवल अन्तिम उपाय के रूप मे ही इसका प्रयोग किया जाय। यदि मै इसे टाल सका, तो मै इसका प्रयोग करने की इच्छा न करूँगा। इसके टालने का यही एक मार्ग है कि मुझे मेरी ग़लतियों अथवा ग़लती का विश्वास करा दिया जाय, मै इसके लिए काफी प्रायश्चित करूँगा। आप मुझे बुला सकते हैं या आप किसीको भेज सकते हैं जो आपके मन की बात जानता हो। और भी कितने ही उपाय हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो।"

इस पत्र के जवाब मे लार्ड लिनलिथगो ने १३ जनवरी को लिखा कि—"इन विगत मासो मे मुझे प्रथम तो काग्रेस की उस नीति से घोर दुःख हुआ जो उसने गत अगस्त मे ग्रहण की, और दूसरे मुझे इससे दु.ख पहुँचा कि इस नीति के कारण, जैसा कि इससे स्पष्ट था, सारे देश मे हिंसा और अपराध हुए (मै उस ख़तरे के बारे मे नही कहता जो भारत को बाहरी आक्रमण से है)। इस हिंसा और अपराध की निंदा मे एक शब्द भी आपने और कार्य-समिति ने नही कहा।

"परन्तु यदि मै आपके पत्र को समझने मे गलती नही करता तो उसका

यह मतलब है कि जो कुछ घटनाएँ हुईं, उनके प्रकाश मे आप अपना क़दम पीछे को लौटाना चाहते हैं, और उस नीति से अपने को अलग करना चाहते हैं जिसे विगत ग्रीष्म मे अगीकार किया गया था। तो आप सिर्फ मुझे सूचित कर दीजिए और मै इस मामले पर फिर से विचार करूँगा। और यदि मै आपके उद्देश को समझने मे विफल रहा हूँ तो आप बिना किसी सकोच के तुरन्त ही कि, मैने ऐसा किस मामले मे किया है, सूचित करेंगे और मुझे अपने निश्चित सुझाव भी बतलायँगे।"

गाधीजी ने अपना चौथा पत्र १९ जनवरी १९४३ को वाइसराय के नाम लिखा। अपने इस पत्र मे गांधीजी ने लिखा—

"आपने मेरे पत्र का जो अर्थ निकाला है, मुझे भय है कि, वह सही नहीं है। मैने आपके पत्र को आपकी व्याख्या के प्रकाश मे, पुनः पढ़ा, परन्तु मैं उसमे आपका अर्थ तो नहीं पासका। मै व्रत रखना चाहता था और अब भी चाहता हूँ, यदि हमारे पत्र-व्यवहार का कुछ प्रतिफल न निकला।

"यदि मै अपने पत्र पर आपकी व्याख्या को स्वीकार नहीं करता, तो आप मुझे अपना निश्चित प्रस्ताव प्रस्तुत करने की वाञ्छा करते है। ऐसा मै उसी समय कर सकूँगा जब कि आप मुझे काग्रेस की कार्य-समिति के बीच उपस्थित होने की व्यवस्था कर देंगे।"

इसी पत्र में गाधीजी ने आगे लिखा :—

"यदि आप यह चाहते हैं कि मै अकेला ही कार्य करूँ तो मुझे आप यह विश्वास करादे कि मै गलती पर था, मै उसके लिए यथेष्ट प्रायश्चित करूँगा।

"अगर आप यह कहते हैं कि मैं कांग्रेस की ओर से कोई प्रस्ताव आपके समक्ष रखूँ तो आपको मुझे काग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों के बीच उपस्थित करना होगा। मेरा तो तर्क आपसे यही है कि आप गतिरोध का अन्त करने का निश्चय करलें।"

लार्ड लिनलिथगो ने २५ जनवरी के गाधीजी के उपर्युक्त पत्र के जवाब में लिखा :—

"आपने हिंसा की जो स्पष्टतः निन्दा की है, उसे पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, और मैं उस महत्व से भी भलीभाँति परिचित हूँ जो आपने पिछले वर्षों मे अपने धर्म के उस अंग को दिया है। परन्तु इन महीनो में जो घटनाएँ हुई हैं,

वे तथा जो घटनाएँ आज होरही हैं वह भी यह प्रमाणित करती हैं कि उसे आपके कुछ अनुयायियों ने स्वीकार नहीं किया है, और केवल वह सत्य कि आपने जिस आदर्श का प्रचार किया है, वे उसे अपनाने में सफल नहीं हुए। उन व्यक्तियों के संबंधियों के लिए कोई जवाब नहीं जिन्होंने अपने जीवन से हाथ धोये हैं, और न उनके लिए जिनके संबंधियों की सम्पत्ति को कांग्रेस और उसके समर्थकों की ओर से कीगई हिंसात्मक कार्यवाही के कारण नुक़सान पहुँचा है।

"इसलिये अगर आप मुझे यह सूचित करने के लिए चिंतित हैं कि आप ६ अगस्त के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हैं और उससे अपना संबंध-विच्छेद करते हैं, और उस नीति से भी, जिसका प्रस्ताव में उल्लेख है, और अगर आप मुझे उचित आश्वासन भविष्य के लिए भी दें, तो मैं इस मामले पर आगे विचार करने के लिए तैयार हूँ, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।"

इस पत्र के जवाब में गांधीजी ने २९ जनवरी १९४३ को पत्र लिखा और इसमें पुनः इस बात पर ज़ोर दिया कि वह (वाइसराय) कृपाकर ८ अगस्त १९४२ के कांग्रेस प्रस्ताव में कोई ऐसी बात तो बतावें कि जिसे वह बुरा समझते हैं या जिसमें हिंसा की गंध है। अतः अपने पत्रव्यवहार को विफल मान उन्होंने ९ फरवरी से उपवास रखने की सूचना वाइसराय को देदी।

इस पत्र के जवाब में ५ फर्वरी १९४३ को लार्ड लिनलिथगो ने एक पत्र गांधीजी के नाम लिखा। इस पत्र का आशय यह है कि ९ अगस्त के बाद भारत में जो हिंसा-काण्ड, अग्नि-काण्ड तथा उपद्रव हुए उनके लिए गांधीजी, कांग्रेस और उसके नेता जिम्मेदार हैं। अपने इस पत्र में लार्ड लिनलिथगो ने लिखा :—

"इसकी साक्ष्य है कि आप और आपके मित्र इस नीति की परिणति हिंसा में होने की आशा रखते थे और आप उसे बरदाश्त करने के लिए तैयार थे और जो हिंसा-काण्ड हुए, वे एक सुनिश्चित योजना के अंग थे जो कांग्रेस-नेताओं की गिरफ्तारी से बहुत पहले बनाई गई थी।"

इसी पत्र में उन्होंने यह भी लिखा कि राजनीतिक कार्यों के लिए उपवास एक प्रकार से राजनीतिक हिंसा (Political blackmail) है।

गांधीजी ने ७ फर्वरी १९४३ को इस पत्र के उत्तर में एक पत्र लार्ड

लिनलिथगो के लिए लिखा। इस पत्र की अन्तिम महत्वपूर्ण पंक्तियाँ इस प्रकार हैं। गांधीजी लिखते है :—

"आपने मेरे लिए कोई ऐसी गुंजाइश नहीं रहने दी है कि मै व्रत रखने से बचा रह सकूँ। मै अत्यन्त स्पष्ट विवेक-बुद्धि के साथ ६ फर्वरी को व्रत आरम्भ करूँगा। आपके यह कहने पर भी कि वह एक प्रकार की "राजनीतिक हिंसा" है, वह मेरे लिए उस न्याय के निमित्त सर्वोच्च न्यायालय से एक अपील होगी जिसे मै आपसे प्राप्त करने मे विफल रहा हूँ।"

इसके बाद गाधीजी ने १० फर्वरी से अपना इक्कीस दिन का उपवास आग़ाख़ॉ भवन मे आरम्भ कर दिया।

गांधीजी का इक्कीस दिन का व्रत—गाधीजी ने १० फर्वरी '४३ के प्रातःकाल से अपना २१ दिन का व्रत आग़ाख़ॉ महल, पूना मे (जहॉ वह राजबन्दी हैं) आरम्भ किया था। सरकार ने गाधीजी को यह आज्ञा देदी थी कि व्रत की अवधि मे वह अपनी इच्छानुसार अपने डाक्टरो से परामर्श ले सकेंगे। गांधीजी ने २१ दिन तक केवल जल-सेवन करके व्रत रखा। जल को पीने के योग्य बनाने के निमित्त वह नीबू का थोडा-सा रस भी जल के साथ मिला लेते थे। जब उनकी स्थिति इतनी अधिक ख़राब होगई कि जल तक उन्हे हज़्म नही होने लगा तब 'मौसमी' का रस मिलाकर पानी पिलाया जाता था। उनके उपवास-काल मे ता० ११ फर्वरी से बंबई के सुप्रसिद्ध डा० गिल्डर (पूर्व कांग्रेसी स्वास्थ्य-मंत्री) और १५ फर्वरी से कलकत्ता के भारत-विख्यात डा० विधान चन्द्र राय (कलकत्ता यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर) गांधीजी के निकट रहे और समय-समय पर उनकी शारीरिक-परीक्षा करते रहे। डा० सुशीला नायर तो हर समय गाधीजी के निकट रही। यह उनकी प्राइवेट चिकित्सिका हैं और उन्हीके साथ क़ैद हैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने गांधीजी की परिचर्या बड़ी तत्परता से की। सरकार की ओर से गाधीजी के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए तीन डाक्टर नियुक्त किये गये थे : मेजर-जनरल आर०एस० केंडी, लेफ्टिनेट-कर्नल एम० जी० भण्डारी तथा लेफ्टिनेट-कर्नल बी० जी० शाह।

प्रतिदिन इन ६ डाक्टरो के हस्ताक्षर सहित गांधीजी के दैनिक स्वास्थ्य-सबंधी पत्रिका समाचार-पत्रो मे प्रकाशित होती रही। डा० राय, डा० गिल्डर,

अन्य सरकारी डाक्टरो तथा गाधीजी के अन्य मित्रो और सबधियो को ही नही प्रत्युत् समस्त जनता को यह भय था कि गाधीजी इस वयोवृद्ध अवस्था मे २१ दिन का उपवास कुशलता के साथ पूरा न कर सकेंगे। १६ फर्वरी १६४३ से गाधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे डाक्टरो को चिन्ता होने लगी और उनकी स्थिति दिन पर दिन अत्यन्त नाज़ुक होती गई। २१ फर्वरी को उनकी स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक होगई। उपर्युक्त ६ डाक्टरो ने २१ फर्वरी को अपनी स्वास्थ्य-पत्रिका मे गाधीजी के विषय में स्पष्ट लिखा—

"गाधीजी के लिए कल का दिन बहुत बुरा था। रात में केवल ४॥घन्टे नींद उन्हे आई। दिन मे भी उनकी स्थिति खराब रही और बेहोशी की हालत बनी रही। हृदय की गति मन्द है और नाडी की गति भी धीमी है। वह बहुत ही थके हुए हैं। यहॉ तक कि पानी पीने मात्र से उन्हे बड़ी थकावट होजाती है। उन्होने सदैव की भॉति ४० औंस जल के साथ दो औंस नीबू का रस सेवन किया। १६ फरवरी तक उनका वजन १४ पोंड कम हो चुका है।

और यदि उपवास अविलम्ब समाप्त न किया गया तो उनके जीवन की रक्षा न होसकेगी।"

इस प्रकार ३-४ दिन उनकी हालत बड़ी नाजुक रही। समस्त देश मे चिन्ता व्याप्त होगई और उनकी मगल-कामनार्थ पूजास्थलो मे प्रार्थनाये और यज्ञ-हवनादि किये गये। इस बीच इॅगलैण्ड, अमरीका, चीन और फारस के सभी दलों, वर्गों एव जातियो के विद्वान् नेताओ तथा आम जनता ने ब्रिटिश सरकार तथा वाइसराय से यह अपील की कि वह महात्मा गाधी की जीवन-रक्षा के हेतु उन्हे रिहा करदे। किन्तु ससार की इस अपील का ब्रिटिश सरकार पर कोई प्रभाव नही हुआ और गाधीजी को अन्त तक रिहा नही किया गया। परन्तु सरकार ने गाधीजी के सबधियो, मित्रो तथा अन्य लोक-नेताओ को उनसे व्रत-काल मे मिलने की आज्ञा दे दी थी। इससे गाधीजी को कुछ सान्त्वना तो मिली, परन्तु वह सरकार के हृदय मे जो परिवर्तन करना चाहते थे, वह लक्ष्य तत्काल पूरा नही होसका।

अन्त मे ३ मार्च १६४३ को गाधीजी ने अपना व्रत सकुशल समाप्त । इस अवसर पर उनके पुत्र श्री देवदास गाधी, श्रीमती नायडू, डा० राय,

डा० गिल्डर, श्री अणे, श्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर (स्वर्गीय कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र) आदि उपस्थित थे। गीता आदि के श्लोको के पाठ के बाद उन्होने सन्तरे का रस पीकर व्रत को समाप्त किया।

गॉल, जनरल चार्ल्स द—अपने देश की आज़ादी के लिये लड़नेवाले फ्रान्सीसियो के साथ अपनी सेनाओ का आपने अच्छा सङ्गठन कर लिया है, और वह सेनायें अफ्रीका मे तथा अन्य रणक्षेत्रो मे लड रही हैं। सयुक्त राष्ट्रो के आप पूर्ण सहयोगी है और अमरीका तथा ब्रिटेन की मदद से अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये अग्रसर हैं। जनरल जिरौ भी आपसे पूरा सहयोग कर रहे हैं। कासाब्लांका सम्मेलन मे आप भी उपस्थित थे। उन्होने राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और मि० चर्चिल से फ्रान्स की सहायता के विषय मे चर्चा की। २७ जनवरी १६४३ को जनरल द गाल और जनरल जिरौ ने एक संयुक्त वक्तव्य मे कहा—"हम मिले और हमने वार्त्ता की है। हमने अपने लक्ष्य के विषय मे मिल कर निश्चय किया है, और वह है फ्रान्स की मुक्ति और मानव-स्वाधीनता की, शत्रु की पराजय द्वारा, पूर्ण विजय। इस उद्देश्य की पूर्ति युद्ध मे समस्त फ्रान्सीसियो के, मित्र राष्ट्रो के साथ-साथ, लडने से ही होगी।"

जमीअ्रतुल-उलमा-इ-हिन्द—भारत के इसलामी-धर्मज्ञान-विद् आचार्यो की अखिल-भारतीय सस्था। (जमीअ्रत = परिषद् : सम्मेलन। उलमा, आलिम का बहुवचन। आलिम = विद्वान्, कोविद, पण्डित, इसलाम के अनुसार धर्मशास्त्रवेत्ता, ईश्वरशास्त्रविद्)। ससार के प्रायः सभी, विशेषकर एशियाई मुसलमानी देश-प्रदेशो मे, ऐसी जमीअ्रते पुरातन काल से स्थापित हैं। भारतीय जमीअ्रत-उल-उलमा का स्थापन-काल लगभग पचास वर्ष पुराना है। विगत विश्व-युद्ध के परिणाम-स्वरूप तुर्की के अङ्ग-भङ्ग के विरोध और ख़िलाफत आन्दोलन से अद्यावधि शुद्ध इसलामी और भारतीय विकास-सम्बन्धी सभी प्रगतियों मे जमीअ्रत भारतीय राष्ट्र के साथ पूर्ण सहयोग करती रही है। इसलाम के मानव-बन्धुत्त्व, सार्वजनिक स्वातन्त्र्य, सामाजिक साम्य और एकेश्वरवाद का प्रतिपादक होने से जमीअ्रत भारतीय समाज की स्वाधीनता की स्थापना के प्रयत्नो मे अपनी सम-सामयिक राजनीतिक

संस्था, कांग्रेस, के समकक्ष रही है। ख़िलाफ़त, सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अविज्ञा, भाषण-स्वातन्त्र्य के लिये किये गये व्यक्तिगत सत्याग्रह आदि सभी आन्दोलनों में वह अग्रसर रही है। इसलाम के अनुसार स्वातन्त्र्य एक प्रकृति-प्रदत्त जन्मसिद्ध मानवीय अधिकार है, अतएव जमीअत का लक्ष्य भी भारत की पूर्ण स्वाधीनता है। पाकिस्तान के सम्बन्ध में जमीअत का अधिकारपूर्ण निश्चय है कि यह योजना इसलाम की महती और पवित्र भावनाओं के प्रति-कूल है। इसलाम मानव-समुदाय में 'पाक' और 'नापाक' की भेदसूचक पतित नीति की शिक्षा नहीं देता। वह मानव-मात्र को सर्वशक्तिमान जगन्नियन्ता (रब्बुलआलमीन) की सर्वोत्तम सृष्टि मानता है। इसीलिये जमीअत-उल-उलमा प्रस्तावित पाकिस्तान का प्रबल प्रतिरोध करती है। लीग को वह मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधिक संस्था नहीं मानती और न मि० जिन्ना को भारतीय मुसल-मानों का प्रवक्ता स्वीकार करती है। समय-समय पर सभी आन्दोलनों में जमीअत के आह्वान पर हज़ारों मुसलमानों ने देश की आज़ादी के लिये पर्याप्त मात्रा में त्याग किया है। कांग्रेस के साथ जमीअत का भी दमन हुआ है। 'अल जमीअत' नामक उर्दू दैनिक पत्र भी, इस संस्था के मुखपत्र के रूप में, प्रका-शित होता रहा है। जमीअत का मुख्य कार्यालय दिल्ली में है।

जमीअतुल-मोमिनीने-हिन्द—भारतीय मुसलमानों के अन्तर्गत मोमिन जमाअत की अखिल-भारतीय संस्था, जिसे मोमिन कान्फरेन्स भी कहा जाता है। मोमिन मुसलमान न मि० जिन्ना और न मुसलिम लीग को अपना रहनुमा मानते हैं। मोमिन लोग कपड़ा बनाने और बेचने का व्यवसाय करते हैं। पाकिस्तान की योजना को सभी दृष्टियों से यह लोग मुसलिम सम्प्रदाय के लिये विघातक समझते हैं। जमीअत-उल-मोमिनीन का सङ्गठन अखिल-भार-तीय है। मोमिनों की संख्या भारतीय मुसलमानों में चार साढ़े करोड़ है।

फ़रवरी १९४२ में जमीअत के प्रेसिडेन्ट, मौ० शेख मुहम्मद जहीरुद्दीन और वाइस-प्रेसिडेन्ट मि० अब्दुलक़य्यूम अन्सारी, ने मि० चर्चिल, मि० ऐमरी और सर स्टैफर्ड क्रिप्स को समुद्री-तार द्वारा सूचित किया था—"भारत के ४॥ करोड़ ... मुसलमानों की प्रतिनिधि-संस्था, अखिल-भारतीय मोमिन कान्फरेन्स, जिन्ना के नेतृत्व और मुसलिम लीग द्वारा समस्त भारतीय मुसलिम समु-

दाय के प्रतिनिधित्व के दावे से इनकार करती हुई भारत को तत्काल पूर्ण आज़ादी दिये जाने के दावे का समर्थन करती और केन्द्र और प्रान्तो मे बननेवाली सरकारो मे मोमिन जमाअत को पृथक् प्रतिनिधित्व दिये जाने का मतालबा करती है।" गत वर्ष कामन-सभा मे दिये गये एक उत्तर मे मि० ऐमरी द्वारा मोमिनों की संख्या चालीस लाख बताये जाने के अवसर पर भी इस संस्था ने संख्या-सूचक ठीक आँकड़ो के सम्बन्ध मे तार देकर भारत-मन्त्री के बयान का प्रतिवाद किया था।

२६ अप्रैल १९४३ को—जिस दिन दिल्ली मे मुसलिम लीग का सालाना जलसा ख़त्म हुआ और उसकी बैठक मे, सदैव की भाँति, 'पाकिस्तान' के मतालबे का प्रस्ताव पास हुआ—दिल्ली मे अ०-भा० मोमिन कान्फ्ररेन्स का आठवाँ जलसा शुरू हुआ। कान्फ्ररेन्स के अध्यक्ष मौलवी शेख मुहम्मद ज़हीरुद्दीन ने अपने भाषण मे मुसलिम लीग के, समस्त भारतीय मुसलमानो की प्रतिनिधि-संस्था होने के, दावे का ज़ोरदार खण्डन करते हुए इस दावे को असत्य, आपत्तिजनक और भ्रमात्मक बताया। मोमिन कान्फरेन्स के जलसे मे १५०० प्रतिनिधि, ८०० अन्सार रज़ाकार (स्वयं-सेवक) और १५००० दर्शक उपस्थित थे। कान्फरेन्स ने, दूसरे दिन, इस सम्बन्ध में, नियमित प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमे कहा गया कि विधान-सम्बन्धी अथवा राजनीतिक ऐसा कोई समझौता मोमिनो को स्वीकार न होगा जिस पर ४॥ करोड मोमिन मुसलमानों की प्रतिनिधि-सस्था जमीअतुल मोमिनीन की सहमति प्राप्त न कर ली गई हो। वक्ताओ ने, इस प्रस्ताव पर भाषण देते हुए, कहा कि 'लीग हमारी नही, अमीर तबक़े के थोडे-से मुसलमानो की एक जमाअत है, जिसे मुसलिम जनता के स्वार्थों की रक्षा की अपेक्षा अपनी लीडरी की ज़्यादा फ़िक्र है। भारत अखण्ड है, इसके टुकडे करना घोर अनर्थ का सूचक होगा। यदि ऐसी किसी योजना को अमल मे लाया गया तो मोमिन और आज़ाद मुसलिम इसका हर तरह से विरोध करेंगे।' जमीअत का सदर दफ्तर दिल्ली मे है।

जयकर, महामाननीय डा० मुकुन्द रामराव; एम० ए०; एलएल० डी०; पी० सी०; बार-एट-ला—प्रसिद्ध राष्ट्रवादी अग्रणी; १९१६ से सार्वजनिक जीवन में हैं; १९२३ मे बंबई प्रान्तीय धारासभा के सदस्य और धारा-

सभा में स्वराज्य पार्टी और विरोधी दल के नेता चुने गए। १६२५ में स्वराज्य-दल से त्यागपत्र दे दिया। १६२६ में बम्बई नगर की ओर से असेम्बली के सदस्य चुने गये और वहाँ १६२७ से '३० तक नेशनलिस्ट पार्टी के उपनेता रहे। गोलमेज़ परिषद् में प्रतिनिधि बनकर गये। सब-योजना समिति के सदस्य थे। श्वेत-पत्र के सबध में सयुक्त पार्लमेंटरी समिति से सहयोग किया : समिति के समक्ष गवाही दी। सन् १६३१ में सर तेजबहादुर सप्रू के सहयोग से कांग्रेस तथा भारत सरकार में समझौता कराया। अक्टूबर १६३७ में भारतके सघीय-न्यायालय के न्यायाधीश और जनवरी १६३६ में प्रिवी-कौंसिल की न्याय-समिति के न्यायाधीश नियुक्त किये गये। फरवरी १६४३ में महात्मा गांधी के २१ दिन के व्रत के अवसर पर देश में जो सकट पैदा होगया था, उसके निवारण के लिए १६ और २० फरवरी को देहली में सर्वदल-सम्मेलन हुआ, जिसमें भारत के सभी दलों के ३०० नेता उपस्थित थे। इसमें डा० जयकर ने गाधीजी की बिना शर्त रिहाई के लिए प्रस्ताव रखा, जिसे सम्मेलन ने स्वीकार किया। १० मार्च को बबई में नेता-सम्मेलन का फिर अधिवेशन हुआ, जिसमें निश्चय किया गया कि ५ सदस्यों का एक सभ्य-मण्डल वायसराय से मिलेगा। इनमें डा० जयकर भी एक सदस्य थे।

जयप्रकाश नारायण—१६ अक्टूबर १६४१ को, भारत सरकार के होम-डिपार्टमेंट द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति के अनुसार, कुछ काग़ज़ात श्री जयप्रकाश नारायण से उस समय बरामद किये गये जबकि वह उन्हें देवली जेल में, भेंट के समय, अपनी पत्नी श्रीमती प्रभावती को देरहे थे। इन काग़जात में, विज्ञप्ति में बतलाया गया था कि, श्री जयप्रकाश नारायण ने कांग्रेस-समाजवादी-दल की एक गुप्त-समिति बनाने के लिये लिखा, और यह कि यह गुप्त-समिति ग़ैरक़ानूनी कार्य करे तथा 'पुराने तरीक़े' से धन इकट्ठा करे। नवम्बर १६४२ में श्री जयप्रकाश नारायण, अपने चार साथियों सहित, हज़ारीबाग़ सेण्ट्रल जेल से फरार होगये, जहाँ देवली कैम्प-जेल से उन्हें तबदील किया गया था। जयप्रकाशजी की गिरफ़्तारी के लिये ५०००) के पुरस्कार की ` । बिहार-सरकार ने की, और मार्च १६४३ के प्रथम सप्ताह में इनाम ० रक़म बढ़ाकर १०,०००) करदी गई।

ट्यूनिस—उत्तरी अफरीका में फ्रान्स के 'सरक्षण' मे एक देश, जिसका अरबी नाम अफरीक़िया है; क्षेत्र० ४८,००० वर्ग; जन० २६ लाख, जिसमे १,०८,००० फ़रान्सीसी, ६४,००० अतालवी (इटालियन), और ७,००० माल्टावासी हैं; किन्तु इटली का दावा है कि 'अफरीक़िया' मे १,१५,००० अतालवी और केवल ६०,००० फरान्सीसी हैं । ट्यूनिस की आबादी मे २३,६०,००० अरबी-भाषा-भाषी मुसलमान हैं । नाममात्र के लिये सिद्दीक़ अहमद बे (जिसका जन्म १८६२ मे हुआ) यहॉ का शासक है, किन्तु वस्तुतः शासन-सूत्र फरान्सीसी रेज़िडेन्ट-जनरल के हाथ में है । गवर्नमेंट के ग्यारह सदस्यो मे आठ फरान्सीसी हैं । रेज़िडेन्ट-जनरल फरान्सीसी वैदेशिक मन्त्री के प्रति उत्तरदायी है । फरान्सीसी साम्राज्यवादियो की सेना ट्यूनिस में स्थायी रूप से रहती रही है । ट्यूनिशिया बडा उपजाऊ देश है, विशेषतः खनिज पदार्थ वहॉ बहुतायत से निकलते हैं ।

अपने देश-वासियो की आबादी के अनुपात के आधार पर इटली ट्यूनिशिया का दावीदार रहा है । १६वी शताब्दि के मध्यकाल से अतालवी वहॉ जाकर बसने शुरू हुए । सिसिली और दक्षिण इटली से विशेषकर अतालवी यहूदी अधिक सख्या मे वहॉ जाकर पहले बसे । इटली ट्यूनिशिया पर क़ब्ज़ा करने ही वाला था कि, १८८१ मे, फरान्सीसियो ने ट्यूनिशिया को अधिकृत करके उसे अपना 'संरक्षित' देश बना लिया । ट्यूनिशिया मे अतालवी एक प्रवासी की भॉति रहते हैं, किन्तु वहॉ उन्होने सांस्कृतिक आधिपत्य क़ायम कर लिया है : उनके अपने मदरसे हैं और फासिस्त संगठन भी ।

ट्यूनिशिया की अरब जनता मे प्रबल राष्ट्रीय भावना जाग्रत है, और अखिल-अरबवाद की भावना भी । अरबो मे 'पुरातन', नई दस्तूर और तीसरी हबीब बरग़ीबा की, पार्टियॉ हैं ।

वर्तमान महायुद्ध मे ट्यूनिशिया पिछले दो वर्षों से युद्ध-क्षेत्र बना हुआ था । मई १६४३ मे संयुक्त राष्ट्रो की वहॉ भारी विजय हुई और उन्होने—अमरीक़ियो, बरतानियों और आजाद फरान्सीसियो—ने जर्मनो और अतालवियों को वहॉ से निकाल भगाया । ट्यूनिशिया की इस विजय से लडाई की दिशा मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है ।

नाक्स, कर्नल विलियम फ़्रैंकलिन—सयुक्त-राज्य अमरीका के नौसेना-विभाग का मन्त्री ; १ जनवरी १८७४ को पैदा हुआ; मिशीगन विश्वविद्यालय मे पढ़ा ; १८९८ मे क्यूबा-युद्ध मे लड़ा ; पत्रकार बना और १९०० तक 'ग्रान्ड रेपिड्स' तथा 'हैरल्ड' में सवाददाता, नगर-स्तम्भ का सम्पादक और पत्र का व्यवस्थापक रहा, १९०१-३१ तक उसने अमरीका मे कई प्रान्तीय पत्र प्रकाशित किये और हर्स्ट के समाचार-पत्रो का मुख्य व्यवस्थापक रहा। उपरान्त 'शिकागो डेली न्यूज' मे हिस्सेदार बना। गत युद्ध मे फ्रांस के मैदान पर वह एक अमरीकी तोपख़ाना-रजमट का कमान्डर रहा। १९३६ में कर्नल नाक्स को रिपब्लिकन दल ने उप-राष्ट्रपति-पद के लिये मनोनीत किया। अपने दल की एकान्तता-नीति के विरुद्ध कर्नल नाक्स ने, इस युद्ध के आरम्भ से ही, अमरीका द्वारा ब्रिटेन को सहायता दिये जाने की नीति का समर्थन किया है। जून १९४० मे राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने उसे अपने शासन-तन्त्र मे शामिल किया।

फज्लुलहक, मि० अबुलकासिम—२९ मार्च १९४३ को मि० हक़ बगाल के प्रधान-मन्त्री नहीं रहे। इस सम्बन्ध मे प्रकाशित हुई सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार मि० हक़ ने "बगाल मन्त्रि-मण्डल को अधिक व्यापक और स्थायी आधार पर लाने की सम्भावना की खोज मे सहायक होने के अभिप्राय से" त्यागपत्र देदिया, जिसे गवर्नर ने मज़ूर कर लिया। और मि० हक़ के उत्तर के अनुसार—जो उन्होने बगाल-असेम्बली मे काग्रेस-दल के नेता द्वारा पूछे गये प्रश्न के सम्बन्ध मे दिया—"उन्हें २८ मार्च की शाम को गवर्नर ने बुला भेजा था। डेढ घण्टे तक बगाल मे राष्ट्रीय सरकार बनाने के विषय मे बातचीत हुई। कई प्रस्ताव मि० हक़ के समक्ष रखे गये, जिनमे से कई को स्वीकार करने से असहमति प्रकट करने पर मि० हक़ से कहा गया कि वे नियमानुसार अपने पद से त्यागपत्र दे दे। उन्होने अपने सहयोगियों और कृषक-प्रजादल से पूछे बिना, जिसके वह अगुआ हैं, ऐसा करने मे ५ ˆ असमर्थता प्रकट की। गवर्नर इस पर सहमत नही हुए और उन्हे अपने पर हस्ताक्षर करने को राजी कर लिया गया।" एक अन्य सदस्य के पर आपने उत्तर में कहा कि, "यह सत्य है कि मेरा त्यागपत्र गवर्नमेंट

हाउस मे टाइप कराके तय्यार रखा गया था।" मि० हक़ के मन्त्रिमण्डल के पॉच सदस्यो ने भी एक वक्तव्य मे कहा कि वे गवर्नर द्वारा मॉगे गये अपने इस्तीफो और सर नाज़िमुद्दीन को सहयोग देने के अनुरोध का विरोध करते हैं। अस्तु; बंगाल मुसलिम लीग-दल के प्रधान ख़्वाजा सर नज़ीमुद्दीन ने नया मन्त्रि-मण्डल बनाने का भार अपने ऊपर लिया, और १ अप्रैल '४३ से बंगाल मे १६३५ के भारतीय शासन-विधान की धारा ६३ के अनुसार गवर्नर का शासन रहने के बाद, २४ अप्रैल '४३ को बगाल मे नया मन्त्रि-मण्डल बन गया। नये मन्त्रिमण्डल मे सात मुसलमान (सातो लीगी), तीन सवर्ण हिन्दू और तीन परिगणित जातियो के सदस्य हैं। मि० अबुलक़ासिम फ़ज़लुलहक़ के मन्त्रि-मण्डल मे पॉच मुसलमान (स्वतन्त्र), तीन सवर्ण हिन्दू और एक परिगणित जाति का हिन्दू सदस्य था। सर नाज़िमुद्दीन के मन्त्रि-मण्डल ने घोषणा की है कि वह अ०-भा० मुसलिम लीग की कार्यकारिणी के आदेशानुसार कार्य करेगा।

फ़्यूरर—जर्मन-भाषा मे नेता का पर्याय। हिटलर को पदवी।

भारत-रक्षा-कानून—२२ अप्रैल १६४३ को भारत के सर्वोच्च न्यायालय, फेडरल कोर्ट, ने बम्बई हाईकोर्ट के फैसले की एक अपील को मज़र करते हुए—जो भारत-रक्षा-नियमावली के नियम २६ के अनुसार नजरबन्द, केशव तलपदे, की ओर से दाख़िल की गई थी—अपना निर्णय दिया, जिसमे प्रधान न्यायाधीश सर मारिस ग्वायर ने लिखा कि नियम २६, अपने वर्तमान रूप मे, क़ानून की दृष्टि से शहनशाह के किसी प्रजाजन को बिना मुक़दमा चलाये नज़रबन्द कर देने का उतना व्यापक और पूर्ण अधिकार अधिकारियो को नहीं देता, जितना कि उसे प्रयोग मे लाया जा रहा है। इस फैसले के दिन ही सरकारी क्षेत्रो की सूचना से विदित हुआ कि सरकारी क़ानूनदॉ नियम २६ की क़ानूनी त्रुटियों और अपूर्णताओ पर विचार कर रहे हैं और इस सम्बन्ध मे शीघ्र ही सूचना प्रकाशित कीजायगी, और कामन सभा मे मि० एमेरी ने भी ऐसा ही कहा। २८ अप्रैल को भारत-सरकार ने आर्डिनेन्स निकालकर उक्त क़ानून की त्रुटियो की पूर्ति करदी, जिनकी रू से, फेडरल कोर्ट के उक्त निर्णय के अनुसार, नज़रबन्दो को तत्काल अथवा बाद के ६ दिनो के बीच रिहा किये जाने का प्रश्न भी नहीं उठ सकता। इसी नियम

के अनुसार महात्मा गान्धी और काग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्यो सहित, भारत मे इस समय अनुमानत.—क्योकि प्रमाणित सख्या प्रकाशित नहीं हुई है—आठ से दस हजार तक व्यक्ति, बिना मुकदमा चलाये, जेलो मे बन्द हैं। यह नियम सितम्बर १६३६ से भारत मे लागू है।

भारतीय साम्यवादी दल—भारत मे साम्यवादी दल लगभग १५ वष से स्थापित है, किन्तु जुलाई १६४२ से पूर्व वह गैर-क़ानूनी सस्था के रूप मे था। जून '४२ मे साम्यवादियो के प्रमुख नेताओं ने सरकार के युद्ध-प्रयत्नों मे सर्व प्रकार से सहयोग देने की घोषणा की। भारत-सरकार ने इस दल पर से प्रतिबन्ध हटा लिया और देवली आदि जेलों में नजरबन्द प्राय. सभी कम्युनिस्ट रिहा कर दिये गये। रूस पर नात्सी-आक्रमण होने के बाद से, ससार के अन्य साम्यवादियो की भॉति, भारतीय कम्युनिस्ट भी वर्त्तमान युद्ध को जनता का युद्ध कहने लगे हैं।

इस दल ने दो तीन मास की अवधि मे ५,४४,२५८) चन्दे आदि द्वारा सग्रह कर अपना कार्य सुचारु रूप से शुरू कर दिया है। दल की ओर से ॲगरेजी में 'पीपल्स वार' ('Peoples War') नामक एक साप्ताहिक विचार-पत्र, अगस्त १६४२ से, बम्बई से प्रकाशित होने लगा है, जिसके हिन्दी, गुजराती, उर्दू, मराठी सस्करण भी 'लोक-युद्ध' और 'क़ौमी जंग' नाम से प्रकाशित होते हैं। इस समय इस पत्र की नीति सरकार के युद्ध-प्रयत्नों में सहयोग के साथ-साथ भारत मे शीघ्रतम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना है। पत्र सरकारी दमन-नीति का निन्दक है, और भारत की रक्षा के लिये राष्ट्रीय-एकता पर ज़ोर देता तथा काग्रेस के नेताओं की रिहाई और काग्रेस तथा मुसलिम लीग मे समझौते के लिए प्रचार और आन्दोलन करता है।

दल का प्रधान कार्यालय बम्बई मे है। श्री पूर्णचन्द्र जोशी दल के प्रधान मन्त्री और पत्र के सम्पादक हैं। भारतीय साम्यवादी दल के नेताओं मे सर्व-कामरेड नायर, शौकत उसमानी, डी० एस० वैद्य, जे० बुख़ारी, के० राजेश्वर राव, एस० जी० पाटकर, दिनकर मेहता, अयोध्याप्रसाद, सोहनसिह जोश, मुखोपाध्याय, एस० जी० सरदेसाई, अरुण बोस, वी० भागवत, सोम-लाहिड़ी, गंगाधर अधिकारी, डा० अशरफ़, हसन जहीर, राहुल सांस्कृ-

त्यायन, अशोक मेहता, आर० डी० भारद्वाज आदि प्रमुख हैं।

मजलिसे-अहरारुल-इसलाम—भारत के आज़ादी-पसन्द मुसलमानो की संस्था, (अहरार=स्वाधीनता का सिपाही)। इसलाम मानवीय स्वाधीनता का प्रबल प्रचारक और पोषक है। यह संस्था भारतीय मुसलमानो मे इसी विचारधारा के पोषण के लिये स्थापित हुई। इसकी प्रथम स्थापना पजाब में हुई, जिसका प्रभाव और सगठन भारत-व्यापी है। अहरारी मुसलमान भारतीय मुसलिम लीग को अपनी प्रतिनिधिक सस्था और मि० जिन्ना को भारतीय मुसलिमो का अगुआ स्वीकार नही करते। 'पाकिस्तान' की वर्तमान योजना के भी वह प्रतिकूल हैं। 'पाकिस्तान' से पूर्व वह हिन्दुस्तान की आज़ादी पर ज़ोर देते हैं। सन् १९३५-४० के बीच इस संस्था के अनुयायी हज़ारो मुसलमान-कार्यकर्त्ता देश-सेवा मे अग्रसर रहे हैं। 'अहरार' नामक उर्दू दैनिक पत्र भी इस संस्था के सदर मुक़ाम दिल्ली से प्रकाशित होता रहा है।

माल्टा द्वीप—यह भूमध्यसागर मे, इटली के निकट, दक्षिण मे एक द्वीप है जो ब्रिटेन के अधिकार मे है। इसके उत्तर मे सिसिली ६० मील की दूरी पर और दक्षिण मे २१० मील की दूरी पर त्रिपोली है। माल्टा पर युद्ध के आरम्भ से ही बराबर हवाई हमले होते रहे हैं। अबतक १२०० से भी अधिक बार माल्टा पर शत्रु-विमानो ने हमले किए हैं। माल्टा में ब्रिटिश-सेना का सुदृढ़ नौ-सेना का अड्डा है। साथ ही बरतानिया के हवाई अड्डो का ऐसा सुव्यवस्थित जाल माल्टा की भूमि पर बिछा हुआ है, जहाँ प्रतिक्षण वायुयान शत्रु-यानों का सामना करने को तय्यार रहते हैं। अब तक १००० से अधिक शत्रु-यान यहाँ गिराये जाचुके हैं। यही कारण है कि शहर की बरबादी के सिवा माल्टा पर शत्रु को तत्त्वपूर्ण सफलता नहीं मिली है। माल्टा द्वीप १७॥ मील लम्बा और १२ मील चौड़ा है। बरतानवी साम्राज्य के सरक्षण की दृष्टि से भूमध्य-सागर मे माल्टा महत्त्वपूर्ण सामरिक मोर्चा है।

मुसलिम कान्फरेन्स—सन् १९२८-३० मे मुसमिम लीग मे दो दल होने पर मियाँ सर मुहम्मद शफ़ी मरहूम आदि ने पजाब मे अपनी लीग अलग क़ायम की। लीग की दूसरी शाखा अन्य मुसलिम नेताओ के हाथ में थी, जिसमें मि० जिन्ना का नगण्य स्थान था। लीग में इस प्रकार विग्रह पड़ जाने

पर स्वतन्त्र-चेता मुसलिमों ने अपनी अलग संस्था बनाई, जिसका नाम मुसलिम कान्फरेन्स पड़ा। मुसलिम कान्फरेन्स मुसलिम लीग के उद्देशों के प्रतिकूल विचार रखनेवाले मुसलमानों की संस्था थी। अब यह संस्था अस्तित्त्वहीन होगई है।

मैडागास्कर—हिन्द महासागर में, अफ्रीका के पूर्वीय भाग पर स्थित, एक द्वीप; क्षेत्र० २,४२,००० वर्गा०, जन० ३८ लाख, जिसमें ३०,०००योरपीय, शेष अरब, चीना और हिन्दू हैं। यहाँ के आदिम-वासियों में होवा जाति प्रधान है। सन् १८८५ तक इस जाति के लोगों का ही इस द्वीप पर शासनाधिकार था, किन्तु १९वीं शताब्दि का अन्त होने तक साम्राज्यवादी फ्रान्सीसियों ने इसे हथिया लिया। तब से यह द्वीप फ्रान्स का एक उपनिवेश है। सन् १९४० में फ्रान्स का पतन होने पर धुरी राष्ट्र मैडागास्कर में गुप्त रूप से अस्त्र-शस्त्र भेजने लगे और वहाँ के मूल-निवासियों को सैनिक-शिक्षा दी जाने लगी। जापान ने भी अपने विशेषज्ञ वहाँ भेज दिये। इस द्वीप में तीन विशाल हवाई अड्डे और उत्तम जहाजी बन्दरगाह हैं। मैडागास्कर से भारत ३५०० मील की दूरी पर है। यदि इस पर धुरी राष्ट्रों का अधिकार होजाता, तो अतलातिक महासागर से होकर अमरीकी तथा अँगरेज़ी जलयानों का मार्ग ही रुक जाता। अतः सितम्बर १९४२ में मित्रराष्ट्रों ने इस द्वीप पर अपना अधिकार जमा लिया।

राधाकृष्णन्, सर सर्वपल्ली—एम० ए०; डी० लिट्, एलएल० डी०; जन्म ५ सितम्बर सन् १८८८, मदरास के क्रिस्चियन कालिज में शिक्षा पाई; मैसूर विश्वविद्यालय और प्रेसिडेन्सी कालिज मदरास में फिलासफी के प्रोफेसर रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र (पिलासफी) के अध्यापक थे। मैंचेस्टर कालिज (आक्सफर्ड) में तुलनात्मक धर्म के अध्यापक और आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में, १९३६ में, पूर्व-देशीय धर्मों और नीतिशास्त्र के अध्यापक थे। १९३१ में 'सर' की उपाधि से विभूषित किये गये। सन् १९३१-३९ तक 'बौद्धिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग समिति' के सदस्य रहे। हिन्दू विश्वविद्यालय में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अध्यापक ये और अब, १९३९ से, इसी व[illegible]लय के वाइस-चान्सलर हैं। ब्रिटेनिका विश्वकोश में भारतीय दर्शन लिखा है। दर्शन, धर्म, और नीतिशास्त्र पर आपने अनेक ग्रन्थ अँगरेजी

मे लिखे हैं, जिनका समस्त ससार मे मान हुआ है। भारत की आप एक विभूति हैं।

वाइसराय की कार्यकारिणी—१७फरवरी१९४३ को सर्वश्री अणे,सरकार और सर हुरमसजी मोदी के त्यागपत्र देदेने के कारण वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद् मे रिक्त हुए स्थानो की पूर्ति के सबध मे हुई रद्दोबदल के विषय मे २ मई '४३ को भारत-सरकार की ओर से अग्रलिखित सूचना प्रकाशित हुई :—रसद-सदस्य—दीवान बहादुर सर ए० रामस्वामी मुदालियर, जो इस समय बरतानी-युद्ध-मन्त्रिमण्डल मे भारतीय प्रतिनिधि हैं। व्यापार-सदस्य—सर अज़ीज़ुल हक़, जो इस समय लन्दन मे भारतीय हाई कमिश्नर हैं। सूचना और प्रचार-विभाग के सदस्य—सर सुलतान अहमद, जो इस समय भारत-सरकार के क़ानून सदस्य हैं। क़ानून-सदस्य—सर अशोक कुमार राय, ऐडवोकेट-जनरल बगाल, (सर सुलतान अहमद के उत्तराधिकारी)। प्रवासी-भारतीय-विभाग-सदस्य—डा० एन० बी० खरे, जिन्हे १९३७ मे मध्यप्रान्तीय कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल मे प्रधान-मन्त्री नियुक्त किया गया था, किन्तु १९३८ मे, अनुशासन-भङ्ग करने के दोष मे, जिन्हे इस दायित्वपूर्ण पद से पृथक् कर दिया गया था। गवर्नर-जनरल ने दीवान बहादुर सर एस० ई० रङ्गनाथन, एम० ए०, एल० टी०, आई० ई० एस० को, जो इस समय भारत-मन्त्री के सलाहकार हैं, सर अज़ीज़ुल हक़ के स्थान पर, लन्दन मे भारतीय हाई कमिश्नर नियुक्त किया है। सूचना मे बताया गया है कि सर ए० रामस्वामी के उत्तराधिकारी की नियुक्ति का प्रश्न शीघ्र ही नहीं उठता, क्योंकि वह डेढ़ महीने के भीतर भारत आरहे हैं। सर एस० ई० रङ्गनाथन के उत्तराधिकारी की नियुक्ति की घोषणा भी बाद में होने वाली थी। आसाम और उड़ीसा प्रान्तों मे, नवम्बर '३९ के बाद मन्त्रिमण्डल स्थापित होचुके हैं, और सम्प्रति केवल ६ प्रान्तों मे गवर्नर, अपने सलाहकारों के सहयोग से, शासन कर रहे हैं। (देखिये वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद्)

विलियम फ़िलिप्स—"आधुनिक भारत के सम्बन्ध मे अधिक-से-अधिक अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करने मे लगा आ रहा हूँ, क्योंकि भावी भारत की, [illegible] समस्याओं के सम्बन्ध में, आवश्यक रूप से अपना भाग अदा करना है, [illegible] निर्णयों [illegible] मे वाशिंगटन मे पेश करूँगा।"

यह शब्द हैं प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्ट के निजी प्रतिनिधि, मि० विलियम फ़िलिप्स के, जो उन्होने, ८ जनवरी '४३ को, नई दिल्ली पहुँचने पर अख़बार-नवीसो की एक कान्फरेन्स में कहे। प्रश्नोत्तर मे आपने और कहा—"मेरा काम भारत (भारतीय स्थिति) का यथाशक्य समझने और अपनी रिपोर्ट प्रेसिडेन्ट के सामने पेश कर देना है।" "मै पहले यहाँ कभी नहीं आया, किन्तु ४० वर्षों से अमरीकी राज्य-शासन से सम्बन्धित रहने के कारण भारत और भारतीयो के विषय मे मेरी विशेष रुचि उत्पन्न हुई है।" "अमरीकियो और भारतीयो को परस्पर बहुत कुछ सीखना है।"

देश के अनेक भागो मे आप गये हैं, और आपने यहाँ बहुत से दलों के अगुआओ से भेट की है। २५ अप्रैल '४३ को एक विदाई-समारोह मे, प्रश्नोत्तर के समय पत्र-सवाद-दाताओ से बातचीत करते हुए आपने बतलाया—"श्री गाधी से मै मिलना और बातचीत करना चाहता था। मैंने इस सम्बन्ध में अधिकारियो से अनुमति के लिये निवेदन किया, किन्तु उन्होंने मुझे सूचना दी कि वह मुझे इस विषय की आवश्यक सुविधायें देने मे असमर्थ हैं।" आपके वक्तव्य के अन्य भाग से स्पष्ट है कि आपका भारत में अमरीकी फौजी मामलात से कोई सम्बन्ध नहीं है। विदेशो मे आप वर्षों अमरीकी राजदूत रहे हैं।

शिया कान्फ़्रेंस—जिसका पूरा नाम आल-इडिया शिया सोशल कान्फरेंस है। समस्त सन्सार के मुसलमानो मे सुन्नी और शिया दो बड़े फिरक़े हैं। धार्मिक-विश्वास-सम्बन्धी मतैक्य इस भेद का कारण है, और यह मतभेद इसलाम के प्रादुर्भाव-काल से ही चला आ रहा है। धार्मिक-विश्वास-गत इस मतभेद का प्रभाव समुदाय की सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक आदि स्थितियों पर भी पड़े बिना नहीं रहता। योरप मे ईसाइयो के प्रोटेस्टेन्ट और कैथलिक फिरको मे सैकड़ों वर्ष तक विकट कटुता रही, यहाँतक कि इसी कारण शान्ति, सहिष्णुता और प्रेम के अवतार महात्मा ईसा के अनुयायी, इन दो समुदायो मे रक्तपात और युद्ध तक हुए। इसलाम और उसके महान् पैग़म्बर के अनुयायियो का यह मतैक्य भी सदियो पुराना है, और तुर्किस्तान ो छोडकर अन्य इसलामी देशों मे किसी-न-किसी रूप मे पाया जाता है। में भी कमाल अता तुर्क के युग मे इस मतभेद का उन्मूलन हुआ है।

दुर्भाग्यवशात् भारत ऐसे मतभेदों का केन्द्र रहा है, और उसकी दासता और परवशता से लाभ उठाने वाली शक्तियो ने इस मतभेद की जड़ो मे और भी निरन्तर पानी देकर इसे सरसब्ज़ किया है। शियो को शिकायत है कि सुन्नियो ने उनपर बहुत अत्याचार किये हैं—इसी कारण ईरान से भागकर वह भारत आये—किन्तु यहाँ भी भारत के सुन्नी मुसलमानो द्वारा उन्हें सामाजिक प्रतारण का प्रहार सहन करना पड़ रहा है। सामाजिक प्रगति के किसी भी आयोजन में सुन्नी और शिया मिलकर आजतक नही बैठ सके। इसी कारण आल-इडिया मुसलिम लीग की स्थापना के दूसरे वर्ष, १६०७ मे, भारत के शिया मुसलमानो ने इस सस्था की स्थापना की। आरम्भ मे यह सस्था शुद्ध सामाजिक क्षेत्र मे सेवा करती रही, किन्तु परिवर्तित युग के प्रभाव ने शियो को भी प्रभावित किया, और पीछे इसके नियमोद्देश मे नरम राजनीति को स्थान दिया गया। मुसलिम लीग से बिलकुल प्रथक् शिया कान्फ़रेन्स, सम्प्रदाय के हित के लिये, तब से कार्य-क्षेत्र मे है। आल-इंडिया मुसलिम लीग से इसका कोई सरोकार न पहले था, न अब है, और न शिया मुसलमानो की यह सस्था लीग को अपनी नुमाइन्दा जमाअत और मि० जिन्ना को अपना क़ाइद (नेता) मानती है। राजा नवाबअली साहब मरहूम शिया कान्फ़रेंस के वर्षों क़ाइद रहे हैं। कान्फ़रेंस का सदर दफ़्तर रायबरेली (अवध) मे और उसकी शाखा लखनऊ मे है, जहाँ से 'सरफ़राज़' नामक, शिया कान्फरेंस का उर्दू-दैनिक मुखपत्र, पिछले १६ वर्षों से प्रकाशित होरहा है।

शिया पोलिटिकल कान्फ़रेन्स—जिसका पूरा नाम आल-इडिया शिया पोलिटिकल कान्फरेन्स है। आल-इंडिया शिया सोशल कान्फ्ररेन्स के उद्देशो मे राजनीतिक-कार्यक्रम को सम्मिलित किये जाने से सरकारी मुलाज़िम जब उससे पृथक् रहने लगे, तब शिया फ़िरक़े की अलग राजनीतिक संस्था स्थापित करने का विचार शिया कान्फरेन्स ने स्थिर किया, किन्तु १६२६ से पूर्व वह अपने इस निश्चय को कार्यान्वित न कर सकी। सरकारी कर्मचारियो की पृथक्ता ही इस राजनीतिक सस्था की स्थापना का मुख्य कारण नहीं थी। जैसा कि अखिल-भारतीय शिया राजनीतिक सम्मेलन के इतिहास ने प्रकट है, शिया मुसलमान पृथक् निर्वाचन-प्रणाली के विपाक्त परिणाम को भोग चुके थे।

इस साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली द्वारा उनके धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक अधिकारों का सरक्षण बिलकुल नहीं होरहा था, फलतः शिक्षित शियों मे अपना अलग राजनीतिक-मंच स्थापित करने की इच्छा बलवती हुई, और १६२६ में, इस संस्था की प्रयाग मे स्थापना हुई, और इसका पहला अधिवेशन अप्रैल १६३० मे हुआ। सबसे पहले राजनीतिक रूप मे शियों ने, साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली का प्रबल प्रतिरोध करते हुए, सम्मिलित निर्वाचन-प्रणाली की स्थापना का मतालबा किया। मुश्तरका इन्तखाब की अपनी मौलिक मॉग के साथ शिया पोलिटिकल कान्फ्रेन्स देश के राजनीतिक विकास में प्रतिगामी सस्था कभी नहीं रही है। साइमन रिपोर्ट को अस्वीकार करते हुए गोलमेज़ कान्फरेन्स मे भारतीय शिया-सम्प्रदाय के स्वतन्त्र प्रतिनिधि लिये जाने का मतालबा आ०-इ० शिया पोलिटिकल कान्फरेन्स ने किया, किन्तु सरकार ने उनकी यह मॉग अस्वीकार करदी। इस पर शि० पो० कान्फरेन्स ने सरकार की तीव्र आलोचना की। सन् १६३२ मे साम्प्रदायिक निर्णय का भी कान्फरेन्स ने विरोध किया और अपने प्रस्ताव मे कहा कि निर्वाचन-प्रणाली का आधार साम्प्रदायिक न रहे और उसमे बालिग मताधिकार को स्थान देकर उसका पूर्ण विकास किया जाय। साम्प्रदायिक-निर्णय की तीव्र आलोचना करते हुए कान्फरेन्स ने कहा कि इसके द्वारा तो देश में और भी अनेक सम्प्रदायो और दलों का जन्म होगा। मृतप्राय मुसलिम लीग को पुनर्जीवित करने का प्रयास इसी युग मे प्रारम्भ हुआ, और १६३३ मे बहुसख्यक मुसलिम सम्प्रदाय ने सर्वदल मुसलिम सम्मेलन का आयोजन करते समय शिया पोलिटिकल कान्फरेन्स को निमन्त्रित नही किया, तो उसने इस सम्मेलन के प्रति, १२ नवम्बर १६३३ को, असहयोग का प्रस्ताव पास किया, फलतः कान्फरेन्स का कोई सदस्य इस सम्मेलन मे सम्मिलित नही हुआ। १४ जुलाई १६३४ को अ०-भा० शि० पो० कान्फरेन्स ने 'मुसलिम यूनिटी बोर्ड' से समझौता किया और चुनाव मे पूर्ण सहयोग देते हुए मौ० शौकत-अली मरहूम और मि० अज़हरअली की मदद उस अवसर पर की जब कि दूसरी ओर सर सय्यद वज़ीर हसन जैसे प्रमुख शिया सज्जन मुकाबले मे उमीदवार थे।

'यूनिटी बोर्ड' ने, इस सहयोग के बदले मे वचन दिया था कि केन्द्रिय

और प्रान्तीय धारा-सभाओ मे शियो के लिये जगहे मुक़र्रर दी जायँगी, किन्तु बाद मे बोर्ड अपने वादे से फिर गया। फलतः कान्फ़रेन्स ने मुसलिम पार्लमेंटरी बोर्ड से असहयोग कर दिया। व्यक्तिगत रूप से भी कोई शिया उसका मेम्बर नही रहा। कान्फरेन्स ने १६३५ के भारतीय शासन-विधान का विरोध करते हुए विधान-निर्मात्री परिषद् द्वारा देश का शासन-विधान बनाये जाने का प्रस्ताव स्वीकार किया। १६३७ मे कान्फरेन्स ने शियो को बिना किसी शर्त के कांग्रेस मे सम्मिलित होजाने का आदेश दिया, किन्तु १६३६ के आरम्भ मे मदहे-सहाबा और तबर्रा के झगडे मे सयुक्त-प्रान्तीय काग्रेसी सरकार द्वारा सुन्नियो को लखनऊ मे मदहे-सहाबा पढ़ने की आज्ञा देदेने के कारण कान्फरेन्स काग्रेस से असन्तुष्ट रही। इस अवसर पर मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने दोनो फिरक़ो मे समझौता कराने का प्रयत्न किया। उनके प्रयत्न को सफलता प्राप्त होनेवाली थी, किन्तु इसी बीच काग्रेसी-मन्त्रिमण्डल मुस्तैफ़ी होगये और यह झगड़ा वैसा ही रह गया।

आल-इडिया शिया पोलिटिकल कान्फ़्रेन्स आल-इडिया मुसलिम लीग को समस्त भारतीय मुसलिम-समाज की प्रतिनिधि-संस्था नहीं मानती। इस विषय मे कान्फ़्रेन्स की केन्द्रिय कार्यकारिणी अपने २६ अक्टूबर १६३६ के प्रस्ताव द्वारा स्पष्ट घोषणा कर चुकी है। उसे शिकायत है कि लीग यद्यपि मुसलिम अल्पमतो के सरत्तण का दावा करती है, किन्तु उसने शिया अल्प-मत के अधिकारों को सदैव उपेत्ता की दृष्टि से देखा है और शियों के सरत्तण मे असफल रही है, और उसकी नीति सदैव बहुसंख्यक मुसलमानों को प्रसन्न और सन्तुष्ट करने की रही है। लीग से इस प्रकार असन्तुष्ट शियों को, दूसरी ओर, ब्रिटिश सरकार मुसलमानो से अलग जमाअत स्वीकार करने से इनकार करती है और बहुसंख्यक सुन्नी जमाअत उनको कोई अधिकार देने को तय्यार नहीं है। लीग से शिया जमाअत को शिकायत है कि भारत की अन्य जमाअतो से अपने अधिकार तो वह लेलेना चाहती है किन्तु उन अधिकारों मे से मुसलिम सम्प्रदाय के अन्तर्गत अल्प-संख्यकों को कुछ देना नहीं चाहती। मि० जिन्ना इनके मतालबों पर शियो को पहले बिना शर्त लीग में शामिल हो जाने पर ज़ोर देते हैं। भविष्य मे होनेवाले किसी भी राजनीतिक अथवा

वैधानिक समझौते के सम्बन्ध में कान्फरेंस घोषणा कर चुकी है कि शियो को ऐसा कोई समझौता स्वीकार नहीं होगा, जिसमे उनकी प्रतिनिधि संस्था, इस कान्फरेंस, की सहमति प्राप्त न कर ली गई हो। सर स्टैफर्ड क्रिप्स के भारत आने पर कान्फरेंस ने अपने प्रतिनिधियो से भेट करने के बारे मे पत्र-व्यवहार किया था। किन्तु उसका कोई प्रतिफल नहीं निकला।

लीग की पाकिस्तान योजना के सम्बन्ध मे कान्फरेंस ने चिन्ता प्रकट की है। यद्यपि प्रकाश्य रूप से लीग ने नहीं कहा है, किन्तु लीग पाकिस्तानी प्रान्तो मे 'हुकूमते-इलाहिया' यानी शरई इसलामी शासन-विधान क़ायम करने की कल्पना कर रही है। मुसलिम लीग के अप्रैल १६४३ के वार्षिक अधिवेशन मे इस प्रकार का प्रस्ताव आने वाला था, किन्तु वह पेश नही हुआ। इस 'हुकूमते-इलाहिया' का विधान वैसा ही होगा, जैसा हज़रत मुहम्मद साहब के बाद चार ख़लीफ़ाओं—हजरत अबूबकर, हजरत उमर, हज़रत उसमान और हजरत अली—के शासन-काल मे रहा। यह चारो ख़लीफ़ा सुन्नत जमाअत के आदर और श्रद्धा के पात्र हैं और शिया इनके निन्दक हैं। वह इनके नाम पर तबर्रा पढते हैं। अतएव शिया 'पाकिस्तान' मे इस प्रकार के शासन-विधान के प्रबल विरोधी हैं। इससे उनके धार्मिक विश्वास को ठेस पहुँचेगी। 'मदहे सहाबा' और 'तबर्रा' का इससे सम्बन्ध है, और इस प्रश्न पर शिया जमाअत सुन्नियो से कोई समझौता करने को कदापि तैयार नहीं है। भारतीय मुसलमानो मे शियों की संख्या कम-से-कम दो करोड़ है, जबकि कुछ लोग इस संख्या को तीन करोड़ तक समझते हैं। शियो की अलग मर्दुमशुमारी न होने से ठीक आँकडे प्राप्त नही हैं। फरवरी १६४३ के सर्व-दल-नेता सम्मेलन मे इस कान्फरेन्स को भी निमन्त्रित किया गया था। वर्तमान वैधानिक और राजनीतिक सङ्कट के निवारण के सम्बन्ध मे भी ११ अप्रैल १६४३ को कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी एक चिंतापूर्ण प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी है। व्यक्तिगत रूप से पूँजीपति और सत्ताधारी कुछ शिये लीग मे शामिल हैं, किन्तु कान्फरेन्स उनको अपनी जाति का प्रतिनिधि स्वीकार नही करती। कान्फरेंस का मुख्य कार्यालय लखनऊ मे है, और अँगरेज़ी साप्ताहिक लाइट' उसका मुखपत्र है

सर्व-दल-नेता-सम्मेलन—फरवरी-मार्च '४३ ने महात्मा गांधी के २१ दिन के व्रत-काल मे श्रीराजगोपालाचारी तथा श्री क० मा० मुन्शी आदि नेताओ ने नई दिल्ली मे भारत के सर्व दलो के नेताओ का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। यह सम्मेलन २० फरवरी १९४३ को नई दिल्ली मे, सर तेजबहादुर सप्रू के सभापतित्व मे, हुआ, जिसने लगभग ३००० हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, योरपियन आदि सम्प्रदायो के नेताओ ने भाग लिया। इस सम्मेलन मे डा० जयकर ने निम्न प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जो सर्व सम्मति से स्वीकार किया गया:—

"यह सम्मेलन, जो भारत ने विविध धर्मो, संप्रदायो एवं हितो का प्रतिनिधि है, इस देश की जनता की देशव्यापी आकांक्षा की अभिव्यक्ति करता है कि भारत के भविष्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय शुभाकांक्षा के हित मे महात्मा गांधी को तुरन्त ही बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया जाय। यह सम्मेलन उस गंभीर स्थिति को सबसे अधिक चिन्ता के साथ देखता है जो उस समय उत्पन्न हो जायगी जबकि सरकार समय पर कार्यवाही करने मे विफल रहेगी और इस संकट का अवरोध न कर सकेगी। इसलिए यह सम्मेलन सरकार से अनुरोध करता है कि वह महात्मा गांधी को तुरन्त रिहा करदे।"

वाइसराय की सेवा मे यह प्रस्ताव स्वीकृत होने से पूर्व ही सूचनार्थ भेज दिया गया था और बाद में उसकी स्वीकृति की सूचना भी दे दी गई थी। वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी ने, २१ फरवरी १९४३ को, इस प्रस्ताव के उत्तर मे निम्नलिखित पत्र सम्मेलन के सभापति, सर तेजबहादुर सप्रू, को भेजा:—

"श्री गांधी के उपवास के मामले मे भारत-सरकार का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उस विज्ञप्ति मे उल्लिखित है जो सरकार ने १० फरवरी को प्रकाशित की थी और उसकी एक प्रति आपके अवलोकन की सुविधा के लिए भेजता हूँ। उस तारीख़ के बाद कोई नवीन स्थिति पैदा नहीं हुई है और भारत सरकार की विज्ञप्ति, स्पष्टतः व्रत के सबध मे पूरी ज़िम्मेदारी श्री गांधी पर ही स्वीकार करती है, सरकार पर नहीं, इसलिए उसके अन्त करने का निर्णय भी उनके ऊपर ही निर्भर है।"

इसी दिन सर तेजबहादुर सप्रू, (सभापति), श्री एन० सी० चट्टोपाध्याय

(बंगाल हिन्दूसभा के प्रधान), सर अब्दुल हलीम ग़ज़नवी (एम० एल० ए० (केन्द्रिय), (अध्यक्ष केन्द्रिय राष्ट्रीय भारतीय मुस्लिम सङ्घ), श्रीमती सरलादेवी चौधरानी (प्रधान-मन्त्रिणी, भारतीय महिला एसोसियेशन और प्रधान हिन्दू-मुसलिम-महिला-एकता-समिति), डा० अशरफ (साम्यवादी नेता), डा० शौकतुल्ला अन्सारी (जनरल सेक्रेटरी, अखिल-भारतीय आज़ाद मुस्लिम दल), कामरेड बी० टी० रणदिवे (साम्यवादी दल के प्रतिनिधि), डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी (कार्यकर्त्ता-प्रधान, अखिल-भारतीय हिन्दू महासभा), डा० बी० एस० मुंजे (जनरल सैक्रेटरी, हिन्दू महासभा), राजा महेश्वरदयाल सेठ (अध्यक्ष हिन्दूसभा अवध), श्रीभूलाभाई जीवनजी देसाई (नेता, विरोधी-दल केन्द्रिय असेम्बली, पूर्व सदस्य कांग्रेस कार्य-समिति), श्री पी० एन० बनर्जी (नेता, राष्ट्रवादी दल केन्द्रिय धारासभा), पं० हृदयनाथ कुंजरू (अध्यक्ष, सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसायटी और लिबरल नेता), श्रीमती हन्ना सेन (उपाध्यक्षा, अखिल-भारतीय महिला परिषद्), डा० पी० सुब्बरायन (पूर्व क़ानून-मन्त्री, मदरास), श्री जे० आर० डी० टाटा (अध्यक्ष टाटा सन्स कंपनी), श्री एन० एम० जोशी (सेक्रेटरी, आल-इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस और एम० एल० ए० केन्द्रीय), सर अरदेशिर आर० दलाल (मेनेजिंग डाइरेक्टर, टाटा आयर्न एण्ड स्टील कंपनी), श्री सच्चिदानन्द सिंह (वाइस चान्सलर पटना यूनिवर्सिटी), श्री जी० एल० मेहता (अध्यक्ष फैडरेशन आफ् इंडियन चेम्बर्स आफ कमर्स), श्री किरणशंकर राय (मेम्बर, बंगाल असेम्बली) श्री मुहम्मद अहमद काज़िमी एम० एल० ए० (केन्द्रिय), श्री सेवासिंह गिल (जमींदार), श्री हुमायूँ कबीर (सैक्रेटरी, हिन्दू-मुसलिम-एकता परिषद्), राइट आनरेबुल डा० एम० आर० जयकर (पूर्व न्यायाधीश न्याय-कमिटी, प्रिवी कौंसिल), श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (पूर्व गृहमन्त्री, बम्बई), कुँवर सर जगदीशप्रसाद (पूर्व सदस्य वाइसराय की शासन परिषद्) प्रमुख व्यक्तियों और नेताओं के हस्ताक्षरों से एक वक्तव्य ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री श्री चर्चिल के पास, समुद्री-तार द्वारा, भेजा गया, जिसमें उनसे यह अपील कीगई कि महात्मा गांधी को तुरन्त ही बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया जाय।

२४ फरवरी को श्री चर्चिल ने इसका जो उत्तर दिया, वह निम्न प्रकार है:—

"विगत अगस्त मे भारत-सरकार ने यह निश्चय किया था कि मि० गाधी तथा दूसरे कांग्रेस नेताओ को नज़रबन्द रखा जाय और इसका कारण स्पष्ट किया जा चुका है, और अच्छी तरह मालूम भी है। उस निर्णय के जो कारण थे, वे आज भी अस्तित्व मे है, और सम्राट् की सरकार भारत सरकार के इस निश्चय को स्वीकार करती है कि भारत की जनता और सयुक्त राष्ट्रो के प्रति उसका जो कर्त्तव्य है उससे वह विमुख न हो और मि० गाधी द्वारा उपवास रखकर अपनी मुक्ति प्राप्त करने के प्रयत्न मे सहायक न हो।"

इस प्रकार सर्व-दल नेता-सम्मेलन का प्रयास विफल रहा। किन्तु सम्मेलन की स्थायी-समिति निराश नहीं हुई। १० मार्च १९४३ को बबई मे सर तेज-बहादुर सप्रू के सभापतित्व मे पुनः नेता-सम्मेलन हुआ, जिसमे वाइसराय से एक सभ्य-मण्डल ले जाकर मिलने का निर्णय हुआ, किन्तु वाइसराय ने डेपुटेशन से भेट करने के सम्बन्ध मे अपमानजनक शर्ते लगादी, फलतः डेपुटेशन लेजाने का विचार त्याग दिया गया।

विशिष्ट शब्द-सूची

हिन्दी	अँगरेज़ी पर्याय	पृष्ठ-संख्या
अमरीकन मजदूर मघ	American Federation of Labour	२०
अराजकतावाद	Anarchism	२५
असहयोग	Non-co operation	३६
अहस्तक्षेप-नीति	Non-Intervention Policy	३५
अहिंसा	Non-violence	३६
आतकवाद	Terrorism	३८
आर्थिक-प्रवेश	Economic Penetration	३९
आर्थिक-राष्ट्रीयता	Economic Nationalism	,,
आर्थिक-साम्राज्यवाद	Economic Imperialism	,,
आनुपातिक प्रतिनिधित्व	Proportional Representation	,,
आइरिश राष्ट्रीय परिषद्	Dail Eireann	४२
आर्य्य	Aryans	४३
उत्तरदायी शासन	Responsible Government	५७
उधार और पट्टा क़ानून	Lend and Lease Act of 1941	,,
उपनिवेश	Colony Dominion	,,
एकच्छत्र शासन	Monarchy	५८
एकाधिपत्य	Monopoly	५८
एकान्तता	Isolationism	,,
ऐंग्लो-सैक्सन	Anglo-Saxons	६०
ओटावा-समझौता	Ottawa Pact	६३
औद्योगिक सगठन-समिति	Industrial Organisation Committee	६४
औपनिवेशिक मॉग	Lebensraum Living Space	६५
औपनिवेशिक स्वराज्य	Dominion Status	,,
कृषि-सामञ्जस्य-क़ानून	Agricultural Adjustment Act, 1933	७१

हिन्दी	अँगरेजी पर्याय	पृष्ठ-संख्या
काग्रेस-कार्य समिति	Congress Working Committee	७१
काग्रेस-मंत्रि-मण्डल	Congress Ministry	७२
काग्रेस-समाजवादी दल	Congress-Socialist Party	,,
कामन-सभा	House of Commons	७५
कामिण्टर्न-विरोधी समझौता	Anti-Comintern Pact	,,
कांग्रेस क्रान्तिकारी सघ	League of Radical Congress-men	७७
किसान-कार्यक्रम	Agrarian Programme	,,
किसानवादी	Agiarians	,,
क्रिप्स के प्रस्ताव	Cripps Proposals	८१
क्रूज़र	Cruiser	८३
केन्द्रियतावाद	Centralism	८४
केन्द्रिय धारा-सभा	Central Assembly	,,
कैलाग-ब्रियान्द समझौता	Kellogg-Briand Pact	,,
कामिण्टर्न	Comintern	८६
को मिन तांग्	Kuo Min Tang	,,
गिल्ड समाजवाद	Guild Socialism	६८
गेस्टापो	Gestapo	,,
चतुर्दश सिद्धान्त	Wilson's Fourteen Points	१०५
चातुर्वर्षीय योजना	Four Year Plan	१०६
जिबूटी	Djibouti	१२६
टारपीडो	Torpedo	१३१
टारपीडो बोट	Torpedo Boat	,,
तटस्थता	Neutiality	१३८
तटस्थता कानून	Neutiality Act	,,
तटस्थ-क्षेत्र	Neutrality Zone	,,
तटावरोध	Blocade	१४०

हिन्दी	अँगरेज़ी पर्याय	पृष्ठ-संख्या
पैंज़र सेना	Panzer Division	१८५
पैराशूट : जंगी छतरी	Parachute	१८६
प्रभाव क्षेत्र	Sphere of Influence	१९०
प्रान्तीय स्वराज्य	Provincial Autonomy	,,
प्रिवी कौंसिल	Judicial Committee of the Privy Council	,,
फ़ासिज़्म	Fascism	१९२
फ़ैडरल यूनियन	Federal Union	२०४
फ़ेबियन सोसाइटी	Fabian Society	,,
बंगभंग	Bengal Partition	२०५
बालफ़ोर घोषणा	Balfour Declaration	२१३
ब्रिटिश नौ-सेना	British Navy	२१५
ब्लिज़्क्रीग	Blitzkrieg	२२१
बुख़ारेस्त की संधि	Treaty of Bucharest	,,
बुर्ज़ुआ	Bourgeoisie	२२२
भारत-मंत्री	Secretary of State for India	२४१
भारत-रक्षा-क़ानून	Defence of India Act	,,
भारत-सेवक समिति	Servants of India Society	,,
भारतीय मुसलिम लीग	All-India Muslim League	२४६
भारतीय राष्ट्रीय उदारसंघ	All-India National Liberal Federation	२४७
भारतीय राष्ट्रीय महासभा	Indian National Congress	२४८
भारतीय व्यापारी मण्डल संघ	Federation of Indian Chambers of Commerce	२५२
भारतीय सेना	Indian Army	२५३
भारतीय हिन्दू महासभा	All-India Hindu Maha Sabha	२५४
भारतीय हिन्दू लीग	All-India Hindu League	२५५

हिन्दी	अँगरेजी पर्याय	पृष्ठ-संख्या
राइख़्ताग अग्नि-काण्ड	Reichstag Fire	३०८
राष्ट्र-सघ	League of Nations	३१२
राष्ट्र-सघ-यूनियन	League of Nations Union	३१४
राष्ट्रीय उदार-दल	National Liberal Party	३१५
राष्ट्रीय मजदूर दल	National Labour Party	,,
राष्ट्रीय समाजवाद या नात्सीवाद	National-Socialism	,,
रूस की क्रांति	Russian Revolution	३२५
लक्ज़मबर्ग (की ग्रान्ड डची)	Grand Duchy of Luxembourg	३३१
लखनऊ-समझौता	Lucknow Pact	,,
लन्दन-नौ-सधि	London Naval Treaty	३३२
लार्ड सभा	House of Lords	३३५
लालसेना	Red Army	३३६
लुफ़्टवैफ्	Luftwaffe	३३८
लोकार्नो की सधि	Treaty of Locarno	३४२
वर्साई की सन्धि	Treaty of Versailles	३४४
वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद्	Viceroy's Executive Council	३४६
वाल स्ट्रीट	Wall Street	३४६
ह्वाइट हाउस	White House	,,
विधान-निर्मात्री परिषद्	Constituent Assembly	३५०
विधानवाद	Constitutionalism	,,
विध्वसक	Destroyer	,,
ह्विग	Whig	३५४
ह्विप	Whip	,,
वेगॉ	Weygand	,,
वैटीकन	Vatican	३५६
वैधानिक सकट	Deadlock	,,

हिन्दी	अँगरेज़ी पर्याय	पृष्ठ-सख्य
वस्टमिन्स्टर-क़ानून	Westminster Statute	३५७
शक्ति-सन्तुलन	Balance of Power	३५८
शरणागत	Refugees	३५९
शान्तिवाद	Pacifism	३६२
शाम	Syria	३६३
शासन-उत्क्रान्ति	Coup d'etat	३६६
शासन-परिवर्तन	Change of Government	,,
शासन-विधान	Constitution	,,
शासनादेश-प्रणाली	Mandate	३६७
शुशनिग, कर्ट फान	Schuschnigg, Kurt von	३६८
श्वेत रूस	White Russia	,,
श्वेत सेना	White Army	३६९
सन्तुष्टिकरण नीति	Appeasement Policy	३७३
समाजवाद	Socialism	३७४
सहकारिता दल	Co-operative Party	३७६
सघवाद	Syndicalism	,,
सयुक्त मोर्चा	Popular Front	३८१
सयुक्त-राज्य अमरीका	United States of America	,,
स्वदेश-प्रत्यागमन	Repatriation	३८७
स्वर्ण-मानदण्ड	Gold Standard	३८८
सादाबाद का समझौता	The Pact of Saadabad	३९०
सामूहिक राज्य	Corporate State	,,
सामूहिक सुरक्षा	Collective Security	३९१
साम्प्रदायिक निर्णय	Communal Award	,,
साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली	Communal Representation	३९१
साम्यवाद	Communism	,,
	Imperialism	३९२

हिन्दी	ऑंगरेज़ी पर्याय	पृष्ठ-संख्या
स्तालिन दुर्ग-पंक्ति	Stalin Line	३९७
स्याम	Thyland	,,
स्लाव	Slav	३९९
स्वाधीनता-दिवस	Independence Day	,,
स्वायत्त शासन	Self-Rule Home Rule	,
स्वाश्रयी व्यवस्था	Self-Sufficiency	,,
स्पिट फाइर	Spitfire	४०२
सीगफ्रीड क़िलेबन्दी	Siegfried Line	४०३
सुरक्षित स्वर्ण-कोष	Gold Reserves	४०८
स्पेन का गृह-युद्ध	Spanish Civil War	४०९
स्वेज़ नहर	Suez Canal	४१०
स्टैन्डर्ड आइल कम्पनियाँ	Standard Oil Combine	४११
स्ट्रैसा का मोर्चा	Stressa Front	,,
सोकल	Sokol	,,
सोवियत	Soviet	,,
सोशल डेमोक्रेट्स	Social Democrats	४१५
स्कोदा कारख़ाना	Skoda Works	४१६
स्लोवाक	Slovaks	,,
स्लोवेनीज़	Slovenes	,,
हड़ताल	Lockout Strike	४१८
हवाई टारपीडो	Air Torpedo	४२१
हार्स्ट वेसल गायन	Horst Wessel Song	४२२
हिटलर-युवक	Hitler Youth	४३४
हिन्द-चीन	Indo-China	४३५
परिशिष्ट	Index . Supplement	४४७
अखिल-भारतीय ग्रामोद्योग संघ	All-India Village Industries Association	४४८

हिन्दी	अँगरेज़ी पर्याय	पृष्ठ-संख्या
अ०-भा० चर्खा संघ	A. I. Spinners Association	४४८
अ०-भा० देशी राज्य-प्रजा-परिषद्	A. I. States' People's Conference	४५०
ईसपात	Steel	४५४
कासाब्लाका सम्मेलन	Casablanca Conference	४५५
केन्द्रीय क़ैदख़ाने	Concentration Camps	४५८
गान्धी-लिनलिथगो-पत्रव्यवहार	Gandhi-Linlithgow Correspondence	४५९
फ़्यूरर	Fuehrer	४७२
भारत-रक्षा-क़ानून	Defence of India Act	४७३
सर्व-दल-नेता-सम्मेलन	All Partis Leaders' Conference	४८१

प्रकाशक
एजूकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड
चारबाग : : : : लखनऊ

प्रथम संस्करण, मई १६४३

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स
लखनऊ
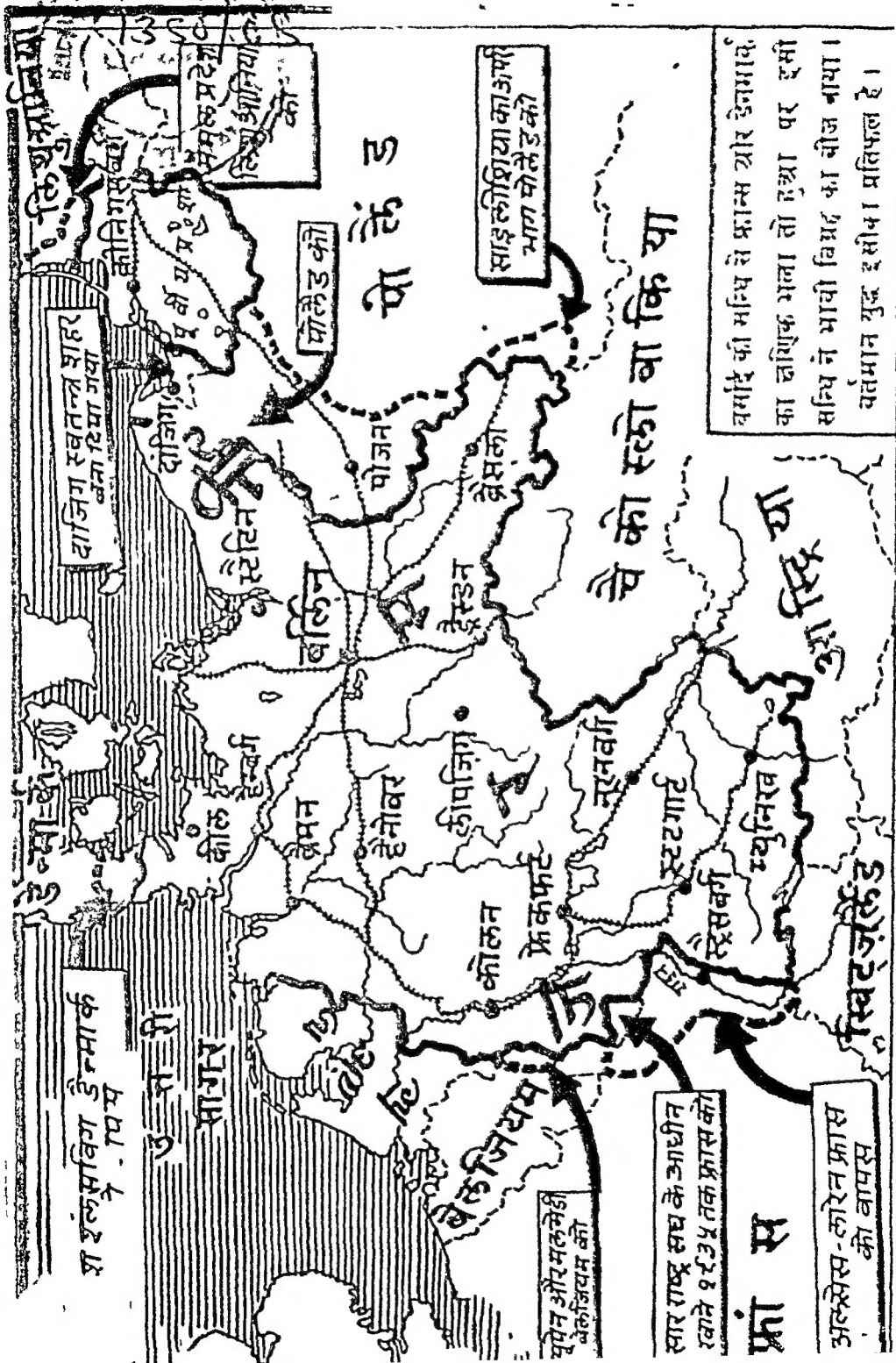
श श्लसविग डैन्मार्क
के पास

डैन्मार्क

दाजिग स्वतन्त्र शहर
बना दिया गया

लिथुआनिया

कोनिगसबर्ग

उत्तरी
सागर

कील

हैम्बर्ग

स्टैटिन

दांजिग

पूर्वी प्रशा

मैमल प्रदेश
लिथुआनिया
को

ब्रेमन

बर्लिन

पोलैंड को

पोजन

पोलैंड

हैनोवर

हॉलैंड

बेलजियम

लीपजिग

ड्रैस्डन

ब्रैसलो

साइलीशिया का अपरी
भाग पोलैंड को

कोलन

फ्रैंकफर्ट

यूपेन और मलमेडी
बेलजियम को

जर्मनी

नूरनबर्ग

चैकोस्लोवाकिया

सार राष्ट्र संघ के आधीन
रखने १९३५ तक फ्रांस को

स्टटगार्ट

स्ट्रैसबर्ग

म्युनिख

फ्रांस

आस्ट्रिया

अल्सेस-लारेन फ्रांस
को वापस

स्विटज़र्लैंड

वर्साई की सन्धि से फ्रान्स और डेनमार्क का क्षणिक भला तो हुआ पर इसी सन्धि ने भावी विग्रह का बीज बोया। वर्तमान युद्ध इसी का प्रतिफल है।

डेन्मार्क से १८६४ मे
लिया
डेन्मार्क
बाल्टिक
सागर
कौनिगसबर्ग
उत्तरी
सागर
दाजिग
कील
हैम्बर्ग
स्टेटिन
ब्रेमन
बर्लिन
पोज़न
पोलैंड
हैनोवर
ज
र
म
नी
ब्रेसला
रू
बेलजियम
कोलन
लीपजिग
ड्रेस्डन
फ्रैंकफर्ट
नूरनबर्ग
बोहेमिया
फ्रांस
स्टटगार्ट
स्ट्रैसबर्ग
बवेरिया
म्युनिख
प्रांस से १८७० में
लिया
आस्ट्रिया
स्विट्जर्लैंड
डेनमार्क, आस्ट्रिया और फ्रान्स से युद्ध करके १८७० मे विस्मार्क ने जर्मन-साम्राज्य की नीव डाली। १९१४ तक जर्मनी ने प्रबल शस्त्रीकरण किया और ससार को युद्ध-चुनौती दी।